श्री १०८ दिगम्वर जैनाचार्य देशभूषण महाराज के
आशीर्वाद सहित
भारत को परतंत्रता की शृंखलाओं से मुक्त कराने वाली
तथा
स्वतंत्रता का स्वर्णमयी प्रभात दिखाने वाली
एक मात्र प्रतिनिधि संस्था
अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस
के
मनोनीत निर्वाचित अध्यक्ष

श्री उच्छरंगराय नवलशंकर ढेबर

के कर कमलों में
सर्व भाषामयी अपूर्व ग्रन्थराज सिरि भूवलय
सादर समर्पित है।

पौष शुक्ला १, सं० २०१४
वीर निर्वाण सम्वत २४८४

श्री भूवलय प्रकाशन समिति
(जैन मित्र मंडल) धर्मपुरा देहली।

प्रकाशकीय वक्तव्य

महान ग्रन्थराज श्री भूवलय का परिचय जब भारत के राष्ट्रपति महामहिम डा० राजेन्द्रप्रसाद जी को दिया गया तो उन्होने इसको ससार का आठवा आश्चर्य बताया। इस महान ग्रन्थ की रचना आज से लगभग १००० वर्ष पूर्व दिगम्बर जैनाचार्य श्री १०८ कुमुदेन्दु स्वामी ने की थी। आचार्य श्री कुमुदेन्दु नन्दी-पर्वत के समीप, बेंगलौर से ३८ मील दूर यल्लावल्ली स्थान के रहनेवाले थे। वे मान्यखेट के राष्ट्रकूट राज के सम्राट अमोघवर्ष के राजगुरु थे। यह अपूर्व ग्रन्थ अन्य ग्रन्थो से विलक्षण ६४ अङ्कों में है जिससे कन्नड भाषा के ह्रस्व, तथा दीर्घ आदि अक्षर बनते हैं। यह ग्रन्थराज जैन धर्म की विशेषतया तथा अन्य धर्मों की संस्कृति का पूर्ण परिचय देता है। यह विज्ञान का भी एक अपूर्व ग्रन्थ है। इस ग्रन्थराज में १८ महान भाषाएँ तथा ७०० कनिष्ठ भाषाएं गर्भित हैं। यदि इस ग्रन्थराज को भली प्रकार समझा जाए तो इसके द्वारा मनुष्य का ज्ञान बहुत अधिक उन्नति कर सकता है। इस ग्रन्थ का कुछ भाग माइक्रो फिल्म कराया जा चुका है और इसे भारत के राष्ट्रीय संग्रहालय में राष्ट्रपति के आदेशानुसार रखा गया है।

गत वर्ष जैन प्रदर्शनी तथा सेमिनार के आयोजन पर इस ग्रन्थराज की प्रदर्शनी की गयी थी। जनता इसको देखकर आश्चर्य चकित तथा मुग्ध हो गयी थी। जनता की पुकार थी कि इसे शीघ्र प्रकाश मे लाया जाए।

यह ग्रन्थराज स्वर्गीय श्री प० यल्लप्पा शास्त्री, ३५६ विश्वेश्वरपुर सर्किल बेंगलौर के पास था। वे भी गत वर्ष देहली मे थे। इस ग्रन्थराज के प्रति उनकी अपूर्व श्रद्धा तथा भक्ति थी। वे प्रात स्मरणीय विद्यालकार आचार्य रत्न श्री १०८ देश भूषण जी महाराज के जोकि गत वर्ष देहली में चतुर्मास कर रहे थे सम्पर्क मे आये आचार्य श्री के हृदय मे जैन धर्म तथा जैन ग्रन्थो की प्रभावना की तो एक अपूर्व लगन है ही। आचार्य श्री ने इस ग्रन्थ की उपयोगिता देखकर इस ग्रन्थराज को प्रकाश में लाने का निश्चय किया। गत वर्ष इस विषय मे काफी प्रयत्न किया गया। चतुर्मास समाप्ति पर आचार्य श्री ने देहली से विहार किया अतः ग्रन्थराज के प्रकाशन का कार्य स्थगित सा हो गया। आचार्य श्री सदैव इस ग्रन्थ को प्रकाश मे लाने के लिए पूछते रहे परन्तु हम अपनी विवशताएं बताते रहे। अन्त में जब आचार्य श्री गुडगावे मे थे तो देहली के प्रमुख सज्जनो ने आचार्य श्री से प्रार्थना की—कि वे जबतक देहली न पधारेगे इस कार्य का आरम्भ होना असम्भव है। आचार्य श्री पहले दो चतुर्मास देहली में कर चुके थे अत देहली नही आना चाहते थे। परन्तु देहली निवासी लगातार आचार्य श्री को इस महान ग्रन्थराज के प्रकाश मे लाने के हेतु देहली आने के लिए आग्रह करते रहे। अन्त मे आचार्य श्री ने इस कार्य की महानता तथा उपयोगिता को दृष्टि में रखते हुए इस वर्ष देहली आना स्वीकार किया।

आचार्य श्री अप्रैल १९५७ में देहली पधारे। तत्काल ही तार आदि देकर श्री यल्लप्पाजी शास्त्रीको बेंगलौरसे बुलाया गया। भाग्यवश भारतके प्रमुख उद्योगपति धर्मवीर दानवीर, गुरु भक्त श्री युगल किशोर जी बिडला—जोकि आचार्य श्री को अपना धर्म गुरु ही मानते हैं। इस ग्रन्थ से बहुत प्रभावित हुए उन्होने भी यह प्रेरणा की कि इस ग्रन्थ को प्रकाश में लाया जाए और उन्होने क्रियात्मक रूप से सहयोग के नाते इस ग्रन्थ के प्रकाशन में जो विद्वानों पर व्यय हो वह देना स्वीकार किया। उनके इस महान दान से हमको और भी प्रेरणा मिली। ग्रन्थ के कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक नियमित समिति देहली की प्रमुख साहित्यिक सस्था जैन मित्र मण्डल धर्मपुरा देहली के तत्वावधान मे ग्रन्थराज श्री भूवलय प्रकाशन समिति के नाम से स्थापित की गयी जिसमें देहली नगर के प्रमुख सज्जनों ने अपना सहयोग दिया। समिति वर्तमान में निम्न प्रकार है।

सस्थापक—दिगम्बर जैनाचार्य श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज।

सरक्षक—श्री सर्वार्थसिद्धि सघ बेंगलौर।

सभापति लाला० अजितप्रसाद जी ठेकेदार।

उपसभापति—ला० मनोहरलाल जी जौहरी ।
,, ला० मुन्शीलाल जी कागजी
मन्त्री—श्री महताबसिह जी बी० ए० एल० एल० बी० ।
,, ,, आदीश्वरप्रसाद जी एम० ए० ।
,, ,, पन्नालाल जी प्रकाशक तेज ।
कोषाध्यक्ष—श्री नेमचन्द जी जौहरी ।
संशोधक—स्वर्गीय श्री यल्लप्पा शास्त्री ।
प्रकाशन प्रबन्धक—ला० छुट्टनलाल जी कागजी ।
,, ,, श्री मुनीन्द्रकुमार जी एम० ए० जे० डी०
,, ,, ,, रघुवरदयाल जी ।
सदस्य—ला० श्यामलाल जी ठेकेदार ।
,, जोतिप्रसाद जी टाइप वाले ।
,, प्रेमचन्द जी जैनावाच कम्पनी
,, शान्तिकिशोर जी ।
,, रणजीतसिह जी जौहरी ।
,, रामकुमार जी ।

ग्रन्थराजके संशोधन तथा भाषानुवाद का कार्य आचार्य श्री की छत्रछाया मे क्षुल्लिका विशालमती माताजी,स्वर्गीय श्री यल्लप्पाशास्त्री, प० अजितकुमार जी शास्त्री तथा प०रामशकरजी त्रिपाठी द्वारा शुरू किया गया । मुद्रण का कार्य श्री देशभूषण मुद्रणालय को दिया गया । कार्य सुचारु रूपसे चलता रहा । आचार्य श्री लगभग ८ घण्टे प्रतिदिन इस ग्रन्थराज के लिए देते रहे हैं । इसी प्रकार यल्लप्पा शास्त्री जी भी दिन रात इस कार्य में सलग्न रहे । इसी बीच में एक महान दुर्घटना हो गयी जैसा कि सदैव होता ही है । भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शीघ्र ही देश को राष्ट्र पिता महात्मा गाधी की आहुती देनी पडी उसी प्रकार इस ग्रन्थ के प्रकाश में आने से पहिले ही इस ग्रन्थ के सरक्षक श्री यल्लप्पा शास्त्री, अपने घर बेंगलोर से दूर इसी देहली मे २३ अक्टूबर १९५७ को स्वर्गवास कर गये । आप केवल एक दिन ही बीमार रहे । आपका निधन एक महान वज्रपात है, और आज भी समझ नही आती कि उनकी अनुपस्थिति में यह समिति क्या कर सकेगी । हम तो स्वर्गीय के प्रति श्रद्धा के दो फूल ही चढा सकते हैं । केवल इतना और कह सकते हैं कि हम अपनी ओर से पूर्ण प्रयत्न करेंगे कि जो कार्य हम स्वर्गीय के जीवन में न करसके वह उनके निधन के बाद अवश्य पूरा करें ।

इस ग्रन्थराज का आरम्भ में इस समय केवल मंगल प्राभृत ही २५० पृष्ठो मे प्रकाशित किया जा रहा है । ग्रन्थराज बहुत विशाल है और इसको पूर्णतया प्रकाश में लाने के लिए सहस्रों पृष्ठ प्रकाशित करने पड़ेंगे । आर्य धर्म शिरोमणि श्री युगलकिशोर जी बिडला ने इस कार्य में अपना पूरा सहयोग देने की स्वीकारता दी है । गत सप्ताह जैन जाति शिरोमणि दानवीर साहू शान्तिप्रसाद जी तथा उनकी सौभाग्यवती पत्नी रमारानी जो देहली में थी । वे दोनो आचार्य श्री के दर्शनार्थ उनके पास आये थे । वे इस ग्रन्थ से तथा इस ग्रन्थ के प्रति आचार्य श्री की लगन से अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होंने यह आश्वासन दिया है कि इसके भविष्य के कार्य-क्रम की रूप रेखा आदि उनके पास भेज देने पर वे पूर्ण रूप से इस ग्रन्थ के उद्धार तथा प्रकाशन में सहयोग देगे । हमे आशा है कि उनके तथा बिडला जी के सहयोग से तथा आचार्य श्री के आशीर्वाद से हम इस कार्य को भविष्य में भी प्रगति दे सकेंगे ।

हमे इस कार्य में देहली जैन समाज के अतिरिक्त दिगम्बर जैन समाज गुडगावा, गोहाना, रिवाडी, फरुखनगर तथा रोहतक आदि से भी आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है । ग्रन्थ के मुद्रण मे जो कागज लगा है उसका अधिकतर भार देहली के माननीय सज्जनो ने उठाया है जिनमे निम्न नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । ला० सिद्धोमल जी कागजी, ला० मनोहरलाल जी जौहरी, ला० मुन्शीलाल जी कागजी, ला० नेमचन्द जी जौहरी, ला० नन्नूमल जी कागजी, ला० जयगोपाल जी आदि ।

इस ग्रन्थ की आरम्भ मे २००० प्रतियां मुद्रण की जा रही हैं । इनमे से १००० प्रतियो का समस्त व्यय देहली जैन समाज के प्रमुख धर्मनिष्ठ दानी स्वर्गीय ला० महावीर प्रसाद जी ठेकेदार ने अपने जीवन में ही देना स्वीकार किया था । ग्रन्थ के मुद्रण को अधिक से अधिक सुन्दर बनाने में

देशभूषण मुद्रणालय के समस्त कर्मचारी गण तथा उसके प्रबन्धक श्रीचन्द जी जैन ने विशेष प्रयत्न किया है जिसके लिए हम उनके आभारी हैं।

अन्त में हम आचार्य श्री के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। आचार्य श्री के ही सतत प्रयत्नो तथा लगन के फलस्वरूप आज हम इस महान ग्रन्थ को प्रकाशित करते हुए अपने को धन्य मान रहे हैं। हमे स्वर्गीय श्री यल्लप्पा शास्त्री के दोनों पुत्र श्री धर्मपाल तथा शान्तिकुमार के सहयोग की भी अत्यन्त आवश्यकता है तथा हमें विश्वास है कि वे भी अपने पूज्य पिता की भांति इस कार्य में सहयोग देते रहेंगे। अन्त में हमारा समस्त जैन समाज से निवेदन है कि वह इस कार्य में हमे अपना पूर्ण सहयोग तन-मन-धन से दें। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से जैन संस्कृति की प्राचीनता तथा उसका महत्व ससार में सूर्य के समान प्रसरित होगा।

हम हैं आचार्य श्री के आशीर्वाद के अभिलाषी—

सभापति अजितप्रसाद जैन ठेकेदार। मन्त्री आदीश्वरप्रसाद जैन एम० ए०।
मन्त्री महताबसिंह जैन बी० ए० एल० एल० बी०। ,, पन्नालाल (तेज अखबार)।

ग्रन्थराज श्री भूवलय प्रकाशन समिति
जैन मित्र मण्डल, धर्मपुरा देहली।

ग्रन्थराज श्री भूवलय प्रकाशन समिति

जैन मित्र मण्डल, धर्मपुरा देहली।

खड़े हुए— श्री रामकुवर जैन, श्री नेमचन्द जैन जौहरी, श्री महताबसिह जैन, श्री शान्तिकिशोर जैन, श्री आदीश्वर प्रशाद जैन, श्री पन्नालाल जैन तेज प्रेस
(बाये से दाये) सदस्य कोषाध्यक्ष B A L-L B मत्री सदस्य M A मन्त्री मन्त्री
कुर्सी पर बैठे हुए- श्री मुन्शीलाल जैन कागजी, श्री जगाधरमल जैन, श्री अजितप्रशाद जैन, श्री मनोहरलाल जैन जौहरी, श्री जोतिप्रशाद टाइपवाले, श्री श्यामलाल जैन
उपसभापति प्रधान,दि० जैन मदिरान ठेकेदार सभापति उपसभापति सदस्य ठेकेदार सदस्य
कमेटी देहली सदस्य
बैठे हुए— श्री रघुबरदयाल जैन (प्रकाशन प्रबन्धक) श्री जिनेन्द्र कुमार जैन' श्री होशियारसिह जैन कागजी।

नोट:—अन्य सदस्य जो फोटो में सम्मिलित न हो सके--(१) ला० रणजीतसिह जैन जौहरी, (२) श्री मुनीन्द्र कुमार जैन M.A J.D.
(३) श्री छुट्टनलाल जैन कागजी, (४) श्री प्रेमचन्द जैन, जैनावाच कम्पनी, (५) श्री रामकुमार जी।

श्रीभूवलय-परिचय

श्रीकुमुदेन्दु आचार्य और उनका समय

श्रीकुमुदेन्दु या कुमुदचन्द्र (इन्दु शब्दका अर्थ 'चन्द्र' है) नाम के अनेक आचार्य हुए हैं। एक कुमदुचन्द्र आचार्य कल्याणमन्दिर स्तोत्रके कर्ता हैं। एक कुमुदचन्द्र आचार्य महान वादो वाग्मी विद्वान हुए हैं जिन्होने श्वेताम्बरों के साथ शास्त्रार्थ किया था। एक कुमुदेन्दु सन् १२७५ मे हुए हैं जो श्री माघनन्दि सिद्धात चक्रेश्वर के शिष्य थे उन्होने **रामायण** ग्रथ लिखा है। किन्तु इस ग्रन्थ राज भूवलय के कर्ता श्री कुमुदेन्दु आचार्य इन सबसे भिन्न प्रतीत होते हैं।

श्री देवप्पा का पिरिया पट्टन मे लिखा हुआ **कुमुदेन्दु शतक** नामक कानड़ा पद्यमय पुस्तक है उसमे भूवलय के कर्ता श्री कुमुदेन्दु आचार्य का उल्लेख है। देवप्पा ने कवि माला तथा काव्यमाला का विचार करते हुए सगीत मय कविता लिखी है, उसमे भूवलय कर्ता कुमुदेन्दु आचार्य का आलकारिक वर्णन है। कुमुदेन्दु शतक के कुछ कानडो पद्य यहाँ बतौर उदाहरण के दिये जाते हैं– कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने माता पिता का नामका उल्लेख तो नही किया परन्तु मुनि होने के बाद इस भूवलय नामक विश्व काव्य की रचना करते समय अपना कुछ परिचय दिया, वह निम्न पद्यो से प्रकट है

ओदिसिदेनु कर्माटकद जनरिगे । श्री दिव्यवाणिय क्रमदे ॥
श्रीदया धर्म समन्वय गणितद । मोदद कथेयनालिपुदु ॥
वरद मंगलद प्राभृतद महाकाव्य । सरणियोळ्गुरुवीरसेन ॥
गुरुगळमतिज्ञान दरिविगेसिलेंकिह । अरहत केवलज्ञान ।
जनिसलु सिरिवीरनेर शिकपन घनवाद काव्यदकथेय ॥
जिनसेन गुरुगळ तनुविनजन्मद घनपुण्यवरधर्मनवस्त ॥
नाना जनपद वेल्लदराळुधर्म । तानु क्षोणिसि बपगि ॥
तानल्लि मान्यखेटवदोरे जिन भक्त । तानुअमोघ वर्षांक ।

कवि कर्नाटक जनता को सम्बोधन करते हुए कहते हैं:—

अर्थ—श्री कुमुदेन्दु आचार्य का ध्येय विशालकीर्ति है, मुनिचर्याका पालन करना उनका गौरव (गुरुत्व) है, वे नवीन नवीन कीर्ति उत्पन्न करते थे, वे अवतारी महान पुरुष थे। सेनगण की कीर्ति फैलाने वाले थे। उनका गोत्र सद्धर्म है सूत्र वृषभ हैं, शाखा द्रव्यांग है, वंश इक्ष्वाकु है, सर्वस्वत्यागी सैन हैं। नवीन गण गच्छ के आनन्ददायक नेता थे। नव्य भारत में शुद्ध रुचिकार कर्माट राजा को उन्होने भारत के निर्माण मे अहिसा धर्म की परिपाटी को बढाने रूप आशीवाद दिया। समस्त भाषाओं और समस्त मतों का समन्वय और एकीकरण करने वाले भुवन विख्यात **भूवलय** ग्रन्थ की रचना की।

इस तरह देवप्पा ने भूवलय के कर्ता श्री कुमुदेन्दु (कुमुदचन्दु) आचार्य का परिचय दिया है। भूवलय ग्रन्थ से प्रतीत होता है कि कर्माटक चक्रवर्ती मान्यखेट के राजा राष्ट्रकूट अमोघवर्ष को भूवलय द्वारा कुमुदेन्दु आचार्य ने व्याख्या के साथ करणसूत्र समझाया था।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य के दिये हुए विवरण को परशीलन करके देखा जाय तो वे सेनगण, ज्ञातवश, सद्धर्म गोत्र, श्री वृषभ सूत्र, द्रव्यानुयोग शाखा, और इक्ष्वाकु वश परम्परा मे उत्पन्न हुए तथा सेनगण मे से प्रगट हुए नव गण-गच्छों की व्यवस्था की।

श्री कुमुदेन्दु को सर्वज्ञ देव को सम्पूर्ण वाणी अवगत थी अत वे महान ज्ञानो, धुरन्धर पडित थे लोग इन्हे सर्वज्ञ तुल्य समझते थे। और इनके पहले के मगल प्राभृत भूवलय को गणित पद्धति के अनुसार जानने वाला श्री वीरसेनाचार्य को बतलाया है। तथा श्री जिनसेन आचार्य का "शरोर जन्म से उत्पन्न हुआ घनपुण्यवर्द्धन वस्तु" विशेषण द्वारा स्मरण करके वीरसेन के बाद श्री जिनसेन, आचार्य को गौरव प्रदान किया है।

जहां तक हमको ज्ञात हैं। अंक राशि से निर्मित अन्य कोई ऐसा साहित्य ग्रन्थ अभी तक प्रकाश मे नहीं आया। श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने परम गुरु वोर सेन आचार्य की मम्मति मे बनाये गये इस "सव भाषामय कर्नाटक काव्य" मे वीरसेन आचार्य से पहले की गुरु परम्परा का निम्न रूप मे उल्लेख किया है—

वृषभ सेन, केसरिसेन, वज्रचामर, चारुसेन, वज्रसेन अदत्तसेन, जलजसेन, दत्तसेन, विदर्भसेन, नागसेन, कुंथुसेन, धर्मसेन मदरसेन जयसेन, सद्धर्मसेन, चक्रबध, स्वयभूसेन, कुंभसेन, विशालसेन, मल्लिसेन, सोमसेन, वरदत्तमुनि स्वयंप्रभारती, और इद्रभूति (२४ तीर्थंकरो के आदि गणधरो) के अनन्तर "वायु भूति, अग्निभूति सुधर्मसेन, आर्यसेन मुंडिपुत्र, मैत्रेय सेन अकपसेन, आध्र गुरु [भग० महावोर के] गणधर हुए। इनके बाद श्री प्रभावसेन, ने हरि-शिव शकर गणित के एक महान ज्ञाता बनारस [काशीपुरी] मे बाद विवाद करके जीता और गणिताक रूप **पाहुड ग्रंथकी रचना** करके दूसरे गणधर पदकी प्रशस्ति प्राप्त की। [अ०, १३, ५०, ८७, ९८, ११९]

गुरु परम्परा—

गुरु परपरा के इस भूवलय, आगे "**पसरिपकन्नाडिनोडेयर पिसुण तेयळिद कन्नडिगर्क सवरनाडिनोळ्चनिपर**"

इस प्रकार कर्नाटक सेन गण के द्वारा सरक्षण तथा सवृद्धि को प्राप्त कर "हरि, हर, सिद्ध, सिद्धात, अरहन्ताशा भूवलय" [६, १८६–१९०] धरसेन गुरु के निलय [७, १९] इस गाथा नम्बर से उद्धृत होकर धरसेनाचार्य से, अर्थात् धरसेन आचार्य करुणा के पाच गुरु की परम भक्ति से आने वाले अक्षराक काव्य की रचना करके प्राकृत, सस्कृत, और कानडी इन तीनो का मिश्रित करके पद्धति ग्रन्थ का इस १३–२१२ अन्तर श्रेणी के ४० श्लोक तक सस्कृत, प्राकृत, कर्नाटक रूप तीन भाषाओ के शास्त्रो का निर्माण हुआ तथा इस सरलमार्ग कोष्ठक काव्य [५-१-७७] को धरसेन आचार्य के पश्चात् भूतवली ने इस कोष्ठक बन्ध अक [८-५१] रूप मे भूवलय का नूतन प्राकृत दो सधि रूप में रचना कर गुरु उसे परम्परा तक लाये, इतना ही नही किन्तु इसके अतिरिक्त भूवलय के कर्नाटक भाग में ही शिवकोटि [४-१०-१०२] शिवाचार्य [४-१०-१०५] शिवायन [१०७] समन्तभद्र [४-१०-१०१] पूज्यपाद [१९-१०] इनके नामो को और भूवलय के प्राकृत सस्कृत भाग श्रेणियों में इन्द्रभूति गौतम गणधर नागहस्ति, आर्यमक्ष और कुंद कुंदाचार्यादिक को स्मरण किया है। इस समय अक राशि चक्र मे छिपे हुए साहित्य में नवीन संगति के बाहर निकल आने के बाद इसके विषय में नये नये विचार प्रगट होंगे। हम इस समय जितना प्रगट करना चाहते थे। उतने ही, विषय को यहाँ दे रहे हैं।

श्री भूवलय को देख कर एव समझकर, प्रभावित हुआ प्रिया पट्टन के जैन ब्राह्मण अत्रेय गोत्र का देवप्पा अपने कुमुदेन्दु शतक के प्रथम अंश में महावोर स्वामी से लेकर कुछ आचार्य का स्मरण कर उनको नमस्कार कर कुमुदेन्दु के विषय को कहा है। कि श्री वासुपूज्य त्रिविद्याधर देव के पुत्र उदय चन्द्र, इनके पुत्र विश्व विज्ञान कोविद् कीर्ति किरण प्रकाश कुमुदचन्द्र गुरु को स्मरण करते समय उद्धृत हुआ आदि पद्य—

श्री देशीगणपालितो बुधनुतह । श्री नंदिसंघेश्वरह ।
श्री तर्कागमवार्धिहिम (म) गुरु श्री कुंद कुंदान्वयह ॥
श्री भूमंडल राजपूजित सज्छ्री पादपद्मद्वयो ।
जीयात् सो कुमुदेंदु पडित मुनिहि श्रीवक्रगच्छाधिपह ॥

इस पद्य मे देवप्पा ने इसी भूवलय के कर्ता कुमुदेन्दु को देशी गण नंदिसंघ कुंद कुंदाम्नाय का बतलाया है। नये गण गच्छ को निर्माण करके उन्ही को उपदेश देने के कारण सेनगण मे इन्ही को उल्लेखित किया है, और देशीगण का भी उसी मे से विकास हुआ हो, ऐसा जान पडता है। इस समय भी सेन गण के कर्नाटक प्रान्त मे जैन परम्परा के संपालक एव अनुयायी अनेक जैन विद्यमान हैं। और भूवलय ग्रन्थ के कर्ता कुमुदेन्दु गग रस की विरदावलो मे दिये हुए कोडवड ग्राम तलेकात् अथवा तलेकाड नंदिगिरि को विश्ववद्य जैनधर्म के पवित्र पर्वतो का वर्णन करते समय उनके सम्पूर्ण भाव को नदि पर्वत के ऊपर आदिनाथ तोर्थंकर का 'नदि' चिन्ह जो बन गया है, वह रूप उनकी प्रशान्त भावना से ओत–प्रोत है। यह बात उनके वचनो से स्पष्ट होती है।

इहके नंदियु लोक पुज्य ॥८-५५॥ महति महावीर नन्दि ।५६।
इहलोकवादियगिरिय । ६-५६। सुहुमानन्द गणितदबेट्टा ।
महसीदुमहाव्रत भरत ।६१। वहिदनुव्रत नन्दि ।७२।
सहनेय गुरुगळ वेट्ट ।७३। सहचर मूराहमूरू ।७४।

इसका गगराज के सस्थापक सिह नन्दि मुनीन्द्र के द्वारा शक स० १ ईस्वी सन् [७८] में निर्माण हुआ था। पहली राजधानी इनकी नदिगिरि होनी चाहिए। हम ऐसा निश्चयत कह सकते हैं कि प्रस्तुत कुमुदेन्दु उन्ही सिहनदि वश के हैं। इन्ही की परम्परा का एक मठ सिहणगच्छ मे हैं जहा जहां सेनगण है वहॉ वहॉं सब इन्हीके धर्म का क्षेत्र है। इस प्रकार संपूर्ण विषय का विचार करके दिये गए वर्णन को, जो कि देवप्पा ने दिया है, ठीक प्रतीत होता है।

भूवलय काव्य को देवप्पा ने विशेष रीति से समझ कर जनता के प्रति जो उपकार किया है वह उपकार विश्व का दसवा आश्चर्य है। इस भूवलय काव्य को, जो विश्व की समस्त भाषाओ को लिये हुए है। उनकी रचना कर उन्होने अपने पिता को लोक मे महान गौरव प्रदान किया हैं। इससे सिद्ध होता है कि कुमुदेन्दु के पिता वासु पूज्य और उनके पिता उदयचन्द थे।

कुमुदेन्दु के समय का परिचय कराने के लिये अभी तक हमे जितने भी साधन प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर हम कह सकते हैं कि ग्रन्थ कर्ता के द्वारा उल्लिखित पूर्व पुरुषो के नामो का उल्लेख और उनका सक्षिप्त परिचय, तथा समकालीन व्यक्तियो के नाम, समकालीन राजाओ का परिचय, श्री कुमुदेन्दु का समय निर्द्धारण मे सहायता करते हैं।

श्री कुमुदेन्दु से पूर्व होने वाले आचार्य धरसेन, भूतबलो पुष्पदन्त, नागहस्ति, आर्य मक्षु और कुदकुदादि, एव अन्य रीति से उल्लिखित शिवकोटि, शिवायन, शिवाचार्य, पूज्यपाद, नागार्जुन ये सब विद्वान आठवी शताब्दी से पूर्ववर्ती हैं। उनकी परम्परा के ग्रन्थ न मिलने पर भी सस्कृत प्राकृत और कर्नाटक भाषा मे लिखा हुआ विपुल साहित्य, तथा विश्वसेन भूतबली पुष्पदन्तादि की रचनाएँ विद्यमान हैं। पर उनमें कुमुदेन्दु के काव्य समान समस्त भाषाओ को समाविष्ट कर वस्तु तत्व दिखलाने का काव्य कोशल नहीं हैं।

श्री कुमुदेन्दु के विनीत शिष्य राजा अमोघ वर्ष ने अपने 'कविराज मार्ग' मे कवियो के नामो का जो उल्लेख किया है वह इस प्रकार है.—

विमलोदय नागर्जुन । समेत जय वंधुदुर्विनीतादिगळी ॥
क्रमरोळ्चिगद्या । श्रम पद गुरु प्रतीतियंके य्कोन्डर् ॥

विमल, उदय, नागार्जुन, जयबधु, दुर्विनीति कवियो मे से नागार्जुन द्वारा रचित कक्षपुट तत्र को समझा फिर नागार्जुन का 'कक्ष पुट तंत्र' जो पहले कानडी भाषा मे था वह बाद मे सस्कृत में परिवर्तन कर दिया गया इस तरह इस उल्लेख से अनुमान किया जाता है कि यह दुर्विनीत के शासन समय का साहित्य ही उपलब्ध है। विमल जयबंधु का काव्य हमे उपलब्ध नही हुआ है तो भी नृपतुग अमोघवर्ष के ग्रन्थ में आने वाले कर्नाटक गद्य कवि प्रिया पट्टन के देवप्पा द्वारा कहे जाने वाले कुमुदेन्दु के पिता उदयचन्द्र का नाम ही 'उदय' है ऐसा कहने मे किसी प्रकार की आपत्ति नही है। और इस भूवलय ग्रन्थ में आनेवाले पूज्यवाद आचार्य ने कल्याण कारक ग्रन्थ को बनाया ऐसा स्पष्ट होता है। क्योकि कुमुदेन्दु से जो पूर्ववर्ती कवि थे उनका समय सन् ६०० से बाद का नही है। इस ग्रथ से हमने जो कुछ समझा है वह प्राय अस्पष्ट है, पूरा ग्रन्थ हमें देखने को नही मिला है। किन्तु हमने जो कुछ देखा है उससे यह भली भॉति विदित है कि कुमुदेन्दु आचार्य के लिखे अनुसार वाल्मीकि नाम के एक संस्कृत कवि हो गए है। ['कवि' बाल्मीकि रस दूत अणि सूबा'] इस प्रकार कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलय ग्रथ मे शुद्ध रामायण अक के कर्ता बाल्मीकि ऋषि के नामका उल्लेख किया है। परन्तु इनके विषय में अभी तक कुछ निर्णय नही हो सका है। कोई कहता है कि वह छठो शताब्दी के हैं कोई कहता है कि उसके बाद के हैं। इस तरह उनके समय सम्बन्ध का ठीक निर्णय नही हो सका है कि वे कब हुए हैं।

अमोघ वर्ष की सभा मे वाद विवाद करके शिव-पार्वती गणित को कह कर चरक वैद्य के हिसात्मक आयुर्वेद का खण्डन किया। इस तरह कुमुदेन्दु आचार्य के द्वारा कहा गया उक्त उल्लेख अभी तक अस्पष्ट है। आचार्य समन्तभद्र का उल्लेख भी अभी विचारणीय है। इस कथन से स्पष्ट है कि कुमु-

देन्दु के द्वारा उल्लेखित सभी कविजन छठी शताब्दी से पूर्ववर्ती हैं। कुमुदेन्दु के समकालीन व्यक्तियो मे मे एक वीरसेनाचार्य दूसरे जिनसेनाचार्य, वीरसेनाचार्य के द्वारा षट् खण्डागम की धवला टीका बनाई गई है। और जिनसेन महा पुराण के कर्ता है। उन्होने अपनी जयधवला टीका शक सं० ७५९ में बना कर समाप्त की है और महा पुराण भी लगभग उसी समय वे अधूरा छोडकर स्वर्गवासी हुए हैं जिसे उनके शिष्य गुणभद्र ने पूरा किया था अत बाद मे उस समय उनके शिष्य कुमुदेन्दु मौजूद थे ऐसा अनुमान किया जाता है।

३—कुमुदेन्दु आचार्य ने राष्ट्र कूट राजा अमोघ वर्ष को अपना यह ग्रंथ सुनाया था, ऐसा कहा जाता है। मान्यखेट के अमोघ वर्ष का समय इस से निश्चित रूप मे कहा जा सकता है। कुमुदेन्द् आचार्य ने अपने ग्रन्थ मे अमोघ वर्ष के नाम का कई बार उल्लेख किया है। जैसे कि–

भारतदेशद मोघवर्षन राज्य । सारस्वतबेंबग ।८१२६।
तनल्लि मान्यखेटददोरेजिनभक्त । तानुअमोघवर्षांक ।९ १४६।
सिहियखंडदकर्माटकचक्रिय । महिमेमंडलभेज्ञरांतु ।९-१७२।
गुरुविनचरणधूळिय होमोघांक । दोरेयराज्य 'ळ्' भूवलय ॥
जानरमोघवर्षांकनसभेयोळु । क्षोणिशसर्वज्ञमतदिं ॥
इह वे स्वर्गवीएबंतेरदिम् ।९१७९। वहिसि अमोघवर्षनृप ॥
ऋषिगळेल्लरुएरगुवतेरदिदळि । ऋषिरूपधरकुमुदेन्दु ॥
हसनादमर्नादिदमोघवर्षांकगे । हेसरिट्टुपेळ्द श्री गीतं ।४५।
ऊनविल्लद काव्यदक्षराकद काव्य । काणिपवैकुंठ काव्य ।४६।
ऊनविल्लद श्री कुरुवशहरिवश । आनंदमय वंशगळलि ।
तानेतानागि भारतवाळ्दराज्यद । श्री निवासन दिव्य काव्य ।
सिरि भूवलयम्नाम सिद्धांतनु । दोरे अमोघ वर्षाक नृपम् ।
ईयुत कर्माट जनपदरेल्लर्गे । श्रेयोमपिलधर्मम ।१६-२कु४,५।

इस प्रकार अमोघ वर्ष का अनेक प्रकार से सम्बोधन करते हुए जो उद्धरण दिये गये हैं। अमोघ वर्ष का समय ईस्वी सन् ८१४ से ८७७ तक उसने राज्य किया है, इसमे किसी प्रकार का सदेह नही है। इनके गुरु का समय ईस्वी सन् की ८ वीं शताब्दो होना चाहिये ऐसा अनुमान किया जाता है। कुमुदेन्दु आचार्य ने गंग रस और उनके शंका कास्मरण किया हैं। और गोट्टिक नामक शैवट्ट शिवमार्ग के नामका उल्लेख भी किया गया है जैसे कि—

महदादिगांगेयपूज्य ।५६। महियगनृगरसगणित ।६६।
महिय कळ्बप्पुकोवळला ।७१। मवरितलेकाच गंग ।७२।
अरसराळिदगंगवंश ।१२। त् रसोत्तिगेयबर मंत्र ।१३।
एरडुवरेयद्विपदद ।१४। गरुवगोट्टिगरेलुरंद ।१५।
अरसुगळाळ्वकळ्बप्पु ।२०। ट्रदंगवनुभवकाव्य ।२३।
आदि योळुमत्त वर्णदसेनर । नादिय गंगर राज्य।
सादि अनादिगळुभय गसाधिप । गोदम निम्बद वेद ।२३।

इन समुल्लेखो से यह स्पष्ट है कि आचार्य कुमुदेन्दु ने जो अमोघ वर्ष का 'शैवह' शिवमार्ग' नाम से उल्लेखित किया है वे उनके प्रारम्भिक नाम ज्ञात होते हैं। "शिवमार देवम् सैगोट्टनेंबेरडेनये पेसरमृताल्दि, शिवमार मत तथा गजशास्त्र की रचना कर और पुनः एनेलृवदो शिवमारम। हो वलयाधिपन "सुभग कविता गुणमय' ॥ भूवलय दोल्" गजाष्टक। योगवनिगेयु "मोने के वाडु" मादुदे पेलगुम्।

इस तरह पर कानडी गद्य मे गजाष्टक नाम के काव्य की रचना की है।

यह शैवट्ट वट्टिग–शुभ कविता बनाने में प्रवीण थे। भूवलय में गजाष्टक वणिके वाम इत्यादि काव्य कूटने और पीसने के विषय मे कविता कर्नाटक भाषा मे चत्तान्न वेदन्न' ऐसे दो प्रकार के पुराने पद्य पद्धति में पाये जाते हैं। जो कि पुरातन काव्य की रचना शैली को व्यक्त करते हैं। जहां तक अमोघवर्ष के काव्य का सम्बध है, उसमे उल्लिखित उक्तदोनों काव्य हैं। उनको इन्होने निश्चय से उपयोग किया है।

शिवमार्ग वट्टि ने दक्षिण कर्नाटक का राज्य ईस्वी सन् ८०० से ८२० तक किया हैं। इसके पश्चात् गगरस राजा नंदगिरि, ने (लाल पुराधीश्वर) (राजा) शासन किया है। इतना ही नही, किन्तु इसके अलावा इस भूवलय में

'कळवप्पु' 'कल्ल बप्पु' (श्रवणबेलगोल) का पुरना नाम है यह ७ वी शताब्दी के पहले के शासन में 'वड्ढारक' नामक प्राचीन ग्रन्थ मे इस प्रकार उल्लिखित मिलता है। यह स्थान गग राजा के एक प्रान्त की राजधानी था ऐसा मालूम होता है। जैसे अन्य पुण्य तीर्थ है, उसी तरह इसे भी पुण्य क्षेत्र माना जाता है इस विषय का अनुशीलन किया जाय तो कुमुदेन्दु गुरु का और उनके समकालीन राजा का क्रिश्चियनशक ८१३ से ८१४ के मध्यवर्ती मे सिद्ध होगा। इसे हम स्थूल रूपमें कह सकते हैं। भूवलय के आगे के अध्याय को जहा तक जो अंक पद से निकाल कर देखने के बाद मिलने वाले जितने चाहे उतने साहित्य से क्रिश्चियन शक ८१३ से ८१४ के बीच एक निश्चत समय हमे मिल जाता है। इससे कुमुदेन्दु आचार्य, क्रिश्चियन शक ८ वी शताब्दी मे हुए हैं।

वादी कुमुदचन्द्र–(ईसवी सन् ११००) में इन्होने जिन-सहिता नामक प्रतिष्ठाकल्प की कानडी टोका लिखो है। यह "इति माघनदी सिद्धांत चक्रवर्ती के पुत्र चतुर्विध पडित चक्रवर्ती श्री वादी कुमुदचन्द्र पडित देव विरचिते' इस प्रकार उनकी स्तुति की गयी है।

पार्श्व पंडित–(सन् १२०५) यह अपनी गुरु परम्परा को कहते हुए वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र, सोमदेव, वादिराज, मुनिचन्द्र, श्रुतकीर्ति, नेमिचन्द्र वासुपूज्य, शिष्य, श्रुतकीर्ति, मुनिचन्द्र, पुत्र वीरनदि, नेमिचन्द्र सैद्धातिक। बलात्कारगण के उदयचन्द्र मुनि, नेमिचन्द्र भट्टारक के शिष्य वासुपूज्य मुनि, रामचन्द्र मुनि, नंदियोगी, शुभचन्द्र, कुमुदचन्द्र, कमलसेन, माघवेंदु, शुभचन्द्र शिष्य, ललितकीर्ति, विद्यानदि, भावसेन, कुमुदचन्द्र के पुत्र वीरनदि इत्यादि मुनियो की स्तुति की है। इनमें से कोई भी कुमुदेन्दु आचार्य से सम्बन्ध नही रखते।

कुमुदेंदु– (ई० सन् १२७५) कुमुदचन्द्र की इस गुरु परम्परा में वीरसेन, जिनसेन (७ विद्वाना के वाद) वासु पूज्य के शिष्य अभयेन्दु के पुत्र "कुमुदेन्दु" माघवचन्द्र अभयेंदु, कुमुदेन्दु व्रति पुत्र, "माघनदि मुनि, बालेन्दु जिनचन्द्र" यह कुमुदेन्दु मुनि भी भूवलय के कर्ता नही हैं।

महाबल कवि–(ई० सन् १२५४) इनको गुरु परम्परा मे जिनसेन वीरसेन, समनभद्र, कवि परमेष्ठी, पूज्यपाद, गृद्धपिच्छ, जटासिहनंदी अकलंक शुभचन्द्र "कुमुदेन्दु मुनि" विनयचन्द्र, माघवचन्द्र, राजगुरु, मुनिचंद्र, बालचंद, भावसेन, अभयेंदु, माघनदियति, 'पुष्पसेन' यह कुमुदेंदु भी भूवलय के कर्ता नही हैं।

समुदायके माघनंदी–(ई० सु० १२६०) इनकी गुरुपरम्परा में मूल सघ बलत्कार गण के वर्धमान (अनेक तले मारु के शिष्य होने के बाद) श्रीधर शिष्य वासु पूज्य, शिष्य उदयचद्र, शिष्य कुमुदचद्र, शिष्य माघनंदि कवि, यह कुमुदचद्र, भी भूवलयके कर्ता नहीं हैं।

कमल भव–(र० सु० १२७५) इनके द्वारा बतलाई हुई गुरु परम्परा में कोंडकुन्द, भूतवलि, पुष्पदन्त, जिनसेन, वीरसेन, (आगे २३ व्यक्तियों के और नाम कह कर) पद्मसेन व्रति, जयकीर्ति, कुमुदेन्दु योगो, शिष्य माघनंदी मुनि इस तरह छह विद्वानों के बाद" स्वगुरु माघनदो पडित मुनि आदि हैं, इस गुरु परम्परा में तीन माघनदी का नाम आया है। यह कुमुदेन्दु भी भूवलय के कर्ता नही हैं।

इसी तरह कुमुदेन्दु या कुमुदचन्द्र नाम के और भी अनेक विद्वान हो गए हैं उनकी गुरु परम्परा प्रस्तुत कुमुदेन्दु से भिन्न है. और समय अर्वाचोन है, ऐसी स्थिति में अन्य नामधारी कुमुदेन्दु नाम के विद्वानो के सम्बन्ध में यहाँ विशेष विचार करने का कोई अवसर नहीं हैं। क्योकि उनका प्रस्तुत ग्रथकर्ता से सम्बन्ध भी नहीं ज्ञात होता, अस्तु।

भाषा और लिपि

श्री कुमुदेन्दु आचार्य केकहने के अनुसार श्री आदि तीर्थंकर वृषभदेव के गणधर वृषभसेन से लेकर महावीर के गणधर इन्द्रभूति तक सभो गणधर कर्णाटक प्रान्त वाले ही थे इसलिये सभी तीर्थंकरो का उपदेश सर्व भाषात्मक उस दिव्य वाणो में हुआ था और उसो का प्रचार समस्त लोक में किया गया था। सर्व भाषात्मक उस दिव्य वाणो को प्रमाण संबद्ध रूप से व्यक्त करने की शक्ति केवल कर्नाटक भाषा मे ही है। ऐसा कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नही होगी।

आदि तोर्थंकर श्री ऋषभ देव के द्वारा अपनी दोनों पुत्रियो को दिया हुआ ज्ञान, कनाड़ी भाषा मे हो था और यह भी कहा जाता है कि उनके मोक्ष जाने के पूर्व उन्होने बडी रानी यशस्वती के पुत्र भरत को साम्राज्य पद और लघु रानो सुनन्दा के पुत्र गोमद देवको पौदनपुरका राज्य प्रदान किया।

पश्चात् उनकी पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी देवी ने मिलकर पिता से निवेदन किया कि हे तात ! ऐसी कोई शाश्वत वस्तु हमे भी प्रदान कीजिये। इस तरह प्रार्थना करने पर पिता ने कहा कि ठीक है, परन्तु सभी लौकिक वस्तुएं पहले ही वे अपने पुत्रो को दे चुके थे।

भगवान् वृषभदेव ने मन में सोचा कि इनको कोई लौकिक वस्तु देने से क्या फायदा, कोई ऐसो चीज देना चाहिए कि जो परलोकमे भी इनकी कीर्ति को कायम रखे। इस तरह सोचकर भगवान् वृषभदेवने अपनी दोनो पुत्रियो को बुलाकर सपूर्ण ज्ञान साधन के आधारभूत वस्तु इन्हें देना चाहिए, ऐसा सोचकर बुलाया और ब्राह्मी देवी को अपने जघा पर बिठा कर उनके बायी हथेली मे अपने दाया हाथ के अगुष्ट से सपूर्ण भाषाओ को पूर्ण करने के लिए जितना अंक चाहिए उतने हो अक को अ से लेकर अ, इ, उ. ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ- इन नो अक्षर को ह्रस्व, दीर्घ प्लुत के सत्ताईस स्वरो तथा पुन क, च, ट, त, प, इस वर्गके पच्चीस वर्गित के अक्षरो को य, र, ल, व, श, ष, स, ह, इन आठ व्यजंनो को नथा आगे, ०,००, ०००, ००००ये चार अयोग वाहओ को मिलाकर ६४ चोसट अक्षर रूप, वर्णमालाओ की रचना कर उनके हाथ मे लिखा और उनको कहा कि ये अक्षर आपके नाम से यह अक्षय होकर रहे, और यह सम्पूर्ण भाषाओ को इतने हो पर्याप्त हैं ऐसा कहकर उनको आशीर्वाद दिया।

दूसरी अपनी सुन्दरो नामक छोटी पुत्री को दायी जघा पर बिठाकर उनकी बाया हथेली में अपने दायें हाथ को अगुष्ट से एक बिंदो ० इस तरह लिखकर उसो के समानरूप से दो छेद करके उसे ही आधा आधा छेदकर १,२, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ० लिख दिया। पुन इसको एक में मिला देने से पहले के समान बिंदो रूप होता है और इन छेद को एक मेंकमे मिलाकर इस अक को हो वर्ग पद्धति के अनुसार मिलाते जाने से विश्व के समस्त अणु परमाणु ग्रहण करने के लिए जितने अंक आवश्यक हों उतने ये अक पर्याप्त हैं। ऐसा भगवान ने इस अंक विद्याको, पुत्री सुन्दरो देवो को समझा दिया। और तदनुसार प्रत्येक वस्तुओ को दोनो का बटवारा करके देते समय एक को एक दिया और दूसरो पुत्री को दूसरा दिया ऐसा उनके मन में भाव न हो और उनको पता भी न पडे इस तरह एक ही वस्तु में दोनो को भिन्न भिन्न रूप में बतलाकर उन दोनों को भो सतुष्ट कर दिया।

इस पद्धति के अनुसार समस्त शब्द समूह को प्रत्येक ध्वनि और प्रतिध्वनि रूप अक्षर सज्ञा को परिवर्तन करके इस अक अक्षर को चक्रबंध रूप में पहले ही गोम्मट देव के द्वारा अर्थात् बाहुबली के द्वारा "समस्त शब्दागम शास्त्ररूपमे रचना किया गया है। उस दिनसे परम्परा रूपसे ही वह श्रीकुमुदेन्दुआचार्य तक चला आया है इस तरह इसमें उल्लेख किया गया है। उस समय आदि तीर्थंकर के द्वारा दिया हुआ अंक लिपिके अक्षर लिपि अलावा और भी उस समय वृषभदेव सर्वज्ञ पद (केवल ज्ञान) प्राप्त करने के बाद कहा हुआ दिव्य उपदेश भी कर्णाटक भाषामे ही कहा था श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं। कि इस गणित भाषा मे विश्व की ७१८ भाषाओ को अपने अन्दर खींचकर समावेश करने वाले अक भाषा शास्त्र मे उपलब्ध है ऐसा बतलाया है।

इरुव भूवलय वोळ्नूरु हदिगेन्दु। सरस भाषेगवतार ।४-१७७।
वरद वादेळ्नूरहदिनेन्दु भाषेय। सरमाले यागलुम् विद्या।१०-२१०
साविर देंदु भाषघळिरलिवनेल्ल। पावन यह वीर वाणी।
काव धर्मान्कवु ओबत्तागियगि। तावु एळ्नूरकं भाषे।५०-१२६।
इदरोळु हुदगिद हदनेन्दु भाषेय। पद्दगळ गुणिसुन बरुवर्।
वासवरेल्लाडुव दिव्य भाषेय। राशिय गणितवे कट्टिर ॥
आशाधर्मामृत कुम्भदोळडगिह्। श्री शनेळ्नूरंक भाषे ।५-१२३।
मिक्किह एळ्नूरु कक्षर भाषेयम्। द्विक्किय द्रव्यागमर।
तक्क ज्ञानव मुंदक्करियुव आशेय। चोक्क कन्नडद भूवलय।५-१७५
प्रकटित सर्व भाषांक (६-१४) घनवोदळ्नूर् हदिनेदु।

वर्तमान भाषायें (६-४५-४६) सात सौ अठारह हैं। ९-१७४) उनमें सात सौ क्षुल्लक भाषायें और अठारह भाषायें कुल मिलाकर सात सौ अठारह (९-१९१) होती हैं।

वशवाद कर्माट वेंदु भागद । रस भग दंकक्षरद्सर्व ।
रसभावगळनेल्लव कूडलु वंबु । वशवेळनूर् हदिने ंदु भाषे ।।
।।११-१७१।।

इस प्रकार ७१८ भाषाओं को गर्भित करके सरल तथा प्रौढ रीति से श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस विश्व काव्य की रचना को है ।

इस तरह अपने काव्य ग्रन्थ का सर्व भाषामय कर्नाटक भाषा मे रचा है, इसमें पुरातन और नूतन दोनो भाषाओं को गर्भित किया गया है। कुमुदचन्द्राचार्य ने संयुक्त भाषा को इस तरह वितरण किया है कि सस्कृत, मागधी, पैशाची, सूरसेनी, विविध देशभेदवालो अपभ्रश पाच नौ, (५-१०-६-७-६) इन भाषाओं को तीन से गुणा करने पर अठारह होता है ।

कर्नाटक, मागध, मालव, लाट, गौड, गुर्जर प्रत्येकत्र मित्यष्टादश, महाभाषा (५-६-७-६-८) इस प्रकार उल्लेख किया गया है ।

सर्व भाषामयी भाषा विश्व विद्यावऽभासने ।
त्रिषष्टि चतुपष्टिर्वा वर्नाद् शुभनते मताः ।
प्राकृते सस्कृते चापि स्वय प्रोक्ता स्वयभुव ।
अकारादि हकारान्तां शुद्धां मुक्तावलिमिव ।
सर्व व्यंजन भेदेन द्विधा भेदमुपयुंषाम ।
अयोगवाह् पर्यन्तां सर्वं विद्या सुसंगतांम् ।
अयोगाक्षर संभूंति नैक बीजाक्षरश्चितां ।
समवाविदधत् ब्राह्मी मेघा विन्यति सुंदरी गणितं ।
स्थानंक्रमै. सम्यक् वास्यत् ततो भगवतो वक्तार' मिह् श्रुताक्षरा
वलि, वभ इति व्यक्त सुमंगलां सिद्ध मातृकं स भूवलय ।
(५,१,२,२,१,४,५)

इस सस्कृत गद्यमें आचार्य कुमुदेन्दु ने सर्वं भाषामयो भाषा का निरूपण किया है । और अंक लिपि में सात सौ अठारह भाषाओ में से प्रत्येक का नामोल्लेख किया गया है। ब्राह्मीं, पवन, उपरिका, वराटिका, वजीद, खरसायिका प्रभूतृका, उच्चतारिका, पुस्तिका, भोगवता, वेदनतिका, नियतिका, अक गणित गन्धर्व, आदर्श. माहेश्वरी, दामा, बोलघो, इस प्रकार के विचित्र नामादि का उल्लेख कर विवेचन किया गया है। आचार्य कुमुदेन्दु ने अपने भूवलय में सात सौ अठारह भाषाओ मे से निम्न भाषाओ का उल्लेख किया है, कर्नाटक में प्राकृत, सस्कृत, द्रविड, अन्ध्र, महाराष्ट्र मलयालम, गुर्जर, अग, कलिग, काश्मीर कम्बोज, हमीर, शौरसेनी बाली, तिब्बति, व्यग, बग, ब्राह्मी, विजयार्घ, पद्म, वैदर्भ, वैशाली, सौराष्ट्र, खरोष्ट्री, निरोष्ट्र, अपभ्र श, पैशाचिक, रक्ताक्षर, अरिष्ट, अर्धमागधी, (५-१०-२८-१०-५८) इनके अलावा और भी बतलाते हैं—

आरस, पारस सारस्वत, वारस, वस, मानव, लाट, गौड, मागध, विहार उत्कल कान्यकुब्ज, वराह, वैस्मर्ण, वेदान्त, चित्रकर और यक्ष राक्षस, हंस, भूत, ऊइया, यव, नान्मी तुर्की, द्रमिल, सैन्धव, मालवणिया, किरिय, देव नागरी, लाड, पाशी अमित्रिक, चाणिक्य, मूलदेवी इत्यादि (५-२८-१२०) इस प्रकार आने वाली भाषा लिपियो को इस नवमांक समंज्ञ नामक कोष्टक को एक ही अंक लिपि मे ही बाधकर उन सम्पूर्ण भाषाओ को इस कोष्टक रूप बंधाक्षर के अन्तर्गत समाविष्ट करके सभी कर्माटकके अनुराशिमे मिश्रित कर छोड़ दिया है। कुमुदेन्दु के समान अन्य किसी महापुरुष मे सम्पूर्ण भाषाओ को एक ही अक में गर्भित कर काव्य रूप मे गुफित करने की शक्ति नही हैं ऐसा मैं निश्चय से कह सकता हू ।

भूवलय ग्रन्थ की परम्परा इतिहास

भूवलय नामक विश्व काव्य की परम्परा को कुमुदेन्दु आचार्य ने इस प्रकार बताया है कि प्राचीन काल मे आदिनाथ तीर्थंकर ने अपने राज्य को, अपने पुत्र भरत और बाहुबली को बटवारा करके देते समय उनकी पुत्रि ब्राह्मी और सुन्दरी इन दोनो पुत्रियो को सम्पूर्ण ज्ञान के मूल ऐसे अक्षराक को पढाया था इस बात का हमने उपर्युक्त प्रकरण मे ही समझा दिया है । दोनों वहिनो को पढाया हुआ अक्षराक गणित-ज्ञान-विद्याको भरत ने सीखने की इच्छा व्यक्त नही की ।

विचार परायन गोमट देव—

रुणनु दोर्बलियवरक्क ब्राह्मीयु । किरिय सौंदरि अरितिर्व ।
अरस्नाल्काक्षर नवमांक सोन्न ंय। परिहर काव्य भूवलय।।

गणित काव्य

मनविट्टु कलितनाद कारणदिंद। मन्मथ नेनिसिदे देव।।

इस अक्षर अंक गणितको मन पूर्वक सीखने वाले होने के कारण बाहुबली का नाम मन्मथ भी इसी तरह पडा है ऐसा इस श्लोक से प्रतीत होता है । इसलिए इसके निमित्त से इस अक गणितके कर्ता बाहुबली को माना है । इस अक चक्र का उपदेश बाहुबली ने जब बडा भाई भरत के साथ आठ प्रकार का युद्ध हुआ था उस समय अपने भाई का अपमान करने के प्रति उनके मन में वैराग्य हुआ था उस वैराग्यमें अत समयमें भरत चक्रवर्तीने समझा कि ये तो अब मुनि होकर कर्म का क्षय करके मोक्ष चला जायगा । इस लिए इन से कुछ दान मांगना चाहिये । इस तरह उनको उन्होने कहा । तब बाहुबली पूर्णतया विरक्त होने के कारण उनके पास कुछ चीज देने योग्य नहीं थी । और आहार दान, शास्त्र दान, औषध दान और अभय दान के अतिरिक्त और कोई दान देने योग्य नहीं था । परन्तु मन में यह विचार किया कि मेरे पिता ने जो मुझे शास्त्र दान दिया है । उसी को मेरे भाई को देना उचित है । अन्य तीन दान मेरे द्वारा देने योग्य नही । ऐसा विचार करके अपने पिता के द्वारा अपनो दोनो बहिनो से समझी हुई "अक्षराक समन्वय पद्धति" का आदीश्वर भगवान ने अपने को उपदेश किया था वैसा ही सम्पूर्ण ज्ञान को सर्व भाषामयी ज्ञानमें जैसे अन्तर्भुक्त कहा था उसी तरह इस सदर्भ को जैसा कि श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय के पहले अध्याय के उन्नीसवे श्लोक मे कहा है कि—

लावण्य दंग मेप्याद गोमट देव । आवागतन्न अण्णनिगे ।
ईवाग चक्रबंधद कट्टिनोळ् कट्टि । दाविश्वकाव्य भूवलय ।।

इस प्रकार कहे हुए समस्त कथन पर से और कुमुदेन्दु आचार्य के मनानुसार इस भूवलयके आदि कर्ता गोमटदेव ही हैं । इम काव्यको भरत वाहुबली युद्धके बाद जब बाहुबली को वैराग्य हो गया, तब उन्होने ज्ञान भडार से भरे हुए इस काव्य को अन्तर्मुहूर्त में भरत चक्रवर्ती को सुनाया था । वही काव्य परम्परा से आता हुआ गणित पद्धति अनुसार अंक दृष्टि से कुमुदचन्द्राचार्य द्वारा चक्रबंध रूप में रचा गया है ।

यशस्वति देविय मगळाद ब्राह्मीगे । असमान कर्माटकद ।
'रिसियु' नित्यवु अरवत्नाल्कल्कक्षर। होसेद अंगव्य भूवलय।
करुणेयम् बहिरंग साम्राज्य लक्ष्मिय । अरुहनु कर्माटकद ।
सिरिमातायतते ओंदरिपेळिद । अरवत्नाल्क भवलय ।।
'धर्म ध्वज' वदरोळु केतिदचक्र । निर्मलदृष्टु हूगळम् ।
सर्व मनदगल' केवत्तोंदु सोन्न य । धर्म द कालुलक्षगळे ।।
आपाटियंक दोळ् ऐदुसाविर कूडे । श्रोपाद पद्म बंगदल ।।

१-२३-३०-६५-६

यह चक्र ५१०२५०००+५०००=५१०,३०००० दल अंक रूप में अक्षर होकर गणित पद्धति के अनुसार रचना की है इस काव्य को ही कुमुदेन्दु आचार्य ने स्पष्ट रूप में कहा है ।

अनादि काल से यह चक्रबद्ध काव्य आदि तीर्थंकर से लेकर महावीर तक इस की परम्परा बराबर चली आई है । जब भगवान महावीर को केवलज्ञान हो गया तब महावीर की वह दिव्य वाणी (दिव्य ध्वनि) सर्व भाषा स्वरूप होने लगी । उस समय महावीर के सबसे प्रथम गणधर इन्द्रभूति ब्राह्मण कर्नाटक, सस्कृत, प्राकत आदि अनेक भाषाओ के विद्वान थे, उन्होंने ही महावीर की वाणी का अवधारण कर भव्य जोवो को वस्तु स्वरूप समझाया था । गणधर के विना महावीर की वाणी ६६ दिन तक बन्द रही, क्योंकि यह नियम है कि तीर्थङ्कर की वाणो विना गणधर के नही खिर सकती । भगवान-महावीर के मोक्ष जाने से पूर्व तक गौतम इन्द्रभूति नें उनकी वाणी का समस्त संकलन करके राजा श्रेणिक और चेलना रानो एव अन्य सभा के लोगों को उसका भान कराया था । इसके बाद आचार्य परम्परा से जो पुराण चरित एवं कथा साहित्य तथा सिद्धात ग्रन्थ रचे गए वे सब महावीर की वाणी के अनुरूप थे ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलय ग्रन्थ में प्रकट किया है ।

आचार्य कुमुदेन्दु ने नवमाक से जो गणित में काव्य रचना की है उसे 'करण सूत्र' नामसे प्रकट किया हैं । इसके सम्बन्ध मे दो तीन श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—

नवकार मंतर दोळादिय सिद्धांत । अवयव पूर्वेय ग्रंथ ।
दवतार वादिमद्‘अ’ क्षरमङ्गल । नव अअअअअअअअअ ।
वशगोंड ‘आदि मङ्गल प्राभृत’ । रसद्‘अ’अक्षरवदु तानु ।२-१३१।
अष्ट कर्मगळम् निर्मूल माळ्प । शिष्टरोरेद पूर्वकाव्य ।३-१५२।
तारुण्य होंदि ‘मङ्गल प्राभृत’ दारदंददे नवनमन ।४ १३२।
परम मंगल प्राभृत बोळु अकव । सरिगूडि बरुव भावेगळम्।५-७६
वेदव हदिनाल्कु पूर्व श्री दिव्यकरण सूत्रांक ।१०-१०.११।
श्री गुरु ‘मंगल पाहुडदिम् पेळ्द। राग विराग सद्ग्रंथ १०-१०५
रस वस्तु पाहुड मंगलरूपद । असदृश वैभव भाषे ।१०-१६५।

इस पाहुड ग्रन्थमे आगे भो कहा है । कि (१०-२१२) जिनेन्द्र वाणी के प्राभृत (१००-२३७) रसके मगल प्राभृत मगल पर्याय को पढकर (११-४३) मगल पाहुड (११-६२-६२) इत्यादि

तुसु वाणिय सेविसि गौतम ऋषियु । यशद भूवलयादि सिद्धांत ।
सुसत गळभरके कावेंब हन्नेरड् । ससमांगवनु तिरहस्तद।१४-५।

इस प्रकार गौतम गणधर द्वाराही सबसे पहले यह भूवलय ग्रन्थ ५ भागो में द्वादशाग रूपसे रचना किया गया था और उसे ‘मगल पाहुड’ के रूपमे उल्लेखित भी किया था । इस कारण इस ग्रन्थ की रचना महावोर के निर्वाण से थोडे समय बाद में ही हो गई थी । इस समय भगवान महावीर के निर्वाण समय को २४८४ वर्ष व्यतोत हो गए । महावीर के निर्वाण के ४७० वर्ष बाद विक्रम सवत् शुरू हो जाता है । यद्यपि गौतम बुद्ध और भगवान महावीर समकालीन है, दोनो का उपदेश राजगृह मे दो भिन्न स्थानो पर होता था, परन्तु वे अपने जीवन में परस्पर मिले हो ऐसा एक भो प्रसग परिज्ञात नही है । और न उसका कोई समुल्लेख ही मिलता है । परन्तु यह ठीक है कि महावीर का परिनिर्वाण गौतम बुद्ध से पूर्व हुआ था । इस चर्चा का प्रस्तुत विषय से कोई विशेष सम्बन्ध नही है, अत यहा प्रकृत विषय मे विचार किया जाता है–आचार्य कुमुदेन्दु ने भगवान महावीर के समय के सम्बन्ध मे ‘प्राणवायुपूर्व’ मे निम्न प्रकार उल्लेख किया है–

साविर दोंडुवरे वर्षगळिंद । श्री वीर देव निम्बद ।
पावन सिद्धांत चक्रेश्वर रागि । केवलिगळ परपरेयिम् ।३।
हूविना युर्वेद दोळु महाव्रत मार्ग । काव्यवुसुखदायकवेन् ।
दाव्यवलदभ्युदय वनय्शरेयव । श्री व्यक्तदिद सेविसिद ।४।

यह विश्व काव्य भगवान महावीर के निर्वाण से लेकर आचार्य परम्परा द्वारा डेढ हजार वर्षों मे बराबर चला आ रहा था । उसी के आधारसे की गई कुमुदेन्दुको यह रचना विक्रम की नौवीं शताब्दो की मानने में कोई आपत्ति नहीं है ।

भूवलय के छंद

कुमुदेन्दु आचार्य के समय में भारत मे जो काव्य रचना होती थी उसमें विभिन्न छन्दो का उपयोग किया जाता था । कुमुदेन्दुने, दक्षिण उत्तर श्रेणी को मिलाकर अपने शिष्य अमोघ वर्ष के लिए अनेक उदाहरणो के साथ नयो और पुरानी कानडी मिलाकर प्रौढ और मूर्खजनो के हित के लिए उक्त रचना की थी, क्योकि पूर्व समय मे पुरानी कानडी का प्रचार उत्तर भारत के प्राय सभी स्थानो पर होता था, और दक्षिण में तो था ही । कुमुदेन्दु आचार्य ने ग्रन्थ रचना करते समय इस बात का ध्यान जरूर रक्खा था कि किसी को भी उससे बाधा न पहुचे । इसलिये सर्व भाषामय बनाने का प्रयत्न किया है । अतएव उभय कर्नाटक भाषाओ मे ही सर्व भाषाओ के गर्भित करने का प्रयत्न किया गया है । भूवलय के कानडी श्लोक के विषय में ग्रन्थकर्ता ने यह दर्शाया है कि जनता के आग्रह से उन्होने कर्नाटक भाषा मे रचने का प्रयत्न किया है और उसे सुगम बनाने के लिये ताल और क्रम के साथ सागत्य छन्द मे लिखा है तथा श्लोक १२३-१२४ का उल्लेख किया है ।

लिपियु कर्माटक वागलेवेकेंव । सुपवित्र दारिय तोरि ।
मपताळ लयगूडि ‘दारु साविर सूत्र’ । दुपसवहार सूत्रदलि ॥
वरद बागिसि अति सरल बनागि । गौतमरिद हरिसि ।
सर्वाकिदरवत्नाल्कक्षरदिद । सारि श्लोक ‘आरुलक्षगळोळ् ॥

कुमुदेन्दु आचार्य ने इस काव्य-ग्रन्थकी ताल और लय से युक्त छह हजार सूत्रो तथा छह लाख श्लोको मे रचना की है ऐसा उन्होने स्वय उल्लेखित किया है ।

कुमुदेन्दुके शिष्य नृपतुङ्गने अपने कविराजमार्ग मे तथा पूर्व कवि लोग अपनी कविता में 'चत्तन्न वेदडा' नाम को पद्धति मे रचना की है। कुमुदेन्दु ने अपने काव्य को 'चत्तन्न वेदडा' पूर्व कवि कथित मार्ग से मिश्रित करके आगे बढा दिया है। चत्तन्न को चार भाग मे—और वेदड को १२ अध्याय से १२ वें अध्याय के अंत तक अन्तर्गत रूप दडक रूप गद्य साहित्य मे रचना करके नृप तुंग के पहले कर्नाटक छन्द को दर्शाया है। कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने काव्य मे कहा है कि .—

मिगिलावतिशय वेळ्ळूर हृदिनेंदु । अगणित दक्षरभाषे ।९-१९८।
शगणादि पद्धति सोमसिम् रचिसिहे । मिगुबभाषेयु होरगिल्ल ।
अरितेवसांगत्य वेने मुनि नाथर । गुरु परंपरेय विरचित।९-१९६।
चरितेय सांगत्य रागवोळउगिसि । परतद विषय गळेल्ल।७१९२।
चक्रबन्धवेल्लमि कालवोळेंव । असदृश ज्ञानद् साँगत्य ।
उसहृसेनर सोख्यवु असमान। असमान साँगत्य वहुदु।९-१२३-१२२।

यह काव्य 'चत्तन्न' होने के कारण इसका विशेष निरूपण करने की जरूरत नहीं रही। उसका उदाहरण थोडा-सा यहाँ दिया जाता है।

स्वस्ति श्री मद्रसमराज गुरू भूमडलाचार्य एकत्वभावनाभावितरु उभय नय समग्ररु गुप्तरू चतुष्कषाय रहितरु पचव्रत समय तरु सप्त तत्व सरोजिनी राजहंसरु अष्टमद भजतरु, नव विधाबालब्रह्मचर्यालकृतरु-दशधर्म समेत द्वादश द्वादशांग श्रुतरु पारावारु चतुर्दश पूर्वादिगुरुरल।

इस प्रकार १२ [अ] और ३१ अध्याय से ५० श्रेणी मे उसका विभाजन किया है।

भूवलय की काव्यबद्ध रचना

कुमुदेन्दु ने अपने काव्य को अक्षरो में नही लिखा है, किन्तु पूर्व मे कहे हुए गौतम गणधर के मगल प्राभृत के समान इसी पाहुड ग्रन्थ को आचार्य त्रिरत्न सेन के लिखे हुए के समान, इनके सभी साहित्य का आधार रखते हुए कन्नड, सस्कृत, प्राकृत में भूतबली आचार्य द्वारा लिखे हुए समान, अथवा नागार्जुन आचार्य द्वारा लिखे हुए कक्षपुट गणित के समान अंको मे गणित पद्धति से गणना कर गुणन करके अकों मे लिखा है।

ओदिनोळत मुहूर्तदि सिद्धांत। दादि ग्रंथ्य बनेल्ल वित्त ॥
साधिप राज अमोघ वर्षनगुरु । साधिपअमसिद्ध काव्य ।९-१९५।

पूर्वाचार्यो के समान इन्होने ४६ मिनट मे ग्रन्थ को रचना की है, ऐसा उल्लेख किया गया है। यह सर्व भाषामयी, काव्य मूढ और प्रौढ सभी लोगो को लक्ष्य मे रखकर सरल भाषा मे रचा गया है। सात सो अठारह भाषाओं को काव्य मे निहित करते हुए कही-कही चक्रबद्ध और कही-कही चिन्हबद्ध काव्यो से अलकृत किया गया है पहले यह ग्रन्थ मूल कानडी भाषा में छपा है उसमें मुद्रित ग्रन्थ के पद्यो मे श्रेणिबद्ध काव्य है। उस काव्य बध में आने वाले कन्नड काव्य के आदि अक्षरो को ऊपर से लेकर नीचे पढते जांय तो प्राकृत काव्य निकलता है और मध्य मे २७ अक्षर बाद ऊपर से नीचे को पढ़ने पर सस्कृत काव्य निकलता है। इस तरह पद्यबद्ध रचना का अलग-अलग रीति से अध्ययन किया जाय तो अनेक बध मे अनेक भाषा निकलती हैं ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं।

बधो के नाम

चक्रबध, हसबध, पद्म, शुद्ध, ववमाकबध, वर पद्मबंध, महापद्म, द्वीप सागर, पल्लव, अम्बुबध, सरस, सलाक, श्रेणी, अक, लोक, रोम कूप, क्रौंच मयूर, सीमातीतादि बध, काम के पद्म बध, नख, चक्रबंध, सीमातीत गणित बध, इत्यादि बधो से काव्य रचा गया है। यह काव्य आगे चलकर अंक बंध से निकल कर इसमे क्रम से सभी विषय पल्लवित हो सकेगे। आचार्य कुमुदेन्दु की धार्मिक दृष्टि का इससे अधिक दिग्दर्शन कराने की जरूरत नहीं है। इस भूवलय मे—वेदड मे—तर्क व्याकरण, छद-निघंटु अलंकार काव्य धर, नाटकाष्टांग, गणित, ज्योतिष सकल शास्त्रीय विद्यादि सम्पन्न नदी के समान गम्भीर महानुभाव, लोकत्रय मे अग्रसर गारव विरोध रहित, सकल महीमण्डलाचार्य तार्किक चक्रवर्ती शत विद्या चतुर्मुख, षट्तर्क विनोदर, वैय्याकरणिक वादि, वैशेषिक भाषा प्राभृतक, मीमांसक विद्याधर सामुद्रिक भूवलय सम्पन्न। इस तरह वेदड की गद्य मे रचना की गई है।

इस प्रकार कह कर अपने और अपनी विद्वत्ता के विषय मे भी विवेचन किया गया है। इस कारण लोक में उन्हें, समतावादी, सकलज्ञानकोविद रूप-

से भी किन्हीं ने उल्लेख किया है। आचार्य कुमुदेन्दु ने जैन मत-सूत्रो के अभिमान से इतर मतो के अभिप्रायो को ठुकराया नही । इतर मतो का बहुत दिनों तक पूर्वजों की निधि समझकर उस साहित्य को एक प्रकार से तुलनात्मक रीति से सिद्ध करके बतलाया है। तुलना करते हुए कही भी विषमता को स्थान नहीं दिया है। किन्तु अगाध प्रमाणो को सामने रखते हुए उस उपकार को उपयोग में लाकर केवल वस्तु तत्व का विवेचन मात्र किया गया है और इसके सिवाय उन्होने अन्य किसी तरह का कोई आक्षेप प्रत्याक्षेप रूप मे कोई कथन नही ही किया है और आगे या पीछे होने वाले विपर्याम को ध्यान मे रखते हुए मोती के समान निर्मल बुद्धिरूपी धागे में उसे पिरोया गया है।

जहा तक मैं जानता हूं यह काव्य अत्यन्त प्राचीन है और भारतीय साहित्य में ऐसा अनुपम काव्य (ग्रन्थ) अभी तक कोई उपलब्ध नही हुआ है। अतः इसे सबसे महान् काव्य कहने मे कोई आपत्ति नही है।

मूल ग्रन्थ

कुमुदेन्दु आचार्य द्वारा स्वय हस्त द्वारा लिखी हुई इस ग्रन्थ की मूल प्रति उपलब्ध नही है और यह उपलब्ध प्रति किसके द्वारा लिखी गई है यह भी ज्ञात नही है। अन्य समकालीन, पूर्व या पश्चाद्वर्ती किसी कवि ने उनका उल्लेख भी नहीं किया है जिससे उनके सम्बन्ध मे विशेष रूप से यहाँ विवेचन प्रस्तुत किया जाता। केवल उनकी कृति भूवलय ग्रन्थ में ही उनका नामोल्लेख होने से उनका नाम नवीन रूप से परिचय में आया है। अत विद्वान लोग उस काल की ग्रन्थ राशि और शासन-सामग्री का यदि परिशीलन करें तो तत्कालीन इतिहास और ग्रन्थकर्ता एव ग्रन्थ की महत्ता के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु जिन्होंने इस ग्रन्थ का अध्ययन किया है, कराया है। उन्होने ही इसकी महत्ता को समझा और अनुभव किया है। माता कब्वे, प्रिया पट्टन के जैन ब्राह्मण कवि, और कन्नड कवि रत्न के पोषक, दान चिन्तामणि के पोषक अत्तिमब्बे के समान, मल्लिकब्वे नामकी महिला ने इस भूवलय स्वरूप धवल जयधवल, महा धवल, विजय धवल और अतिशय धवल इत्यादि ग्रन्थो के साथ इस महान ग्रन्थ की प्रतिलिपि कराकर इस महान् सिद्धान्त ग्रन्थ को गुणभद्राचार्य के शिष्य माघनद्याचार्य को अपने ज्ञानावरणी कमक्षयार्थ प्रदान किया था, ऐसा ग्रन्थ की अन्तिम लिपि प्रशस्ति से जाना जाता है।

अनूनधरमज नाम का प्रसिद्ध—

महनीय गुणनिधाम् । सहजोन्नत बुद्धिविनय निधियेनेनेगळ्वम् ।
महिविनुत कीर्ति कांतेय । महिमनम् सकलाभिमानव सेनम् ।।

इस सेन की स्त्री—

अनुपम गुणगण दाखवर् । मनशील निदानेयेनिसिजिन पदसक्के ।
कनदाशलो मुखळेनेमा । नर्नाध श्री मल्लिकब्बे ललनारत्नम् ।।
अवनितात्नवपेम् । पावनमम् योगळ लरि बुजिन धूवयना ।
नाविधद दानद मळिन । भावदोळाम् मल्लिकब्बयम् पोलवरार् ।
विनयदे शीलदोळ् गुणदोळादिय पेंपिनिम् शुद्धिद मनो ।
जन रति रूपिनोळ् ग्रामेनिसिदं । मनोहर वपु दोंदं ।।
पिन मनेदान सागर मेनिप्पवधूत्त मेरूपलसे ।
मनसति मल्लिकब्बें धरत्रियोळादरिसद्गुणंगळोळ् ।।
श्री पंचमियम् नोंतु । द्यापनेयम् माडिबरेसि सिद्धांतमना ।।
रूपवती सेन वधुचित । कोप श्री माघनंदियतिं पतिगित्तळ् ।।

इस मल्लिकब्वे के द्वारा प्रतिलिपि की हुई प्रति 'दान चिन्तामणि' मेरे पास है। इस महिला ने ग्रन्थ को स्वय पढकर और दूसरो को पढ़ाकर स्वयं मनन और प्रचार किया, ऐसा मालूम होता है। इस ग्रन्थ को पढकर उससे प्रभावित होकर प्रिया पट्टन के देवप्पा ने अपने लिखे हुए कुमुदेन्दु शतक में निम्न रूपमें उल्लेख किया है—

विदितविमलनानासत्कलान् सिद्ध मूर्तिहि ।
'भ ल भू' कुमुदेंदो राजवद् राजतेजम् ।।
इमाम्यलवलेककुमुदेंदुप्रशस्ताम् ।
कथाम् विश्ण्वंतिते मानवाश्च ।।

सुनय श्रेयसभसंख्यमश्नन्ति भद्रम् ।
शुभम् म ंगलम् त्वस्तु चास्याह् कथायाह् ॥१०२॥

देवप्पाका हमे कोई विशेष परिचय प्राप्त नहीं है जिमसे उनके विपयमे विचार किया जाय । देवप्पा ने ऊपर के पद्य मे कुमुदेन्दु मुनि के विषय मे ('य लू व भू' य ल वलय') जो कुछ भी कहा है उससे ज्ञात होता है कि आचार्य कुमुदेन्दु बडे भारी तेजस्वी महात्मा थे और उनका यह ग्रन्थ आदि मध्य और अन्तिम श्रेणी में विभक्त है, जो प्राकृत मस्कृत के महत्व को लिए हुए है। संस्कृत प्राकृत और कानडी, इन तीनो की श्रेणियो का यदि चिन्तन किया जाय तो ज्ञात होगा कि य ल व भू और यल वलय उनके नामहैं जिनका उसमे कथन निहित है अथवा देवप्पा कुमुदेन्दु आचार्य के समय के नजदीक होने के कारण इनके माता पिता के नाम के माथ उन्हे जन्म म्थान का नाम भी ज्ञात था, ऐसा जान पडता है । देवप्पा के अनुसार अथवा कुमुदेन्दु के कहे अनुमार वह नदिगिरि निश्चय से पर्वत के शिखर पर था ऐसा निश्चय किया जाता है । इस महात्मा के द्वारा कहे जाने वाले गाँव बेगलूर तत॰ चिक्क वल्लापुर के मार्ग मे होने वाले नदी स्टेशन के नजदीक है। यही ग्राम और यही क्षेत्र कुमुदेन्दु की जन्मभूमि ज्ञात होती है । कुमुदेन्दु की जन्म भूमि के सम्बन्ध मे और भी विचार किया जा रहा है ।

ग्रन्थ की उपलब्धि

संसार का दशवाँ आश्चर्य स्वरूप महान ग्रन्थ भूवलय आज से लगभग २० वर्ष पहले पूज्य आचार्य श्री १०८ देशभूपरण जी महाराज ने बेंगलोर मे श्री एलप्पा जी शास्त्री के घर पर आहार ग्रहरण करने के अनन्तर देखा था, परन्तु अक रूप मे अकित होने के कारण उम समय इम गृन्थ का विषय आचार्य श्री को ज्ञात न हो सका, अत उस समय इस महान् ग्रन्थ का महत्व महाराज अनुभव न कर सके ।

श्री एलप्पा शास्त्री को यह ग्रन्थ अपने श्वशुरके घरसे प्राप्त हुआ था। उनके श्वशुर को यह ग्रन्थ कहाँ से किस प्रकार प्राप्त हुआ, यह बात मालूम न हो सकी ।

भूवलय ग्रन्थ में एक कानडी पद्य आया है । उसके अनुसार सेठ श्रीषेण की पत्नी श्री मल्लिकब्बे ने श्रुत पंचमी व्रत के उद्यापन में धवल, जय धवल महा धवल, अतिशय धवल तथा भूवलय ग्रन्थराज लिखाकर श्री माघनन्दि आचार्य को भेट किये थे। धवल, जयधवल, महाधवल ग्रन्थ मूड बिद्री के सिद्धान्त वस्ति भण्डार में विद्यमान हैं । सभवत: भूवलय ग्रन्थ भी उसो सिद्धान्त वस्ति भण्डार में विराजमान होगा । श्री एल्लप्पा शास्त्री के श्वशुर के घर पर यह ग्रन्थ किस तरह पहुचा, यह रहस्य की बात अज्ञात है । अस्तु ।

श्री एल्लप्पा शास्त्रीजी ने महान् परिश्रम करके अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से भूवलय के अको का अक्षर रूप मे परिवर्तित करके कानडी लिपिमे लिख डाला तब इस ग्रन्थ का महत्व जनता के सामने आया । यदि यह ग्रन्थ कानड़ी लिपि मे ही रह जाता तो उसका परिचय दक्षिण प्रान्त में रहता, शेष समस्त भारत की जनता उससे अनभिज्ञ ही रह जाती । प्राचीन साहित्य के उद्धार में रुचि रखने वाले, अनेक प्राच्य ग्रन्थो को प्रकाश में लानेवाले, सतत ज्ञानोपयोगी, विद्यालकार आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज ने श्री एलप्पा शास्त्री के सहयोग से इस भूवलय ग्रन्थ के प्रारम्भिक १४ अध्यायों का हिन्दी भाषा में अनुवाद करके देवनागरी लिपि मे प्रकाशित कगने की प्रेरणा की, उसके फलस्वरूप भूवलय के मगल प्राभृत के १४ अध्याय जनना के समक्ष आये हैं ।

इस महान अद्भुत ग्रन्थ को जब भारत के महामहिम राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी को श्री एल्लप्पाजी शास्त्री ने भेंट किया तो राष्ट्रपतिजी ने इस ग्रन्थ को सुरक्षित रखने के लिए भूवलय को राष्ट्रोय सम्पत्ति बना लिया। मैमूर राज्य की ओर से इस ग्रन्थ को इग्लिश अको मे परिवर्तित करने के लिये श्री एल्लप्पा जी शास्त्री को १२ हजार रुपये प्रदान किये गये। उस आर्थिक सहायतासे इस ग्रन्थ का अगरेजी अकाकार निर्माण हो रहा है ।

जैन समाज तथा भारत देश के दुर्भाग्य से श्री एल्लप्पाजी शास्त्री का गत मास दिल्ली मे शरीरान्त हो गया, अत अब इस ग्रन्थ के अग्रिम भाग के प्रकागन मे बहुत भारी अडचन आ गई है। यदि भारत सरकार का सहयोग पूज्य आचार्य श्री को मिल जावे तो इस ग्रन्थ का अग्रिम भाग प्रकाशन में आ सकता है ।

भूवलय का परिचय

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलयग्रन्थ मे पंच भाषा मयी गीता का समावेश किया है, उन्होने गीता का प्रादुर्भाव श्लोको के प्रथम अक्षर से ऊपर नीचे की ओर लेजाते हुए किया है, जिसकी प्रथम गाथा **'अट्ठवियकम्मवियला'** आदि है । तदन्तर अपनी नवमाक पद्धति के समान–

भूवलय सिद्धांतद्इघतेळु । तावेल्लवनु होंदिसिरुव ॥
श्री वीरवाणियोळ्वह"इ,' मगलकाव्य । ई विश्वदूर्ध्वलोकदलि ॥

इसमे चक्रबन्ध है, जिसमे कि २७ कोष्ठक हैं उन कोष्ठको में से बीच का अंक '१' है जिसका कि सकेताक्षर **'अ'** है । 'अ' से नीचे (सब से नीचे) गिनने पर १५ आता है १५ में ५८ संख्या है जिसका कि सकेत अक्षर 'ष्' है उसके ऊपर के तिरछे कोठे मे आने पर ३८ सख्या है जिसका कि सकेताक्षर 'ट्' है । उसके आगे के कोठे मे '१' आता है जिसका सकेत अक्षर 'अ' है इन तीनो अक्षरो को मिलाने पर **'अष्ट'** बन जाता है ।

इस चक्र बन्ध को नीचे दिखाते हैं –

यह प्रथम चक्र-बन्ध है इसके अनुसार आये हुए अको को अक्षर रूप करके पढा जाता है । इस प्रकार कनडी श्लोक प्रगट होते हैं उन कनडी श्लोको के आद्य अक्षरो को नीचे की ओर पढने से **'अट्ठवियकम्मवियला** आदि प्राकृत भाषा की गाथाएँ प्रगट होती हैं । उस कानडी श्लोको के मध्य मे स्थित अक्षरो को नीचे की ओर पढने से **ओंकार 'विन्दुसंयुक्त''** आदि सस्कृत श्लोक प्रगट होता है जो कि भूवलय का मगलाचरण है ।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय मे जो गीता लिखी है वह उन्होने आधुनिक महाभारतमे न लेकर उसमे प्राचीन **'भारत जयाख्यान'** नामक काव्य ग्रन्थ से ली है, ऐसा श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने लिखा है । उस गीता को चक्रबन्ध पद्धतिसे प्रगट किया है । प्राचीन लुप्त हुए जयाख्यान काव्य के भीतर आये हुए गीता काव्यको उद्धृत किया है, उस गीता का अन्तिम श्लोक निम्नप्रकार है—

चिदानन्दघने कृष्णेनोक्ता स्वमुखतोऽर्जुनम् ।
वेदत्रयी परानन्दतस्वार्थऋषिमण्डलम् ॥

इस प्रकार प्रथमाध्याय को समाप्त करके दूसरे अध्याय का प्रारम्भ निम्नलिखित रूप से किया है–

'अथव्यासमुनीन्द्रोपदिष्ट जयाख्यानान्तर्गत गीता द्वितीयोऽध्याय', इस गद्य से प्रारम्भ करके गोम्मटेश्वर द्वारा उपदिष्ट भरत चक्रवर्ती को तथा भगवान नेमिनाथ द्वारा कथित कृष्ण को तथा उसी गीता को कृष्ण ने अर्जुन को सस्कृत भाषामे कहा गोम्मटेश्वर ने भरत को प्राकृत भाषा मे और भगवान नेमिनाथने कृष्ण को मागधी भाषा में कहा था । जिसका प्रारम्भिक पद्य निम्नलिखित है ।

'तित्थयणबोधमायगमे' आदि

('अ' अध्याय १६वीं श्रेणी)

नेमिगीता मे तत्वार्थ सूत्र, ऋषि मण्डल, ऋद्धि मन्त्र को अन्तर्भूत करके भगवान नेमिनाथ द्वारा कृष्ण को उपदेश किया गया है ।

एल्लरिगीरव ते केळदु श्रेणिक । गुल्लासदिदगौतमनु ॥
सल्लीलेयिदलि व्यासरुपेळिद । देल्लतीतदकथेय ॥१७-४४॥

व्याससे लेकर गौतम गणधर द्वारा श्रैणिक को कही हुई कथा को आचार्य कुमुदेन्दु कहते हैं ।

ऋषिगळेल्लरु एरगुवतेरदिंदलि । ऋषिरूप धर-कुमुदेन्दु ।
हसनादमनदिंद मोघवर्षांकगे । हेसरिदत्तु पेळ्द श्रीगीते ॥
॥१७-६४-१००॥

इस प्रकार परम्परागत गीता को श्री कुमुदेन्दु आचार्य ऋषि रूप या कृष्ण रूप मे अपने आपको अलकृत करके अर्जुन रूप अमोघवर्ष राजा को गीता का उपदेश किया है । इस प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ विश्व का एक महान महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । इसका विवरण श्री कुमुदेन्दु आचार्य स्वय प्रगट करते हैं–

धर्मध्वजवदरोळु केत्तिदचक्र । निर्मल दष्टु हूगळम् ॥
स्वर्मनदलगय्वत्तोंदुसोन्नेयु । धर्मदकालुलक्षगळ ॥
आपाटियन्कदोळ् ऐदुसाविर कूडे । श्री पादपद्म दंगदल ॥
सपि अरूपिया ओम्दरोळ्व । श्री पद्धतिय भूवलय ॥

इस प्रकार भूवलय के अक और अक्षर पद्मदल ५१०२५००० है इस अक में ५००० मिलाने से समस्त भूवलय की अक्षर सख्या हो जाती है, ऐसा श्री कुमुदेन्दु ने सूचित किया है। इस तरह ५१०३०००० सख्या का योग (५+१+०+३+०+०+०+०=९) नवम अक रूप है, ९वे अक को प्रथम करके नवमाक गणित से इस राशि को विभक्त किया गया है।

करणोर्योबत्तिप्पत्तेळु ॥ अरुहरण गुणवेम्त्तोम्दु ॥
सिरि एळ् नूरिप्प त्तोम्तुम् ॥ वरुव महान् कगळारु ॥
एरडने कमल हन्नेरडू ॥ करविडि देळनून्द कुंभ ॥
अरुहन वाणी ओम्बत्तू ॥ परिपूर्ण नवदक करग ॥
सिरि सिद्धम् नमह ओम् हत्तु १,६८, ७६ ॥

इस तरह वर्णमालाक- अक्षर राशि को तथा ९-२७-८१-७२९ सख्या को स्थापित करके ६-१२-७-९ का पूर्ण वर्ग होकर के विभाग कर दिया है। ९×९=८१×८१=७७९×९=६५६१ इस तरह सख्या मे पहला अध्याय समाप्त हुआ है। इस प्रकार इस राशि के प्रमाण अपुनरुक्त ९ ंक बन जाता है।

नवकार मंत्तर दोळादिय सिद्धांत्त । अवयव पूर्वय ग्रन्थ ॥
दवत्तारादि मदक्षर मंगल । नव अ अ अ अ अ अ अ अ अ ॥

अध्याय २

कर्णसूत्र गणिताक्षर अक के समान "है" 'क' को मिलाने २८×६०= कुल ८८ होता है, इस ८८ को आपस मे मिलाने से ८+८=१६ होता है। यह १६—१×६=कुल सात होता है। ये सात भग होकर के इन्हे ९ अक से भाग करने पर प्राप्त हुए लब्धाक से अपने इस काव्य को प्रारम्भ करते हुए, इस शर्मंग्गी कोष्टक को दिया गया है। यहा अनुलोम अक को ५४ अक्षर के भाग करने पर जो अंक राशि के एक सूक्ष्म केन्द्र को ८६ अक राशि रूपनिरूपण किया गया है। (अध्याय २, श्लोक १२)

इस अनुलोम राशि को प्रतिलोम राशि के उसी ५४ अक्षर वर्ग के ७१ अक राशि में वर्गी करण करके (अध्याय २—१७)। इन अंकों को परस्पर मिलाकर, परस्परभाग देकर २५ को अंक राशि किया है। इन अङ्को को वर्ग भाग कर ३५ अर्धभग करके इस अक राशि का २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १ इस पहाडे से परस्पर भग करके अपने काव्याक को मोती के समान माला में गूथकर काव्य की रचना की गई है। इस वर्ग गणित का ९ वां अंक अशुद्ध घन होने के कारण उत्तर में गलती जरूर आ जाता है। परन्तु कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि तुम इसे गलती मत समझो। हम आगे जाकर इसका खुलासा करेंगे।

कुमुदेन्दु आचार्य द्वारा कहा हुआ जो गणित है वह हमारी समझ में नहीं आता। उसे स्वय ग्रन्थकारने आगे जाकर स्पष्ट विवेचन के साथ राशि के रूप मे बतलाया है।

अध्याय ३

इस अध्याय में कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने काव्य की कुशलता का सभी ढग बतलाया है।

अध्याय ४

इस अध्याय मे सम्पूर्ण काव्य ग्रन्थ को तथा अपनी गुरु परम्पराको कहकर रस, और रसमणि की विधि, सुवर्ण तैय्यार करने की विधि और लोह-शुद्धि का विषय अच्छी तरह से वर्णन किया गया है। रस शुद्धि के लिए अनेक पुष्पो के नामो का उल्लेख किया गया है इस अ अध्याय मे रस मणि के शुद्ध रूप को बतलाते हुएमे वैद्यशास्त्र की महत्ता को पाठको को अच्छी तरह से समझा दिया गया है।

अध्याय ५

इसमे अनेक देश भाषाओ 'के नाम' और देशों के नाम, तथा अंकों के नाम देकर भाषा के वर्गीकरण का निरूपण किया गया है।

अध्याय ६

इसमे द्वैत, अद्वैत, का वर्णन करते हुए अपने अनेकान्त तत्त्व के साथ तुलनात्मक रूप से वस्तु तत्त्व की प्रतिष्ठा की गई है। इसमें आचार्य कुमुदेन्दु

ने ४ बातें मुख्य रूप से कही है—

दोषगळ् हदिनेन्टु गशियार्वाग । ईशरोळ् भेद तोरुवदु ।।
राशिरत्नत्रय दाशेय जनरिगे । दोष वळिवबुद्धि वहुदु ।।
सहावास संसार वागिपोकाल । महियकळ्तलेये तोरुवदु ।।
महणाण वरणीय दोष वदळियलु । वहु सुखविहमोक्ष वहुदु ।।
विषहर वागलु चैतन्य बप्पन्ते । रससिद्धि अमृतदशक्ति ।।
यशवागे एकांत हरकदु केट्टोडे । वशवप्पनन्तु शुद्धात्म ।।
रत्नत्रयद्वे आदियद्वैत । द्वितियवु द्वैतवेम्बंक ।।
तृतीयदोळ नेकांतळवेने द्वैतुाद्वैतव । हितदिसाधिसिद्ध जैनांक ।।
हिरियत्व विवुमूरु । सरमालेय । अरहंत हारदरत्नम् ।।
सरफणिपन्ते मूरर मूर ओंबत्त । परिपूर्णमूरारुमूरु ।।
।।७७-८१।।

अध्याय ७

इसमें कवि रस सिद्ध के लिए आवश्यक २४ पुष्पो की जाति तथा अष्ट महा प्रातिहार्यो में एक सिह का नाम कहकर चार सिंहो के मुखो की महिमा का वर्णन किया गया है ।

अध्याय ८

इस भाग में समस्त तीर्थंकरों के वाहनो, सिहासनो का आकार रूप और उनके स्वभाव के साथ राशि की तुलना करते हुए उनकी आयु, नाम आदि का प्रश्नोत्तर एव शका समाधान के साथ गणित शास्त्र का व्याख्यान किया है ।

अध्याय ९

इसमे रस सिद्धि के लिए आवश्यक कुछ पुष्पो का, और सिद्ध पुरुषो को दिव्य वाणी को, कर्नाटक राजा अमोघ वर्ष को सुनाया गया है, और उसमे अपने वंश का परिचय देते हुए आचार्य भूत बली के भूवलय की ख्याति का वर्णन किया गया है ।

अध्याय १०

इसमे कर्नाटक जैन जनता को अध्ययन कराकर, तथा 'क ट प' इनकी नवमाक पद्धति को तथा 'य' इस अक की अष्टक पद्धति को समझाया है इस वर्ग पद्धति के अनुसार २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, इन भागो के समान अनुलोम-प्रतिलोमों का परस्पर गुणा करने से सम्पूर्ण भाषाओ मे यही काव्य ग्रन्थ आ जाता है । यहाँ ९ को तोडकर दो भाग करके, इस गणित की रीति से समस्त भाषाओ को अकित कर उनकी रीति को विशदरीति से समझाया गया है । इस तरह पुरानी और और नयी कनडो मिलाकर मिश्रित रूप में काव्य की रचना की गई है ।

अध्याय ११

इस भाग मे ऋषभदेव द्वारा अपनी पुत्री ब्राह्मी को सिखाये गये अक्षर अको को लिख लिया गया है । इस पद्धति से कोड़ा-काड़ी सागर को मापने को 'मेटगूट शलाका' रीति को समझाया गया है ।

अध्याय १२

इसमे २४ तीर्थंकरो, के उन वृक्षों का जिनके नीचे बैठकर उन्होंने अरहंत पद प्राप्त किया है । उन अशोक वृक्षो का नाम तथा उनकी प्राचीनता का उल्लेख किया गया है ।

अध्याय १३

इसमें पुरुषोत्तम महान् तीर्थंकरो की जीवनचर्या, तपश्चरण, विद्या और उनके वैदुष्य गुण का महत्व स्थापित किया है । साथ ही भगवान महावीर के बाद होनेवाली आचार्य परम्परा का, तथा धरसेनाचार्य का कथन करके सेनगण परम्परा का वर्णन किया गया है ।

अध्याय १४

इस अध्याय मे पुष्पायुर्वेद की विधि बतलाकर तत्पश्चात् चरकादिद्वारा अज्ञात 'न समझी जाने वाली' 'रसविद्या' को और जिनदत्त, देवेन्द्र यति अमोघवर्ष, समन्तभद्राचार्य, आदि के द्वारा समर्थित एव पल्लवित पुष्पायुर्वेद का निरूपण किया गया है ।

अध्याय १५

इसमें भवनवासी'देव, और उनके वैभव का कथन किया गया है। इसमें सम्भव और असम्भव जचनेवाले तत्वो का विशद विवेचन किया गया है।

अध्याय १६

दोनो श्रेणियों में भगवद् गीता की प्रस्तावना का वर्णन तथा उसी के अन्तर्गत तत्वार्थसूत्र का विस्तार पूर्वक निरूपण किया गया है। और भगवद् गीता के प्रारम्भ करने के पूर्व मंगल कलश की पूजा करके गीता का व्याख्यान प्रारम्भ किया है। तथा कृष्ण और अर्जुन के रूप को अपने में कल्पना कर पूर्व गीता और तत्वार्थ सूत्र का विवेचन किया है। आगे अमोघवर्ष के लिए कन्नड गीता की भूमिका का उल्लेख किया गया है।

अध्याय १७

इसमें भगवद् गोता की परम्परा ब्राह्मण वर्णोत्पत्ति गोम्मटदेव (बाहुवली) की उपनयन विधि, वनवासि-देश की दण्डक राजा के विषय का अत्यन्त सुन्दर रूप से कथन करके राजा समुद्र विजय, तथा बलकृष्ण उपनयन सस्कार करने की विधि का कथाद्वारा उल्लेख किया गया है।

बलभद्र, नारायण इत्यादि की उपनयन विधि के साथ गीता तत्वोपदेश का समुल्लेख किया गया है। इस भगवद् गीना को सर्वभाषामयी भाषा भूवलय रूप मे, पाच भाषा रूप मे प्राकृत, सस्कृत, अर्ध मागधी, आदि में कृष्ण रूप कुमुदेन्दु आचार्य ने निरूपण किया है।

अध्याय १८

इसमे मूल श्रेणी मे भगद् गीता की शेष परम्परा का उल्लेख करते हुए, पहले की श्रेणी में जयाख्यान के अन्तर्गत भगवद् गीता के श्लोको का कर्नाटिक भाषा मे निरूपण किया गया है। और भगवद् गोना के अक चक्र का कथन दिया हुआ है। तथा अक चक्र को समझाकर द्वितीय अध्याय मे उल्लिखित अनुलोम सम-विषम आदि की संख्या को शुद्ध करके गीता का आगे का विवेचन दिया हुआ है। इस श्रेणी में कृष्ण द्वारा अर्जुन को कहा गया 'अणुविज्ञान' का भी वर्णन करता है।

१९ और २० अध्याय

इसमे सीधा भगवद्गीता के अर्थ को दूसरी श्रेणी में अक विज्ञान, अणुविज्ञान आदि के अद्भुत विषयका ऊपर से नीचे तक अक विद्याओंके साथ वर्णन किया गया है। इस तरह इस खड में २० अध्याय हैं। उनमें इस मुद्रित भाग मे १४ अध्याय तक दिया गया है। शेष ६ अध्याय बाकी हैं। उनके यहां न दिये जाने का यह कारण है कि इसके मूल अनुवादक पडित एलप्पा शास्त्री का अक्स्मात् आयु का अन्त हो जाने के कारण इस कार्य में कुछ रुकावंट सो आ गई है। किन्तु फिर भी हमारे चातुर्मास के अन्त में इसके भार को सम्हालने वाले अन्य सहायक के अभाव में उसे पूरा करना सम्भव नहीं हो सका। तो भी हमने शेष को ११ अध्याय से लेकर १४ अध्याय तक रात दिन में इस का अनुवाद कर पूरा करने का प्रयत्न किया है। आगे अवसर मिलने पर, और एक स्थान पर ठहरनें आदि को सुविधा उपलब्ध होने पर उसे पूरा करने का प्रयत्न किया जायगा। विद्वानो को चाहिए कि वे इस ग्रन्थ का अध्ययन करके लाभ उठावें। क्योकि ग्रन्थ का प्रतिपाद्य अक विषय गम्भीर होने के कारण सर्वसाधारण का उसमें सरलता से प्रवेश होना कठिन है।

चक्रबन्ध को पढ़ने का क्रम

गोता के इस 'ओ' अध्याय की एक बिन्दो को तोडकर, उसको घुमाने से चक्र तथा पद्य आरम्भ हो जाता है। इस पद्य का कही भी अंक में पता नही चलता, क्योकि भूवलय ग्रन्थ अक्षर मे नही है। अक्षर में होता तो कहीं न कही पढा जाता, अत पढने के लिए इसमें एक भी अक्षर नहीं है। बाए से दायें तक वराबर चलेजाये तो उन अंको की गणना २७ होती है। इसी तरह ऊपर से नोचे की ओर पढते जावें तो भी २७ अक ही आवगे, इस तरह चारों ओर से पढने पर २७ अक ही लब्ध होते हैं। २७×२७=७२९ हो जाते हैं। इसी चौकोर चक्र के कोष्ठक मे ६४ अक्षर के गुणाकार से गुणित कर प्राप्त हुआ लब्धाक ६४ ही लिखा गया है। उन २७ अकों में से दोनो ओर के १३-१३ अंक छोडकर ऊपर के एक का रूप 'अ' है। 'अ' के ऊपर से नीचे उतर करके उसके अन्तिम अंक ८ को छोड़कर बगल के ५८ अंक पर आजाय इस

अंक का अर्थ 'ष' है। वहाँ से आगे बढने पर दूसरी पंक्ति के ऊपर के कोने में ३८ आता है। इस अङ्क का अर्थ 'ट' होता है। पुनः ५८ के बाद एक अङ्क आता है। ६० का अर्थ 'ह' है, एक का अर्थ 'अ' है। इसी तरह से इसी क्रम रीति के अनुसार अन्त तक (६०) चले जावे, और ६० से लौटकर आडी लाइन की मध्यम प्रथम पंक्ति के २ पर आजांय। दो का अर्थ 'आ' हो गया। 'ह' में आ मिलाने से हा हो गया। इस तरह ऊपर चढते हुए जाने से एक अंक पर पहुँचते हैं, क्योंकि वह एक अंक आड़ा हो जाता है। पुनः वहाँ से एक कोठा नीचे उतरकर फिर ऊपर '४७' पर जाँय, वहाँ से फिर आडा जाय और निश्चित कोठे पर पहुंचकर फिर ऊपर लिखे क्रम से उसी प्रकार प्रवृत्ति करता जाय तो घटे के अन्दर सभी अंको को पढ सकता है। इन ६४ अक्षरो मे सभी भाषाओं का समावेश है। पर वह रूढी रूप न होने से लोगों को उसके पढने में कठिनाई होती थी किन्तु दो वर्ष के कठिन परिश्रम के बाद उसे पढने पर सभी के लिए मार्ग सुगम हो गया है। और सभी जन प्रयत्न करने पर उसे आसानी से पढ सकते हैं तथा सभी भाषाओं का परिज्ञान कर सकते हैं। जिस तरह से छोटे बच्चों को यदि यह भाषा सिखलाई जाय तो वे कम से कम छः महीने में पढ सकते हैं अर्थात् १-२-३-४-५-६-७-८-९-०, इनमें से बिन्दी को तोडकर नव अंक की उत्पत्ति हुई है। इस तरह तत्व दृष्टि से विचार किया जाय तो भगवान महावीर की समस्त वाणी का (उपदेशों का) सार सातसौ अठहार भाषाओं की उपलब्धि होती है। क्योंकि यह नव अंक मे ससार की समस्त भाषाएं गर्भित हैं। और यह नव का अंक नव देवता का वाची है। और इष्ट मंगल रूप है।

जिस तरह श्रीकृष्ण ने मुँह खोला तो यशोदा ने विचार किया कि यह ब्रह्माण्ड मालूम होता है इसी में तीन लोक गर्भित हैं, उसी तरह नवमांक के अन्दर सम्पूर्ण जगत् गर्भित है। इसमें विश्व की सभी भाषाएँ अन्तर्निहित होने से इस ग्रन्थ का नाम 'भूवलय' रक्खा गया है, जो उसके यथार्थ नाम को सूचित करता है।

पहले अंक अक्षर मे जो कानडी भाषा का श्लोक अष्ट महाप्रातिहार्य रूप होता है। और अ' से नीचे को ओर पढा जाय तो 'अट्ठवियकम्म वियला' प्राकृत भाषा की गाथा निकलती है। उस कानड़ी श्लोक के मध्य में 'श्री' आता है। उससे नीचे तक पढते जाय तो संस्कृत काव्य निकलता है। इसी तरह से १५ अध्याय तक पढते जायँ तो उसके नीचे-नीचे भगवद्गीता निकलती है। इस तरह से इस अथाह अंक समुद्र में कोई पता नहीं चलता, परन्तु चतुर मनुष्य डुबकी लगाकर उसमें से सुन्दर सुन्दर मोती निकाल कर लाते हैं। इसी तरह उस अंक समुद्र का यथेष्ट रीत्या अवगाहन करने पर विविध भाषाओं से ओत-प्रोत अनेक ग्रन्थों का सहज ही पता चल जाता है। जिस तरह समुद्र में डुबकी लगानेवाले चतुर मनुष्य गहराई में डुबकी लगाकर असली और नकली मोती निकाल लाते हैं और फिर उनमें से असली मोती छांटकर रख लेते हैं। उसी प्रकार इस भगवद्गीता के अन्तर्गत गहराई से अध्ययन करते हुए 'ओम् इत्येकाक्षर ब्रह्म' अट्ठवियकम्म वियला, सरस्वती स्तोत्र-चन्द्रार्ककोटि और तत्वार्थ सूत्र इत्यादि भाषाएँ निकलती हैं। इसके आगे और भी अवगाहन कर अनेक भाषाओ का पता चलने पर सूचित किया जावेगा। क्योंकि इस समय तक १४ अध्यायो का ही अनुवाद हो सका है। शेष ग्रन्थ का अनुवाद बादको प्रस्तुत किया जावेगा। पाठक गण उससे सब समझने का यत्न करें।

SIRIBHOOVALAYA JAIN SIDDHANTHA

PRILIMINARY NOTES

- "SIRIBHOOVALAYA" is the unique literature in the world
- It is not written in any script of any language
- It is written in Numbers only, on mathematical basis, in Squares
- The numbers should be converted into "Sounds" as alphabets They are 1 to 64 It is said that all the sounds of the world could be written within 64 numbers, through 1 to 9 and '0' figurs only
- The first literature will be formed in "KANNADA" (KARNATAKA) language And then different literatures of all other languages of the world will be formed through that
- It is said that there are literatures in 718 languages in this book, and 363 religions and all the 64 arts and sciences have been explained in exhaustively
- It is found in the text that the author of this unique book is "KUMUDENDU" by name who was the Guru of the Ganga king Amoghavarsha the 1st, of Manya Kheta (Manne), and the native of a village "YALAVA" (YALAVALLI) near Nandi Hills, Kolar District, Mysore State, India It is learnt that he lived in 680 A D according to the available inscriptions and other historical evidences
- It is said that "KUMUDENDU" was a Digambara Jain Brahmin "RISHI" or "MUNI" proffessed witn the entire knowledge of the world and "GOD" He was a prominant disciple of Guru Virasena, the author of Sri Dhavala Siddantha
- It is found in the literature that all the preachings and massages of all the 24 Tirthankars beginning from the first tirtankar * ADI VRISHABHA DEVA* (the Ist "GOD") were said in all the languages of the world, at a time, within 47 minutes (one Anthar Muhurtha) in a nut-shell through the mathematical proccess and both for a common man and a proffessor. And the same was written in black and white for the benefit of the present generations of the world, according to the instructions and formulas given by Kumudendu Muni by his 1200 disciples (all of them were Munies)
- Hence, it is said that this is the only literature given by "GOD" as "DIVYADWANI" which includes every thing under the "SUN"
- The manuscript which was available with the late Pt. Yellappa Shastry, a great Scholar of this literature is said to have been the copy of that literature written at the time of "MALLIKABBE" wife of Commander "Sena" of 14th Century by the then pandits. The same has been Microfilmed by the National Archives, Government of India, under the gracious recommendations of our beloved President Dr Rajendra Prasad ji
- It is described in the text that Adi Vrishabha deva gave this art of Numbers and Alphabets to his two daughters "Brahmi and Sundary as presentations at the time of his departure to heaven (Moksha) and the same was learnt by their brother the Great Gomtashwar (Bahubali), and he preached that to his elder brother Bhartha, in the war-field, as Bhagavadgita, (Purugitha)
- The lists of the languages and the religions and Arts mentioned in this literature are enclosed seperatly.
- "SIRI BHOOVALAYA" mainly describes the Jain philosophy in an eloborate and an exhaustive form along with all other Philosophies of the world commencing from No 1. up to 363 religions – Advaitha, Dvaitha and Anekantha etc.

Language & Grammar

- It is said that all the sounds and words of all the languages of the world, of men, deities, demons and beasts and creatures of present past and future could be formed by permutations and combinations according to Jain system within 1 to 64 numbers, and thus the total number of the sounds would be of 92 digits.
- It is also said that all the literatures like Vedas, Vedangas, and

Puranas, and Bhagavadgita in all languages and all kinds of Arts and Sciences have been said in reverse method (Akramavarthi) so that it was possible to build up in a net form, and could be condenced in a very small form and also it could be enlarged to the entire length and breadth of the world like .

The Grammar of the languages in this literature is also in a peculiar manner. There is a number of languages against our present practice of Grammars. And it is also said that there was only one Grammar for all the languages formed by "GOD"

- The first literature in Kannada comes out this text in the form of "Home Songs" in "SANGATHYA" Metre.
- It is said and also found that the text could be formed from the reverse method also on cyclic system.
- Hence this is said to be the Unique literature of the entire world.
- It is mentioned in this literature that there were 18 major languages and Too minor languages in the world ; and all of them were included in the text

Siribhoovalaya Jain Siddhantha

LIST OF THE LANGUAGES

Prakrita
Samskrita
Dravida
Andhra
Maharastra
Malayala
Ghurjara
Anga
Kalinga
Kashmira
Kambhoja
Hammira
Showraseni
Vali
Thebathi
Vengi

Arasa
Parasa
Saraswatha
Barasa
Vasha
Malaya
Lata
Gowda
Maghadha
Vihara
Utkala
Kanyakubja
Varaha
Vaishravana
Vedantha
Chitrakara

Amithrika
Chanakya
Mooladevi
Karnata
etc
Uparika
Varatika
Vejeekharasapika
Prabharathrika
Uchatharika
Pusthika
Bhogavaratika
Vedanathika
Nihanthika
Anka
Ganitha

Vanga
Brahmi
Vijayardha
Padma
Vaidarbhya
Vaishali
Sowrashtra
Kharoshtri
Niroshtra
Apabramshika
Paishachika
Rakthakshara
Arishta
Ardhamagadhi

Yakshi
Rakshasi
Hansa
Bhootha
Coniya
Yavanani
Thurki
Dramila
Saindhava
Malavaniya
Keeriya
Devanagari
Lada
Parshi

Gandharva
Adarsha
Mahesvari
Dama
Bolidi
Etc.

Siribhoovalaya Jain Siddhantha

LIST OF" BANDHAS —(TIES)

- Chakrabandha
- Hamsabandha
- Padmabandha
- Shuddha Bandha
- Navamanka Bandha
- Varapadma Bandha
- Mahapadma Bandha
- Dveepa Bandha
- Sagara Bandha
- Palya Bandha
- Ambu Bandha
- Sarasa Bandha
- Shalaka Bandha
- Shreni Bandha
- Anka Bandha
- Loka Bandha
- Roma Koopa Bandha
- Krowncha Bandha
- Mayura Bandha
- Seemateeta Bandha
- Kamana Padapadica
- Nakha Bandha
- Chakra Bandha
- Kirana Bandha
- Niyama Bandha
- Simgasana Bandha
- Vratha Bandha
- Mahaveera Bandha
- Atishaya Bandha
- Sri Bandha
- Samanthabhadra Bandha
- Sivakoti Bandha
- Thaptha Bandha
- Kamitha Praja Bandha
- Srivskoti Bandha
- Shivacharya Bandha
- Srivayana Bandha
- Sansthana Bandha
- Divya Bandha
- Navpadma Bandha

Etc.

READING THE SQUARES (CHAKRAS)

- There are 1270 squares for the 'Foreword* (Mangla Prabhritha) only. It is said that 16000 squares should be formed out of them
- 75000 verses have been formed out of 1270 squares, and it is said that 600,000 verses in Kannada and 721 digits of verses in Sanskrit and other languages could be formed out of the 16000 squares.
- There are 27 lines in every square with 27 numbers in every line with a total of 729 numbers
- There are different methodes of reading the squares with "KEYS"
- (1) Reading the entire square. (2) Reading the entire square in 9 parts of 81 numbers, on rotation methods
- And it is said that there are a number of "Bandhas* (ties) to form the literatures of the other languages

SQUARE NO 1

- Every reading of the square from 1 to 9 should be commenced from the 14th number of the first line which is strarted in the squares. And the end will be the same 14th number of the 27th line, which is underlined
- After commencing No 1, as mentioned above, every line should be read in a Diagonal parallel form as shown in square No. 1.

Bottom	Right Side
2nd line from No 38 to 60	3rd line from No 2 to 1
4th line from No 1 to 13	4th line from No 23rd to 47

Like this, all the lines should be read alternatively, with the substitutions of the sounds or Alphabets, as given in page. no.... thus the following 7 verses will be formed in Kannada Language from the first square.

- And then, every first letter of each verse will be formed as another literature of Bhagavadgitha (Purugitha) in PRAKRIT, that reads as —
- And next, every 27th letter of each verse will be formed as Bhagavadgitha in Sanskrit, and that reads as :—

- Thus, 3 languages. Kannada, Prakrit, and Sanskrit have been found in the first chapter, for the present
- In chapter 20 generally, every letter of each line forms different literature in different languages
- It has been traced languages in part "2" such as Prakrit, Girwani, Telugu, and Tamil
- There are inter literatures also in prose forms on "Horse-step * (Aswagathi)
- Number of different literatures will be formed again and again from the first literature by arranging respective letters in a line.
- The total No of sounds of every chapter has been counted and stated at the end of each chapter Ex —
- Tus Siri Bhoovalaya by name itself, in Describes as 'The wealth of the enture world" And every thing under the sun.

Siribhoovalaya Jain Siddhantha

INDEX TO NUMBERS & SOUNDS

I VPWELS

No.	Alphabet	Sound in
1	A	SUN (1)
2	AA	ALL (2)
3	AAA	Longer sound (3)
4	E	BE (1)
5	EE	BEE (2)
6	EEE	Longer sound (3)
7	U	UUT (1)
8	UU	JUNE (2)
9	UUU	Longer Sound (3)
10	.R	Light Sound (1)
11	RR	LIGHT and LONG SOUND (2)
12	RRR	Light and Longer Sound (3)
13	L	HEAVY SOUND (1)
14	LL	"And Long Sound (2)
15	LLL	"And Longer Sound (3)
16	A	BELL (1)
17	AA	RATE (2)
18	AAA	Longer Sound (3)
19	I	IRON (1)
20	II	Long Sound (2)
21	III	Lonoer sound (3)
22	O	GO (1)
23	OO	GOAL (2)
24	OOO	Longer Sound (4)
25	OW	OUT (1)
26	OOW	Long Sound (2)
27	OOOW	Longer Sound (3)
	II CONSONANT	
28	K	KEY
29	KK	KHEDDA
30	G	GO
31	GH	GHOST
32	N.	KING
33	CH	CHURCH
34	CHH	CHAMBER
35	J	JOB
36	JH	JHON
37	N	PUNCH
38	T	TO
39	TH	Heavy Sound
40	D	DO
41	DH	Heavy Sound
42	N	Heavy Sound
43	TH	PATH
44	.TH	THEORY
45	DH.	THE
46	DH	Heavy sound
47	N	NO
48	P	PUT
49	PH	Heavy sound
50	B	BABL
51	BH	Heavy sound
52	M	MAN

No.	III Alphabet	Sound in
53	Y	YOUNG
54	R	RED
55	L	LAW
56	V	VAN
57	SH	SHIP
58	SH	Heavy sound
59	S	SO
60	H	HALL
	IIII	
61	o	N, M
62	·	H
63	·	F in FUN
64		HKH

***** It is said in *SIRI BHOOVALAYA* that all sounds of all the languages of men, deities, demons, beasts, creatures, and nature could be pronounced and written exactly within the above 64 sounds through the numbers from 1 to 9 and 0 only, equally to any longest script of the world.

***** This solves the present day to day growing problems of printing, typing etc , in thousands of scripts every day in the world. Hence *SIRIBHOOVALAYA* helps the present and future generations in a unique manner

Siribhoovalaya Jain Siddhantha

**ALTERATIONS SUGGESTED BY PANDIT YELLAPPA SHASTRI, RESEARCHSCHOLAR OF "SIRIBHOOVALAYA"

* CHAPTER * 1

Square (Chakra)	Line	Number	Figure		Alteration Suggested
No 1	1	24th	7	—	8
	15	21st	7	—	16
	18	27th	1	—	1 & 56
2	19	27th	4	—	1
	27	Ist	51	—	and 8
	26	4th	29	—	31
	18 19	14th 13th	45 58		Extra
3	23	23th	7		52
	3	23th	54		59
	6th, 5th 4th, & 3rd	3 4, 5, 6th numbers	35 2, 43 & 4		Fxtra
	9th, to 1 & 27th	5th, 6th, 7th 8th 9th, 10th 11th 12th, 13th & 14th	53, 1, 45, 1, 52 1 5c, 1, 52 and 32		Extra
4	2nd & 1st	17th & 18th	56, 1	—	Extra
	18th & 17th	17th & 18th	54, 1	—	,,
5	1st & 27th	21st & 22nd	56 1	—	,
	12th	11th	2	—	46 and 2
	6th & 5th	17th & 18th		—	53 and 23 Omitted
	1st	23rd	52	—	48
	12th & 11th	13th & 14th	56 and 1	—	Extra
	13th	17th	16	—	20
	7th to 1 & 27th	7th to 13th and 14th	1, 45, 1, 1, 52, 1, 47, 47		Extra
6	6th	10th	1	—	42 and 1
	6th	14th	52	—	54
	21st	1st	48	—	48 and 17
	16th	8th	52	—	54
	23th	4th	2	—	37 and 2
7	27th	17th	55	—	Extra
	1st	26th	1	—	,,
	19th & 18th	9th & 10th	47, 1	—	,
	15th & 14th	21st & 22nd	30, 16	—	,,
8	27th	16th	29	—	31
9	24th	27th	23	—	17
	24th	5th	23	—	17
	3rd	25th	40	—	38
	6th	2nd	52	—	54
	5th	25th	40	—	38
	6th	2nd	45	—	55

सुप्रीम कोर्ट के जज श्री वेंकटारमण ऐयर तथा दानवीर सेठ युगलकिशोर जी बिड़ला श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज के दर्शनार्थ पधार कर उनसे धर्म चर्चा कर रहे हैं ।

श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज जापान के प्रो० नाकामुरो को उपदेश के पश्चात् शास्त्र प्रदान कर रहे हैं ।

श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज प० एम एल्लप्पा शास्त्री तथा कांग्रेस के प्रधान श्री ढेबर भाई से भूवलय के सम्बन्ध मे चर्चा करते हुए ।

मैसूर के मुख्यमन्त्री श्री निजलिंगप्पा, श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज के समीप भाषण देते हुए ।

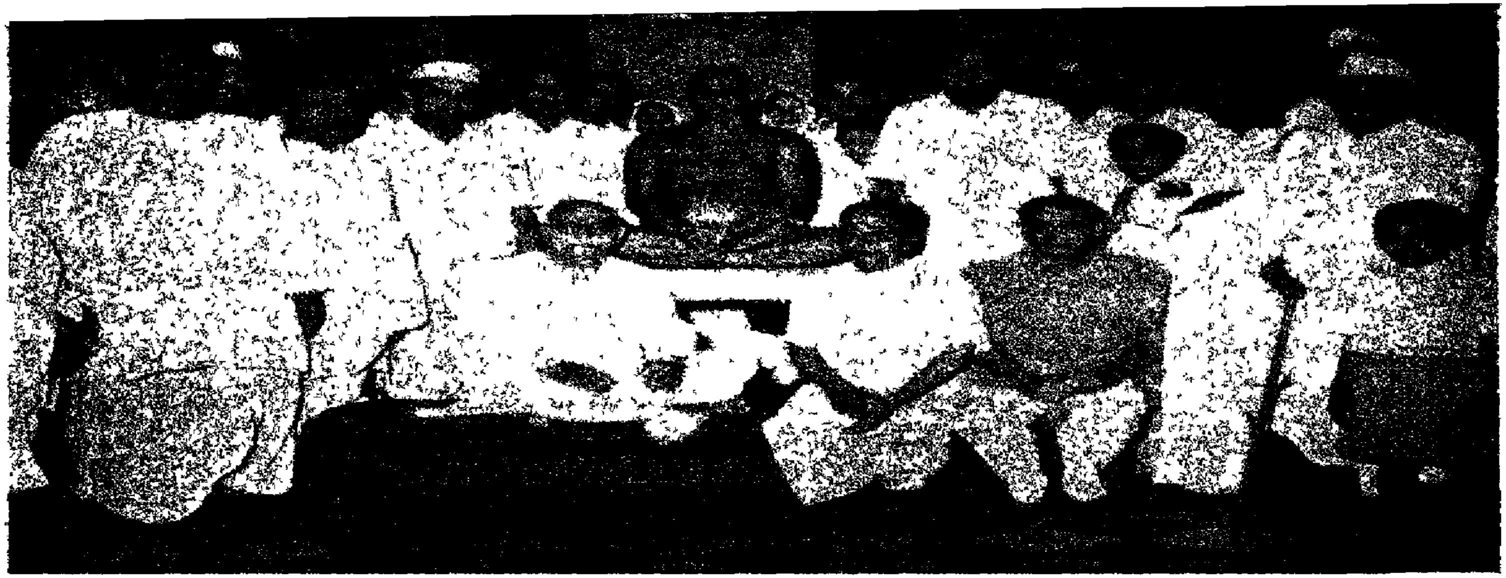

श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज प० एम एल्लप्पा शास्त्री तथा मैसूर के मुख्यमंत्री श्रीनिजलिगप्पा जी से ग्रन्थराज भूवलय के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए ।

मैसूर के मुख्यमन्त्री श्री निजलिगप्पा को जैन समाज दिल्ली की ओर से प्रो० मुनिसुव्रत दास एम० ए० द्वारा अभिनन्दन पत्र भेंट और आचार्य श्री १०८ देशभूषण जी महाराज का मुख्यमन्त्री को उपदेश तथा आशीर्वाद।

श्री दि० जैन लाल मदिर मे परिन्दों के हस्पताल के उद्घाटन के समय, भारत सरकार के गृहमन्त्री माननीय पं० गोविन्दवल्लभ पत जी, महाराज श्री देशभूषण जी से श्री भूवलय के सम्बन्ध में चर्चा कर रहे हैं।

श्री १०८ देशभूषण जी, महाराज जर्मन तथा अमेरिका के विद्वानों तथा राजदूत को शास्त्र प्रदान करते हुए।

सिरि भूवलय मूल अध्याय 'अ' अंक का चक्र

सिरि भूवलय SIRI BHOOVALAYA ಸಿರಿಭೂವಲಯ

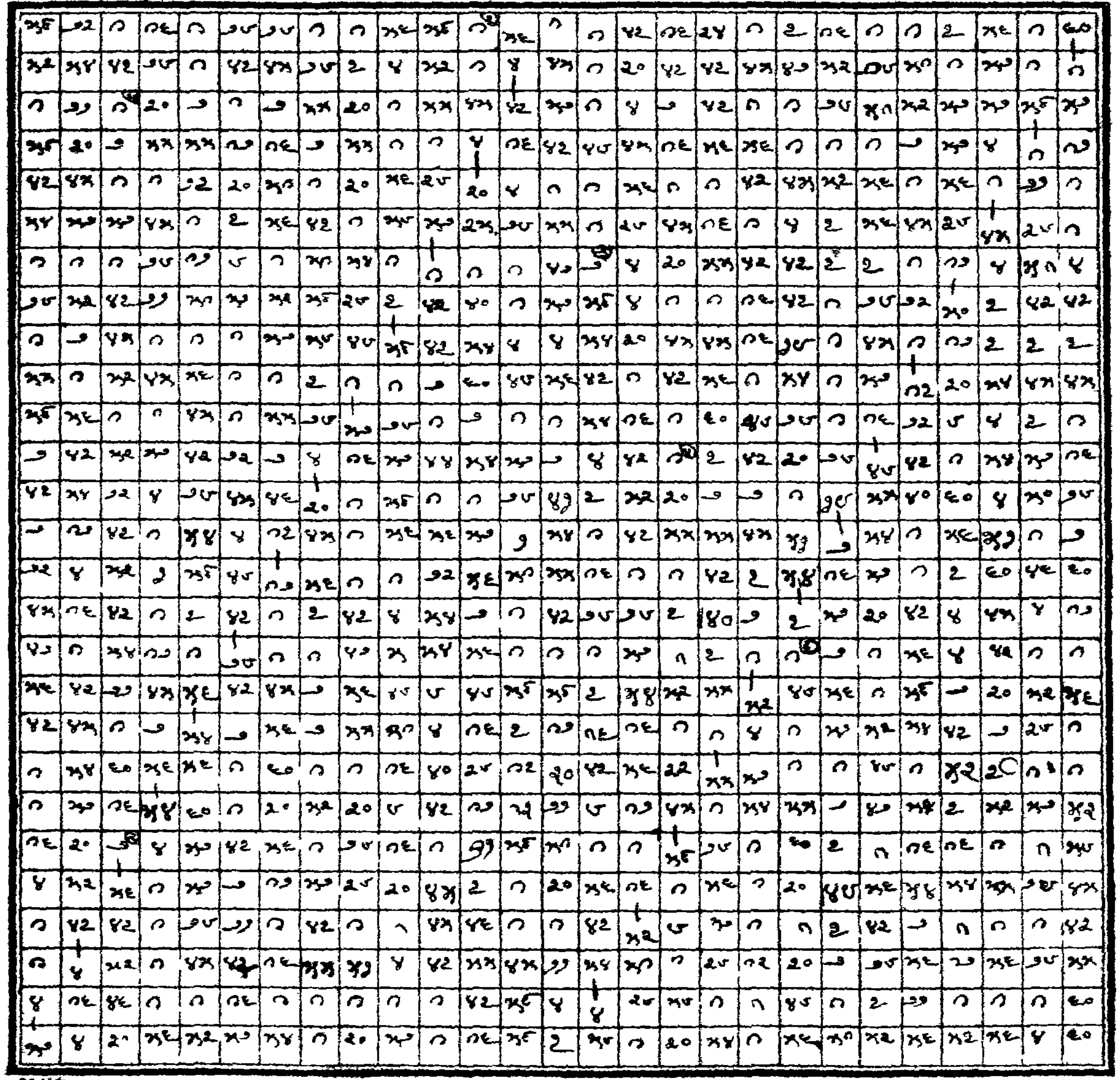

COPIED BY SWASTI SHRI 108 ACHARYA SHRI DESH BHUSHAN MUNI MAHARAJ

सिरि भूवलय

'ॐ' अध्याय प्रथम

१ भाग

म	अ	अ	ठ	अ	फ	प	अ	अ	न	म	इ	ऱ	अ	ज	न	ए	छ	अ	ड	प	अ	अ	उ	न	अ	ह
य	र	न	क	अ	न	द	ञ	उ	ह	न	ट	इ	द	अ	ञ	न	ज	द	ग	य	कृ	भ	अ	म	अ	ग
अ	ओ	अ	ग	आ	अ	आ	र	ग	अ	उ	ः	ग	म	अ	इ	आ	न	अ	अ	अ	अ	य	औ	म	स	श
स	ग	अ	ड	ट	ऊ	ए	आ	य	ह	अ	इ	ए	न	०	द	ए	अ	व	ते	दे	अ	ब	अ	ह	अ	ड
न	ट	अ	अ	ओ	न	अ	अ	आ	व	ट	ग	इ	अ	अ	व	ज	अ	ए	अ	श	उ	व	व	अ	औ	अ
र	म	म	द	अ	उ	र	प	अ	घ	म	जे	कृ	ट	अ	ट	ड	ग	र	इ	न	ठ	द	ट	द	ट	र
अ	अ	अ	क	ऊ	न	र	म	ट	अ	अ	अ	अ	ण	अ	ई	इ	अ	लृ	ए	ने	उ	अ	ऊ	इ	भ	ह
क	म	न	ओ	ऊ	न	ए	स	ट	उ	न	ऊ	अ	म	ङ	र	ग	अ	द	ए	अ	क	ओ	व	उ	र	न
भ	आ	द	न	ग	अ	म	श	दु	म	ल	र	इ	ई	अ	ल	ट	ल	व	कृ	अ	ट	अ	ऊ	उ	उ	इ
ड	अ	व	ल	ब	अ	अ	र	अ	अ	अ	ढ	ञ	व	अ	अ	ए	अ	अ	र	अ	न	ए	ग	र	द	ग
स	र	म	अ	द	अ	ड	न	म	क	र	-	अ	म	र	ई	न	ह	प	क	अ	ए	अ	ऊ	इ	उ	अ
आ	ञ	म	म	त	आ	अ	इ	ए	म	०	र	अ	अ	व	उ	अ	इ	न	अ	कृ	प	ऽ	-	र	म	ग
ट	र	अ	इ	क	ट	ए	ठ	उ	न	अ	व	ञ	आ	र	म	र	आ	ग	अ	कृ	ए	-	ह	ई	ब	क
अ	ऊ	न	अ	ग	इ	द	द	अ	र	अ	म	न	भू	अ	न	ह	अ	इ	उ	आ	र	अ	व	उ	अ	अ
अ	इ	घ	र	ह	व	ऊ	ह	अ	न	उ	अ	आ	ह	ए	अ	ह	न	उ	,	ए	म	अ	न	ह	त	ह
द	त	न	भ	उ	ल	अ	ड	अ	ड	र	र	अ	न	ह	क	ट	भ	अ	र	म	ग	औ	ई	न	ई	ऊ
ग	अ	ई	ह	ब	क	उ	-	न	ई	प	अ	अ	अ	अ	म	र	उ	अ	अ	आ	व	ब	ळ	त	अ	ल
र	म	श्री	द	उ	न	अ	र	उ	अ	ऊ	प	स	स	र	ए	ठ	ऽ	व	प	अ	अ	भ	आ	ग	य	अ
न	ड	ड	भ	र	न	न	आ	र	म	इ		उ	ऊ	इ	न	अ	अ	इ	म	म	इ	र	ह	अ	ट	अ
अ	र	ह	उ	र	अ	ह	अ	अ	न	ड	ट	ट	अ	न	व	ए	र	अ	अ	स	प	अ	य	उ	अ	अ
अ	म	ए	आ	ए	अ	न	ब	म	ह	न	ऊ	ऊ	ओ	र	ह	इ	स	र	अ	अ	ना	र	जे	य	म	स
ग	ग	आ	-	म	र	न	अ	र	ए	अ	ओ	ह	भ	अ	अ	उ	क	र	ह	उ	अ	ए	ए	अ	य	घ
इ	न	व	अ	म	अ	ह	म	ट	ड	ह	ड	न	ग	ल	ए	ल	अ	म	-	प	र	र	र	ह	क	ढ
अ	न	-	अ	क	ओ	अ	न	अ	अ	ध	ध	अ	र	ठ	य	र	अ	अ	अ	उ	त	आ	अ	भ	अ	त
अ	इ	य	अ	र	न	ए	-	ह	इ	न	ग	द	ओ	भ	अ	अ	ट	र	ग	अ	क	ज	क	व	कृ	र
इ	ए	भ	अ	अ	द	अ	अ	अ	अ	अ	न	रू	इ	र	इ	घ	अ	अ	प	अ	ऊ	ओ	अ	अ	अ	ह
न	इ	ग	र	र	म	र	ल	न	न	र	-	र		ष	अ	उ	-	अ	न	भ	प	र	श	य	ट	ह

श्री भूवलय जैन
सिध्दांत सागर
प्राभृत प्रथम
खंड अ
अध्याय
अंक भाषा

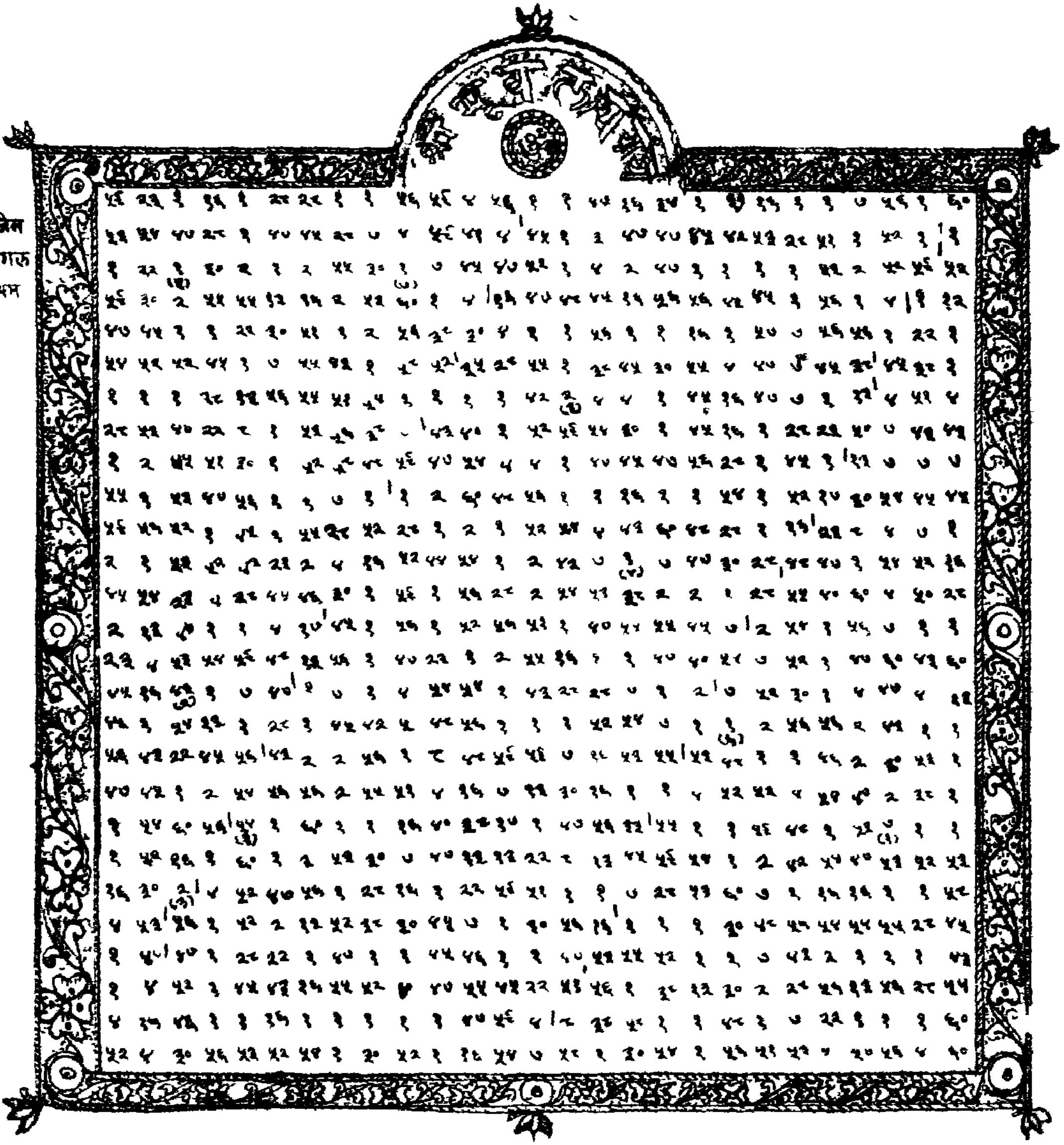

卐 श्री वीतरागाय नमः 卐

श्री दिगम्बराचार्य वीर सेनाचार्यवर्योपदिष्ट

श्री दिगम्बरजैनाचार्य कुमुदेन्दु विरचित

अंक भाषामयी जैन सिद्धान्त शास्त्र

श्री भूवलय

हिन्दी अनुवाद कर्ता

श्री दिगम्बर जैनाचार्य १०८ देशभूषण जी महाराज

प्रथम खण्ड

मंगल प्राभृत

"अ" अध्याय १-१-१

★ प्राकृत　　　　　　　　　　　　　　　　　सं०❖

अ　ष्ट महाप्रातिहार्य वय्भवदिन्द । अष्ट गुणन्गळोळ्　पो　म्दम् ॥ सृष्टिगे मंगल पर्यायदिनित्त । अष्टम जिनगेरगुवेनु ॥१॥
ट्　वर्णेयकोलु पुस्तक पिन्छ पात्रेय । अवतारदा कमन्डलद ॥ नव　का　रमन्त्र सिद्धिगे कारणवेन्दु । भुवलयदोळुपेळ्द महिमा ॥२॥
ठ　वर्णेयोळक्षरवंकव स्थापिसि । दवयववदे महाव्रतवु ॥ अव　र　वरिगे तक्क शक्तिगे वरवाद । नवमन्गलद भूवलय ॥३॥
वि　हुवाणि ओम्कारदतिशय विहनिन्न । महावीरवाणि एन्देनुव ॥　ब　हिमेय मन्गल प्राभृत वेन्तुव । महसिद्ध काव्य भूवलय ॥४॥
ह　कवु द्विसम्योगदोळगेइप्परोंदु । प्रकटदोळरवत्तम्कूडे ॥ सकलांक दोळु　वि　ट्ट सोन्नेये एनुटेन्दु । सकलागम एळु भंग ॥५॥
क　मलगळेळु मुन्द के पोगुतिर्दाग । क्रमदोळगेरडु काल्नूरु　य　॥ तमलांक ऐदुसोन्नेयु आरुएरडंबु । कमलवगंध भूवलय ॥६॥
म　मह्दवयदोळा कमलगळ् चलिपाग । विमलांक गेलुवन्दवम्　ई　। समवनुबेसदोळु भागिसे सोन्नेय विमलांक काव्य भूवलय ॥७॥

म विरुद्ध सिद्धान्तवनु महाव्रतकेंदु । नवपदवण व्रतकेंदु ।। स वियागिसि प्रोढ मूढ-रीबंरिगोंदे ।नव पद भक्ति भूवलय ।।८।।
वि यलियमल मूढ दम्सणुत्तलिया । जयपरीषहवृद्ण्पत्तोरडम् ।। नय मृ आर्गविदगेल्ववर सद् वंशद। स्वयम् सिद्ध काव्य भूवलय ।। ९।।
ध लयल दिक्कुगळ्हत्तनु बट्टेय । नलविनिम् धरसिद मुनि यु ।। सलुवदिगंबर नेन्तेंबुकेळुव । बलिवन्क काव्य भूवलय ।।१०।।
कलियंक काव्य भूवलय ।।११।। बलशलिगळभूवलय ।।१२।। कळेयद पुण्य भूवलय ।।१३।।
गेलवेरिसुव भूवलय ।।१४।। जिलयगंधद भूवलय ।।१५।। जलज धवलद भूवलय ।।१६।।
सलुव प्रमाण भूवलय ।।१७।। सलेसिद्धधवल भूवलय ।।१८।।

मा वण्यदंग मैय्याद गोमट देव । आवागतन्न अणुणनिमे ।। ईवागध कृ र बन्धद कट्टिनोळ्कट्टि । दाविश्व काव्य भूवलय ।।१९।।
गि जवहत्तनु आत्म धर्मवागिसि कोड भजकर्ग श्रीविन्ध्यगिरिय ।। निज त त्ववेळर दर्शनवन्नित्त । विजय धवलद भूवलय ।।२०।।
द् क्किनिसिल्लदाहत्तनु निर्जरिद । तक्कजनकेपेळ्द महिमर् ।। सिक्करुस मृ सारसागर दो ळगेंब । चोक्क कर्माट भूवलय ।।२१।।
हि दि अनुभागबन्ध देप्रदेशवहोक्कु । विदियादिहदिनाल्कहोंबि । अदनल्लि नि धियागिशिवसौख्य होंदिव । पदवेमंगलकर्माटकवु ।।२२।।
थ शस्वतिदेविय मगळाद ब्राम्हिगे । असमान कर्माटकद । रिसियुनि ल यवु अरवत्नाल्कक्षर । होसेद अंगय्य भूवलय ।।२३।।
रसद ओंकार भूवलय ।।२४।। यशदेडगय्य भूवलय ।।२५।। रसमूरु गेरेय भूवलय ।।२६।।
रिसिरिद्धि यरवत्त नाल्कु ।।२७।। यशवु नाल्कारदु हत्तु ।।२८।। रस सिद्धिया हत्तु ओम्दु ।।२९।।

दृ रुणेयम्बहिरन्ग साम्राज्यम् लक्ष्मिय । अरुहनु कर्माटकद ।। सिरिमात यं तनदे ओम्दरिम् पेळिव । अरवत्नाल्कंक भूवलय ।।३०।।
ज् य सिद्धियादआओम्देअक्षर ब्रह्म । नयदोळगअरवत् नाल्कु । जयिनर्गेस अ् यतनबाकलेयतिशय । स्वयम् सिद्ध भग भूवलय ।।३१।।
ञा ति जरा मरणवनुगुणाकार । दातिथ्यबरेभागहार । ख्यातियभंगबोळरिव मृ विख्यात । पूतवु पुण्य भूवलय ।।३२।।
प द पद्म दोळगणंकाक्षर विज्ञान । अदर गुणाकार मगिग ।। वदगि बंदा धृा नि यरिविगे सिलुकिह । सदवधि ज्ञान भूवलय ।।३३।।
ण वपदकंकदिम्गणिसलोम्बराम्। अवरंक वनुलोम भंग। दवता रवयत्नपूर्वक य भागिसे । अवनिगेयेळु भूवलय ।।३४।।
ट कद समयोगदे भंगवागिह हत्तु ।सकलांक चक्रेश्वरवु ।। अकलंक वाद्हस ने कद ओ मुंदे । प्रकटद गुणकार बिन्दु ।।३५।।
ट कवनु महवीर नंतमुंहूर्त दिम्।प्रकटि सेदिव्य वाणियलि ।। सकलाक्षरवम् ति ळिदिह गौतम । नकलंक हन्नेरडंग ।।३६।।
स र्वार्थसिद्धि यॆंदेनलु अक्षर भंग । निर्वाहदोळगंक भंगम् ।। सर्वांक ग्रो गदोळ् अरवत्तनाल्क नेनेल्ल । निर्वहिसलु हत्तु भंग ।।३७।।
ष र्मवादाहत्तम्वळेसुव(कालदे)योग दे।निर्मलमशुद्धसिद्धान्तधर्मवहरडुवआ गि न जिनपाद । शर्मर सिद्ध भूवलय ।।३८।।
सा गर द्वीपगळेल्लव गणिसुव । श्रीगुरु ऐदवरंक ।। नागवनाकव रकव मोक्षव । साधन वागिसिदंक ।।३९।।
र। शियोळोम्दम्तेगेयलाराशियु ।घासियागदलेतु बिरुव।। श्रीशननन्तवपद वि ई संख्यात । दाशेयनन्त सम्ख्यात ।।४०।।

त्रि शेयोळु बंद अनन्त संख्यातद । वश दोळसम्ख्यातवदम् ॥ रस कमलगळेळु का दिरिसिवदिव्य । रससिद्धि अलपद्मगंध ॥४१॥
ट् वरणेयोळिरुवन् 'क' दोळु कूडिद् अरवत्तु । सवियंक वेंटॆट वरोळ् ॥ अवितिह श्रीपद् म हविनारु स्वप्नव । अवयव स्थलपद्मगन्ध ॥४२॥
ट वरणेयोळिरुवन्क दोळु कूडिद् एन्टॆंटु । अवनु मत्तुपुनह कूडिदरे ॥ नव पद्म व द रिवबरुवंक एळम् । सविदरे बेट्टव पद्म ॥४३॥
स मनाद ई मूरु पद्मगळन्नेल्ल । ममहॄरुवयद शुद्धरसद । गमकदोळ् अंन्टद अंट म एंटनु । अमविल्लदे सोन्नेगेय्दु ॥४४॥
घ शव ध्यानाग्नियिम् पुटविडे रससिद्धि । वशवागुवुदु सत्य मणियु ॥ रसमणि ओ क्षवेकामदवहुवेम्व । रस सिद्धियंक भूवलय ॥४५॥
ल वमात्रवादरू दोषगळिल्लद । नवमात्रकदादि अरहन्त ॥ अवनेरडू कालन्नूर्व्द अन् क् द । सविये भाविसे महापद्म ॥४६॥
ह् रतरवादेरळ् आपाद पद्मगळोळु । बरुव अतीतानागतद॥ वरदवादोंदु आ समयद ग ट् पद । वरियिरि वर्तमान वनु ॥४७॥
श रण थरण वेन्नुव रसमणियौषध । गणितवम् नागार्जुननु । क्षणदोळगरि दनु गुरुविन् ए लातनु । गुणिसुत लेन्दु कर्म वनु ॥४८॥
ला घिसि केडिसुत सिद्धान्त मार्गद । ओदिनन्काक्षरविद्य ॥मोदर्दहिम्सालक्षण धर्मदि म । आदि जिनेन्द्ररर मतविम् ॥४९॥
रा गवगेलिदवराग घेळिद दिव्यम् । नागसम्पगेय हूउगळम् ॥ सागर कुपमान गुणितद च रितेयम् । भोगव योगदोळ् कूडि ॥५०॥
सि द्धरसवमाडि हूवनु कोदिह । बुद्धियज्ञानव केडिसि ॥ शुद्धात्म नेले इ ह सिद्धर लोकद । सिद्ध सिद्धान्त भूवलय ॥५१॥
द् रुशन माडलु सद्दर्शन वागि । परमात्म पादव गुणिसे ॥ तिरुगिद कमल व दलगळ कूडलु । बर लोम्दु साविर वेम्दु ॥५२॥
अरुहन पद पद्म भंग ॥५३॥ परमन गडपद्म दग ॥५४॥ गुरुपरम् परेयादि भंग ॥५५॥ सरसान्क हुट्टिद भंग ॥५६॥
गुरु गळ उपदेश दग ॥५७॥ परिशुद्ध परमात्मनग ॥५८॥ सरसद हन्नेरडंग ॥५९॥ करुसेव मूरु हूवन्ग ॥६०॥
परिमळ रसवगेलूदन्ग ॥६१॥ सरसाक्षरद् एळु भन्ग ॥६२॥ गुरुसेन गणदवरन्ग ॥६३॥ सरमंगल काव्य भंग ॥६४॥
ब् र्मध्वजवदरोळु केत्तिद चक्र । निर्मलदष्टु हूवुगळम् ॥ स्वर्मन दळगळ य्वत् ओ म्दु सोन्नेयु । धर्मवकालु लक्षगळे ॥६५॥
आ पाटियंकदोळ् ऐदु साविर कूडे । श्रीपाद पद्म गंधजल (दंगजल)॥ रूपि अरूपियाओ म् वरोळ् घेळुव । श्रीपद्धतिय भूवलय ॥६६॥
सि रि सिद्ध अरहंत आचार्य पाठक । वर सर्वसाधु सद्धर्म ॥ परमागम वद म् बरेव चय्त्यालय।दिरूव श्रीबिम्बओम्वत्तु ॥६७॥
करुणे योम्बत्त् इप्पत्तोळु ॥६८॥ अरुहन गुणवेंबत्तोदु ॥६९॥ सिरियेळ्नूरिप्प त्ओम्बत्प ॥७०॥ बरुव मदान्कगळारु ॥७१॥
एरडने कमल हन्नेरडु ॥७२॥ करविडिदेळक कुम्भ ॥७३॥ अरुहन वाणि ओम्बत्तु ॥७४॥ परिपूर्ण नवदन्क करग ॥७५॥
सिरि सिद्ध नमह ओम्दुत्तु ॥७६॥

ह् गणित राशियोळुत्पन्न वागिह । बगेबगेयन्कदक्षरद ॥ सोगसिनिम् मन्गलप्रा आ र भद्रवु । बगेगे शुभदसौख्यकर ॥७७॥
थि षणर् एन्देने अरुद्ध मुनिगळ सम्पद । दिशेयोळु बह बालमुनिगे ॥ वशवागद रा शियतिशय हारदे।हौसेदरे बन्दिह शिववु ॥७८॥
श् नवु सिंहासन तनुवु चैत्यालय । जिनबिम्बदन्ते नन्नात्म । नेनुत अक्ष य बाद भावद्रव्यगळिद।घनबन्धपुण्यभूवलय ॥७९॥
म रेतिहदेहाभिमानदोळध्यात्म । सरमालेयोळु बन्धकरगे । अरहन्त रूपि न द्रव्यागमकाव्य ।सिरि विरूप सिद्ध भूवलय ॥८०॥

म न दर्थियिद शरीरवतपिसिद । जिनरूपि नाशेयजनरू ।घनकर्माटक वेन्टनु गेले मो क्ष । वनुभव मंगल काव्य ॥ ८१॥
वि शेयोळोम्बत्तार वशगोंड सूत्रांक । दसमानि पाहुड काव्य ॥ वशवःद न म् मात्म स्वसमय वेन्नुव ।कु समय नाशक काव्य ॥ ८२॥
स र्वार्थ सिद्धिसम्पददनिर्मलकाव्य। धर्मवलौकिकगणित ।निर् ममबुद्धिय न वलम् बिसिरुवर । धर्मानुयोगद वस्तु ॥ ८३॥
शर्मर निर्मल काव्य ॥८४॥ धर्म मूरारु मूरन्क ॥८५॥ धर्म समन्वय काव्य ॥८६॥ निर्ममकार वाक्यान्क ॥ ८७॥
धर्म भाषेगळेन्टोन्देळु ॥८८॥ मर्म पश्चदानुपूर्वि ॥८९॥ धर्म समन्वय गुणित ॥९०॥ कर्मद अरिकेय गणित ॥ ९१॥
करम्द संख्यात गणित ॥९२॥ कर्मदसम्ख्यात गुणित॥९३॥ कर्मदनन्तान्क गुणित ॥९४॥ कर्मदुत्कृष्टदनन्त ॥ ९५॥
कर्मसिद्धान्तद गणित ॥९६॥ निर्मलदध्यात्म बन्धम् ॥९७॥ सर्वस्व सार भूवलय ॥९८॥ धर्ममन्गल प्राभृतवु ॥ ९९॥
निर्मल शुद्धकल्याणम् ॥१००॥ धर्मवय्भव भद्र सौख्य ॥१०१॥
न वकार मन्त्र दोळादिय सिद्धान्त। अवयव पूर्वेय ग्रन्थ॥दवतारदआदि म ङ् 'अ' क्षरमन्गल।नव अ अ अ अअअअअअ ॥१०२॥
अवरोळु अपुनरुक्तान्क ॥१०३॥ अवुनोडल पुनरुक्त लिपि ॥१०४॥ अवरोळ गादिय भन्ग ॥१०५॥ सविएरळ् मूर्नालकु भन्ग ॥१०६॥
इवु ऐदारेळेन्दु भन्ग ॥१०७॥ रओम्बत्तु हत्हन् ओम्दु ॥१०८॥ सविहन्एरड् हदिमूरु भन्ग ॥१०९॥ अवु हदिनालक् हदिनय्दु ॥११०॥
अवु हदिनार् हदिनेळु ॥१११॥ नव वेरडेने हदिनेन्टु ॥११२॥ अवु हत्तोबत्तु इप्पत्उ ॥११३॥ अवर मुन्द् ओम्देरळ्मूरु ॥११४॥
सवि नाल्कय्दारेळेन्ट न्ग ॥११५॥ नवमुन्देंमूवत्तु अन्ग ॥११६॥ अवु नलवत् मुन्देहत्अन्क ॥११७॥ सवि हत्त् उ अरवत्तु भन्ग ॥११८॥
अवु हत्तए अरवत्तु भन्ग ॥११९॥ सवियओम्देरडुमूर्नालकु ॥१२०॥ अवु कूडल् अरवत्तनाल्कु ॥१२१॥
सविय्अ अरवत्नाल्कु भन्ग ॥१२२॥ अवरंकवडु तोम्बत्एरडु ॥१२३॥ अवु अडगिहुदु अन्तरद ॥१२४॥
सु ळियलु आरूवरे साविर मुन्दे। बळसिह अरवत्तोदु ॥ तिळियंक औंबत्तर मूर ह रिमुन्दे ॥ कळेये मंगलद (बळसे)पाहुडवुम् ॥१२५॥

९×९×९×९ = ६५६१ = ९

प्राकृत और कर्माटक ये दोनों भाषा सक्रमवर्त्ती है

अट्टविहकम्म वियला णिटिटय कज्जा पणट्टसंसारा ।
दिट्टसयलत्थ सारा सिद्धआ सिद्धिम् मम दिसन्तु ॥१॥

६५६१ अन्तर ७७८५×१४३४६ = ९

संस्कृत अक्रमवर्ती

ओकारम् बिन्दु संयुक्तं नित्यम् ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदम् चैव ओकाराय नमो नमः ॥१॥

★ आरम्भ के लाल रग के अक्षरो को ऊपर से नीचे की तरफ पढने से प्राकृत भाषा बनती है।

❖ बीच के लाल रग के अक्षरो को ऊपर से नीचे की तरफ पढने से सस्कृत भाषा बनती है।

❋

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री दिगम्बरजैनाचार्य वीरसेन जी के शिष्य श्री दिगम्बरजैनाचार्य कुमुदेन्दु विरचित

श्री सर्वभाषामय सिद्धान्त शास्त्र

भूवलय

श्री १०८ दिगम्बरजैनाचार्य देशभूषण जी द्वारा

कानड़ी का हिन्दी अनुवाद

प्रथमखंड 'अ' अध्याय

को मोददायकमनंतगुणाम्बुराशि, श्री कौमुदेन्दुमुनिनाथकृतोपसेवं ।
श्री देशभूषण मुनीश्वरमासुनम्य, हिंदीं करोमि शुभ भूवलयस्य बुद्ध्या ॥

मंगल प्राभृत

अष्ट महाप्रातिहार्य वैभवदिंद । अष्टगुणंगळोळोंदम् ॥
सृष्टिगे मंगल पर्यायदिनित्त । अष्टमजिनगेरगुवेनु ॥ १ ॥

इस भूवलय ग्रन्थ की रचना के आदि में श्री कुमुदेंदु जैनाचार्य ने मगल रूप मे श्री चन्द्र प्रभु तीर्थंकर को ही नमस्कार किया है। यह चन्द्र प्रभु तीर्थंकर परम देव कैसे हैं, ? सो कहते हैं-

अष्ट महाप्रातिहार्य–

संपूर्ण विश्व के अन्दर जितनी भी श्रेष्ठ वस्तुए हैं अर्थात् जितने वैभव चक्रवर्ती देवेन्द्र या मनुष्य के सुख हैं, उन संपूर्ण सुखों से भी अत्यन्त पवित्र एव मंगलकारी सुख, जो है वह अष्ट महाप्रातिहार्यों तथा अंतरंग बहिरंग लक्ष्मी के वैभवों से सुशोभित आठ गुणों से युक्त एक अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभु भगवान के पास ही हैं वे भगवान ही वि-व के प्राणियों को मगल के देने वाले हैं। इसलिये हम अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभु भगवान को मन-वचन-काय से त्रिकरण शुद्धि पूर्वक नमस्कार करते हैं।

श्री कुमुदेंदु आचार्य ने केवल अकेले आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभु भगवान को ही नमस्कार क्यो किया ?

समाधान--भगवान गुणधर आचार्य द्वारा रचित जयधवल के टीकाकार अर्थात् कुमुदेंदु आचार्य के गुरु वीरसेन आचार्य ने जयधवल की टीका के आदि में चन्द्रप्रभु भगवान को ही नमस्कार किया है जैसा कि--

जयइ धवलंगतेए णाऊरियसयल भुवण भवणगणो ।
केवलणाण सरीरो अणंजणो णामओ चंदो ॥

अपने धवल शरीर के तेज से समस्त भुवनों के भवन समूह को व्याप्त करने वाले केवल ज्ञान शरीर धारी, अनंजन अर्थात् कर्म से रहित चन्द्रप्रभु जिनदेव जयवत हो।

विश ार्थ--चन्द्रमा अपने धवल अर्थात् सफेद शरीर के मद आलोक से मध्य लोक के कुछ भाग को व्याप्त करता है, उसका शरीर भी पार्थिव है और वह सकलंक है। परन्तु चन्द्रप्रभु भगवान अपने परमौदारिक रूप धवल शरीर के तेज से तीनो लोको के प्रत्येक भाग को व्याप्त करते हैं। उनका अभ्यतर शरीर पार्थिव न होकर केवल ज्ञान मय है। और वे निष्कलंक हैं, ऐसे चन्द्रप्रभु जिनेन्द्र देव सदा जयवन्त हों।

वीरसेन स्वामी ने इसके द्वारा चन्द्रप्रभु जिनेन्द्र की बाह्य और आभ्यन्तर दोनो प्रकार की स्तुनि की है। और श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भी "अष्ट महाप्रातिहार्य वैभवदिद" अतरग और बहिरग लक्ष्मी से सुशोभित सपूर्ण प्राणियो को शुद्ध धवलीकृत कल्याण का मार्ग बतलाने के कारण उनको प्रथम नमस्कार किया है। श्री वीरसेन आचार्य ने 'धवलगतएण' इत्यादि पद के द्वारा उनकी बाह्य स्तुति की है। औदारिक नाम कर्म के उदय मे प्राप्त हुआ उनका औदारिक शरीर शुभ तथा मफेद वर्ण का था। उस शरीर की प्रभा चन्द्रमा की काति के समान, निस्तेज न होकर नेजयुक्त थी। जो करोडो सूर्यो की प्रभा को भी मात करती थी। अर्थात् तिरस्कार करती थी। "केवलणाणशरीरो" इस पद से भगवान की अत्यन्त स्तुति की गई है और कुमुदेन्दु आचार्य ने भी इसी आशय को लेकर अतरग लक्ष्मी की स्तुति की है। प्रत्येक आत्मा, केवल--ज्ञान, केवल दर्शन--आदि अनन्त गुणो का पिड है। इसलिए उन अनन्त गुणो के ममुदाय को छोड कर आत्मा जैसी स्वतत्र और कोई वस्तु नही है। बाह्य शरीर आदि के द्वारा जो आत्मा की स्तुति की गई, वह, आत्मा की स्तुनि न होकर किसी विशिष्ट पुण्यशाली आत्मा का उस शरीर की स्तुनि के द्वारा महत्व दिखलाना मात्र है। यहां केवल ज्ञान यह उपलक्षण है, जिस में केवल दर्शन आदि अनन्त आत्मा के गुणो का ग्रहण होता है, अथवा चार घातिया कर्मों के नाश से प्रगट होने वाले आत्मा के अनुजीवी गुणों का ग्रहण होता है। "अनबर्णों" यह बिशेषण भगवान की अर्हन्त अवस्था को दिखलाने के लिए दिया गया है। इससे प्रगट हो जाता है कि यह स्तुति अर्हन्त अवस्था को प्राप्त चंद्रप्रभु भगवान की है। इस स्तोत्र के आरम्भ में आए हुए 'जयइ धवलं' पद द्वारा वीरसेन आचार्य ने इस टीका का नाम 'जयधवला' प्रख्यात कर दिया है और चिरकाल तक उसके जयवन्त होकर रहने की कामना की है। यही आशा कुमुदेन्दु आचार्य की भी है, और कुमुदेन्दु आचार्य ने आगे चलकर महावीर इत्यादि द्वारा महावीर भगवान की स्तुति की है।

श्लोक नं० १

अर्थ--अशोक वृक्ष आदि आठ महाप्रातिहार्य वैभवो से युक्त ज्ञानादि आठ गुणो मे मे एक 'ओ' अक्षर समस्त ससार के लिए मगलमय है। अर्थात जो आठ गुण हैं वे इस 'ओ' के पर्यायरूप हैं। ऐसे गुण और पर्यायमहित गुणो को प्राप्त करने वाले आठवे चन्द्रप्रभु भगवान को मैं (कुमुदेन्दु आचार्य) प्रणाम करता हूं।

कुमुदेन्दु आचार्य ने व्याकरण इत्यादि नथा आजकल के प्रचलित काव्य रचना इत्यादि के क्रम के अनुमार इसकी रचना नहीं की है। बल्कि जिनेन्द्र भगवान की जो अनक्षरी वाणी थी और जो वाणी उनकी दिव्य ध्वनि के द्वारा मर्वांग प्रदेश से खिरी थी वैसी ही वाणी मे आपने भूवलय ग्रन्थ की रचना की है।

इस प्रकार कुमुन्देन्दु आचार्य ने जो इस ग्रन्थ की रचना की है वह गणित के द्वारा ही हो मकती है अन्य किसी साधन से नहीं। कुमुदेन्दु आचार्य ने भी इस भूवलय काव्य की रचना केवल गणित द्वारा ही की है।

इसीलिये ७१८ (मात सौ अठारह) भाषा ३६३ धर्म तथा ६४ कलादि अर्थात् तीन काल तीन लोक का परमाणु से लेकर वृहद्ब्रह्माड तक और अनादि काल से अनन्त काल तक होने वाले जीवो की संपूर्ण कथायें अथवा इतिहास लिखने के लिये प्रथम नौ नम्बर (अंक) लिया गया है। एक जो अक है वह अक किसी गणना या गिनती में नही आता है। इसीलिये परम्परा से जैनाचार्यों ने सर्व जघन्य अंक को

दो २ को माना है आज उसी पद्धति के अनुसार कुमुदेन्दु आचार्य ने सर्व जघन्य अक दो को मानकर नौवे (नवा) अक को आठवा अक माना है। नौ के ऊपर अक ही नही है। फिर यहा एक शका होती है कि १ और १ मिलकर दो हुआ तो फिर यहा यह एक कहा से आ गया ? जब दो को छोड़कर एक को लेते हैं तो दो मिटकर एक एक ही रह जाता है। यह एक क्या चीज है ? दुनिया मे ऐसा प्रचलित है कि प्रत्येक मनुष्य के हाथ में कोई चीज रखी जाती है तो एक, दो, तीन इत्यादि क्रम से गिनती के द्वारा गिनी जाती है, वे गिनती १०-१२-१५-२० इत्यादि जो सख्या हैं एक को लेकर १२ या १३ या २० या ३० को प्राप्त हुई हैं। इनमे से एक एक सख्या क्रम से निकाल दी जाए तो अत में केवल एक ही रह जाता है।

उत्तर-अक-कहे जाने योग्य एक नही है। एक का टुकडा कर दिया जाए तो दो टुकडे हो जाते हैं और दो बार टुकडे कर दिये जाए तो चार होते हैं। इसी क्रम के अनुसार काटते चले जाए तो काल की अपेक्षा अनादि काल से फिर भी अनादि काल तक चलता ही रहेगा। क्षेत्र की अपेक्षा मे केवली भगवान गम्य शुद्ध परमाणु तक जाएगा। जीव की अपेक्षा से सर्व जघन्य क्षेत्रावगाह प्रदेशस्थ क्षुद्र भव ग्रहणधारी जीव तक जायगा, भाव की अपेक्षा केवली भगवान के गम्य सूक्ष्मातिसूक्ष्म तक कर पावेगे। आप लोग हमेशा देखते हैं कि एक रुपया है, अथवा एक घर है, या कोई चीज है ऐसे तुम गिनते रहते हो। तब तुम्हारे विचार मे ही एक को हमेशा अलग २ मानेगे। सभी चीज एक कैसे रह सकती हैं ? अर्थात् कभी भी नही रह सकती हैं।

इतने महान शक्ति शाली होने पर भी आत्मध्यान में बैठे हुए योगी राज के समान अथवा सिद्ध भगवान के यह जो एक अंश आप अपने अन्दर ही स्थित है। ऐसे एक को एक से गुण करने मे एक ही रह जाता है। यह ही इसकी अचिन्त्य महिमा है। कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय की कला कौशल की रचना में ज्ञानादि अष्ट गुणों मे 'ओं' अर्थात ज्ञान रूपी एक को ही सम्मान्य अर्थात मंगलमय माना है।

इस भूवलय को गणित शास्त्र के आधार पर लिखा है। अंक शास्त्र और गणित शास्त्र ये विद्या महान् विद्या हैं और इन दोनों का विषय भिन्न-भिन्न है। अक शास्त्र का विषय यह है कि सबसे पहले वृषभदेव भगवान ने सुन्दरी देवी की हथेली पर बिन्दु को काटकर एक और दो आपस मे मिलाते हुए नौ तक लिखा था। इस विषय का विस्तार पूर्वक प्रतिपादन करने वाले जो शास्त्र हैं उन्हीं का नाम अक शास्त्र है। इस अंक शास्त्र के आधार से गणित शास्त्र की उत्पत्ति हुई, अर्थात् द्रव्य प्रमाणानुगम नामक रचना भगवान भूतबली आचार्य ने की। इसी द्रव्य प्रमाणानुगम शास्त्र के आधार से इस भूवलय ग्रन्थ के आधारभूत जड को मजबूत किया गया है। इसलिये सर्व जघन्य दो मान लिया और दो से गिनती की जाए तो नौवा अंक आठवा हो जाएगा। इसलिये आनुपूर्वी क्रम से नवें चन्द्रप्रभु भगवान आठवे तीर्थंकर हुए। इसलिये कुमुदेन्दु आचार्य ने नवे चन्द्रप्रभु भगवान को नमस्कार किया है। क्योकि यह बात ठीक भी है कि सपूर्ण भूवलय की ६४ अक्षरो में ही रचना की हुई है और आठ को आठ से गुणा करने से ६४ होता है। ।।१।।

[१] टवणेयकौलु" अर्थात् पुस्तक रखने की व्यासपीठ [रहल] [२] पुस्तक [३] पिच्छ [४] पात्र रूपी कमडल ये चारों ही नव पद सिद्धि के कारण हैं। इस प्रकार भूवलय की रचना के आदि में महा महिमावान [वैभवशाली] चन्द्रप्रभु भगवान ने कहा है। ।।२।।

इसी [व्यासपीठ] अर्थात् रहल में एक ओर चौसठ अक्षर और दूसरी ओर नौ अक की जो स्थापना की गई है वही महाव्रत धारण किये हुए महात्माओ ने अर्थात् [दिगम्बर मुनिराजो ने] भव्य जीवों की शक्ति को जानकर उनकी शक्ति के अनुसार साध्य हुआ नव केवल

लब्धि रूप नव मगल ही भूवलय है। ॥३॥

यह नौ की वाणी ओकार शब्द का अतिशय है। ऐसी इस वाणी को इस काल मे महावीर वाणी कहते हं और इसको महामहिमा वाला मगल प्राभृत भी कहते हे और इसको महासिद्ध काव्य भी कहते है, तथा इसको भूवलय सिद्धान्त भी कहते हैं। ॥४॥

भूवलय की पद्धति के अनुसार 'ह्' और 'क्' इन दोनो अक्षरो के सयोग को द्विसम्योग कहते है। क् २८ और ह् ६० अगर इन दोनो अकों को जोड लिया जाए तो ८८ आ जाता है। वह बिन्दी ही ८८ बन गयी। ८ और ८ को जोड देने से १६ बन गया और १ और ६ को जोड देने से ७ [सात] बन गया। सात के रूप मे ही भगवान महावीर ने इसका नाम सप्तभगी रखा। ॥५॥

जिस समय भगवान महावीर सहस्र कमल के ऊपर कायोत्सर्ग मे खडे थे उस समय देवेन्द्र ने प्रार्थना की कि भव्य जीव रूपी पौदे कुमार्ग नाम की तीव्र गर्मी के ताप से सूखते हुए आ रहे हैं। इसके लिये धर्मामृत रूपी वर्षा की आवश्यकता है इसलिये तुम्हारा समवसरण श्री विहार, अखिल, काश्मीर, आन्ध्र, कर्नाटक, गौड, वाह्लीक, गुर्जर इत्यादि छप्पन देशो मे बिहार करके उन जीवो को धर्मामृत की वर्षा करने की कृपा करे, इस प्रकार उन्होने नम्र प्रार्थना की। यद्यपि भगवान का समवसरण बिना प्रार्थना के चलने वाला था। परन्तु देवेन्द्र की प्रार्थना करना एक प्रकार का निमित्त था। जिस समय देवेन्द्र ने समझा कि भगवान का विहार होने वाला है उस समय इस बात को जानकर कमलो की रचना चक्र रूप मे स्थापित की। किस प्रकार स्थापित किया यह बतलाते है ?

आगे की ओर सात पीछे की ओर सात, इस प्रकार चारो ओर बत्तीस २ कमल की रचना की अर्थात् चक्र रूप मे स्थापना की। अब हमको इस प्रकार समझना चाहिये कि एक एक कमल मे १००८ दल अथवा पखडी होती हैं।

३२×७ मे गुणा करने से २२४ होते है और एक वह कमल जो भगवान के चरण के नीचे है उसको मिलाकर कुल २२५ हुए और २२५ अर्थात् २+२+५ को जोड दें तो ९ हो गया और कनाडी भाषा मे इसका 'ऐरडूकालन्र' अर्थ होता है और इसी का अर्थ भगवान का चरण भी होता है। इसी का अर्थ कायोत्सर्ग मे स्थित खडा होना भी है। और जब भगवान अपने कदम को दूसरी जगह रखते है तो उसी समय भक्तिवश होकर देव उस कमल को घुमा देते है। तब घूमने के पश्चात् वही कमल भगवान के दूसरे पाव के नीचे आकर बैठ जाता है। अब जो २२५ कमल पहले थे उसको दुबारा २२५ से गुणा करने से ५०६२५ हो जाता है। [५+०+६+२+५=१८=८+१=९] ये भी जोड देने से परस्पर ९ हो जाता है।

भगवान के समवसरण में देव-देवियाँ ऊपर के अक के अनुसार अष्ट द्रव्य मगल को लेकर खडे थे। जब भगवान अपने पावो को उठाकर दूसरे पाव पर खडे हुए उस समय इतने ही द्रव्यो से अर्चना [पूजा] करते हुए तथा जब तीसरा पाव उठाकर रखा तो इसी अक के गणितानुसार अर्चना करते हुए चले गए। अर्थात् सारे [५६ देशो] भरतखड मे भगवान के जितने पाव पडते गए उतने ही देव-देविया है ॥६॥

जिस समय भगवान विहार करते थे उस समय भगवान के चरण के नीचे जो कमल होता था उसकी सुगन्ध उसी भूमि से निकलकर भव्य जीवो की नासिका मे प्रवेश कर हृदय में जाती थी। तब उनके हृदय मे अत्यन्त पुण्य-परमाणु का बन्ध होता था। अब इस समय तो भगवान है ही नही, उनके चरण के नीचे का कमल भी नही। तब फिर वह गंध किस प्रकार आएगी। क्योकि अब कमल की गध तो है ही नही तो फिर हम क्यो भक्ति करें ?

इस प्रकार के प्रश्न प्रायः उठते हैं जिनका समाधान हम नीचे दिए हुए दसवें श्लोक में करेंगे।

भगवान अपने समवसरण के साथ विहार करते समय पृथ्वी पर चलने-फिरने वाली चिडिया के समान चलते थे। परन्तु अतिम तीर्थंकर भगवान महावीर का विहार चक्र के समान अर्थात् आजकल के हवाई

जहाज के समान तिरछा चलता था। इस समय वही भगवान के चरण कमल हमारे हृदय-कमल मे चक्र की भाँति घूमते हुए सर्वांग भक्ति को उत्पन्न कर अत्यन्त शान्तमय बना देते है। इस प्रकार घूमने के कारण आठवा अक मिलता है, उस अक से तथा उस गुणाकार मे '६' नौ नामक अक दो से भाग होकर अर्थात् विषमाक से भाग होकर शून्य रूप बन जाता है। यह गणित की क्रिया किसी को मालूम नही थी। स्वय वीरसेन आचार्य को भी यह नवमाक पद्धति विदित न थी। कुमुदेन्दु आचार्य ने इस विधि को अपने क्षयोपशम ज्ञान से जानकर गुरू मे प्रार्थना की। तब वीरसेन आचार्य प्रसन्न होकर बोले--तुम हमारे शिष्य नही परन्तु हम ही आपके शिष्य है। जैसा उन्होने अपने मुख से प्रकट किया है, इस बात का आगे चलकर खुलासा दिया गया है।

यह विधि गणित शास्त्रज्ञो के लिये अधिक महत्वशाली है, बहुत दूर प्राच्य देश (जर्मन इत्यादि) से आने वाला (राडार बम्बार मिशन) पर्थात् राडर विमान भारत के किसी एक बडे भाग को नष्ट करने के लिये आता है। तब तुरन्त ही भारत वाले अपनी साइस से मालूम कर लेते हैं कि एक बडा विमान भारत के बडे भाग को नष्ट करने के लिये आ रहा है। तभी वह कई स्थानो को सूचित कर, उस विमान को गोली मे मार गिराने की आज्ञा देते हैं। यदि गोली लग जाती है तो विमान नष्ट हो जाता है अन्यथा विमान अपना काम पूर्ण कर लेता है। इसका कारण क्या है ? इसका उत्तर है कि गणित शास्त्र की अधूरता ही इसका कारण है। यदि भूवलय का गणित शास्त्र जगत मे प्रचलित हो जाए और समाक का विषमाक से विभाग हो जावे तो सब सवाल हल हो जाते है। और एक दूसरे को मारने की हिंसा मिट जाती है। कहते हैं कि एक राजा के पास मारने का शस्त्र है और दूसरे के पास रक्षा करने का शस्त्र है तो उस मारने वाले शस्त्र का क्या लाभ अर्थात् कुछ नही। यही जैन धर्म का बडा महत्वशाली अहिंसा का शस्त्र दुनिया को देन है। भगवान् महावीर के ज्ञान में कुछ भी जानने मे शेष न रहने के कारण उनके ज्ञान को सर्वज्ञ कहा है। अगर भगवान् के ज्ञान में कुछ वस्तु शेष रह जाती तो उनको सर्वज्ञ नही कहा जाता। इसलिये उनकी वाणी प्रमाण होने के कारण किसी को अप्रमाणता के विषय की शका नही हो सकती। यही भगवान के ज्ञान मे एक महत्व है। इसलिये आजकल भी भगवान महावीर के कमलो की गध का आस्वादन ऊपर कहे हुए गुणकार से भगवान के पद-कमलो को गुणकार करते हुए विशेष रूप से वस्तु को जान सकता है। यही हमारे कहने का प्रयोजन है ॥ ७ ॥

पूर्वापर विरोधादि दोष रहित सिद्धान्त शास्त्र महाव्रती के लिये हैं और अरहत सिद्धाचार्यादि नव पद की भक्ति अणुव्रत वालो के लिये है। इस रीति से अणुव्रत और महाव्रत दोनो की समानता दिखलाते हुए यह मूढ और प्रौढ अर्थात् विद्वान् दोनो को एक ही समान उपदेश देने वाला भूवलय शास्त्र है। जैसे कि कनाडी श्लोको को पढ लेने से मूढ भी अर्थ कर लेता है और इस कनाढी मे भी विद्वान् अपने प्रथक-प्रथक दृष्टिकोणो से उन्ही अक्षरो को ढूढते हुए प्रथक्-प्रथक भाषा और विषय को निकाल लेते हैं ॥ ८ ॥

जिन्होने सम्यक्त्व के आठ मूल दोषों को निकाल दिया है और देवमूढता, गुरू मूढता और पाखडी मूढता को त्याग दिया है और दर्शनावरणी कर्म का नाश कर दिया है और क्षुधा, तृषादि बाईस परीषहों को जीत लिया है। ऐसे महाव्रत्तियो के प्रमाण से जो वस्तु सिद्ध हो गई उस वस्तु को दुबारा सिद्ध करने की आवश्यकता नही। यदि कोई सिद्ध भी करे तो वह अविचारित रमणीय है। अर्थात् कुछ फल नही। यह भूवलय काव्य भी महाव्रतियो के शिरोमणि आचार्य के द्वारा बनाया हुआ है अत स्वय प्रमाण है ॥ ९ ॥

इस भूवलय काव्य मे बतलाया गया है कि दस दिशा रूपी कपडो को अपने शरीर पर धारण करते हुए भी मुनिराज दिगम्बर कैसे बने ?

जैसे सूर्य को दिनकर, भास्कर, प्रभाकर आदि अनेक नामो से पुकारते है वैसे ही कवि लोग उस सूर्य को तस्कर भी कहते हैं क्योकि वह रात्रि के अन्धकार को चुराने वाला है। इसी

तरह दिगम्बर जैन मुनि सम्पूर्ण वस्त्रादि परिग्रह से रहित अर्थात् निरावरण आकाश के समान होते हैं। केवल एक शरीर मात्र उनके पास परिग्रह है। इस रूप मे होते हुए दशो दिशा रूपी वस्त्रको धारण किए हुए हैं। यह शब्द उपमा रूप मे है ॥१०॥

अनादि काल से इस तरह मुनियो के द्वारा बनाया हुआ यह भूवलय नाम का काव्य है ॥ ११ ॥

आत्म बल से बलिष्ठ होने के कारण इन्ही मुनियो को ही बलशाली कहते हैं ॥ १२ ॥

ऐसे दिगम्बर मुनियो के द्वारा कहा हुआ काव्य होने के कारण इसके श्रवण-मनन आदि से जो पुण्य का बन्ध होता है वह बध अतिम समय तक अर्थात् मोक्ष जाने तक साथ रहता है अर्थात् नाश नही होता है ॥ १३ ॥

इस भूवलय के श्रवणमात्र मे अनेक कला और भाषा आदि अनेक दैविक चमत्कार देखने को मिलते है इसी तरह सुनने और पढने मात्र से उत्तरोत्तर उत्साह को बढाने वाला यह काव्य है ॥ १४ ॥

इस प्रकार इस पवित्र भूवलय शास्त्र को सुनने मात्रसे सम्पूर्ण पापो का नाश होता है ॥ १५ ॥

दिगम्बर मुनियो ने ध्यानस्थ होकर अपने हृदय रूपी कमल दल मे धवल बिन्दु को देखकर जो ज्ञान प्राप्त किया था उसी के अतिशय को स्पष्ट कर दिखलाने वाला यह भूवलय है। अथवा यह धवल, जयधवल, महाधवल, विजयधवल और अतिशय धवल जैसे पाँच धवलो के अतिशय को धारण करने वाला भूवलय है। जब दिगम्बर मुनिराज अपने योग मे कमल दल के ऊपर पाँच बिन्दुओ को श्वेत अर्थात् धवल रूप मे जिस प्रकार एक साथ देखते हैं उसी तरह इस भूवलय ग्र थ के प्रत्येक पृष्ठ पर तथा प्रत्येक पक्ति पर इन पाँच धवल सिद्धान्त ग्र थ के एक साथ दर्शन कर सकते है और पढ भी सकते हैं ॥ १६ ॥

चौसठ (६४) अक्षरमय गणित से सिद्ध अर्थात् प्रमाणित होने के कारण यह भूवलय सर्वोपरि प्रमाणिक काव्य है ॥ १७ ॥

ऐसे इस भूवलय के अंक फोटो कर लेने से उसके सब अंकाक्षर काले न होकर सफेद बन गए हैं। उसी तरह जीव द्रव्य से शब्द निकलता है। उसी तरह यह अक सिद्ध हुआ। यह भूवलय ग्र थ है।

अत्यन्त सुन्दर शरीर वाले आदि मन्मथ कामदेव, गोमट्टदेव (बाहुबलि) जिस समय अपने बडे भाई भरत चक्रवर्ती को तीनों युद्धो मे जीतते समय जब वैराग्य उत्पन्न हुआ तब जीता हुआ सम्पूर्ण भरत-खड अपने भाई को वापिस दे दिया। तब खेद खिन्न होते हुए सकल चक्रवर्ती राजा भरत ने (बाहुबलि) से पूछा कि हमने राज-लोभ से आपके बज्र वृषम नाराच सहनन से बने हुए शरीर पर चक्र छोडा। जो पर-चक्र को मात करने वाला सुदर्शन चक्र है वह चक्र आपके शरीर को भी घात करे इस विचार से छोड दिया। यह सभी लोभ कषाय का उदय हैं। मैं इतना बलशाली होते हुए भी पुद्गल से रचा हुआ होने के कारण आपके ज्ञानमयी शरीर रूपी चक्र का घात करने में असमर्थ होने के कारण तुम्हारे पास निस्तेज होकर खड़ा हुआ हूँ। मैं इस निस्तेज चक्र को वापिस कर रहा हूँ, यह मुझे नही चाहिए। पहले पिता वृषभदेव तीर्थंकर जब तपोवन मे जाने लगे तब मैं, आप, ब्राह्मी और सु दरी इन चारो को नौ अकमय चक्ररूपी भूवलय मे ६४ (चौंसठ) अक्षरो में बाँधकर ज्ञानरूपी चक्र को बनाने की विधि को दिखाया था। उस समय हमने अच्छी तरह नही सुना था, इसलिए मुझे लोभ पैदा हुआ है। उसके फल ने ही मुझे निस्तेज कर दिया अर्थात् मुझे हरा दिया। अब मुझे किसी से न हारनेवाले भूवलय चक्र को वापिस दो। कुम्हार के चक्र के समान ससार मे घुमाने वाला यह चक्र मुझे नही चाहिए। तब बाहुबली ने कहा कि जैसा आप कहते हो वैसा नही हो सकता। इस भरत खड को आप पाले मैं तो इसका पालन नही कर सकता हूँ, क्योकि मैं इस पृथ्वी को पूर्णरूप से त्याग कर चुका हूँ। इसलिये मुझ को तो अब ज्ञान रूप चक्र के द्वारा धर्म साम्राज्य प्राप्त कर लेने की आज्ञा दो तब इच्छा न होने पर भी भरत चक्रवर्ती को मानना पडा अत भरत महाराज बोले कि यदि मेरा

सुदर्शन चक्र चला जाए तो कोई चिन्ता नही है, परन्तु इस ज्ञान-चक्र-रूपी भूवलय को कदापि नही छोड सकता हूँ। इसलिए मुझे लौकिक चक्र और अलौकिक ज्ञान चक्र रूपी भूवलय चक्र इन दोनो को दो, इसपर बाहुबली ने २७ × २७ = ७२९ कोष्ठ मे सम्पूर्ण द्रव्य श्रुत-रूपी द्वादशाग वाणी को ६४ अक्षरो मे बाँध कर इन अक्षरो को पुन ९ अक मे बाँध कर दान दिया हुआ होने के कारण यह भूवलय विश्वरूप काव्य है ॥ १९ ॥

उत्तम क्षमादि दस प्रकार के धर्मों को अपना आत्मधर्म मानते हुए बाहुबली ने भक्त जनो को श्री विध्यगिरि पर अपने निजी सात तत्व रूपी सप्त भगो द्वारा जिसको प्रकट किया था वह विजय धवल ही यह भूवलय है ॥ २० ॥

तीनो शल्य रहित उन दश धर्मों को पालन करते हुए उनके द्वारा जो अपने अदर अनुभव प्राप्त किया है उस अनुभव को ग्रहण करने योग्य सत्यपात्र रूपी भव्य जीवो को जो दान देने वाले महात्मा हैं वे इस संसार रूपी सागर मे कभी नही डूब सकते। ऐसा बताने वाला शुभ कर्माटक अर्थात् ६३ कर्म प्रकृति पर विजय पाने वाला तथा केवल ज्ञान प्राप्ति का उपाय बताने वाला यह भूवलय है।

कर्माटक शब्द का विवेचनः---

आदि तीर्थंकर अर्थान् वृषभदेव भगवान के गणधर वृषभसेनाचार्य से लेकर गौतम गणधर तक सभी गणधर परमेष्ठी कर्नाटक देश के थे। और सब तीर्थंकरो ने अपना उपदेश (सर्व भाषामयी दिव्य वाणी को) कर्नाटक भाषा मे ही भव्य जीवो को सुनाया। यह कर्माटक कैसा था ? जैसे कि सात सौ रेडियो को अपने घर में रखकर अलग अलग स्टेशनो पर नम्बर लगाकर उनको गायन सुनने के लिए रख दिया जाय तो दूर से सुनने वालो को वीणा-नाद के समान अर्थात् कोयल पक्षी के कंठ के समान मधुर आवाज सुनने मे आती है। उसी तरह यह कर्नाटक भाषा है। इस भाषा से दिव्य ध्वनि के अर्थ को समझ कर सब गणधर परमेष्ठियो ने बारह अग (द्वादशाग) रूप मे गूथ कर इन अगो से प्रत्येक भाषाओं को लेकर सुननेवाले भव्य जीवो की योग्यता के अनुसार उन्ही २ भाषाओं में उपदेश देते थे। इसलिए कर्नाटक भाषा को दिगम्बराचार्य कुमुदेन्दु मुनि ने कर्माटक अर्थात् ६३ कर्मों के खेल को बतलाने वाली अथवा कर्माटक अर्थात् आठ कर्मो की कथा को कहनेवाली और दिव्य वाणी को अपने अन्तर्गत रखने की शक्ति इस कर्माटक भाषा मे ही बताई है, अन्य किसी भाषा मे नही। ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने बतलाया है। इसी का नाम भूवलय ग्रन्थ है ॥ २१ ॥

यह कर्म चार भागो मे विभक्त है--१ स्थिति २ अनुभाग ३ प्रदेश बध ४ प्रकृति बध। ये चारो बध आत्मा के साथ भिन्न-भिन्न रूप से फल को देते हुए आठ कर्म रूप बन गए हैं। आठो कर्म आत्मा के साथ पिड रूप मे आवरण करा के इस आत्मा को ससार रूपी समुद्र मे भ्रमण कराते हैं। इन सभी कर्मों के आवागमन को द्वितीयादि चौदह गुणस्थान तक सम्यक्त्व रूपी निधि में परिवर्तित कर आत्मा के साथ स्थिर करते हुए मोक्ष में पहुचाने वाली यह कर्माटक नामक भाषा है ॥ २२ ॥

तिरेसठ (६३) कर्म प्रकृति को घातियाकर्म मे और शेष बचे हुए ८५ कर्मों को एक अघाति कर्म मानकर उस एक को ६३ में मिलाकर ६४ (चौंसठ) मानकर भगवान ऋषभदेव ने चौसठ ध्वनि रूप, अर्थात् आजकल कर्नाटक देश मे प्रचार रूप में रहने वाली लिपि के रूप में ही रचना करके यशस्वती देवी की पुत्री ब्राह्मी की दाहिने हाथ की हथेली को स्पर्श करते हुए क्रम से लिखा हुआ यह भूवलय नामक ग्रन्थ है ॥ २३ ॥

उन चौंसठ अक्षरो को परस्पर मिलाने से "ओम्" बन जाता है अर्थात् ४ और ६ दस बन जाते हैं, दस मे एक और बिन्दी लगाने से 'ओ' से "ओम्" बन जाता है। कर्नाटक भाषा में एक को 'ओदु' कहते हैं, दु' प्रत्यय है। 'दु' को निकाल दिया जाय तो 'ओम्' रह जाता है और 'दु' का अर्थ 'का' हो जाता है। 'का' का अर्थ छठी विभक्ति में

लगता है। सक्षेप रूप कह दिया जाय तो 'ओम्' शब्द में सम्पूर्ण 'भूवलय' अतर्गत होता है।

अब पहले श्लोक से लेकर सत्ताइस अक्षर मे तेइस श्लोक तक आ जाए तो "ओकार बिन्दु सयुक्त नित्यम्" हो जाता है। ये ही रूप भगवत् गीता मे नेमिनाथ भगवान ने कृष्ण को सुनाया है। वह गीता इस भूवलय के प्रथम अध्याय से ही शुरू होती है। इसका विवेचन आगे चलकर करेंगे ॥ २४ ॥

इस भारत में कर्नाटक दक्षिण की तरफ पडता है। ब्राह्मी देवी का दाये हाथ से लिखने का भी यही कारण है कि कर्नाटक देश दक्षिण मे था। उसी दक्षिण देश मे स्थित नन्दी नामक पर्वत पर इस भूवलय की रचना हुई। नन्दी नामक पर्वत के समीप पाच मील दूरी पर "यलव' नाम का गाव अब भी वर्तमान मे है। उसी 'यलव' के 'भू' उपसर्ग लगा दिया जाए तो 'भूवलय' होता है ॥ २५ ॥

ब्राह्मी देवी की हथेली मे तीन रेखाये हैं। ऊपर की बिन्दी को काट दिया जाए तो ऊपर का एक, बीच का एक और नीचे का एक इस प्रकार मिल कर तीन हो जाते है। सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र के चिन्ह ही ये तीन रेखागम है। भूवलय मे रेखागम का विषय बहुत अद्भुत है। सारे विषय को और सम्पूर्ण काल को इस रेखागम से ही जान सकते हैं। सिद्धान्त शास्त्र के गणित मे इस रेखा को अर्द्धछेदशलाका अथवा शलाकार्द्धच्छेद नाम से भी कहते हैं ॥ २६ ॥

दिगम्बर जैन मुनियो ने ऋद्धियो के द्वारा अपने रेखागम को जान लिया है वह बहुत सुलभ है। मान लो कि दो और दो को जोडने मे चार, चार और चार को जोडने से आठ, आठ और आठ को जोडने मे सोलह, सोलह और सोलह को जोडने से बत्तीस, बत्तीस और बत्तीस जोड़ने से चौंसठ होता है। इस तरह करने से चौंसठ होना है। यदि गुणा किया जाय तो पाच बार करने से चौसठ आता है इस रेखागम से चौंसठ को एक रेखा मान लो। प्रथमार्द्धच्छेद मे बत्तीस रह गया, द्वितीयार्द्धक्षेत्र में सोलह रह गया, तृतीयार्द्धच्छेद में आठ रह गया, चतुर्थार्द्धच्छेद में चार रह गया, पंचमार्द्धच्छेद में दो रह गया। यही भूवलय रेखागम की मूल जड है।

इन चौसठ अक्षरो को दस (६+४) मानकर अन्त में एक मानने की विशिष्ट कला है। यदि इस प्रकार न करें तो रेखांकागम नहीं बनता इसलिए कुंद-कुंद आचार्य को द्वादशांग से लेना पडा।

सम्पूर्ण ससारी जीवो का सिद्ध पद प्राप्त करना ही एक ध्येय है। इस लोक मे रहने वाले सम्पूर्ण अजीव द्रव्यों में से एक पारा ही उत्तम अजीव द्रव्य है। जैसे जीव अनादि काल से ज्ञानावरणादि आठो कर्मों से लिप्त है, उसी प्रकार पारा भी कालिमा, कटिक, सीमक आदि दोषो से लिप्त है। जब यह आत्मा इन ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित हो जाती है, तब सिद्ध परमात्मा बन जाती है। इसी तरह यह पारा भी जब इन कालिमादि दोषो से रहित हो जाता है तो रसमणि बन जाता है। इन दोनो का कथन भूवलय में आगे चलकर विस्तार पूर्वक कहा है ॥ २९ ॥

अर्हन्त देव ने कर्माष्टक भाषा कहा है। "आदौसकार प्रयोग सुखद" अर्थात् सब के आदि मे जो सकार का प्रयोग है वह सुख देने वाला है। इसलिए सिद्धान्त शास्त्र के आदि मे सकार रख दिया है। 'सिरि" यह शब्द प्राकृत और कनाडी दोनो भाषा मे समान रूप से देखने मे आता है। इस तरह यह प्राचीन भाषा है। जब इस प्राचीन भाषा को अपने हाथ मे लेकर सस्कृत किया तब से 'श्री' रूप में प्रचलित हुआ। 'इस श्री' शब्द का अर्थ अनरग और बहिरग दोनों रूपो में 'लक्ष्मी' है। अतरग लक्ष्मी यह है कि सब जीवो पर दया करना। परन्तु दया करने से पहले किन जीवो पर किस रीति से दया करना, इस बात को सबसे पहले जान लेना चाहिए। जिस समय ज्ञानावरणादि कर्म नष्ट होते हैं तब अनन्त ज्ञान प्रकट होता है, इस ज्ञान को केवल ज्ञान कहते हैं। इस केवल ज्ञान से भगवान ने सब जीवों का हाल यथावत् यथार्थ रूप से जान लिया था। सिद्ध जीव तो अपने

समान अनादि काल से आप अपने अंदर हमेशा ही सुख मे स्थित हैं। इसलिए सिद्ध जीवो के ऊपर दया करने की कोई आवश्यकता ही नही बल्कि समारी जीवों के ऊपर दया करने की आवश्यकता है। इमीलिए भगवान ने अनन्त ज्ञान प्राप्त किया। इसी को कुमुदेन्दु आचार्य ने अनरग लक्ष्मी कहा है। उपदेश के बिना जीवों का उद्धार तथा सुधार नही हो सकता। एक-एक जीव को अलग-अलग उपदेश करने का समय भी नही मिल सकता, क्योकि समय की कमी होने के कारण सभी जीवो को एक ही समय मे सब भाषाओ मे सभी विषयो का एकीकरण करके उपदेश देना अनिवार्य है। सभी जीवो का एक स्थान पर बैठकर यथा योग्य उपदेश सुनने का जो नाम है उसी का नाम समवसरण है। यह समवसरण बहिरग लक्ष्मी है। इन दोनो सम्पन्नियो को बताने वाली कर्माटक भाषा है। इन भाषाओ को ओम् से निकाल कर चौंसठ अक्षरो को दया, धर्म आदि रूपो में विभक्त कर उपदेश दिया है। यही सर्व जीवो का एक साम्राज्य है। इस बात को कहने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥ ३० ॥

नय मार्ग से देखा जाय तो ६४ अक्षर हैं। जयसिद्धि अर्थात् प्रमाण रूप से देखा जाय तो एक है। उसी का नाम 'ओम्' है। "ओमित्येकाक्षरब्रह्म" अर्थात् 'ओम्' यह एक अक्षर ही ब्रह्म है। इस प्रकार भगवद्गीता मे कहा गया है। वह भगवद्गीता जैनियो की एक अतिशय कला है। इन कलाओ से ६४ अक्षरो को समान रूप से भग करते जायें तो सम्पूर्ण भूवलय शास्त्र स्वय सिद्ध बन जाता है ॥ ३१ ॥

इन भगों से पूत अर्थात् जन्म लिया हुआ जो ज्ञान है, वह ज्ञान गुणाकार रूप से जाति, बुढापा, मरण इन तीनो को जानकर अलग अलग विभाजित करने से पुण्य का स्वरूप मालूम हो जाता है। इसी लिए यह पुण्यरूप भूवलय है ॥ ३२ ॥

भगवान के चरणो के नीचे रहने वाले कमल पत्रो के अन्दर होने वाले जो धवल रूप अक अक्षर हैं, वह सब विज्ञानमय हैं। अर्थात् आकाश प्रदेश मे रहने वाले अक हैं। उन अंको को पहाडे का गुणाकार करने से लिया गया अर्थात् ध्यान मे स्थित मुनिराजो के योग मे झलके हुए अकाक्षर सर्वावधिज्ञान रूप हैं, उन्हीं अको से इस भूवलय ग्रन्थ की रचना हुई है ॥३३॥

अरहन्त सिद्धादि नव पद वाचक अंको से बने हुये दुनियां में जितनी अक राशि है उन सबको नव पदो से गुणा कर देने से अर्थात् १ को दो से और दो को ३ से, ३ को चार से, और ४ को ५ से, और ५ को ६ से गुना करने से ८२० आ गया। वह इस प्रकार है १×२×३×४×५×६×७=७२० इस क्रम को अनुलोम भग भी कहते हैं। इस प्रकार चौसठ बार यत्नपूर्वक करते जाए तो ९२ डिजिट्स् [स्थानाङ्क] आ जाता है। इसी रीति से उल्टा अर्थात् ६४×६३×६२×६१ इस रीति से एक तक गुना करते चले जाये तो वही ९२ अंक आ जायेगा। इसी गणित पद्धति से भूवलय की रचना हुई है। इतना बडी अंक राशि को यदि कोई जान सकता है तो परमावधि धारक महामेधावी वीरसेनाचार्य सरीखा ही जान सकता है। परन्तु अपनी शक्ति के अनुसार मतिश्रुतज्ञान के धारक हम सरीखे लोग भी जान सकते हैं। अब इस भूवलय में यह एक अपूर्व बात है कि नव का अ क जो है वह दो, चार, पाच, आदि हरएक अंक के द्वारा पूर्णरूप से विभक्त कर लिया जाता है। अर्थात् उन अ को के द्वारा नौ का अंक कटकर अन्त मे शून्य पाँच आ जाता है।

ट् ३८, क् २८, कुल मिलकर ६६ हुआ। उनमें से आदि और अन्त का दोनो पुनरुक्त हैं। उन पुनरुक्तो को निकाल देने से ६४ बन जाता है। अर्थात् ६६−२=६४। ६+४=१० अ क मे जो बिन्दी है वह बिन्दी सर्वोपरि होने से उसका नाम सकलाक चक्रेश्वर है और अकलक है अर्थात् निरावरण है, जब अ क बन गया तो फिर उससे अक्षर भी बन जाता है यही भूवलय का एक बड़ा महत्व है ॥३५॥

इस टक भग को महावीर स्वामी ने अपनी दिव्य वाणी में अन्तर मुहूर्त मे प्रकट किया, ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं। इस बात पर शंका होती है कि —

ऊपर पाचवे श्लोक में हक भंग रूप में भगवान महावीर ने कहा था, ऐसा लिखा है, वहा बताया है कि हक भग से सप्तभगी रूप वाणी की उत्पत्ति होती है और टक भग से द्वादशाङ्ग १२ की उत्पत्ति होती है और १२ को जोड़ देवें तो ३ आ जाता है ऐसी विषमता क्यो ? इसका समाधान करते हुए कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि

हक भंग से सब तीर्थंकरो द्वारा द्वादशाग वाणी का प्रचार हुआ यह तो अटल बात है परन्तु चौबीसवे तीर्थंकर श्री महावीर ने गौतम गणधर को समझाने के लिए ट्क भग को स्वीकार किया था। ट्क भग से गौतम गणधर ने बारह अग को जान लिया और उसी को सम्पूर्णभव्य जीव को गूथ कर समझा दिया है ॥३६॥

इस बारह अंग शास्त्र का अध्ययन करने से सवार्थसिद्धि की प्राप्ति होती है। अर्थ का मतलब चौंसठ अक्षर होता है उन अक्षरो को भग करने से ९२ अंक आ जाता है फिर घटाते चले जाये तो वही ६४ अक आ जाता है, और दस अक भी मिल जाता है ॥३७॥

मर्म रूपी इस दस को उपयोग मे लाने से समस्त सिद्धान्त का ज्ञान हो जाता है। जो कि पहले कहे हुये जिनेन्द्र देव के चरण कमल की सुगन्ध को फैलाने वाला है ॥३८॥

इस दश के अक का अर्द्धच्छेद कर देने से पाँच का अक आ जाता है जो कि पच परमेष्ठी का वाचक है। इसी अक मे मध्यलोक के द्वीप सागरादि की गणना हो जाती है तथा नागलोक, स्वर्ग लोक,, नर और नरक लोक एव मोक्ष स्थान तक की गणना की जा सकती है। इन्ही तीन लोको के घन राजुओ को पिण्ड रूप बनाने से वही दश का अक आ जाता है अर्थात् ३४३ को क्रमश जोड देने पर दश बन जाता है। इस बात को दिखलाने वाला यह अक रूपी भूवलय है ॥ ३९ ॥

यह एक का अक महाराशि है, उस राशि की गिनती किसी दूसरे अंक से नहीं होती है। अतएव इस राशि को अनन्त राशि कहते हैं। क्योंकि इस राशि मे से आप कितनी ही एक-एक राशि निकालते चले जाओ तो भी उसका अन्त नही हो पाता है जितना का जितना ही वह रहता है। ऐसे करते हुए भी जिनेन्द्र देव के चरण कमल को १, २, ३, ४, ऐसे ९ तक गिनती करने का नाम सख्यात है और असख्यात भी है। सख्यात राशि मानव के असख्यात राशि ऋद्धि प्राप्त मुनि और देव इत्यादि के लिए और अनन्त राशि केवली भगवान के गम्य है।

इस प्रकार जघन्य सख्यात दो है। सर्वोत्कृष्ट संख्यात जो है तो एक नम्बर में अनन्त भी है, असंख्यात भी और संख्यात भी हैं ॥ ४० ॥

इन तीनों दिशाओं से आई हुई अनन्त राशि की संख्या राशि से गिनती किया जावे तो प्रत्येक राशि में अनन्त ही निकल कर आता है। ऊपर भगवान के समवसरण विहार के समय में बताये हुये जो सात कमल हैं, उन कमलो को जलकमल मानकर उन जल कमलो से रससिद्धि या पारा की सिद्धि बन जाती है। कुमुदेन्दु आचार्य ने इस सिद्धरस को दिव्य रस सिद्धि कहा है ॥ ४१ ॥

पाँचवाँ श्लोक में जो 'हक' भग आया है उसमें ८८ की संख्या है। उस अठासी वर्ग स्थान मे जो गुप्त रीति से छिपा हुआ है, उसका नाम श्री पद्म है। भगवन्त के जन्म कल्याण के समय के पीछे गर्भावतरण के समय में जिन माता को जो सोलह स्वप्न हुए थे उस स्वप्न समय का जो कथन है उस कथन के अन्दर जो पद्म निकल कर आयेगा उसका नाम स्थल पद्म है। उस पद्म से पारा को घर्षण किया जाय तो महौषधि बन जाती है ॥ ४२ ॥

पुन उसी अठासी को जोड दिया जाय तो सात का कथन निकल आता है। इस कथन के अन्दर जो कमल आकर मिल जाता है उसको पहाडी पद्म या कमल ऐसे कहते है। इस प्रकार जल पद्म स्थल पद्म और पहाडी पद्म ऐसे तीन पद्म इस गिनती मे मिल गये। इन तीनों पद्मों को कुमुदेन्दु आचार्य ने इसी भूवलय के चौथे खण्ड प्राणावाय पूर्व के विभाग में अतीत कमल अनागत कमल और वर्तमान कमल इन तीनो नामो से भी कहा है। इसका मतलब यह है कि अतीत चौबीस तीर्थंकरो के चिन्हो से गिनाया हुआ जो नाम है वह अनागत कमल है। इसी तरह वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों का लाञ्छनो के गणित से गिना हुआ जो नाम है वह अतीत कमल है। अनागत चौबीस तीर्थंकरो के चिन्हो से गिना हुआ नाम वर्तमान कमल है।

"कु भानागत सद्गुरु कमलजा" अर्थात् अनागत सद्गुरु ऐसे कहने से अनागत चौबीसी इसका अर्थ होता है। कु भ अर्थात् जो कलश है वह १९वें तीर्थंकर का चिन्ह है। इन तात्विक शब्दों से भरे हुए तथा गणित विषय से

परिपूर्ण ऐसे इस शास्त्र के अर्थ को जैन सिद्धान्त के वेत्ता महाविद्वान लोग ही अपने कठिन परिश्रम से जान सकते हैं। अन्यथा नही ॥ ४३ ॥

अब आगे कुमुदेन्दु आचार्य ध्यानाग्नि और पुटाग्नि दोनो अग्नियो का विशेष रूप से साथ-साथ वर्णन करते हैं।

उपर्युक्त अतीत अनागत और वर्तमान कमलो को अथवा यो कहो कि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनो को समान रूप से लेकर उनके साथ में सम्मिश्रण करके अपने चञ्चल मन रूप पारा को पीसने से उसकी चपलता मिट जाती है और वह स्थिर बन जाता है ॥ ४४ ॥

फिर उस शुद्ध पारा को ध्यान रूप अग्नि मे पुटपाक विधि से पकाया जावे तो वह सम्यक् रूप से सिद्ध रसायन हो कर सच्चा रत्नत्रय रूपी रसमणि बन जाता है। तत्पश्चात् यही रसमणि ससारी जीवो को उत्तम सुख देने में समर्थ हो। इस तरह काम और मोक्ष इन दोनो पुरषार्थों को साधन कर देने वाला यह भूवलय नामक ग्रन्थ है ॥ ४५ ॥

नवमअङ्क के आदि में श्री अरहन्त देव हैं जो कि बिलकुल निर्दोष हैं। उनमें दोष का लेश भी नही है। वह भगवान् अरहन्त देव विहार के समय मे जब जब अपना पैर उठाकर रखते हैं तो उसके नीचे जो कमल बन जाता है उसको महापद्माङ्क कमल कहते हैं।

विहार के समय मे भगवान् के चरण के नीचे २२५ कमल रचे जाया करते हैं। उन कमलो में से सुरुडग के समय भगवान के चरण के नीचे जो कमल होता है वह बदल कर घुमाव खाकर दूसरे डग के समय भगवान के चरण के नीचे दूसरा कमल आया करता है। इसी प्रकार घुमाव खाकर नम्बर बार हरेक कमल आते रहते हैं। अब भगवान के चरण के नीचे पहले आये हुये कमल को तो अतीत कमल कहते हैं। चरण के नीचे आकर रहने वाले कमल को वर्तमान कमल कहा जाता है। किन्तु घुमाव खाकर आगे भगवान के चरण के नीचे आने वाले कमल को अनागत कमल कहते हैं।

उपर्युक्त प्रकार की रसमणी के बनाने की गणित विधि को नागार्जुन ने अपने गुरुवर श्री दिगम्बर जैनाचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी से जानकर उस ज्ञान को आठ बार क्रियात्मक रूप देकर रसमणि बनाया था उसी विधि के अनुसार कुमुदेन्दु आचार्य ने इस अलौकिक गणित ग्रन्थ में सोना आदि बनाने की भी विधि बताई है।

आदि नाथ भगवान के निर्दोष सिद्धान्त मार्ग से प्राप्त एकाक्षरी विद्या से अहिंसात्मक विधि पूर्वक यह रसमणि बनती है।

अकाक्षर विधि को पढने से कर्मों को नष्ट करने वाले सिद्धान्त का मार्ग मिलता है जिसे अहिंसा परमो धर्म' कहते हैं। और यह यथार्थ रूप में आत्मा का लक्षण ही अहिंसा धर्म है। इस लक्षण धर्म से जो आयुर्वेद विद्या बनलाई गई है यह धर्म श्री वृषभदेव आदि जिनेन्द्र के द्वारा प्राप्त हुआ है ॥४९॥

और इसे सम्पूर्ण रागद्वेष नष्ट हो जाने के कारण जब सर्वज्ञता प्राप्त हो गई तब भगवान ने बताया था।

दिगम्बर मुनि राग को जीतने वाले होने के कारण सूक्ष्म जीवों की हिंसा न हो जाए इस हेतु से वृक्ष के पत्ते उसकी छाल, उसकी जड़, शाखाएं, फल आदि को न लेकर उन्होने केवल पुष्पो से अपने आयुर्वेद शास्त्र की रचना की है। पुष्प मे हिंसा कम है और इसमे ऊपर कहे हुए पंच अंग का सार भी होने से गुण अधिक है। अब आगे कुमुदेन्दु आचार्य का पारा या रस की सिद्धि के लिए जो अठारह हजार पुष्प हैं उसमें से इधर एक को लेकर, जिसका नाम "नागसम्पिगे" अर्थात् नागचम्पा है। उन चम्पा पुष्पों से बना हुआ रसमणी मे सागरोपम गुणित रोग परमाणु नष्ट करने की शक्ति है। उतना ही शरीर सौन्दर्य भी बढता जाता है। जब सौन्दर्य, आयु शक्ति इत्यादि की वृद्धि हो जाती है तब समान रूप से भोग और योग की वृद्धि हो जाती है ॥५०॥

जगत मे एक रूढि है कि सभी लोग पुष्प को तोड कर पूजा, अलंकार आदि के निमित्त से ले जाते हैं और वे सब व्यर्थ ही जाते हैं। यहां आचार्य ने उन पुष्पो को सिद्ध रस बनाने के लिए ही तोडने की आज्ञा दी है। जो फूल भगवान के चरण मे चढाया जाता है इसका अर्थ है कि वह सिद्ध रस बनाने के लिए ही चढाया जाता है वह व्यर्थ नही जाता। प्राचीनकाल में भगवान की मूर्ति को सिद्ध रसमणि से तैयार करते थे। जिस फूल से रसमणि बन गयी

उसी फूल को तोड कर भगवान के चरणो में चढाया जाता था। उन मूर्तियो का अभिषेक करने से फिर उस धारा को मस्तक पर सिंचन करने मात्र से कुष्ठादि महान् रोग तुरन्त नष्ट हो जाते थे। इस पद्धति का विज्ञान-सिद्धि से सम्बन्ध था। आजकल गन्धोदक मे वह महिमा नही रही साराश यह है कि वह पहले मूर्ति बनाने की विधि जो कि रसिमणी से बनाई जाती थी वह नही रही। लेकिन इससे हमे आज के गन्धोदक पर अविश्वास नही करना चाहिए क्योंकि अगर ऐसे छोड दिया जाय तो धर्म का घात भी होगा और वह रसमणी भी नही मिलेगा। परन्तु आजकल वह पुष्प भी मौजूद है और भगवान पर चढाया भी जाता और उनसे रसमणि बनाने का शौक भी है लेकिन रसमणी बनाने की विधि न मालूम होने के कारण आजकल उसका फल हमे नहीं मिलता है अगर इसी भूवलय ग्रन्थराज से विदित करले तो हम इस विधि को जानकर रसिमणी प्राप्त कर सकते हैं। ऐसा ज्ञान कराने वाला केवल भूवलय ग्रन्थ ही है॥ ५१ ॥

ऊपर कही गई विधि के अनुसार भगवान के चरण कमल की गिनती करके सम्यक् दर्शन भी प्राप्त कर सकते है और भगवान के शरीर मे रहने वाले एक हजार आठ लक्षणो से लक्षित चिन्ह भी हमे प्राप्त होगे ॥ ५२ ॥

अरहन्त भगवान के चरण कमलो की गणना करने का यह गुणाकार भग है। लब्धाक को घात करने से जो अक आता है उसे भगाग [गुणनखड] कहते हैं। यही द्वादशाग की विधि है। यह विधि गुरु परम्परा से आई हुई अनादि अनिधन भग रूप है ५३-५४-५५।

इन सम्पूर्ण अतिशयो से युक्त होने पर भी भग निकालने की विधि बहुत सुलभ है। गुरु परम्परा से चले आये भग रूप है।

अठारह दोषो का नाश कर चुकने वाले परमात्मा के अगो से आया हुआ यह अग ज्ञान है।

सुलभता पूर्वक रहने वाले ये बारह अग हैं सो दया धर्म रूप कमलपुष्पक पत्तो के समान हैं अथवा यह सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूपात्मक हैं और आत्मा के अंतरग फूल है।

इन फूलो के घर्षण से यह अन्तरात्मा परमात्मा बन जाता है।

इन परमात्मा के चरण कमलो के स्पर्श वाले कमलो की सुगन्ध से पारा रसायन रूप मे परिणत होकर अग्नि स्तम्भन तथा जलतरण में सहायक बन जाता है।

यह सेनगण गुरु परम्परा से आया हुआ है, इस सेनगण में ही वृषभ सेनादि सब गणधर परमेष्टि हुए हैं, इन्ही परम्परा में धरसेन आचार्य वीरसेन जिनसेन आचार्य हुये हैं तथा इस भूवलय ग्रन्थ के कर्ता कुमुदेन्दु आचार्य भी इसी सेन सघ मे हुये हैं तथा अनादि कालीन सुप्रसिद्ध जैन ऋग्वेद के अनुयायी जैन क्षत्रिय कुलोत्पन्न जैन ब्राह्मण तथा चक्रवर्ती राजा लोग भी इन्ही सेनगण के आचार्यो के शिष्य थे। सब राजाओ ने इन्ही आचार्यो की आज्ञा को सर्वोपरि प्रमाण मानकर धर्म पूर्वक राज्य किया था और उनकी चरण रज को अपने मस्तक पर चढाया था ॥ ५६ से ६३ ॥

और इस मगल प्राभृत का शृङ्खलाबद्ध काव्याग है। वह द्वादशाङ्ग रूप है ॥६४॥

इस मगल प्राभृत काव्य को चक्र में लिखे होने के कारण यह धर्म ध्वजा के ऊपर रहने वाले धर्म चक्र के समान है। उस चक्र मे जितने फूलो को खुदवाया गया है उतने ही अक्षरो से इस भूवलय की रचना हुई है। अब आगे उसके कितने अक्षर होते हैं सो कहेगे।

स्व मन के दल में इन अको की स्थापना कर लेते समय इक्यावन, बिन्दी और लाख का चतुर्थांश अर्थात् पच्चीस हजार कुल मिलकर ५१०२५००० हजार होगे ॥६५॥

उतने महान अको मे ५००० हजार और मिला दिया जाय तो (५१०-३००००) अक होगा। इन अको को नवमाक पद्धति से जोड़ दिया जाय तो नौ हो जायेगा। भगवान का एक पाद उठाकर रखने मे जितने कमल घूमे उतने कमलो में से सुगधित हवा निकले, उतने परमाणुओ के अरूपी द्रव्य का वर्णन इस भूवलय मे है। ऐसे मान लो कि एक कानडी सागत्य छन्द के श्लोक में १०८ असयुक्ताक्षार मान लिया जाय तो उपर्युक्त कहा हुआ अंक को १०८ से भाग

देने से ४७२५००० इतने कानडी श्लोक संख्या होते हैं। इतने श्लोकों से रचना किया हुआ काव्य इस संसार मे और कोई कहीं भी नही है। महा भारत को सब से बडा शास्त्र माना गया है। उसमें १२५००० श्लोक हे। वे संस्कृत होने के कारण से भूवलय में १०८ अक्षरों में एक कानडी श्लोक की अपेक्षा से महाभारत की श्लोक सख्या सवा लाख होने पर भी ७५००० हजार मानी जायेगी इस अपेक्षा से यह भूवलय काव्य महाभारत से छ गुणा बडा है बल्कि छ गुणा से ज्यादा ही समझना चाहिए। इस भूवलय के अक ५१०-३०००० हैं। इन अकों को चक्र रूप मे कर लेना हो तो ७२९ से भाग देना होगा तब ७००९६ इतने चक्र बन जाते है। परन्तु यदि हम अपने प्रयत्न से चक्र बनाना चाहें तो १६००० ही बना सकते हैं। शेष के ५४०९६ चक्र बनाने का ज्ञान हमारे अन्दर नहीं है। किन्तु उन १६००० चक्रो को भी यदि निकालने का प्रयत्न किया जाय तो उनके निकालने में भी इतने महान करोडो अंक भी [ॐ] इस एक अक्षर में गर्भित हैं। इस तरह से १७० वर्ष लगेंगे। रूपी और अरूपी सभी द्रव्यों को एक ही भाषा में वर्णन करने वाला यह भूवलय नामक ग्रन्थ है। इसका दूसरा नाम श्री पद्धति भूवलय भी है ॥६६॥

१ श्री सिद्ध २ अरहन्त ३ आचार्य ४ पाठक अर्थात् उपाध्याय ५ सर्व साधु ६ सद्धर्म ७ परमागम ८ परमागम के उत्पत्ति कारण चैत्यालय और ९ जिन बिम्ब इस तरह नौ अक में समस्त भूवलय को गर्भित कर रचना किया हुआ ये सम्पूर्ण अक है ॥६७॥

दया धर्ममयी इस अक को रत्नत्रय से गुणाकर देने से ९×३ = २७ ॥ ६८ ॥

इस सताईस को २७×३ = ८१ ॥६९॥

इसी तरह भूवलय मे रहने वाले ६४ अक्षर वारम्बार आते रहे तो भी अपुनरुक्त अक्षर का ही समावेश समझना चाहिए ॥१०४॥

इसमें कोई शका करने का कारण नही है, भूवलय के प्रथम खण्ड मगल प्राभृत के ४९ वें अध्याय मे २०,७३,६०० बीस लाख तिहत्तर हजार छ सौ अक हैं। उन सभी के १२७० चक्र होते हैं इसको अक्षर रूप भूवलय की गिनती से न लेकर चक्राक की गिनती से ही लेना चाहिए। ऐसे लेने से नौ अंक बार-बार आते रहते हैं तो भी कुमुदेन्दु आचार्य ने अपुनरुक्तांक ही कहा है। यहाँ पर विचार कर देखा जाय तो अनेकान्त की महिमा स्पष्ट हो जाती है। इस रीति से ६४ अक्षर भी बार-बार आते हैं।

इन अंको में से यह आदि भंग हैं ॥१०५॥

इस क्रम के अनुसार २ ३ और ४ भंग हैं ॥१०६॥

इसी क्रम से ५ ६ ७ ८ भंग है ॥१०७॥

इसी तरह ९ १० ११ भंग होते हैं ॥१०८॥

इसी तरह १२ १३ भी भंग होते हैं ॥१०९॥

इसी क्रमानुसार १४ १५ भंग हैं ॥११०॥

इसी रीति से १६ १७ भंग हैं ॥१११॥

दो नौ मिलकर अठारह भंग हुए ॥११२॥

इसी तरह १९ २० भग होते ॥११३॥

उसके आगे १ २ ३ अर्थात् २१ २२ २३ भंग हे ॥११४॥

इसी क्रम के अनुसार ४ ५ ६ ७ ८ अर्थात् २४ २५ २६ २७ २८ भंग होते हैं ॥११५॥

इसा क्रम से नौ अर्थात् २९ और ३० भंग है ॥११६॥

इसी तरह ३१ ३२ के क्रमानुसार ३९ तक जाना चाहिए ॥११७॥

इसी क्रम से ५० से ५९ तक जाना चाहिए ॥११८॥

उसके बाद ६०वा भग आ जाता है ॥११९॥

तत्पश्चात् १-२-३-४ अर्थात् ६१-६२-६३-६४ इस तरह भंग आता है, उन सभी को मिलाने से ६४ भंग आता है। ये ही ६४ भग सम्पूर्ण भूवलय है ॥१२०। १२१ । १२२ ॥

उन ६४ भगो के क्रम के अनुसार प्रतिलोम और अनुलोम के क्रमानुसार अक और शब्दो को बना दिया जाय तो ९२ स्थानाक आ जाता है।

६४ अक्षरो को १ से गुणाकार करने पर ६४ आता है। इस ६४ को असयोगी भग अथवा एक सयोगी भग कहते हैं। क्योंकि श्रुतज्ञान के इन ६४ अक्षरो में से जिस अक्षर का भी हम उच्चारण करते हैं तो वह वस्तुतः अपने मूल स्वरूप मे ही रहता है। इसलिये इसको असंयोगी भंग कहते हैं।

वह इस प्रकार है—

अ × अ = अ अथवा १ × १ १

अब भूवलय सिद्धान्त में आने वाली द्वादशाग वाणी मे द्रव्य श्रुत के जितने भी अक्षर हैं और उनके जितने भी पद होते हैं तथा एक पद में जितने भी अक्षर हैं इत्यादि क्रम बद्ध सख्या को जहाँ-तहाँ आगे देते जायेंगे। अब असयोगी भंग अर्थात् ६४ अक्षरो के द्विसयोगी भग को करते समय आने वाले गुणाकार को यहाँ बतलाते हैं। ६४ × ६३ = ४०३२

द्विसंयोगी भग—सपूर्ण ससार मे अनादि काल से लेकर आज तक जो काल बीत चुका है और आज से लेकर अनन्त काल तक जो आने वाला काल है उसकी जितनी भी भाषायें होती हैं तथा उसके आश्रय पर चलने वाले जितने भी मत हैं उनके द्विसयोगी सभी शब्द इस द्विसयोगी भंग में गर्भित हैं। भाव यह है कि कोई भी विद्वान या मुनि अपनी समझ से नूतन जानकर जो अक्षरो वाला शब्द उच्चारण करता है तो वह सब इसी मे आ जाता है। अब यदि ३ अक्षरो के भग को निकालना हो तो द्विसयोगी भग को ६२ से गुणा करें, चतु: सयोगी भग निकालना हो तो त्रिसयोगी भग को ६१ से गुणा करे इसी प्रकार आगे भी यदि चतुःषष्ठि भग तक इसी क्रमानुसार ६४ बार गुणा करते जायें तो—६८५१८९४३३८०३७७४४८६१६८५४०३०२४०९८७१९९६३-३५४७३७—८७३४२६४४०३७८७३५३०२२९६२६१५९४०२८४४१६०००-००००००००००००० इतनी संख्या आ जाती है, जो कि९ से भाग देने पर शेष शून्य बचता है। यही १२३ श्लोको से निकला हुआ अर्थ है ॥ १२३ ॥

अब यहाँ पर प्रश्न उठता है कि हजार-दस हजार पृष्ठ वाले छोटे से भूवलय ग्रन्थ में से इतनी बडी सख्या किस प्रकार प्रगट हुई ?

उत्तर—इस भूवलय ग्रन्थ की लेखन शैली ही ऐसी है। यहाँ पर चार चरणो का एक श्लोक होता है। इसमें से आचार्य श्री ने केवल अन्त चरण को ही बारम्बार गणना की है ॥ १२४ ॥

यह मगल प्राभृत का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ। इसमें कुल ६५६१ अकाक्षर हैं। ९ को ९ से यदि ३ बार गुणा किया जाय तो भी इतने अंकाक्षर आ जाते हैं। इस अध्याय में ९ चक्र हैं तथा प्रत्येक चक्र में ७२९ अक्षराङ्क हैं। यहाँ तक कानड़ी का १२५ वाँ श्लोक समाप्त हुआ।

अब इन कनाडी श्लोको का प्रथमाक्षर ऊपर से लेकर नीचे तक यदि चीनी भाषा की पद्धति के अनुसार पढते चले आयं तो प्राकृत भगवद्गीता निकल आती है। कानडी श्लोकों का मूल पाठ प्रारम्भ के ४ पृष्ठों में आ चुका है। अब उसका अर्थ लिखते हैं। जिन्होने ज्ञानावरणी आदि आठों कर्मों को जीत लिया है और जो इस ससार के समस्त कार्यों को पूर्ण करके संसार से मुक्त हो गये हैं तथा तीनो लोको एव तीनो कालो के समस्त विषयों को जो देखते रहते हैं ऐसे सिद्ध भगवान् हमे सिद्धि प्रदान करे।

अब कनाडी श्लोक के मध्य मे ऊपर से लेकर नीचे तक निकलने वाले सस्कृत श्लोक का अर्थ लिखते हैं —

अर्थात् "ओ" एक अक्षर है। बिन्दी एक अक है। इन दोनों को यदि परस्पर मे मिला दें तो "ओं" बन जाता है। ओं बनाने के लिए अ, उ तथा म् इन तीनो अक्षरो की जरुरत नही पड़ती। क्योंकि कानडी भाषा में स्वतन्त्र ओ अक्षर है। उन अक्षरो का नम्बर भूवलय में २४ बतलाया गया है। ओ अक्षर को बिन्दी मिलाकर ओं बनाकर योगी जन नित्य ध्यान करते हैं। क्योंकि अक्षर मे यदि अक मिला दिया जाय तो अद्भुत शक्ति उत्पन्न हो जाती है। उस शक्ति से योगी जन ऐहिक और पारलौकिक दोनों सम्पत्तियो को प्राप्त कर लेते हैं।

दूसरा अध्याय

आ विय अतिशय ज्ञान साम्राज्य । साधित वय् भववाद ॥ मोद आ र्थगम अविरल शब्दव । नोदिप नवम बंधदोळु ॥१॥
दि वद वेदागमवाद समव सृति । यव यव वद नाल्वेरळ ॥ स त्रि रदे निंदु न भो बिहारवमाडि । दवनु पेळिरुव भूवलय ॥२॥
म नुज रोळतिशय दनुभव चक्रिगे । घन शक्ति वय् भवक र नु ॥ अनुजनुदोर्बलियवनादि मन्मथ । जिनरूपिनादि भूवलय ॥३॥
म रस विद्य गळोळु कामद कलेयोळु । हरुषदायुर् वेददोळ् उ ॥ म रयद अपुनरुक्ताक्षर दनुकद । सरस सौंदरि देवियोडने ॥४॥
प नविद्दु कलितवनाद कारणविद । मनुमथ नेनसिदे देवा ॥ श्री णसदे सवनुदरियरि तनक गणनेय । घनविद्ये इरुव भूवलय ॥५॥
है कदनुकदोळु बनुदेळर भाजितम् । सकलवु गुणितवो एम् ब अ ॥ सकलशब्दागमदएळ् भंगगळिह । प्रकटद तत्व भूवलय ॥६॥
ण ववनुकवदनेळ रिदलि भागिसे । नव सोननेयु हुट्टि बहु ई ॥ अवधरिसलुबिडियनुकगळ्एण्टॅब । सबिशंकेगितु उत्तर बु ॥७॥
ण धपवबंबद करण सूत्रव कोळ्व । अवयव दोळगिह ए णत ॥ नवमत्तुनाल्कुसोन्नेगळेरळ्मूर्नाल्कु सबि आरारेरडों बलाह ॥८॥

१८८८१९८३९५६२३२७६२५९५३९१८७३४१२९७०४५८४५२८०७३६८४७८३५४९३९३१५२९९००९४८६९२६६४३२०००००००००००००

(यहां ८५ को चौंसठ ६४ अक्षरों से आया भंग है । आडासे जोड दे तो ३६९ होता है । ३६९ को पुनः आडासे मिलाने से १८ हो जाता है ।
१८ मिला दिया जाय तो १+८=९ ।

गु णि एंदु नाल्कोंबत्त् सोन्ने सोन्ने योबत्तु । घनवे नौ वोबत्तेरडेंदु ॥ जिनओंदु मूरोंबत्मूरु बंदंकव । घनदेमुंदके बरुवंक ॥९॥
डो ड्ड ओंबतु नाल्कॆंदु मूरॆंटेळु । ओड्डिदद नाल्कॆंटो ध ॥ गुड्डे यार् मूरेळु सोन्ने एंटेरडेंदु । अड्डनाल्कॆंटॆंदु नाल्कु ॥१०॥
स म सोन्ने एळु ओंबत्तेरडोदु । गमनाल्कु मूरेळु बर् ग् आ ॥ क्रमबेंदु ओदोंबत् मूरु ऐदोंबत्तु । विमल ऐदेरडारु एळु ॥११॥
म रळि एरडु मूरु एरडारॆंदोंबत्तु । सरदे मूरॆंटॆब र शि ॥ अरुहर ओंबत्तु ओम्दॆंदु एंटॆंटु । सरियोंदु बरलु बंदंक ॥१२॥
च रिते योळ् प्रतिलोम गुणकार दिबंद । वरवॆवत्नाल् न् अक्षरद॥ सरमालेइदरोळुअनुलोमक्रमविह परियद्रव्यागमवरियॆ ॥१३॥
उ त्तरदोळु सोन्नेगळु हन्नेरडुं । ओत्ते नाल्केरडे अक् पा ॥ मरोटेळॆदॆदॆढारु बंदंक । वत्तिनोळॆंदु नाल्केळु ॥१४॥
र सदोम् दोंदु नाल्कू सोन्ने यरडॆदु । वसदॆंटॆदारुकु नि षा ॥ यशदेळॆ दारु ओंदु ओंबत्तु । वशदोबतु नाल्केरडु ॥१५॥
म् र नाल्कारू सोन्नेयु ओदु येरडारू । एरळ्मूरु ऐदॆंबरि त ॥ सरि ओंदेळॆदु मूरॆंटु मूरनाल्कु । बरेसोन्ने योंदारु ओंदु ॥१६॥
स विमूरॆंदु सोन्नेयु ऐन्ढोबत्तु । नवऐळु नाल्केरळ् हो म दे ॥ कवि सोन्ने नाल्कु बंदंक वैभव । दवयव अनुलोम बरियॆ ॥१७॥

४०२४७९९८०८३१६१०४३८३५७१५३२६२१०६४२४९९१६५७६५८५२०४११७४८६८५५७८२४००००००००००००

इस ७१ अंक को जोड़ दे तो २६१ = ९ आता है ।

न् वदंक वाद ई अनुलोम विदरिद । सविरस वेनु तितु स व लं ॥ सवेसलु भागवहार लब्धवि बंद । भवभयहरणद अंक ॥१८॥
ग णितदे हन्नेरळ् सोन्नेगळागलु । गण मूरोंबत्तेरडों न ॥ मणि ऐदेळु नाल्कोंबत्तु नाल्कु । गण ओंदों बत्ता रना ल्कु ॥१९॥

४६६१४६४७५१२६३०००००००००००० यह मात्रा हरेक के द्वारा आया हुआ लब्धांक है इन कुल मिलाने से ६४ आता है।
६४ को जोड़ दे तो १० होता है।

चा रित्र दंर्कावितिवनेल्ल कूडिद । दारियोळ् बंदिहुद ध् ॥ सारतरात्मतत्वव नोडलेरळ् भाग । दारँके अरवत्तोंदु ॥२०॥
रु वळिरतेय क्रम प्रतिलोम वदा । अदरक अरवत्तनाल् न नदु ॥ अदरर्द्ध माडलु बह भंगाक्षर । वदर क्रम वर्दितिहुदु ॥२१॥
स मना हन्नोंदु सोन्नेय निट्टु मुन्दण । र्मदोळ ऐदेरिब ल ॥ विमलआर्नात्कारु ऐदेळु मूरेळु । समनाल्केळ्ँदुनाल्मूर्येरडु ॥२२॥
न् वदंक वनेंरडं परस्पर दिद । तविसुव कालक्र म दे ॥ अवतरिसिद तप्प तप्पेनलागदु । सवियंक दुपदेश मुंबे ॥२३॥
टा विन मंगल प्राभृत दोळु बह । तावं गमनिस लाग ॥ तावे न क्षणवागि इप्पत्तों बत्तांक । धावल्य वदनु काणु विरि ॥२४॥
णो वदंकदे बंद तप्पित वेनिल्ल । ओवियावुत्तार दं क ॥ कोविदओंदंक उत्पत्ति याय्तिल्लि । नववँदरिं भागवाय्तु ॥२५॥
म् दनन बारणवु वक्रवदहुदु । सदरदि हूविन गंध ॥ मृदु ल वदे तो अंतु हृदय होक्कु । हृदनागि भोग योग वनु ॥२६॥
दि न दिन दत्याशे एरलुबिडदिह । अनुपमयोगागॢनि यदनुम् न् ॥ ने कोने होगिसि कर्मवकेडिसलु । अनुपम पंचाग्नि इदेको ॥२७॥

घनरत्न ऐदुइद्रियवु ॥२८॥ मनुजत्वदनुभवलाभ ॥२९॥ घनकर्मदास्त्रवविल्ल ॥३०॥ जिनमुद्रे हृदय होक्किकहुदु ॥३१॥
अनुभवगम्यद दृष्टि ॥३२॥ जिननाथनोप्पिदभक्ति ॥३३॥ जिन मुनिगळ ज्ञानयोग ॥३४॥ विनुतांतरंग विज्ञान ॥३५॥
तनयरिगेल्ल सौभाग्य ॥३६॥ जिननाथ अडिइट्टमार्ग ॥३७॥ घन कर्म वळिव भूवलय ॥३८॥ जिनवर्धमानसाम्राज्य ॥३९॥
मर्नासिहदग्रद कमल ॥४०॥ " " " " "

व् रद संहननद आदि यादी काव्य । धरेय भव्यर भावदलि ॥ क् रुणेय प्रतिम समुद्घातवनुतोर्प । गुरुगळँवर दिव्य चरण ॥४१॥
व नदोळु तपगँदःत्म योगदे तम्म । तनुवनु कृशगँव् आ ग ॥ जिननाथनंदद सर्व साधुगळंक । दनुभव साधुसमाधि ॥४२॥

वनु संख्यातदोळरिव ॥४३॥ वनुअसंख्यातदोळरिव ॥४४॥ घनअनंतांकदोळरिव ॥४५॥
जिननाथनरुिकेगेगम्य ॥४६॥ तनुमनवचनातीत ॥४७॥ घनदुष्कर्मदावाग्नि ॥४८॥
वनुपडेदवनोव्बयोगि ॥४९॥ विनुत वैभव शालि अज्ज ॥५॥ घन शिव सौख्यव पडेव ॥५१॥
दिन दिन उन्नति गडर्व ॥५२॥ वनगृहव् वेल्लवनरिव ॥५३॥ घनशुद्धोप योगियवं ॥५४॥
वनु सार्द कर्म भूवलय ॥५५॥

ध मनव माडिद कर्मद कगळष्टु । विमलात्म गुणवदे मु रुळि ॥ गमकद कलेयन्तेहेऽच्चत बरुवाग । तमगल्लि उपदश शक्ति ॥५६॥
र सयुतवागिहेऽच्चुत बरला आत्म होस आदियाद ज्ञानवद ॥ नि शियोळु पड़ेदु द हगलुब न् दं ल्लर्गे । वशागोळिसुवव पाठकनु ॥५७॥

वशगोळिसुवनुपाध्यायं ॥५८॥ रस दूट उरिण सुवनार्य (चार्य) ॥५९॥ यशवे भूवलयवनलेव ॥६०॥
यशवोळिन्द्रियव जयिसिरुव ॥६१॥ होसब नागेसेव भूवलय ॥६२॥ हुसियनोड़िसिद महात्मा ॥६३॥
असम मानवरग्रगण्य ॥६४॥ हो सेदु पेळुव द्वादशांग ॥६५॥ असदृश समतेय पेळ्व ॥६६॥

ह्रोसमार्दवार्जवरूप ॥६७॥ रिसि समुदाय दोळग्र ॥६८॥ ह्रोसदाद् पदेशदार्य ॥६९॥
यशदौषर्द्धिय देहि ॥७०॥ ह्रोस बुद्धि ऋद्धिय सिद्ध ॥७१॥ उसहसेनार्य वंशजनु ॥७२॥
वृषभनाथन काल दरिव ॥७३॥ हसर मेल्लद दयापरनु ॥७४॥
ग गन मार्ग दे पोपरंददे तीव्रत्व । दगणितदाचारसद ।अ ॥ मिगिलागिपालिसुतदरन्ते भव्यर । बगेय पालिसुवनाचार्य ॥७५॥
न् वद कद ते सम्पूर्ण पदार्थद । सविचार वेल्लवन ह हि ॥ अवरवरिगेतक्क आचार सारव । सवियवयवव तोरिसुव ॥७६॥
ध र्म साम्राज्यद सार्व भौमत्ववु । निर्मल सद्धर्मव पा ॥ धर्म वैभव वदरक दष्टाचार । धर्म व पालि सुवार्य ॥७७॥
धा रिणियोळ् दश धर्मद सारव । सारिदगुरुवुआचार्य ॥ सारद मि द्धरनारैदु तोरुव । सारतरात्म आचार्य ॥७८॥
सारतरात्म भूवलय ॥७९॥ धीरन चरण भूवलय ॥८०॥ नेरद मार्ग भूवलय ॥८१॥
दारि योळ् बन्द भूवलय ॥८२॥ शूरर काव्य भूवलय ॥८३॥ हारद रत्न भूवलय ॥८४॥
सारात्म किरण भूवलय ॥८५॥ नेर सिद्धान्त भूवलय ॥८६॥ क्रूर कर्मारि भूवलय ॥८७॥
शूरर ज्ञान भूवलय ॥८८॥ सारात्म ज्योति भूवलय ॥८९॥ नेरदध्यात्म भूवलय ॥९०॥
सारमाणिक्यभूवलत ॥ ९१ ॥ वीरजिनेन्द्रभूवलय ॥ ९२ ॥ वीरनवचन भूवलय ॥९३॥
वीर महादेव वलय ॥ ९४ ॥ भूरि वैभवयुतवलय ॥ ९५ ॥ एरिदनन्त आचार ॥९६॥
सारवसारिदाचार्य ॥ ९७ ॥ भूरि वैभवद विरागी ॥ ९८ ॥ गेरिसुवेनुभक्तियनु, ॥९९॥
र् ससिद्धियागेवुर्लोहसुवर्णद वशवागुवन्तात्म निर ग ॥ यशवळिसुवदेहवर्जितनागुत । वशवागेमोक्षवुसिद्ध, ॥१००॥
ई शनागुवनु लोकाग्रदेनेलसुवं । राशियोळ्शुद्ध तानागी ॥ लेसा तो र्थवद सारेभव्यर । राशिराशिये कादिहुदु ॥१०१॥
प र्तनागिरे आत्मनुसंसारद । व्यर्थेयनेल्लवमृसमेदि र् पा ॥ क्षितिये श्री सिद्धत्व दनुभववादिय । हितवदनन्तवु काल ॥१०२॥
मा न मायवुलोभ क्रोध कषायद । ताणवेल्लवईगळिदु ॥ ताण था णवनेल्लकाणुतलरियुत । आनन्ददिहरेल्ल सिद्धर् ॥१०३॥
ण व कारमन्त्रदसार सर्वस्वरु । अवरिवरेन्नदेसर स ॥ अवयववेआत्मन रुपवागिह । अवरुसिद्धरु एन्दरियय्, ॥१०४॥
नवदंक संपूर्णसिद्धर् ॥१०५॥ अवरुवासिसुव भूवलय ॥१०६ नवकारमन्त्रवसिद्धर् ॥१०७॥
अवरनन्तांकदेवद्धर् ॥१०८॥ अवरनन्तदज्ञानधररु ॥१०९॥ नवकोटिमुनिगळगुरुगळ् ॥११०॥
अवरंगनिर्मलशुद्धर् ॥१११॥ अवयववळिदवयवरु ॥११२॥ नवसद्दर्शनमयरु ॥११३॥
अवरु "स" अक्षरआदि ॥११४॥ अवरुतंमिन्दजोविपरु ॥११५॥ सविसौख्यसार सर्वस्वर् ॥११६॥
अवतारवळिदुबाळ्ववरु ॥११७॥ अवरनन्तदवीर्ययुतरु ॥११८॥ अवरनन्तदसुखमयरु ॥११९॥
सवियअगुरुलघुगुणरु ॥१२०॥ नवसूक्ष्मत्वताळ्दवरु ॥१२१॥ कवियवगाहदोळिहरु ॥१२२॥
अवरव्याबाधधररु ॥१२३॥ नवगेबेकवरसंपवदु ॥१२४॥ अवररहन्तस्वतिळिदर् ॥१२५॥

सुविशालजगवनोळ्पवरु ॥१२६॥ अवरपादकेनमिसुवेनु ॥१२७॥ भवकळिववरासिद्धर्

ह् वर्णयोळं कवक्षरवनुस्थापिसि । ववयववो येम्ब अव र ॥ नवकेवललब्धिगोडेयरेन्देनुवरु । अवररहन्तर् इष्टास्वर्, ॥१२८॥
इ ष्टवदेवरुघातिकर्मवगेल्दु । स्पष्टदेभववनीगिद म् द् ॥ वृष्टियोळ् भूवलय के धर्मव पेळ्व । स्पष्ट द् ओंकार वेळ्ववरु ॥१२९॥
द नियोळ् मूरुवेळेयलि अनन्तद । गणितदोळडगिसिदवरम् ॥ व न ज नाभिय सोंकदेर्नेन्ददेवरम् । जिनदेवरेंवरियुवुदु ॥१३१॥
र् सयुतवाद भूवलय सिद्धान्तके । रसवन्तमुं हूर्त्तदि तो र् थ । होसेदेन्दुमूरुकालव नोन्देकालदि । होसदोन्वरोळुपेळ् विहर ॥१३२॥
ओ मकारओंवरोळुगिसिवरवत्माल् । कंकम ओंदक्षर् हे ॥ अंकवेअक्षर अक्षर अंकवेम् । बम्कियपेळ्दवरवरु ॥१३३॥
म नमयनुपटळ्दोळु बाळ्व नररिगे । घनकर्मवळिदवस र् व ॥ अनुभववनु पेळ्व अरहन्तरड़िगळ नेनेवल्लि ऐदंकसिद्धि ॥१३४॥
गा खशिखेगळु समानवोळिर्पं देहद । सकलांकपरमनिगिरु तु म् ॥ सकलागमवु सर्वांगम् ओंदरिम् । प्रकट वावरहन्त देव ॥१३५॥
न चरव्यन्तर भवनामर कल्पद । सचरदेवतेगळवरु तो ॥ सचराचरवनेल्लवकेळिदवरागि । अचलभक्तिय प्रकटिसिदर् ॥१३६॥
ह् सनेन्द्रियदासेयळिव भव्यात्मरु । वशगेय् सकलाक इ दया ॥ वशवादुदेमगेन्दु नमिसुतपोदरु । असदृश भूवलयक्के ॥१३७॥
न नविल्लव ज्ञान ओंदवुहुट्टि । श्री निकेतनंगदुप रि ॥ आनतवागिह मुक्कोडे पूमळे । भानुमंडलद भूवलय ॥१३८॥
ड् शगोंड "अ" आदिमंगलप्रामृत । रसद अक्षरवनु ना नु ॥ यशदारुसाविर देनूररवत्तोंदु । रसदेरडनेय अन्तरदोळ् ॥१३९॥
यशदंदेन्टेळेळ् अन्तरद ॥१४०॥ दिशेयधिकारदोळ् बर्प ॥१४१॥ रसवंकगणनेयक्षरद ॥१४२॥
यशवेकूड़िदरेबाहड्ड ॥१४३॥ रसदेन्ट्मूर्नाल्केरडु ओंदु ॥१४७॥ वशदसाविर हन्नेरडरेय ॥१४५॥
दिशेयोळुबरुवचारित्र्य ॥१४६॥ यशवदन्तागे "आ" इदरोळ् ॥१४७॥ रसदन्तराधिकारदोळु ॥१४८॥
रसदक्षरदलेक्कसिद्धि ॥२४९॥ कुसुमगळनुकूड़िदरे ॥२५०॥ विषहरवनुभवविरुव ॥१५१॥
यशदंककाव्यदसिद्धि ॥१५२॥ रिषिवर्द्धमानरवाक्य ॥१५३॥ रसदन्तरेन्ट्नाल्केन्ट् ऐळु ॥१५४॥
ओ मदंकवेप्पत्तेळु येम्भत्तैदु । अमृमलुअन्तर न दरलि ॥ उम्मिदेन्ट्नाल्केन्टेळु बंदंक । सम्मतव् "आ" क्य भूवलय ॥१५५॥

संपूर्ण

आ दूसरे अध्याय मे ६५६१ अक्षर हैं+ अन्तर मे ७८४८ = है। कुल मिलकर १४४०९ अक्षर होते हैं

अथवा

प्रथम-अध्याय १४३४६+दूसरे आ अध्याय १४४०९ = २८७५५ हुये।

प्रथम अक्षर ऊपर से नीचे तक पढते जायतो प्राकृत भाषा सक्रमवर्ती

आविमसंहृणणजुदोसमचउ रस्संगचारु संठाणोम् दिव्ववरगन्धधारी पमाणठिदरोमणखरुवो ॥२॥

२७ वां अक्षर से लेकर यदि ऊपर से नीचे पढते जायं तो संस्कृत भाषा सक्रमवर्ती

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालित सकल भूतल मल कलंका। मुनिभिरुपासिततीर्था। सरस्वती हरतुनो दुरितान् ॥२॥

द्वितीय अध्याय

अनादि कालीन ज्ञान साम्राज्य के वैभव युक्त इतिहास को लिए हुये तथा नवमबन्ध मे कहे जाने वाले अत्यन्त सुन्दर अर्थागम को प्रकट करने वाला यह अखिल शब्दागम है । १

आकाश मे अधर गमन करने वाले तथा देवो द्वारा निर्मित अत्यन्त सुन्दर समवशरण नामक सभा मे विराजमान होकर उपदेश देने वाले भगवान् के मुख कमल से निकला हुआ दिव्य ध्वनि रूप यह भूवलय शास्त्र है । २

सम्पूर्ण मनुष्यो मे अतिशय सम्पन्न और चक्रवर्ती के अपूर्व वैभव से युक्त ऐसे श्री भरत महाराज के अनुज तथा जिन रूप धारण करने वाले ऐसे आदि मन्मथ श्री बाहुबलि जी द्वारा निरूपित यह भूवलय है।

विवेचन — मति, श्रुति, अवधि, मन पर्यय और केवल ये पॉच तथा कुश्रुत, कुमति और कुअवधि ये तीन मिलकर आठ प्रकार के ज्ञान हैं । इनमें जो पहले के पॉच हैं वे सम्यग्ज्ञान के भेद हैं और जो शेष तीन हैं वे मिथ्या ज्ञान कहलाते हैं । इन तीनो को विभग ज्ञान भी कहते हैं । स्थावर इत्यादि असज्ञी जीवो को कुमति, कुश्रुत होता है और सैनी पचेन्द्रिय पर्याप्त को विभग ज्ञान भी हो सकता है । यह ज्ञान सासादन गुणस्थानवर्ती जीवो तक होता है । सम्यग मिथ्यात्व गुणस्थान में सद्ज्ञान और असद्ज्ञान (अज्ञान) ये दोनों मिश्र ज्ञान होते हैं । मति श्रुत अवधि असयत सम्यग्दृष्टि आदि को होता है । मन पर्ययज्ञान प्रमत्त गुण स्थान को लेकर क्षीण कषाय गुण स्थान तक होता है । तेरहवें गुण स्थान मे केवल ज्ञान होता है और चौदहवे गुण स्थान वाला अयोग केवली होता है इससे ऊपर अशरीरी होकर सिद्ध हो जाता है ।

पाँचों ज्ञानो मे जो पहले के चार ज्ञान हैं वे परोक्ष हैं और केवल ज्ञान पूर्णतया आत्माधीन होने के कारण प्रत्यक्ष है । यह ज्ञान आदि और अतिशयवान् भी है । केवल ज्ञान हो जाने के बाद फिर शरीर धारण नहीं करना पड़ता इसलिये इसे अशरीरी भी कह सकते हैं और पौद्गलिक पर वस्तु के सबध से रहित है, इसलिये यह अरूपी भी कहलाता है । मति, श्रुति, अवधि और मन पर्यय ये चारों ज्ञान परोक्ष है क्योंकि ये चारो ज्ञान इंद्रियों की अपेक्षा रखते हैं । केवल ज्ञान अतीन्द्रिय है और ससार के सभी पदार्थों को एक साथ जानने वाला है । इसलिये इसको सर्वज्ञ ज्ञान कहते हैं । अनन्त ज्ञान भी इसे कहते हैं । जिसका अन्त नही है वह अनन्त है । केवल ज्ञान का भी हो जाने के बाद अन्त नही होता है ।

यह ज्ञान व्यवहार नय से लोकालोक के त्रिकालवर्ती संपूर्ण विषयों को जानता है तथा निश्चयनय से अनाद्यनन्तकाल से आये हुए अपने आत्मस्वरूप को प्रतिक्षण में जानता है अत इस ज्ञान को शुद्धात्मज्ञान कहते हैं ।

अतिशय वैभव से सयुक्त सपूर्ण जीवों को आमोद प्रमोद उत्पन्न करने वाले गगा नदी के पवित्र प्रवाह के समान अखंडित होकर बहने वाले अर्थागम को मैं (दिगम्बराचार्य कुमुदेन्दु मुनि)ने नवम अंक के बंधन मे बाध दिया है । यह पहले कानड़ी श्लोक के अर्थ का सार है । ऐसा होने पर भी नवम बध-वैभव इन दो शब्दों की व्याख्या विस्तार पूर्वक नही हो सकी । इसी अध्याय का छ से लेकर आने वाले श्लोक मे संक्षेप मे नवम बध के अर्थ का विवरण करते हैं । ऐसा कहने पर भी वह पूर्ण नही हो सकता ।

बन्धानुयोग द्वार का कथन विस्तार के साथ ही होना चाहिये । इसका विस्तार आगे लिखेंगे ।

वैभव शब्द का अर्थ ३४ अतिशय है. जिनका विवेचन आगे समयानुसार करेंगे ।

श्लोक दूसरा —

ऊपर कहे हुये श्लोक के अनुसार मनुष्य को केवल ज्ञान अर्थात् निर्विकल्प समाधि प्राप्त होने के बाद उसके बल से स्वर्ग से देवेन्द्र आकर उस केवली भगवान् के लिये समवसरण की रचना करते हैं ।

देवताओ के द्वारा समवसरण की रचना होने पर भी उसकी माप

तथा ऊँचाई इत्यादि सर्व प्रमाण भूवलय में दिया गया है। जैन शास्त्र में कोई भी बात अप्रमाणित नही होती अर्थात् प्रमाणिक होती है। आजकल विमान चढने में दस, बारह सीढी तक एक ही तरफ लगा देते हैं, परन्तु समवसरण के लिये चारो ओर हर एक में २१००० सीढियां होती हैं। आज के विमानो मे चढते समय एक के ऊपर एक पांव रखकर चढना पढता है परन्तु समवसरण मे क्रमश चढने का क्रम न होने के कारण इस तरह चढने की आवश्यकता नही रहती।

पहली सीढी में पाद लेप औषधि के प्रभाव से मनुष्य और तिर्यंच प्राणी समवसरण भूमि मे जाकर भगवान् के सन्मुख पहुंच जाते थे। यद्यपि यह बात आजकल की जनता के लिये हास्यकारक मालूम होती है तथापि श्री भगवान् कुंदकुंदाचार्य तथा श्री पूज्य पाद आचार्यादिक पहले इसी प्रकार की पाद औषधि का लेप करके आकाश में गमन करते थे, यह बात उस समय की जनता के समक्ष प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती थी। पाद औषधि का विधान किस प्रकार करना चाहिये, इस विधि को भूवलय के प्राणावायु पर्व में पूर्ण रीति से स्पष्ट किया गया है। विमान इत्यादि तैयार करने की भी विधि इसमें आई हुई है। इस खंड में जंगली कटहल के फलो से पादलेप तैयार होता है ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने बतलाया है। आगे इसके विधान का प्रसंग आने पर लिखेंगे। ऐसे देव निर्मित समवसरण मे विराजमान होने पर भी भगवान् ने समवसरण का स्पर्श नही किया। बल्कि वे सिंहासन के ऊपर चार अंगुल अधर विराजमान रहते थे और आकाश मे गमन किया करते थे।

सर्वसंघ परित्याग कर अपने तप के द्वारा संपूर्ण कर्मो की निर्जरा करके केवल ज्ञान साम्राज्य को प्राप्त कर, संपूर्ण प्राणी को भिन्न-भिन्न कल्याण का मार्ग न बतलाकर एक अहिंसामयी सच्चे आत्मकल्याणकारी आत्मधर्म को बतानेवाले भगवान श्री वीतराग देव के द्वारा कहे हुए भूवलय को कुमुदेन्दु आचार्य ने संपूर्ण विश्व के प्राणी मात्र के लिये सर्वभाषामयी भाषा अंक रूप में कहा है।

श्लोक तीसरा :-

इस मनुष्य भव में अतिशय देने वाले तीन पद हैं। इससे अन्य कोई भी महान् पद नही है। बीते हुए जन्म जन्मान्तरों में अतिशय पुण्यसंचय कर सोलह कारण भावना, बारह भावना तथा दस लक्षण धर्म इत्यादि भावनाओं को भाते हुये आने के कारण राजा महाराजादिक १८ श्रेणियो को चढते हुये आने से परम्परा अभ्युदयसुख किसी १८ श्रेणियों मे कहीं भी खंडित न होकर परम्परागत अभ्युदय सुख में सबसे पहले भरत चक्रवर्ती तथा मन्मथ बाहुबली महान् उन्नतिशाली पराक्रमी कामदेव थे। मन्मथ का अर्थ-ईश्वर के ध्यान में ज्ञानाग्नि से शरीर को तपाने के कारण इसका नाम मन्मथ पडा, ऐसा कतिपय विद्वानों का कथन है। जिनके शरीर नही है वे दूसरे के मन को कैसे आकर्षित कर सकते हैं? ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं।

कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलय में इस प्रकार कहा है कि जिस समय मनुष्य को पुंवेद प्रगट होता है उस समय स्त्रियों के साथ भोग करने की इच्छा उत्पन्न होती है। स्त्री वेदनीय कर्म का उदय होने से पुरुष की अपेक्षा और नपुंसक वेद का उदय होने से एक साथ स्त्री और पुरुष इन दोनो के साथ रमण करने की इच्छा होती है, ऐसे अवसर मे अशरीरी ईश्वर मन्मथ कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता है, ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलय में कहा है। इतना ही नहीं उस समय सभी मनुष्यो मे बाहुबली अत्यन्त सुन्दर देखने में आये थे। इस प्रकार संपूर्ण भरतखंड के मानव प्राणियों को अपने आधीन करके रहने वाले भरत चक्रवर्ती थे। यदि मनुष्य सुख की अपेक्षा देखा जाय तो ये दो ही सुख है एक कामदेव का सुख और दूसरा चक्रवर्ती का सुख। इसके अतिरिक्त संसारी सुख अन्य किसी में भी नहीं है। ऐसे अतिशय कारक सुख, रूप लावण्य तथा बल इत्यादि संपूर्ण इंद्रियजन्य सुख को तृण के समान जानकर उसे त्याग कर सबसे अंतिम तथा सर्वोत्कृष्ट अविनाशी अनाद्यनन्त मोक्ष पद को प्राप्त करने का उद्यम किया, तो क्या यह बात सामान्य है? यह जिनरूप धारण करने की

प्रबल इच्छा मन में प्रगट होने के बाद विषय वासना कभी रह नहीं सकती। किंतु इस जिन रूप का स्पष्टीकरण ही इस भूवलय में है ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते है। इसलिये इसकी प्राप्ति के लिये गोमटदेव ने संपूर्ण मानव को सुखकारी भूवलय ग्रन्थ की रचना की है।

वृषभदेव तीर्थंकर कृत युग के आदि मे संपूर्ण साम्राज्य पद भरत चक्रवर्ती को देकर तपोवन को जाने के लिये जब उद्युक्त हुए थे तब अपने शरीर के संपूर्ण आभरणो को प्रजाजनो को अर्पण कर दिया था। उस समय उनके शरीर पर कुछ भी शेष नही रह गया था। तब ब्रह्मचारिणी युवती ब्राह्मी व सुन्दरी नामक दो देवियो अर्थात् भरत चक्रवर्ती की बहिन ब्राह्मी और बाहुबली की बहिन सुन्दरी देवी दोनो आकर पिताजी से निवेदन करने लगी कि पिताजी ! भाई भरत को तथा बाहुबली को तो आपने बहुत कुछ दिया परन्तु हमे कुछ नही दिया। इसलिये हमे भी कुछ मिलना चाहिए। तब भगवान ने कहा कि बेटियो ! तुम्हें क्या चाहिए अर्थात् तुम क्या चाहती हो ? इस तरह भगवान की प्रश्न करने की आदत थी। ससार एक ऐसा अनूठा है कि यदि कोई आकर किसी से पूछे तो वह यह नही कह सकता कि तुमको क्या चाहिए ? अर्थात् वह कहेगा कि मेरे पास १०-२० या ५० रुपया है, इसे तुम ले जाओ, यही बात कहेगा। परन्तु भगवान की इस तरह भावना नही होती। क्योंकि भगवान के अन्दर लोभ कषाय का सर्वथा अभाव था तथा उनकी आत्मा के अन्दर स्वाभाविक दान करने की प्रवृत्ति होने के कारण इनके प्रति शकात्मक उत्तर मिलता है। भगवान के अन्दर यही एक अतिशय है। पिताजी की इस बात से प्रसन्न होकर दोनो पुत्रियां लौकिक सम्पत्ति पूछना तो भूल ही गई पर ब्रह्मचारिणी होने के कारण इह परलोक के कल्याण निमित तथा भविष्यकाल की सर्वजनता के कल्याणार्थ उन दोनो पुत्रियो ने इस प्रकार प्रार्थना की कि — हे पिताजी ! अभी भरत चक्रवर्त्यादि को आपने जो वस्तु दिया है वह सब क्षणिक इद्रिय जन्य तथा अत मे दुखदायी है। इसलिए हमे ऐसी वस्तु नही चाहिये। हमे आप कोई ऐसी वस्तु दे कि जो सदा हमारे साथ रहे।

तब भगवान ने प्रसन्नतापूर्वक दोनों पुत्रियों को अपने पास बुलाकर बाई अक मे ब्राह्मी को और दाहिनी अक में सुन्दरी देवी को बिठा लिया। तत्पश्चात् ब्राह्मी से कहा कि पुत्री ! तुम अपना हाथ दिखाओ। पिता की आज्ञानुसार ब्राह्मी देवी ने अपना दाहिना हाथ निकाला। तब भगवान ने अपने दाहिने हाथ के अगूठे को अदर रखकर मुट्ठी बांधकर ब्राह्मी की हथेली में बंधे हुए अमृतमय अपने अगूठे से लिख दिया। ऐसा लिखने का कारण यह था कि जब भगवान का जन्म हुआ तब बालक अवस्था मे सौधर्म इद्र ने तत्काल जनित भगवान के मृदुल मृणाल अगूठे के मूलभाग में अमृत भर दिया था। इसलिये उस अमृत को उनके अगूठे के मूलस्थान से लेकर मिथन करते हुए सर्वभाषामयी भाषाओ को धारण करनेवाला कर्माष्टक अर्थात् आठ प्रकार की कन्नड भाषा के स्वरूप को दिखानेवाली लिपि रूप कई अक्षरों को लिखकर कहा कि बेटी आपके प्रश्न के अनुसार अक्षर की उत्पत्ति हुई है। सो अनन्त काल तक रहेगी। इसलिये यह साद्य अनन्त कहलाता है। पहले भोग-भूमि के समय में इस लिपि की आवश्यकता नहीं थी। उसके पहले अनादि काल से अर्थात् सबसे प्रथम कर्म-भूमि के प्रादुर्भाव के समय मे सबसे प्रथम तीर्थंकरो से आज जैसे ही उत्पत्ति होती आई है इस दृष्टि से देखा जाय तो तुम्हारी हथेली पर लिखे हुए अक्षर अनाद्यनन्त भी कहे जायेंगे। इसलिये कर्नाटक भाषा साद्यनंत भी है और अनाद्यनत भी। छठवे काल में ये अक्षर काम में नहीं आने से शात हो जाते हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो अक्षर आदि और सांत भी हैं।

इसका बिस्तार आगे चलकर बताया जाएगा।

इस बात को सुनकर ब्राह्मी देवी सन्तुष्ट हो गई क्योंकि उसकी हार्दिक इच्छा पहले से यही थी कि हमें कोई अविनाशी वस्तु मिले। अत उसे प्राप्त होते ही वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। अनेक विद्वानों का यही मत है कि सभी लिपियों की अपेक्षा ब्राह्मी लिपि प्राचीन है।

क्योंकि यह लिपि आदि तीर्थंकर श्री ऋषभनाथ भगवान की सुपुत्री ब्राह्मी देवी के नाम से अंकित है।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि सबसे पहले श्री आदिनाथ भगवान ने ब्राह्मी देवी की हथेली में जिस रूप से लिखा था वह आधुनिक कानडी भाषा का मूल स्वरूप था।

उपर्युक्त बात को देखकर पिताजी (भगवान आदिनाथ) की जघा पर बैठी हुई सुन्दरी देवी ने प्रश्न किया कि पिताजी ? बहिन ब्राह्मी की हथेली मे जो आपने लिखा वह कितना है ? जिस प्रकार किसी विश्वस्त व्यक्ति का सहयोग लेने के लिये यदि प्रश्न किया जाय कि हमे अमुक कार्य करने के लिये रुपये की आवश्यकता है। सो आपके पास मौजूद है या नही ? तो उसके इस प्रश्न पर यदि वह कह दे कि मैं आपको पूर्ण सहयोग दूगा तो रुपये पैसे का कोई प्रश्न नही उठता क्योकि पूर्ण रूप मे सहयोग देने की प्रतिज्ञा कर लेने के कारण वहाँ पैसे के प्रमाण की कोई आवश्यकता नही रह जाती पर यदि सदिग्ध हो जाय तो आप कितने पैसे का सहयोग दगे ऐसा प्रश्न करते ही रुपये की सख्या की जरूरत पड जाती है। इसी प्रकार जब सुन्दरी देवी ने यह प्रश्न कर दिया कि पिताजी ब्राह्मी बहिन की हथेली में जो आपने लिखा वह कितना है ? तो तत्काल ही उन वर्णों की सख्या की आवश्यकता पड गई।

तब भगवान् ने कहा कि बेटी ! तुम अपना हाथ निकालो ब्राह्मी की हथेली मे हमने जो लिखा सो बतलायेगे।

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि सुन्दरी देवी को कौन सा हाथ निकालने मे तथा भगवान् आदि-नाथ को किस हाथ से लिखवाने मे सुविधा हुई ?

इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार ब्राह्मी देवी के हाथ में भगवान् ने अपने सीधे हाथ से लिखा था उसी प्रकार सुन्दरी देवी के हाथ में लिखने की सुविधा नही थी। क्योकि ब्राह्मी देवी भगवान् की बायीं जंघा पर बैठी हुई थी और सुन्दरी देवी दाहिनी जघा पर। अत. ब्राह्मी दवी के हाथ में भगवान् ने अपने दायें हाथ से आधुनिक लिपि के समान लिखा और सुन्दरी देवी के हाथ में बायें हाथ से लिखने की आवश्यकता पडी।

इसी कारण बायें से दायीं ओर वर्णमाला लिपि तथा दायें से बायी ओर अकमाला लिपि प्रचलित हुई। प्राचीन वैदिक और जैन शास्त्रो मे "अकाना वामतो गति" ऐसा लेख तो उपलब्ध होता था किन्तु उसके मूल कारण का समाधान नहीं हो रहा था। इस समय इसका समुचित समाधान भूवलय से प्राप्त होकर उसने सभी को चकित कर दिया है। इस समाधान से समस्त विद्वद्वर्ग को सन्तोष हो जाता है।

तत्पश्चात् भगवान् आदिनाथ स्वामी जी ने उपरोक्त नियमानुसार सुन्दरी देवी की दायी हथेली के अगूठे द्वारा १ बिन्दी लिखी और उसके मध्य भाग में एक आडी रेखा खींच दी। उस रेखा का नाम कुमुदेन्दु आचार्य ने अर्द्धच्छेद शलाका दिया है और छेदन विधि को शलाकार्धच्छेद अर्थात् एक दम बराबर काटने को कहा है। जब बिन्दी को अर्द्ध भाग से काटा गया तब उसके बराबर दो टुकडे हो गये। कानडी भाषा में ऊपरी भाग को [१] तथा नीचे के भाग को [२] कहते हैं, जोकि थोडे से अन्तर मे आज भी प्रचलित हैं।

ये दो टुकडे नीचे के चित्र में दिये गये हैं। इसे देखने से आप लोगो को स्वय पता चल जायेगा।

एक टुकडे मे दो-दो टुकडे मे तीन चार, छ, सात, आठ और नौ और एक बिन्दी और टुकडा मिलाने से पाँच अर्थात् चार को एक टुकडा मिला देने से पाँच बन जाता है। इन सब अंकों को एकत्रित कर मिलाया जाय तो पहले के समान बिन्दी बन जाती है।

इसका स्पष्टीकरण आगे आने वाले २१वे अध्याय मे ग्रन्थकार स्वय विस्तार पूर्वक कहेगे। यदि उपर्युक्त विधि के अनुसार अको की गणना की जाय तो बिदी के दो टुकडे होने पर भी कानडी भाषा में ऊपर का टुकडा एक और नीचे का टुकड़ा दो होने से तीन हो गये अर्थात् १ + २ = ३ हो गये। इन तीनों को तीन से गुणा करने

पर ९ [नौ] हो गये इस नौ के उपर कोई अक ही नही है। अर्थात् एक बिन्दी को एक दफे काटा जाय तो तीन बन गया दूसरी बार गुणा करने से नौ बन गया यही भगवान् जिनेन्द्र देव का व्यवहार औरनिश्चय नय कहलाता है। इस प्रकार यह सपूर्ण भूवलय ग्रन्थ व्यवहार और निश्चयनय से भरा हुआ है। नौ के उपर कोई भी अक नही है। नौ नम्बर में ही चार और छ आ जाता है। उपर के कथनानुसार भगवान् ने ब्राह्मी देवी की हथेली पर जितना अक्षर लिखा था वह सब चार और छ अर्थात् चौंसठ ये सभी नौ मे ही समाविष्ट है। इसी चौंसठ अक्षर को गणित पद्धति के अनुसार गिनते जाये तो सपूर्ण द्वादशाग शास्त्र निकल आता है। इसका खुलासा आगे चलकर आवश्यकतानुसार करेंगे।

श्री दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदेन्दु मुनिराज आज से डेढ हजार वर्ष पहले हुये हैं जो महा मेधावी तथा द्वादशाग के पाठी, सूक्ष्मार्थ के वेदी और केवल ज्ञान स्वरूप नौ अंक के संपूर्ण अश को जानने वाले थे। इसलिये छ लाख श्लोक परिमित कान्नी [illegible] छन्द में आज कल सामने जो मौजूद हैं वह नौ अको में ही बन्धन करके रक्खा हुआ है। उन्ही नौ अङ्को से सातसौ आठरह भाषा मय निकलता है।

ये किस तरह निकलती है सो आगे चलकर बतायेंगे।

भगवान् ऋषभदेव ने एक बिन्दी को काटकर ९ अक बनाने की विधि बताकर कहा कि सुन्दरी देवी! तुम अपनी बडी बहिन ब्राह्मी के हाथ मे ६४ वर्ण माला को देखकर यह चिन्ता मत करो कि इनके हाथ में अधिक और हमारे हाथ मे अल्प है। क्योकि ये ६४ वर्ण ९ के अन्तर्गत ही हैं। इस ९ के अन्तर्गत ही समस्त द्वादशाग वाणी है। यह बात सुनते ही सुन्दरी देवी तृप्त हो गई।

इस प्रकार पिता-पुत्री के सरस विद्याओ के वाद-विवाद करने मे संसार के समस्त प्राणियो की भलाई करने रूप ज्ञान भण्डार का संक्षिप्त समस्त इतिहास ध्यान मे मन लगाकर गोम्मट देव ने सुना। इस प्रकार मन को मथन करके सुनने के कारण ही गोम्मट देव का नाम मन्मथ [कामदेव] हुआ। पहिले गोम्मट देव को उनके पिता जी ने कामकला और सभी जीवो का हितकारी आयुर्वेद अर्थात् समस्त जीवो का रोग दूर करने वाला अहिंसात्मक वैद्यक शास्त्र सिखलाया था। अब अक्षर और अक दोनों विद्याओ के मालूम हो जाने पर परमानन्दित होते हुये भगवान् से पहले सीखी हुई विद्याओ की चर्चा का स्वरूप प्रकट हुआ। ६४ अक्षर का गुणाकार करने से वे ही वर्ण बारम्बार आते रहते हैं, इसलिए अपुनरुक्त कैसे हुआ ? ९ अक के ऊपर पुन १ अक की उत्पत्ति है और १० की उत्पत्ति होती है। वह १० का अक पुनरुक्ति है। ऐसा सभी अंको का हाल है। इसलिए पुनरुक्ति हुआ। जब भगवान् ने ब्राह्मी देवी को ६४ अक्षर और सुन्दरी को ९ अक सिखाया तथा अपुनरुक्त रूप से सारी द्वादशांग वाणी निकलती है और अपुनरुक्त से निकलता है, ऐसा बताया। ६४ के ऊपर पैंसठवा अक्षर तथा ९ के ऊपर १० ये दोनो अक्षर और अंक पुनरुक्त ही हैं। इसी प्रकार अगले अक और अक्षर दोनों क्रमश यानी अ आ, ११-१२ इत्यादि पुनरुक्त होते जाते हैं।

भगवान् ने कहा कि ये ६४ अक्षर और ९ अक अपुनरुक्त है, यह कैसे हुआ ? इसके बारे मे भगवान् ने उत्तर दिया। ऐसा कहने में भगवान् से जो उत्तर मिला वह अगले श्लोक मे आयेगा।

अब कामकला और आयुर्वेद इन दोनो विषयों की चर्चा चल रही है। किन्तु कामकला का जो विषय है वह यहाँ चलने के लायक नही है। क्योकि पिता और पुत्र, पिता और पुत्रियो, भ्रातृ और भगिनी उसमे भी ब्रह्मचारिणी भगिनी उसके समक्ष कामकला का वर्णन सर्वथा अनुचित है कामकला तो पवित्र प्रेम वाले पति-पत्नी और अपवित्र प्रेम वाले वेश्या और कामुक पुरुषो मे होता है ऐसी शका उठाने की जरूरत नही है। क्योकि यहाँ रहने वाले दोनो पिता-पुत्र तद्भव मोक्ष भागी हैं। अर्थात् पुनर्जन्म नही लेने वाले हैं और दोनों स्त्रियाँ ब्रह्मा-

चारिणी हैं । ऐसे पवित्रात्माओं से ही यदि काम कला निकले तो वह लोकोपकारिणी हो और आयुर्वेद विद्या शारीरिक स्वास्थ्य दायिनी बने । इस आयुर्वेद और कामुक दोनो का परस्पर मे अभिन्न सबध है । और ये दोनों ही अनादि भगवद्वाणी से निकली हुई हैं । अर्थात् पवित्र और अपवित्र ये दोनो कलाये भगवद्वाणी मे निकलती है, अन्यथा भगवद्वाणी अपूर्ण हो जाती है । कुमुदेन्दु आचार्य ने कहा है कि पवित्रता तथा अपवित्रता पदार्थ में नही बल्कि वीतराग अथवा सराग रहने वाले जीवो में है । इसलिए इसे ४ पवित्रात्माओं की चर्चा करनी चाहिये । इसके लिए एक कथा भी है, सो देखिये ।

भगवज्जिन सेनाचार्य श्री कुमुदेन्दु आचार्य के सहाध्यायी थे । वे सकल जैन समाज मे मान्य दिगम्बर जैन मुनि थे, यह इतिहास देखने से ज्ञात होता है । कि जब जिनसेन पवित्रकुल में पैदा हुये तब उस घर में एक वे ही लडके थे । उनकी उम्र ४ वर्ष की थी जिससे कि वे घर में बालक्रीडा किया करते थे । एक दिन आचार्य कुमुदेन्दु के गुरु श्री वीरसैनाचार्य [धवल और जय धवल ग्रंथ के कर्ता] आहार के लिये इसी घर मे आ पहुचे । आप आहार के पश्चात् तेजस्वी बालक को शुभ लक्षणो सहित समझकर उसके माता-पिता से कहने लगे कि इस बच्चे को सघ मे सौंप दो । वह होनहार बालक अपने माँ-बाप का इकलौता लाडला था, अत उन लोगो की इच्छा न होने पर भी गुरु वचनमनुल्लंघनीयम् अर्थात् गुरु के वचनो का उल्लघन नही करना चाहिए इस नियम से तथा आचार्य वीरसेन की आज्ञा को चक्रवर्ती राजे महा-राजे आदि सभी महर्ष शिरोधार्य करते थे । अत उनकी आज्ञा अप्रतिहत प्रवाहरूप चलती थी । इसलिये उन्हे सौपना ही पडा । बालक कर्णच्छेद, उपनयन तथा चूडाकर्म सस्कार से रहित था । यथा जात रूप [दिगम्बर रूप] था । उनका चूडा कर्म ही केशलुंचन रूप प्रतिभासित होता था । इसी रूप मे साधक ८ वर्ष के पश्चात् केशलुंच करके यथाविधि दिगम्बर दीक्षा धारण की इसलिये वे आगर्भ दिगम्बर मुनि कहलाते हैं । ऐसे दिगम्बर मुनियों का शुभ समागम प्राप्त होना आजकल परम दुर्लभ है ।

जिनसेन आचार्य के नाम से चार आचार्य हुये हैं । उनमें से हमारे कथानायक जिनसेनाचार्य पहले वाले कुमुदेन्दु आचार्य के सहपाठी थे । इसी प्रकार वीर सेनाचार्य भी आजकल मिलने वाले धवल तथा जय-धवल टीका के कर्ता वीरसेन नहीं बल्कि इससे पहले के पद्यात्मक धवल टीका के जो कर्ता थे वे ही कुमुदेन्दु आचार्य के गुरु थे । आजकल पद्यात्मक धवल टीका उपलब्ध नहीं है । इसी प्रकार कल्याण कारक ग्रंथ कर्ता उग्रादित्याचार्य भी राष्ट्रकूट अमोघ वर्ष नृप के समय वाला नही है । क्योंकि कल्याण कारक में जितने भी श्लोक हैं वे सभी भूवलय मे आते हैं, इसलिये उस काल के उग्रादित्याचार्य नहीं है । उग्रादिन्याचार्य श्री कुमुदेन्दु आचार्य के समय में थे, ऐसा कतिपय विद्वानों का मत है यद्यपि यहाँ इस समय इस विषय की आवश्यकता नही थी, तथापि इसका कुछ थोड़ा विवेचन यहाँ किया गया है ।

पहले गोम्मट देव अर्थात् बाहुबली काम कला तथा आयुर्वेद [illegible] थे वैसे ही इस काल मे भी आचार्य कुमुदेन्दु के शिष्य शिवकुमार, उनकी पत्नी जक्की लक्को अब्बे तथा कुमुदेन्दु वीरसेन, और उग्रादित्याचार्य आदि मेधावी आचार्य उस समय मौजूद थे । इसलिये धन्य है वह काल । ऐसे दिगम्बर मुनि साक्षात् भगवान् का रूप धारण करके सपूर्ण भारत मे जैन धर्म का डका चारों ओर बजाया करते थे । वह महोन्नति काल जैन धर्म के लिये था । कर्णाटक के एक राजा ने सारे भरत खड को जीत कर उसे अपने आधीन कर हिमवान् पर्वत के ऊपर अपने झडे को फहराया था । इतिहास मे कर्नाटक देश का राजा पहले शिवमार ही था ।

जिनसेनाचार्य :-

जिनसेन दिगम्बर जैनाचार्य होकर राजस्थान मे भी विहार करके वहा उपदेश दिया करते थे । वीतरागी जिनमुद्राधारी भगवान स्वरूप जिनसेनाचार्य कहलाते थे । ऐसे जिनसेनाचार्य अपने एक काव्य में

[illegible] सुन्दर स्त्रियों के प्रत्येक अंगोपांगादिक के मर्मांग का सुन्दर रूप से वर्णन [illegible] शृंगाररस का अत्युत्तम विवेचन किया था। उस काल के कई विद्वान् बडे [illegible] ढंग से स्त्रियों का वर्णन करने वाले परस्पर मे कहने लगे कि ये मुनि काम विकारी अवश्य होगे। ऐसी जनता के मन मे शकास्पद चर्चा उत्पन्न हुई और यह बात सर्वत्र फैल गई। यहीं तक नही बल्कि यह बात धीरे २ जिनसेन आचार्य के कानों मे भी जा पहुची। तब जिनसेन आचार्य आश्चर्य चकित होकर [illegible] लगे कि केवल मेरे एक ही व्यक्ति पर यदि यह दोष आ जाता तो कोई [illegible] नहीं था। परन्तु संपूर्ण दिगम्बर मुनि पर यह दोष लगाना है, यह ठीक नही है। क्योंकि यह [illegible] को कलंकित करने वाला है। इस तरह जिनसेन आचार्य [illegible] आये और उस राजा को आज्ञा दी कि कल एक सभा बुला कर सभी युवक और युवतियों को लाकर बिठा देना और उनके नीचे छोटी २ चटाई बिछा देना। इस प्रकार आज्ञा पाते ही राजा ने तुरन्त ही सभी तैयार करवा दिया। तब आचार्य जिनसेन ने खडे होकर कहा कि हम धर्म अर्थ तथा काम इन तीनों पुरुषार्थों पर व्याख्यान देंगे। इस तरह पहले अपने व्याख्यान की भूमिका समझा दी। तत्पश्चात् धर्म और अर्थ को गौण करके काम पुरुषार्थ का विवेचन करेगे। ऐसा कहकर काम पुरुषार्थ के शृंगार रस का वर्णन इस तरह किया कि उस सभा मे बैठे हुए सभी युवक और युवतिया अपने आप को भूल कर मुंह खोलकर सुनने में दत्तचित्त हो गये और कामांध होकर परवशता के कारण स्वय ही चटाई पर वीर्यपात कर चुके।

इस तरह जिनसेन आचार्य का उपदेश समाप्त होते ही बैठे हुए युवक और युवतियों के उठने पर चटाई पर गिरे हुए युवको के वीर्य तथा स्त्रियो के रज को देखकर राजा और सब प्रजा परिवार सहित विस्मित होकर कहा कि देखो जिनसेन आचार्य के इन्द्रियो पर विकार है या नही ? किन्तु जिनसेम आचार्य के लिंग में किसी प्रकार का भी विकार नही दीख पडा। तब राजा ने उन्हें सच्चा महात्मा कह कर आचार्य की प्रशसा करते हुए कहा कि आप ही एक सच्चे महात्मा हैं। राजा व सारे प्रजा परिवारने इस प्रकार अनेक स्तुति की। निकृष्ट कराल पंचम काल में भी ऐसे महात्मा ने इस भरत खण्ड में जन्म लिया था तब वृषभ तीर्थंकर के समय में गोम्मट देव अर्थात् बाहुबलि आदि वज्र वृषभ नाराच संहनन वाले काम कला के विषय की चर्चा को करते हुए भी इस विषय मे अरुचि रखने वाले को क्या काम विकार कुछ कर सकता है ? अर्थात् नही। इस चर्चा के समय में उनके पिता भगवान वृषभदेव और उनकी पुत्री [illegible] दोनों ब्रह्मचारिणी चारों जन मिलकर काम कला की चर्चा करने से [illegible] मे काम कला के बारे मे जो विवेचन आने वाला है वह [illegible] गृहस्थो के लिए अनुकरणीय है।

गृहस्थों की भोगादि क्रियाओं में वीर्य वृद्धि के लिए स्खलन होने से शरीर दुर्बल होता है। वे पुन तत्कालीन वीर्य की वृद्धि के लिए [illegible] तथा औषधादि सेवन से सुखी होंगें। अपने समान अर्थात् बाहुबलि के [illegible] शरीर बना लेने की ही आशा गोम्मटदेव की थी।

श्री भूवलय मे आने वाली काम कला और आयुर्वेद ये दोनों अनादि काल से भगवान की वाणी के द्वारा चले आये हैं और अनन्त काल तक चलते रहेगे। इसलिए ये तीनो काल मे अहिंसात्मक ही रहेगें। क्योंकि जिनेन्द्र देव ने सभी जीवो पर समान दयालु होने के कारण एक चीटी से लेकर सम्पूर्ण प्राणी मात्र पर अर्थात् मनुष्य पर जिस जिस समय मे रोगादिक बाधा हो जाती है उस समय उन सब रोगों को नाश करने वाला पुष्पायुर्वेद को बतलाया है। उसके श्री भूवलय के चौथे खण्ड मे एक लाख कानड़ी श्लोक हैं। इन्हीं श्लोकों को सशोधक महोदय ने उसमे से निकाल कर अपने पास रक्खा है। इस श्लोक को सशोधक महोदय ने सरकार को अर्पण कर दिया है। भारत की सरकार ने इस ग्रन्थ को अनुवाद करने के लिए सर्वार्थसिद्धि सघ, विश्वेश्वरपुर सर्कल बंगलौर को सौंप दिया है। यह ग्रन्थ अब जल्दी ही क्रम से उद्धृत होकर जनता के हाथ में आयेगा। अब उस काम कला और आयुर्वेद के साथ शब्द शास्त्र भगवद्गीता (पाच भाषाओ में) और भगवान वृषभदेव के द्वारा कही हुई पुरु गीता, श्री नेमिनाथ भगवान के द्वारा अपने भाई श्री कृष्ण को कही हुई नेमि गीता, द्वारका के कृष्ण के कुरुक्षेत्र मे कही हुई भगवद्गीता, और भगवान महावीर के द्वारा गौतम गणधर को कही हुई, गौतम गणधर के द्वारा श्रेणिक राजा को कही हुई और श्रेणिक राजा के द्वारा अपनी रानी चेलना देवी को कही हुई भगवान महावीर गीता को कहा है। जक्की अक्की अब्बे और उसका पति राजा सैगोट्ट शिवमार प्रथम अमोघवर्ष इन दोनों दम्पतियों को उपदेश की हुई कुमुदेन्दु गीता, और उसी अक्षर से दश तक की निकलने वाले ऋग्वेद इत्यादि हजारो ग्रन्थ हुए हैं। परन्तु कोई उन्हें अभी तक देख भी नहीं पाया है।

प्रतिलोमांक भागहार

१८८८१९८३९५६२३२७६२५९५३९१८७३४१२९७०४५८४५२८०७३६८४७८३५४९३९३१५२९९००९४८६९२६६४३२०००००००००००००
४—१६०९९१९९२३३२६४४१७५३४२८६१३०४८४२५६९९९६६६३०६३४०८१६४६९९४७४२३१२९६
२७८२७८४७२२९६८३४५०६११०५७४२९२८७१३४५८७८६५०१०२७६६१८८४९९१८९२१६९४०
६—२४१४८७९८८४९८९६६२६३०१४२९१९५७२६३८५४९९४९९४५९५११२२४७०४९२११३४६९४४
३६७९०४८३७९७८६८२४३०९६२८२३३५६०७४९०८८३६५५५०७६५३९४१४४९९७८६९९९६
९—३६२२३१९८२७४८४४९३९४५२१४३७९३५८९५७८२४९२४९१८९२६६८३७०५७३८१७०२०४१६
५६७२८५५२३०२३३०३६४४१३८५४२०१७९१२६३४४०६३१८४८७१०४३९२५९६१६७९५५३४
१—४०२४७९९८०८३१६१०४३८३५७१५३२६२१०६४२४९९१६५७६५८५२०४११७४८६८५५७८२४
१६४८०५५४२१९१६९३२०५७८१३८८७५५८०६२०९४१४६६०७२८५८३९८०८४७४८२३७७१०८
४—१६०९९१९९२३३२६४४१७५३४२८६१३०४८४२५६९९९६६६३०६३४०८१६४६९९४७४२३१२९६
०—३८१३५४९८५९०४८८३०४३८५२७४५०९६३६३९४१७९९७७६५१७५८१६१४८००८१४५८१२९
९—३६२२३१९८२७४८४४९३९४५२१४३७९३५८९५७८२४९२४९१८९२६६८३७०५७३८१७०२०४१६
१९१२३००३१५६४३३६४९३३१३०७१६०४६८१५९३०७२८६२४९१३२४४२२६९९७५६०८७६
४—१६०९९१९९२३३२६४४१७५३४२८६१३०४८४२५६९९९६६६३०६३४०८१६४६९९४७४२३१२९६
३०२३८०३९२३१६९२३१७९७०२१०२९९८३९०२३०७६६१९९४२७९१६२५८०००२८१८५४५३६
७—२८१७३५९८६५८१२७३०६८५०००७२८३४७४५९७४९४१६०३६०९६४२८८२२४०७९९०४७६८
२०६४४४०५७३४७९५८७२८५२०९५७१४९१५७३३२६६६७१४९६२७८४८७४८०९३३८६७५९८६
५—२०१२३९९९०४१५८०५२१९१७८५७६६३१०५३२१२४९५८२८८२९२६०२०५८७४३४२७८९१२०
५२०४०६६९३२१५३५०९३४२८०५१८१०४१२०१७०८८६१३३५२४६६८९३४९९५८८६८६४
१—४०२४७९९८०८३१६१०४३८३५७१५३२६२१०६४२४९९१६५७६५८५२०४११७४८६८५५७८२४
११७९२६७१२३८३७४०४९५८८०८९८५४८३०५५९२०९६९५५६९३९४६४८१७५०९०३१०८४०३
२—८०४९५९९६१६६३२२०८९६७१४३०६५२४२१२८४९९८३३१५३१७०४०८२३४९७३७११५६४८
३७४३०७१६२१७४१८४०८२०९४६७८९५८८४३०७०९८६२४१६२२४२३९९९४०११६५९९२७५५२
९—३६२२३१९८२७४८४४९३९४५२१४३७९३५८९५७८२४९२४९१८९२६६८३७०५७३८१७०२०४१६
१२०७५१७९४२५७३४६८७५७३२४१०२२९४७२८८४९३७४९७२९७५५६२३४३७८४२२०७१३६
३—१२०७　९४२
००००　०००　००००००००००　०

अशुद्ध नवम शंक

चौवन अक्षर सम्मिलित

लब्धांक —
४६९१४०९४७५१२९३००००००००००००००
भगांक —
२३४५७०४७३७५६४६५०००००००००००००
शेषांक .—
०००००००००००००००००००००००००

(मंगल प्राभृत का दूसरा अध्याय, पद्य एक से बाईस तक)

१—४०२४७९९८०८३१६१०४३८३५७१५३२६२१०६४२४९९१६५७६५८५२०४११७५८६८५५७८२४००००००००००००
२—८०४९५९९६१६६३२२०८७६७१४३०६५२४२१२८४९९८३३१५३१७०४०८२३४९७३७११५६४८
३—१२०७४३१९४४९४८३१३१५०७१४५९७८६३१९२७४९७४९७५५६१२३५२४६०५६७३४७२
४—१६०९९१९९२३३२६४४१७५३४२८६१३०४८४२५६९९९६६६३०६३४०८१६४६९९४७४२३१२९६
५ २०१२३९९९०४१५८०५२१९१७८५७६६३१०५३२१२४९५८२८८२९२६०२०५८७४३४२७८९१२०
६—२४१४८७९८८४९८९६६२६३०१४२९१९५७२६३८५४९९४९९४५९५११२२४७०४९२११३४६९४४
७—२८१७३५९८६५८२/२७३०६८५००८७२८३४७४४९७४९४१६०३६०९६४२८८२२४०७९९०४७६८
८—३२१९८३९८४६६५२८८३५०६८५७२२६०९६८५१३९९९३३२६१२६८१६३२९३९८९४८४६२५९२
९—३६२२३१९८२७४८४४९३९४५२१४३७९३५८९५७८२४९२४९१८९२६६८३७०५७३८१७०२०४१६

अर्थ—प्रथम अध्याय मे 'हक' पाहुड का विषय आया है। पहले अध्याय के पाँचवें श्लोक में भी हक पाहुड का विषय आया है। भूवलय अक्षर भग कर गणित के नियमानुसार यदि कर लिया तो "ह" का अर्थ ६० और "क" का अर्थ २८ इन दोनो के परस्पर मे मिलाने से ८८ होता है। ६० मे जो बिंदी थी उस बिंदी का लोप हो गया अत वह नही दीखती। जो ८८ अंक उत्पन्न हुआ है उसको यदि आडी रीति से जोड दिया जाय तो ८+८=१६ होता है। १+६=७ हुआ इस गणना के अनुसार भगवान महावीर ने सात भंग के नियमो के अनुसार अनादि कालीन सपूर्ण द्वादशाग को इस गुणाकार की विधि से निकाल कर भव्य जीवो को उपदेश दिया था।

श्री भगवान् पार्श्वनाथ तक आये हुए समस्त द्वादशागो का विवेचन भगवान पार्श्वनाथ ने टक भग मे लिया था। १-१-१-३६ + वह टक भग भी अनादि द्वादशाग मे ही मिल गया है और आगे भी मिलता ही जाएगा। भगवान महावीर ने श्री पार्श्वनाथ भगवान के टक भग से लेकर हक भग से उपदेश किया। केवल ज्ञान की ऐसी महिमा है कि उन्होंने केवल ज्ञान से सम्पूर्ण वस्तुओ को एक साथ जानने की शक्ति केवली मे होती है, अत जैसे है वैसा ही यथार्थ पदार्थ द्वादशाग वाणी में कहा गया है।

अब ५४ अक्षर को घुमाने से इसके अन्दर वह महत्व निकलता है। इस विषय को ७ वें श्लोक में स्वयं कुमुदेन्दु आचार्य कहेंगे ॥६॥

ऊपर कहे हुए संपूर्ण नव पदों का अर्थात्—

१ सिरिसिद्ध, २ अरहन्त, ३ आचार्य, ४ पाठक ५ वर सर्व साधु ६ सद्धर्म, ७ परमागम, ८ चैत्यालय, ९ और बिम्ब ओंबत् ॥

इन नौ पदो में सात अंक से भाग देने से बिंदियां आती हैं। इस अंक का यही एक महत्व है। आज कल प्रचलन में आने वाले पाश्चात्य गणित शास्त्र मे नौ अर्थात् विषमांक को सम अंकों से भाग देने पर बिंदी नहीं आती उदाहरणार्थ नौ अंक को दो अंक से भाग देने पर ४ (चार) दफे नौ नौ आकर शेष नौ बच जाता है। पर इस तरह बचना नहीं चाहिए। यह पाश्चात्य गणित शास्त्र की अपूर्णता समझना चाहिए। यह भूवलय भगवान महावीर की वाणी होने के कारण और सपूर्ण अंश को जानने वाला होने के कारण ऊपर कहे हुए नौ अंक दो से विभक्त होकर बिंदी आ जाना और ७-६-५-४ इत्यादि पूर्ण अंको से विभक्त होकर शून्य शेष रहने वाली विधि को बतलाने वाले को सर्वज्ञ कहते हैं। ऐसे नौ अंक किसी अंक से विभक्त नहीं हुआ था

+ १।१।३६ ऐसा कहने से प्रथम खंड मंगल प्राभृत समझना चाहिए। दूसरा जो यह है कि इसे निशान श्लोक संख्या समझना चाहिए। आगे इसी तरह क्रम समझना चाहिए।

शेष रह जाय तो वह सर्वज्ञ वाणी कैसे होगी ? इस जटिल प्रश्न का, इस मुख्य प्रश्न का अगर हल हो जाता है तो जैन धर्म सार्व धर्म हो सकता है। परन्तु जैन धर्म सार्व धर्म होते हुए भी वह ताले में या बिस्तर मे बद होकर गुप्त रूप में ही रह गया। उसका दर्शन अन्य लोग या जैन विद्वानो की आंखों के सामने आ नही पाया। यह दोष केवल जैन विद्वानो पर ही नहीं है ।विज्ञानादि साधनादि वस्तुओ के सग्रहालय करोडो रुपये व्यय करके अपने हाथ में रहने वाले पाश्चात्य विद्वानो के हाथ से भी नही हुआ परन्तु श्री भूवलय ग्रन्थ का अध्ययन परम्परा जैन विद्वानो के द्वारा चली आती तो जैन धर्म का भी उद्धार होता जाता और सारे ससार का भी उद्धार हो जाता।

इस श्लोक के द्वारा यह निष्कर्ष निकला कि नौ अ क सात से विभक्त होकर शून्य आ जाता है। ये कैसे ? जैसे आचार्य कुमुदेन्दु स्वयमेव प्रश्न उठाकर उसका समाधान करते हैं कि यह शका परमानन्द वाली है, ऐसा बताते हैं। इस उत्तर का समाधान करते हुए आचार्य ने ऊपर दी हुई गणित विधि को बतलाया ॥७॥

नौ अ क को अपने नीचे रहने वाले ८ आठ ७ सात ६ छ ५ पाच चार ३ तीन २ दो इन सख्याओं मे विभाग होने की विधि को आचार्य ने करण सूत्र में ऐसे कहा है और एक सख्या से सब सख्या का विभाग होता ही है।

नौ और चार मिल कर ००००००००००००० ये तेरह बिंदी ग्रन्थ में रखना चाहिए और पहले बिंदी मे बाये भाग मे २, ३, ४, ६ यहा तक आठ श्लोकों का अर्थ पूर्ण हुआ।

गौतम गणधर से जब किसी जिज्ञासुने प्रश्न किया कि भगवान के करण सूत्र की विधि क्या है ? ऐसा प्रश्न करने से गौतम गणधर ने उत्तर में कहा कि करण सूत्र अनेक हैं उनमें से एक यह करण सूत्र है। इस सूत्र से जो अ क निकले हुए हैं उन सभी अक्षरो को द्वादशाग वाणी ही समझना चाहिए। कुल अ क चौरासी स्थान में ही बैठा है सबका जोड़ लगाने से तीन सौ उनत्तर (३६९) अंक होते हैं। अंकों को पुन: जोड़ने से १८, अठारह को पुन जोडने से ९ होते हैं जैसे ३+६+९=१८ अब अठारह आ गये, इस १८ को १-८-९ इतने बडे अंश अर्थात् चौरासी स्थान पर बैठे हुये सब के सब महान् अंक नौ के अन्दर गर्भित हो गये हैं यह कितने आश्चर्य की बात है ?

यह बात आश्चर्य की नहीं है बल्कि इसे भगवान के केवल ज्ञान की महिमा समझना चाहिए।

५४ अक को सयोग भग से प्रतिलोम के क्रम से ५४ बार गुणा करते आने से यह अंक निकल आता है। इसकी विधि इस तरह है कि—

६४×६३=४०३२ इसमें दुनियां की सम्पूर्ण भाषाओं के दो अक्षर का सम्पूर्ण शब्द निकल आते हैं। एक बार आया हुआ शब्द पुनरुक्त नहीं आता है।

उदाहरणार्थ—

१ को अ और ६४ को फ ये दोनो मिलकर (अ क) होता है यह भाषा इगलिश है। सभी लोग ऐसा कहते हैं कि इगलिश भाषा ईसा मसीह के समय से प्रचलित हुई है इसके पहले ग्रीक भाषा थी इङ्गलिश नही थी। परन्तु भूवलय ग्रन्थ से साबित होता है कि इङ्गलिश भाषा पहले भी मौजूद थी। भगवान महावीर की वाणी के अन्दर भी यह भाषा मौजूद थी। पार्श्वनाथ भगवान की वाणी मे भी मौजूद थी। इसी तरह केवल भगवान वृषभदेव तक ही नहीं परन्तु उससे भी पहिले से अनादि काल से यह भाषा मौजूद थी अगर यह बात भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ से उनको मालूम हो जाय कि यह इङ्गलिश भाषा अनादि काल से मौजूद है तो लोगो को कितना आनन्द होगा। इसी तरह कानडी, गुजराती, तेलगु, तामिल इत्यादि नयी उत्पन्न हुई हैं ऐसा कहने वालो को भी इस विषय को जानना चाहिए।

अब देखिये इसी गणित पद्धति के अनुसार कही इङ्गलिश भाषा का शब्द निकाल कर देते हैं वह इस प्रकार है कि—

(of)	4032			
	2	फिराने से	fo	64 and 1
	4030			
(off) 2nd 64	2	,,	foo	,, ,, 2
	4028			
(if) 4 ,,64	2	,,	fi	,, ,, 4
	4026			

ऊपर कहे हुए अनुसार गुणन फल से ४०३२ निकला उस में १ और ६४ मिला दिया तो इंगलिश का (fo) आया अब इसमे से २ दो घटाइये तो ४०३० बाकी बचा और बचा हुआ ४०३० ये उलट कर ६४ और १ मिला दिया जाय तो (fo इस fo को first, for furlang.

इस तरह इङ्गलिश वाक्य रचना करने की मिसाल मिल जाती है। अब बचा हुआ ४०३० से और दो घटाने से ४०२८ वास होता है। इसमे से दो दीर्घ 'आ' और ६४ को मिलाने से o ff ⁘ इन चार बिन्दुओ का खुलासा ऊपर के मुखपत्र चार्ट पर देखो। अब इसको उलटा करने से '⁘' 'आ' ffo होता है इससे ⁘ फादर father fast इस तरह वाक्य रचना करने के लिए शब्द निकल आते हैं। अब बचा हुआ ४०२८ में और दो निकाल देने से बचा हुआ २६ छब्बीस बच गया है। इसी तरह इसको भी इसी रीति से करते जायें तो अन्त में चार बिंदी आ जाते हैं। इसलिए इस भूवलय का गणित प्रामाणिक है ऐसा सिद्ध होता है। आगे इसी तरह करते जाये तो तीन अक्षर का शब्द निकल आता है। कैसे निकल आता है? उस विधि को बतलाते हैं—

४०३२ को × ६२ से गुणा किया जाय।

८०६४
२४१९२

२४१९८४ भगवान महावीर की दिव्य ध्वनि निकल आयी। तीन लोक और तीन काल में रहने वाले तथा होने वाले समस्त भाषाओं की और समस्त विषयों की तीन अक्षर के शब्द निकल आते हैं। इन तीन अक्षरो की वाणी ही द्वादशाग वाणी है ऐसे कहते हैं। भगवान की तीन अक्षरो की वाणी को छोड़कर अन्य प्रचलित किसी वेद में भी देखने में नही आता है, इसलिए यह भूवलय ग्रथ प्रमाण है। उसका क्रम इस तरह से है कि—

'कमल, ऐसा एक शब्द लीजिये—

कमल	२८ ५२,५५,
मलक	५२,५५.२८,
लकम	५५, २८,५२,
कलम	२८,५५,५२,
मकल	५२,२८,५५,
लमक	५५, ५२,२८

अब अनेकान्त दृष्टि तथा आनुपूर्वी क्रम से देखा जाय तो २८ को १ बावन को २, और ५५ को तीन माना जाय तो

१२३
२३१
३१२
१३२
२१३

३२१ इस रीति से अन्त तक करते जायें तो छः oooooo बिंदी आयेंगी इसलिए भगवान की दिव्य ध्वनि को भूवलय गणित के प्रमाण में अनेकांत से यह सत्य है एकात से नही हैं। भगवान की दिव्य ध्वनि के द्वारा बारह अंग शास्त्र का अभाव हो गया इस समय वह शास्त्र मौजूद नहीं है। ऐसे कहने वाले दिगम्बर जैन विद्वानो की यह असमझ है। श्वेताम्बर आदि समस्त जैन जैनेतर सभी विद्वान् अपने पास बचा हुआ थोड़ा बहुत अंकात्मक श्लोक को ही भगवद् वाणी मानते हैं। तो भी भूवलय ग्रंथ में कहा हुआ गणित पद्धति के अनुसार एक भी श्लोक नहीं निकलता है। इसलिए वे सब जो श्लोक से परिमित सख्या वाले हैं वे एक भाषात्मक कहलाते हैं। इसलिए वे परिमित श्लोक भगवान की दिव्य ध्वनि नहीं कहलाते हैं।

दिगम्बर विद्वान लोग कहते हैं कि 'हमारे पास इस समय अंग ज्ञान की व्युच्छुत्ति हुई है'। उनका कहना भी सच है। क्योंकि सम्पूर्ण विषय और सम्पूर्ण भाषाओ को बतलाने वाले कोई भी साधन रूप बतलाने वाले की भूवलय ग्रन्थ की अंक से पढ़ने की परिपाटी तेरह सौ वर्षो से अर्थात् श्री आचार्य कुमुदेंदु के समय से आज तक अध्ययन अध्यापन की परिपाटी बंद होने के कारण अंगादि विच्छेद मानने लगे थे। अब यह भूवलय

ग्रन्थ से निकलकर ऊपर लिखा हुआ गणित पद्धति के क्रम से महान् मेधावी ही नहीं कि सामान्य पढे लिखे हुए मामूली आदमी भी आसानी से भूवलय ग्रन्थ जैसी द्वादशांग वाणि को आसानी से निकाल कर दे सकता है। अब चार अक्षर भंग आप लोगो को आसानी से निकालने वाली विधि निम्न प्रकार बतावेंगे इससे आप लोगों की समझ मे आयेगा।

४ अक्षर के भंग

आ म ल क

१)	१ २ ३ ४	आ म ल क	२)	२ ३ ४ १	म ल क आ
३)	३ ४ १ २	ल क आ म	४)	४ १ २ ३	क आ ल म
५)	२ ३ २ ५	क ल म आ	६)	३ २ १ ४	क ल म आ
७)	२ १ ३ ४	म आ ल क	८)	१ ३ ४ २	आ ल क म
९)	३ ४ २ १	ल क म आ	१०)	२ १ ४ ३	म आ क ल
११)	१ ४ ३ २	आ क ल म	१२)	२ १ ३ ४	म आ ल क
१३)	३ २ ४ १	ल म क आ	१४)	४ २ ३ १	क म ल आ
१५)	२ ३ १ ४	म ल आ क	१६)	१ ३ २ ४	आ ल म क
१७)	४ ३ ० २	क ल आ म	१८)	३ १ ४ २	ल आ क म
१९)	२ ४ ३ १	ल आ क म	२०)	० २ ४ ३	आ म क ल
२१)	२ ४ ३ ०	म क ल आ	२२)	२ ० २ ४	ल आ म क
२३)	४ ० २ ३	क आ म ल	२४)	० ४ २ ३	आ क म ल

इस चार अक्षर के समस्त अक की राशि में सम्पूर्ण विश्व के अक राशि आगये हैं कोई बाहर बाकी नही रह जाता है।

आगे के उत्सर्पिणि काल मे तीर्थंकर रूप मे होने वाले समतभद्रादि महान मेधावी बड़े बडे आचार्यों ने भी अपने ग्रन्थ मे या भविष्य मे होने वाले महान ग्रन्थ में जो ४ अक्षर की शब्द रचना होती है वह इस चार अक्षर रूपी भूवलय में अब ही मिल जाता है। इसी तरह—

"क म ल द ल" ये पाच अक्षर हैं—

ऊपर के अनुसार पाच अक्षरो को अपुनरुक्त रूप से फिराते आयें तो बहत्तर शब्द निकल आयेंगे। ७३ शब्द नहीं हो सकते हैं कोई ७३ निकाल कर रखे तो वह पुनरुक्त हो जाता है इसलिऐ भगवान महावीर की वाणी जितनी छोटी हो उसमें पुनरुक्त दोष नहीं आता है। ऊपर कहे जैसा अगले आने वाले उत्सर्पिणी काल में जितने तीर्थंकर होंगे उनकी सब दिव्य ध्वनि में निकलकर आने वाले अक्षर का भंग इस भूवलय में अभी भी मिल जायगा, यही अनेकान्त सत्य है।

इसी विधि से आगे बढते हुए छ अक्षर "कमल" इस शब्द को अपुनरुक्त रूप से घुमाते जाएं तो १२० शब्द निकलकर आएगा ऊपर कहे जैसा ही इसको भी मान लेना। इसी विधि से आगे बढ़ते हुए सात अक्षर "कमल दल रज" इस शब्द को अपुनरुक्त रूप से घुमाते आए तो ७२० शब्द निकलकर आएगा उसमें पहिले व अन्त के दोनों शब्द पुनरुक्त रीति से आ जाते हैं इसलिए वह निकाल देने से ७१८ भाषा रह जाती है, वह इस प्रकार है.—

वह क्रम इस प्रकार है—

१२×२×३×४×५×६ = ७२०—२=७१८ और ८ अक्षर की शब्दराशि को निकालकर आपके सामने रखना हमारी बुद्धि के बाहर है ऐसा रहने मे इसके ऊपर का ९-१०-११-१२ इसी रीति से बढते हुए अक्षरों के स्वरूप को मिलाते हुए शब्द राशि बनाते जाना इस काल मे बहुत कठिन है इसी विधि से ऊपर कहे हुए ५४ अक्षगे का एक शब्द निकालना हो तो इस अध्याय मे आये हुए ८४ स्थान हैं जो ८४ स्थान मे आयी हुई अंक राशि ५४ अक्षरो का समूह है उस राशि से अपुनरुक्त रूप से ५४-५४-५४-५४ ऐसा अक्षर निकालते आए तो ८४ शून्य आजायगा ००००००००००००००-०००००००००००००००००००००००००००००००००००००००-००००००००००००००००००००००० जब गिनती में शून्य आ गया तो आचार्य जी का कहना सत्य है ऐसा मानना ही पडेगा। ऊपर लिखा हुआ क्रम अर्थात् ८४ स्थान प्रतिलोम क्रम है।

६४×६३×६२×६१ इस रीति से ११ अंक तक आगए तो ५४ बार हो जाता है।

अनुलोम क्रम जैसे ऊपर १×२×३×४×५×६ ऐसे क्रम ५४ तक लिखा जाए तो शब्द राशि की उत्पत्ति आती है जितने बार की प्रतिलोम की संख्या है उतने बार की अनुलोम क्रम सख्या के भाग देने से उतना ही शून्य आजावेगा अब प्रतिलोम क्रम ११ और अनुलोम क्रम ५८ तक हम आए हैं। अब प्रतिलोम क्रम ६४ से लेकर १ तक आए अनुलोम क्रम १ से लेकर ६४ तक रखें तो ८२ अंक हो जाता है वह फिर बताया जावेगा।

अनुलोम क्रम ७२ अंक का आता है ८४ प्रतिलोम। ८४ अक को अनुलोम ६१ अक से भाग करने से पूरण आने के लिए जो कोष्ठक बतलाया गया है उस रीति से कर लेना। अर्थात् अनुलोम ७१ अंक को २ से गुणा करे तो जो अक आता है उसको २ मानना इसी रीति से ३-४-५-६-७-८-९ तक कर लेना तब भाग देते आना जब भाग देते आवें तो ऊपर से नीचे जिस सख्या से भाग होता है उस संख्या को आडा पद्धति से लिख लें जो अंक आता है उसको लब्धांक कहते हैं। उसको आधा करें तो सारी शब्द राशि हो जाती है। अवधि ज्ञान सम्पन्न महा मुनि और देव देवियाँ और कुमति ज्ञान वाले नारकी जीव के लिए इतना ज्ञान है। आजकल सीमंधर भगवान् के समोशरण में रहने वाले ऋद्धि धारक मुनि ही इस अंक से निकलने वाला अर्थात् ६४ अक्षर का एक शब्द ६३ अक्षर का एक शब्द ६२ अक्षर का एक शब्द जान सकते हैं। हम लोगों के ज्ञान-गम्य नहीं हैं। परन्तु आचार्य कुमुदेन्दु ने इस समस्त विधि को गणित पद्धति से जान लिया था। इसलिए उनका परम पूज्य उस मूल धवल सिद्धान्त का रचयिता आचार्य वीरसेन अपना शिष्य होते हुए भी इतना महान भूवलय जैसे ग्रंथ रचना से उनकी महान मेधा शक्ति को देख करके अपने शिष्य को ही अपना गुरु मानकर शिष्य बन गया। सो ऐसा महान प्रसग दिगम्बर जैन साहित्य में नही मिलता है। लेकिन आचार्य जी को सल्लेखना लेने के समय में अपने शिष्य को अपना गुरु बना करके शरीर त्याग करने की परिपाटी मिलती है और चालू भी है परन्तु जीवित काल में ही शिष्य बनकर रहना महान गौरव की बात है।

ऊपर कहे हुए के अनुसार प्रतिलोम गुणा कर ५४ अक्षर की सरमाला नामक माला रूप में इसकी रचना हुई है। अब आगे आने वाले अनुलोम क्रम से आने वाले द्रव्यगम है ऐसे जानना चाहिए।

भावार्थ—

इसकी व्याख्या विस्तार के साथ ऊपर की गई है। इसलिए पुनरुक्त यहाँ नही किया गया है।

४७९९८०७३१६१०४३७३५७१५३२६२१०६४१४९९१६५०६५७५२०४११७४८६८५५७८२४००००००००००००० इस अक के पूर्ण वैभव का अवयव अनुलोम पद्धति अनुसार है।

इस अंक में ७१ अंक हैं इस अक को आडा करके मिला दें तो २६१ होता है। इसको पुन: जोड दिया जाय तो ९ हो जाता है।

अर्थ—इस प्रकार नौ अक में अन्तर्भाव हुआ इस अनुलोम क्रम के अनुसार ऊपर कहा हुआ प्रतिलोम के भाग देने से जो लब्धांक आता है वही भवभय को हरण वाले अक हैं। ऊपर कहे हुए कोष्ठक में रहने वाले प्रत्येक लब्धाक को लेकर आड़ा करके रख दिया जाय तो ४६९१४९४७५१२९३००००००००००००० यही ५४ अक्षर का भागाहार लब्धांक यही अक आडा रखकर मिला देने से ६४ होता है। इस ६४ को मिला देने से से १० होता है। दस मे भी १ एक ही है अर्थात् नम्बर १ अक्षर है और जो बचा हुआ बिंदी है। यही एक भंग से निकलकर आया हुआ भगवान के नीचे रहने वाले बिंदी रूप कमल हैं।

भावार्थ—

गणित की दृष्टि से देखा जाय तो ऊपर के कहे हुए प्रतिलोम रूप छोटी राशि "नौ"। इम नौ से भाग देने मे अर्थात् नौ को नौ से भाग देने से बिंदी आना था। परन्तु अब यहा दम मिल गया यह आश्चर्य की बात है। गणित के सशोधन करने वाले गणितज्ञ विद्वानों के लिए महान निधि है इसी लब्धांक को आधा करके कुमुदेंदु आचार्य भगाक को निकालने की विधि को बतलाने वाले तीन श्लोको में 'पाच' मिल जाता है। वह और भी आश्चर्य-कारक है। ९ से ९ को भाग देने से शून्य आना था। लेकिन ऊपर दस आया है नीचे पांच

आया है, बस व्याख्यान से इसका निष्कर्ष यह निकलता है कि ९ को पाच से भाग देने से शून्य आ गया है। पाश्चात्य गणितज्ञ लोगो के मत मे ९ तो ५ मे विभक्त नहीं होता है और समाक से विषमाक का कभी भाग नही होता है ऐसा कहने का उन लोगों का अभिप्राय है। उस अभिप्राय का निरसन करने के लिए इतना बडा विस्तार के साथ लिखा हुआ भगवान महावीर की अगाध महिमाओसे अनेकातदृष्टि से देखा जाय तो विषमाक हुआ। ९ को समाक दो चार आठ और विषमाक तीन-पांच-सात, से भी नौ विभक्त होकर शून्य आता है। गणितज्ञ विद्वानो को इस विषय पर कहीं वर्षो तक बैठकर खोज करनी चाहिए जैसे हमने अर्थात् जैनियो ने माना है उसी तरह जाना जाय तो आनन्द तथा प्रशंसनीय माना जायेगा।

रत्नत्रय मे चारित्र तीसरा है, अनियत वसतिका और अनियत विहार अर्थात् कुमुदेन्दु आचार्य के और उनके महान् विद्वान मुनि शिष्य तथा उनके अन्य चतु सघ के मुनि जनों के लिए खास नियत वास करने के लिए घर नही था। अर्थात् वसतिका इत्यादि कोई स्थान नही है। और उनको किसी गाँव या किसी अन्य स्थान मे पहुंचने की भी कोई निश्चित योजना नही थी। उनके लिए नियमित रूप नही है। वे हमेशा गोचरी वृत्ति अर्थान् जिस प्रकार गाय या भैस घास या रोटी देने वाले से राग द्वेष न करके चुपचाप आहार खाती है उसी तरह दिगम्बर साधु किसी खास व्यक्ति के या अन्य काला या गोरा व्यक्ति को ख्याल या अपेक्षा न करके केवल उनके द्वारा शुद्ध आहार राग द्वेष भाव से रहित लेते हैं।

कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि—

गृहस्थ धर्म में अव्रती, अणुव्रती तथा महाव्रती इस तरह पात्र के तीन भेद बतलाते हैं पहले अव्रती में पात्रापात्र दोनो हैं। असयंमी अपात्र मे शुद्धाशुद्ध के विचार से रहित होकर भक्ष्य और अभक्ष्य का कोई नियम नही रहता है, और पशु के समान उनके खान पान का हिसाब रहता है। वैसे आज कल के लोग आहार विहार का कोई विचार न करके एक दूसरे की झूठन को भी नही छोडते हैं और न उसको अशुद्ध मानते हैं और न इनको रात और दिन का ख्याल आता है। यही चिन्ह अपात्र अविरत मिथ्यादृष्टि का है।

कुमुदेन्दु आचार्य ऐसे गृहस्थ श्रावक के बारे में कहते हैं कि—

ये लोग गधे के समान खाना खाते हैं। उसी प्रकार आजकल के गृहस्थ रहते हैं जब खेत में किसान बीज बो देता है तब शुरू में धान का अंकुर उत्पन्न होकर ऊपर आना आरम्भ होता है। तब उस समय कदाचित गधा आकर उसको खाने लगे तो सबसे पहले उसका मुह धान की जड तक घुसकर जड सहित उखाड लेता है और उसके साथ मिट्टी का ढेर भी आता है। उस समय में गधा अपने मुंह मे लेकर घास को खाने लगता है तब मिट्टी भी उसके साथ जाती है। जब मिट्टी साथ जाती है तब केवल बीच मे से खाकर दोनो तरफ छोड देता है। तब दोनों तरफ छोडे हुए को कोई ग्रहण नहीं कर सकता और दोनो तरफ से भ्रष्ट होता है। उसी तरह अव्रती अपात्र मनुष्य आप जो खाते हैं वह खाना अणुव्रती या महाव्रती नही खा सकते हैं। इसलिए उनका खान पान हेय माना गया है। ऐसा आहार खाने से कुष्ठादिक अनेक रोग होते हैं जैसे कहा भी है कि—

मेधां पिपीलिका हन्ति यूका कुर्याज्जलोदरम्।
कुरुते मक्षिका वान्ति कुष्ठरोगं च कोकिलः।
कण्टको दारुखण्डञ्च वितनोति गलव्यथाम्।
व्यञ्जनांतर्निपतितस्तालु विधृति वृश्चिकः॥

भोजन के समय चीटी अगर पेट मे चली जाय तो बुद्धि नष्ट होती है, जूं पेट मे चली जाय जलोदर रोग उत्पन्न होता है, मक्खी पेट में चली जाय तो वमन अर्थात् उलटी करा देता है, मकड़ी पेट में चली जाय तो कुष्ठ रोग होता है।

छोटे काटे या छोटे तिनके इत्यादि पेट में चले जायं तो कंठ में अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

इसी तरह मार्कंडेय ऋषि ने भी कहा है कि —

अस्तंगते दिवानाथे आपो रुधिरमुच्यते।
अन्नं मांससमं प्रोक्त मार्कण्डेयमहर्षिणा॥

मार्कंडेय ऋषि ने सूर्यास्त होने के बाद अन्न ग्रहण करना मांस के समान तथा जलपान करना रुधिर के समान कहा है। इसलिए उत्तम बुद्धिमान

मनुष्य को रात्रि को अन्न और पानी का त्याग कर देना चाहिए ।

ऊपर के कहे हुए जो चारित्र की हानि या नाश करने का साधन हैं उन सबको त्याग कर जब अणुव्रती तथा क्रम से महाव्रती बनता है तभी शुद्ध चारित्र को प्राप्त कर सकता है ।

शुद्ध चारित्र केवल महाव्रती मुनि ही पालन कर सकता है । यह शुद्ध चारित्र निरतिचार अठारह हजार शीलो के तथा चौरासी लाख उत्तर गुणो के पालने से होता है । इस चारित्र के अंक भग को निकालने की विधि को ऊपर कहे हुए गणित से लिया है ।

यदि आत्मतत्व की दृष्टि से देखा जाय तो समस्त भूवलय स्वरूप अर्थात् केवली समुद् घात, लोक पूरण समुद्घात रूप आत्मतत्व व्यवहार और निश्चय दो विभाग से होता है । इसी तरह ऊपर कहा हुआ भागाहार लब्धाक को भी दो भाग करने से ६४ शेष रह जाता है, ऐसा कुमुदेंदु आचार्य कहते हैं ।

प्रतिलोम से लिखा हुआ "**रुदळिरते**" प्रतिलोम से पढते जाय तो "**तेरळिदरु**" इस तरह शब्द बन जाता है । यह "**रुदळिरते**" शब्द किस भाषा का है सो हमें पता नही लगा । जो ऊपर लब्धाङ्क आया है वह ६४ है, उसको आधा किया जाय तो ? ६८ होता है । इसकी विधि इस तरह है —

२३४५७४७३७५६४६५००००००००००० इससे इसका निष्कर्ष यह निकला कि अनेकात दृष्टि से देखा जाय तो ६४ से ६८ भाग होता है ऐसा आचार्य ने बतलाया है ।

इसका आचार्यों ने भगाक ऐसा कहा है । गणित विधि बहुत गहन होने के कारण पुनरुक्ति दोष नही आता । महान मेधावी तपस्वी हैं वे इसे पुनरुक्त न मानकर जो रस इस गणित से आता है उस रस को आस्वादन करते हुए आनन्द की लहर में मग्न हो जाते हैं ।

प्रतिलोम को अनुलोम से भाग देते समय लब्धाक के इसी विधि मे अन्तिम भागांक में जो गलती है उस गलती को ऊपर के कोष्ठक मे देख लेना ऊपर के लब्धाक गणित के अन्त में सभी शून्य ही आना चाहिए था परन्तु नही आया, अंक ही आ गया है ।

१२०७५१७९४२५७३४६८७५७३२४१०२२९४७२८८४९३७४९७२९७५५६२३४३३८४२९०७१३६१२०७५१७९४२५७३४६८७५७३२४१०२२९४७२८८४९३७४९७२९७५५६२३७८४२९०१३६१२०७०००९४२००००००००००००००००००००००००००७४९७२९७५५६०३०००००००००० यह जितने चिन्ह दिये गये हैं वे सभी अंक ९ आना चाहिए था परन्तु यहाँ ९ नहीं आया है ।

अर्थ—प्रतिलोम '९' और अनुलोम ९ से भाग देते समय जो गलती आती है उस गलती को बतलाने के लिए जितनी गलती आयी है उतने अंक नीचे यह (०००) चिन्ह दिया गया है । इस गलती को जान बूझकर ही हमने डाला है और आचार्य ने इसको ऊपर छोड़ दिया है । क्योकि यदि ऐसे गलत अंक को नही रखते तो संस्कृत भगवद्गीता नही निकल सकती थी और न प्राकृत भगवद् गीता हो । इसीलिए इस अक्षर को बतलाने के लिए जैन ऋग्वेद के समान महर्षि के द्वारा रचित अनादि कालीन ३६३ मत जैन ऋग्वेद में नही निकलते । अनादि ऋग्वेद के सम्बन्धी १० मडल के अष्टक ८८८८८८८८८८ अर्थात् श्री नेमि गीता के प्रथम अध्याय का ७ वा सूत्र—

"**सत्संख्याक्षेत्र स्पर्शनकालांतरभावाल्पबहुत्वैश्च**"

इस सूत्र के अनुसार आठ अनुयोग द्वारा ऋग्वेद नही आता था । वही ऋग्वेद अनादि कालीन गणित को नही मिलता था । जैन पद्धति के वाल्मीकि ऋषि ने रामायण के अंक के अन्त मे स्तवनिधिब्रह्म देव की स्तुति के द्वारा पहले होने वाले आजकल के वैदिको में प्रचलित रहने वाले, साम्य वेद के पूर्वाचिका और उत्तराचिका नामक महान् भाग नही निकल सकता था । और पूर्वाचिका के अर्थ के अन्दर ही उत्तर अचिका मिलकर हमारे गणित पद्धति के अनुसार सागत्य कानडी पद्य के अनुसार नही आ सकता था । उसके ६५ पद्य के १ अध्याय मे प्रत्येक श्लोक मे ६५ अध्याय होकर ६५ सागत्य पद्य में पुन: ६५ सागत्य पद्य आडा और सीधा मिलाकर १०० श्लोक वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत देखने मे नही आ सकता था ।

रामायण के बालकांड, अयोध्या काड और अरण्य काड ये तीनों काड

देखने में नही आ सकने थे। इसके अलावा और भी कितनी अद्भुत साहित्य कला को हम गणित के द्वारा नही छुडा सकते और जैसे कितने ही रस-भरित काव्य (साहित्य) के नष्ट होकर गिर जाने से यहा हमने गलत सख्या को रख दिया है। इसका उत्तर आगे दिया गया है।

१७६ श्लोक के नीचे दिये गये प्रतिलोम१७१६५४३९९४६०२११६०-२२८६७११८८४९२०८८२२३४९५७०९७६०७७०७५९५३९९३७८ ४३५४-६३१६९९३३३१२०००००००००००० हैं। आगे उस जगह पर २९ अक स्वच्छ चन्द्रमा की चादनी के समान निकलकर आते हैं। यहा तक २४ श्लोक पूर्ण हुए।

अब आचार्य कुमुन्देदु ने स्याद्वाद का अवलम्बन करके गणित के बारे मे आनन्द दायक उत्तर देते हुए कहा कि कोई गलती नही है। क्योंकि जिस गलती से महत्व का कार्य साधन होता है ऐसी गलती को गलती नही माना जा सकता जिस छोटी गलती से ही महान् गलती होती है उसी को गलती माना जाता है। परन्तु यहाँ ऐसा नही है यह मगल प्राभृत है, अत यहाँ अमगल रूप गलती नही आनी चाहिए ऐसे यदि तुम प्रश्न करोगे तो ऊपर के कोष्ठक मे दिए हुये (४६९१) इत्यादि रूप से ऊपर से नीचे उतरते हुए लब्धाक को देखो उसमे किसी प्रकार की गलती नही दीखती। गलती के बदले मे अतिशय महिमा के (१) अक की उत्पत्ति होती है यदि उसका आधा किया गया तो '६८' आकर '९' नामक ५ अको से भाग हो गया। यह अतिशय धवल की महिमा नही है क्या? ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य भूवलय ग्रन्थ मे लिखते है। इस प्रकार २५ श्लोक तक पूर्ण हुए।

मन्मथ का बाण सीधा नही है वह तो टेडा है मन्मथ का पुष्प वाण स्त्री और पुरुष के ऊपर छोडाजाय तो तीर जैसे हृदय मे घुसकर बार वार वेदना उत्पन्न करता है उसी तरह मन्मथ के वाण भी स्त्री पुरुष के हृदय मे घुस कर हमेशा भोग की तीव्र वेदना उत्पन्न कर देते हैं। जिस तरह पुष्प मृदु होने पर भी पुरुष या स्त्री को अपनी सुगन्धि से वार बार सुगन्धित करता है उसी तरह मन्मथ का वाण मृदु होने पर भी स्त्री या पुरुष के भोगने की वेदना को उत्पन्न कर देता है। इसी तरह छोटी छोटी गलती से अनेक प्रकार की महान् २ गलत्ती होती हैं। भोग का विरोध करने वाले योग को योग का विरोध करने वाले भोग को समान करके ॥ २६ ॥

प्रति दिन बढाई जाने वाली अतिशय आशा रूपी अग्नि ज्वाला की शक्ति को दबाकर उसके बदले में उपमा रहित योगाग्नि रूपी ज्वाला को बढाते हुए कर्म को नाश करने मे सिद्ध हुआ गणित का पाँच अंक योगी लोगो के लिए पञ्च अग्नि के समान है ॥ २७ ॥

ये पञ्चाग्नि रूपी रत्न ही पाँच प्रकार की इन्द्रिया हैं ॥२८॥

जिस कार्य की सिद्धि के लिए मनुष्य पर्याय को हमने प्राप्त किया उस पर्याय से अद्भुत लाभ होने वाले कार्य को सतत करते रहने से कर्म का बंध नहीं होता परन्तु छोटे छोटे सासारिक कार्यों के करने से कर्म का बंध होता है ॥२९-३० ॥

इस गणित की जो मनुष्य हमेशा भावना करता है उनके हृदय में दिगम्बर मुद्रा या भगवान जिनेश्वर की भावना हमेशा पूर्ण रूप से भरी रहती है ॥३०॥

तर्क मे न आने वाले और स्वात्म-चितवन मे ही देखने या आने वाले इस पाँच अ क की महिमा केवल अनुभव-गम्य है ॥ ३२ ॥

तीसरा दीक्षा कल्याण होने के बाद छद्मस्थ अवस्था मे माने गये जिनेश्वर को यह भक्ति है ॥ ३३ ॥

यह जो पाँच अ क है वह जैन दिगम्बर मुनियो को देखने में आया हुआ है ॥ ३४ ॥

ख्याति को प्राप्त हुआ यह अ क विज्ञान है ॥ ३५ ॥

यह छोटे छोटे बालको मे भी महान् सौभाग्य को प्राप्त कर देने वाला है ॥ ३६ ॥

जिनेन्द्र देव ने गणित के इस अ क के ऊपर ही गमन किया है अर्थात् यह क्षेत्र भी है ॥ ३७ ॥

बड़े २ कर्म रूपी शत्रु का नाश करने वाला आत्मस्वरूप नामक हयभूवलय है ॥ ३८ ॥

श्री भगवान महावीर स्वामी को वृद्धि समान मह अध्यात्म-साम्राज्य है ॥ ३९ ॥

मन रूपी सिंह के ऊपर आकाश गंगा के समान अधर भाग मे स्थित कमल है ॥ ४० ॥ २८ से लेकर ४० तक अन्तर पद्य को नीचे दिया जाएगा यह प्रत्येक चौथे चरण का अक्षर है। इससे पहले २७ श्लोको के पहले तीन चरणो को मिलाकर पढ लेना चाहिए।

अर्थ—जैसे उत्तम सहनन वालों का शरीर है। वैसे इस काव्य की रचना उत्तम है।

इस काल के पृथ्वी के भव्य जीवो के भाव मे करुणा अर्थात् दया के अप्रतिम रूप अर्थात् केवली समुद्घात को बतलाने वाला यह काव्य है और प च परमेष्ठियों का यह दिव्यरूपी चरण भूवलय काव्य है और ऊपर का आया हुआ पाच का चिन्ह है ॥ ४३ ॥

जगल में तप करके आत्म-योग द्वारा अपने शरीर को कृश करते समय श्री जिनेन्द्र देव का अंतिम रूप ही मनमे धारण करना सर्व साधु का अन्तिम रूप है अर्थात् अरहंत सिद्ध आचार्य और उपाध्याय ये चार और जिन धर्म जिनागम, जिन बिब तथा जिन मदिर, इन दोनो चार च'' अ को को मिलाने वाला बीच का पाँच अक है। यदि चारो ओर देखा जाय तो पाँच ही अक है। इस रीति से ही काव्य की रचना हुई है। यही साधु समाधि है।

इसके आगे ४३ से ५५ श्लोक तक के अन्तर पद्यो में देख ले।

अर्थ—इन पाँच को सख्यात से ४३ असँख्यात से ॥ ४४ ॥ तक और बहुत बड़े अनन्त अ क से अर्थात् इन तीनो से पाँच को जानना चाहिए ॥ ४५ ॥ यह जिनेन्द्र भगवान का ही स्वरूप दिखाया गया है ॥ ४६ ॥

वह साधु मन वचन से अतीत यानी अगोचर है ॥४७॥

वह साधु दुष्ट कर्मों को भस्म करने के लिए दावानल के समान है।४८।

ऐसा ज्ञानी ध्यानी साधु ही वास्तविक योगी है ॥४९॥

ऐसा ही योगी साधु आचार्य पद के योग्य माना गया है ॥५०॥

ऐसा साधु ही परम विशुद्ध मुक्ति के सुख को प्राप्त कर लेता है ॥५१॥

वह योगी दिन प्रतिदिन अपने आध्यात्मिक गुणो मे निरन्तर वृद्धि करता जाता है ॥५२॥

उस साधु को घर तथा वन का रहस्य अच्छी तरह ज्ञात (मालूम) होता है ॥५३॥

वह योगी ध्यानी साधु जिनेन्द्र भगवान के समान अपना उपयोग शुद्ध रखने में लगा रहता है, अत वह अन्य साधुओ के समान शुद्ध उपयोगी होता है ॥५४॥

विवेचन—शारीरिक सगठन के लिए हड्डियों का महत्वपूर्ण स्थान है, इस हड्डियो के सगठन को 'सहनन' कहते हे। संहनन के ६ भेद हैं—१-वज्र ऋषभ नाराच (वज्र के समान न टूट सकने वाली हड्डियो का जोड और वज्र सरीखी हड्डी की संधियो मे कीली), २ वज्र नाराच (वज्र सरीखी हड्डियां हों जोड वज्र समान न हो), ३ नाराच (हड्डिया अपने जोडों तथा सधियों में कील सहित हो) ४ अर्द्ध नाराच (हड्डिया आधी कीलित हो) ५ कीलक (हड्डियां कीलो से मिली हो), ६ असप्राप्ता सृपाटिका (साप की हड्डियो की तरह शरीर की हड्डिया बिना जोड के हो, केवल नसो से बधी हुई हो)।

समुद्घात—मूल शरीर को न छोडते हुए आत्मा के कुछ प्रदेशों का शरीर मे बाहर निकलना समुद्घात है, उसके ७ भेद हैं—

१ कपाय, २ वेदना, ३ विक्रिया, ४ आहारक ५ तैजस, ६ मारणान्तिक और ७ केवल समुद्घात।

इस प्रकार विविधि विषयो का प्रतिपादन करने वाला यह भूवलय सिद्धांत ग्रन्थ है ॥५५।

पूर्व काल मे बांधे गये कर्मों का जितना ही वमन (निर्जरा या क्षय) किया जाय उतना ही आत्मिक गुणो का विकास होता है और जब आत्मिक गुणो का विकास होता है तब सगीत कला मे परम प्रवीण गायकों की गान कला के समान उपदेश देने की शक्ति बढ जाती है ॥५६॥

तब हृदय मे नित्य नवीन ज्ञान रस की धारा प्रवाहित होती है। जैसे रात्रि मे पढा हुआ पाठ दिन मे स्मरण हो जाता है। उसी प्रकार योगी को रात्रि समय का ज्ञान-चिन्तवन दिनमें उपस्थित हो जाता है। ऐसे ज्ञानी साधु पाठक यानी उपाध्याय परमेष्ठी होते हैं ॥५७॥

उपाध्याय परमेष्ठी कहलाने वाले एक ही व्यक्ति अवस्था के भेद से क्रमश. आत्मिक योग में बैठ जाने पर साधु परमेष्ठी अठारह हजार शील व ५ आचार के पालन करने के समय मे आचार्य परमेष्ठी, चारो घातियाँ कर्मो का क्षय कर लेने के पश्चात् अरहन्त परमेष्ठी तथा चारो अघातिया कर्मो का क्षय करके मोक्ष पद प्राप्त कर लेने के पश्चात् सिद्ध परमेष्ठी कहलाते हैं।

उस आध्यात्मिक ज्ञान को अपने वश मे करने वाले उपाध्याय परमेष्ठी हैं ॥५८॥

उस ज्ञानरूपी अमृत रस को अपने मधुर उपदेश द्वारा भव्य जीवो को पिलाने वाले आचार्य परमेष्ठी हैं ॥५९॥

ऐसे आचार्य परमेष्ठी समस्त जीवो को ज्ञान उपदेश देते हुए पृथ्वी पर भ्रमण करते हैं ॥६०॥

वे समस्त इन्द्रियो को जीतने वाले है ॥६१॥

सम्पूर्ण जीवो के लिए नई नई कला को उत्पन्न करने वाला भूवलय है ॥६२॥

सम्पूर्ण असत्य के त्यागी महात्मा होते हे ॥६३॥

वे महान मनुष्यो के अग्रगण्य होते हैं ॥६४॥

सम्पूर्ण विषयो को बटोर कर बतलाने वाला द्वादशाग है ॥६५॥

अनुपम समता को कहने वाले हैं ॥६६॥

नये नये मार्दव आर्जव गुण को उत्पन्न करने वाले है ॥६७॥

सम्पूर्ण ऋषियो में अग्रगण्य हैं ॥६८॥

नये नये उपदेश देने वाले आचार्य हैं ६९॥

पवित्र औषध ऋद्धि के धारक है ॥७०॥

अनेक बुद्धि-ऋद्धि तथा सिद्धि के धारक है ॥७१॥

वृषभसेन आद्य गणधर के वशज है ॥७२॥

श्री ऋषभदेव के समय से चलने वाले समस्त विषयों को जानने वाले ॥७३॥

दयालु होने से सम्पूर्ण हरितकाय के भक्षण के त्यागी है ॥७४॥

जिस प्रकार आकाश मार्ग से जाने वाला प्राणी अव्याहतगति होने के कारण तीव्र गति से गमन करता है, उसी प्रकार तीव्र प्रगति मे जो आचार-सार के अगणित आचार को स्वय आचरण करते हैं और अन्य भव्य जीवों को आचरण कराते हैं वे आचार्य होते हैं ॥७५॥

विवेचन—आकाश मार्ग से जाने वाले चारण ऋद्धि-धारी साधु विद्याधर या विमान जितने वेग से गमन करते हैं, उस वेग की अगणित विधि को भूवलय की गणित पद्धति से जाना जा सकता हैं। वह इस प्रकार है।

गणित का सबसे जघन्य अंक २ दो माना गया है क्योंकि एक को एक से गुणा या भाग करने पर कुछ भी वृद्धि आदि नही होती।

२ को यदि वर्ग किया जावे (२×२=४) तो ४ अंक आता है, चार को चार से एक बार वर्ग करने से (४×४=१६) १६ होते है, यदि ४ को तीन बार रखकर गुणा किया जावे तो [४×४×४=६४] ६४ आता है, यदि चार को चार बार गुणा किया जावे तो [४×४×४×४=२५६] २५६ होता है। यदि ४ के वर्गित सवर्गित अंको के २५६ को इसी पद्धति से वर्गित सवर्गित किया जावे तो सवर्गित फल ६१७ अंक प्रमाण आता है जोकि प्रचलित गणित पद्धति के दस शख के १९ अंक प्रमाण संख्या से बहुत बड़ी अंक राशि होती है। दो के वर्ग ४ की सवर्गित सख्या जब इतनी बड़ी होती है तो विचार कीजिये कि भूवलय मे प्रतिपादित ९ अंक की वर्गित संवर्गित सख्या कितनी बडी होगी? ऐसी गणित—पद्धति से आकाश में गमन करने की तीव्रतम प्रगति को भी जाना जा सकता है।

नौ अंक के समान आचार्य जगत के सम्पूर्ण पदार्थों के मर्म को दिखलाकर अपनी अपनी शक्ति के अनुसार गृहस्थो तथा मुनियो को आचार के पालन करने की प्रेरणा करता है ॥ ७६ ॥

धर्म साम्राज्य के सार्व-भौमत्व को प्रगट करके आचार्य ९ अंक के समान समस्त आचार धर्म को पालन करते हैं ॥७७॥

इस ससार में उत्तम क्षमा आदि दशधर्मो का प्रचार करने वाले गुरु आचार्य महाराज हैं। तथा सिद्ध भगवान के सारतर आत्म-स्वरूप को बतलाने वाले आचार्य हैं ॥७८॥

अन्तर श्लोक

इसी प्रकार सारतर आत्म-स्वरूप को बतलाने वाला भूवलय है ॥७९॥

धीर वीर मुनियो के आचरण का प्रतिपादक यह भूवलय है ।८०॥

सरल मार्ग को बतलाने वाला भूवलय है ॥८१॥

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने मार्ग मे चलते हुए अपने शिष्यो को जो पढाया वह यह भूवलय सिद्धान्त है ॥८२॥

यह भूवलय शूर वीर मुनियो का काव्य है ॥८३॥

रत्नहार में जडे हुए मुख्य रत्न के समान भूवलय ग्रन्थ-रत्नो में प्रमुख है ॥८४॥

आत्मा को निर्मल ज्योति-रूप भूवलय है ८५॥

अत्यन्त सरलता से सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाला भूवलय ग्रन्थ है ॥८६॥

क्रूर कर्मो का अजेय शत्रु भूवलय ग्रन्थ है ॥८७॥

शूर वीर ज्ञानी ऋषियो के मुख से प्रगट हुआ यह भूवलय है ॥८८॥

आत्मा की सार ज्योति-स्वरूप यह भूवलय है ॥८९॥

सरलता से आत्मतत्व को बतलाने वाला भूवलय है ॥९०॥

जिस प्रकार रत्नो मे माणिक श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार शास्त्रो मे श्रेष्ठ शास्त्र यह भूवलय है ॥९१॥

श्री वीर जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित यह भूवलय है ॥९२॥

श्री वीर भगवान की दिव्यवाणी स्वरूप यह भूवलय है ॥९३॥

श्री महावीर महादेव के प्रभा-वलय के समान यह भूवलय है ॥९४॥

विशाल आत्मवैभवशाली यह भूवलय है ॥९५॥

अनन्त आचार की वृद्धि करने वाला यह भूवलय है ॥९६॥

इस प्रकार अति उत्कृष्ट आचार को प्रतिपादन करने वाले आचार्य के समान यह भूवलय है ॥९७॥

अत्यन्त वैभवशाली वैराग्य को उत्पन्न करने वाला यह भूवलय है ।९८।

भव्य जीवो के हृदय में भक्ति उत्पन्न करने वाला भूवलय है ॥९९॥

श्लोक

जिस प्रकार सिद्धरसायन द्वारा कालायस (काला लोहा) भी सुवर्ण बन जाता है, उसी प्रकार पतित ससारी जीव को देह से भेद-विज्ञान उत्पन्न करके मुक्ति प्रदान करने वाला भूवलय है ॥१००॥

घातिकर्म नष्ट करके जीवराशि में जीवनमुक्त ईश्वर (अर्हन्त) होकर भव्य जीवो की रक्षा करता हुआ धर्म तीर्थ द्वारा उनका कल्याण करके यह लोक के अग्र-भाग मे विराजमान सिद्धराशि में सम्मिलित हो जाता है ॥१०१॥

जब यह आत्मा सासारिक व्यथा से पृथक् हो जाता है तब मुक्ति स्थान में आत्मा के आदि अनुभव को अनन्तकाल तक अनुभव करता है ॥१०२॥

अनादिकाल से सलग्न क्रोध काम लोभ मायादिक को जब यह आत्मा नष्ट कर देता है, तब वह आत्मा सिद्धालय में अपने आपको जानता देखता हुआ समस्त पदार्थो को जानता देखता है । समस्त सिद्ध निराकुल होकर आनन्द से रहते हैं ॥१०३॥

णमोकार मत्र मे प्रतिपादित पाच परमेष्ठी आत्मा के पांच अग स्वरूप हैं । जब यह आत्मा सिद्ध हो जाता है तब वह भेद-भावना मिट जाती है और सभी सिद्ध एक समान होते हैं ॥१०४॥

अन्तर श्लोक

९ अक के समान सिद्ध भगवान परिपूर्ण है ॥१०५॥

सिद्धों के रहने का स्थान ही भूवलय है ॥१०६॥

णमोकार मत्र की सिद्धि को पाये हुए सिद्ध भगवान हैं ॥१०७॥

सिद्ध भगवान अनन्त अंको से बद्ध हैं यानी सख्या मे अनन्त हैं ॥१०८॥

वे अनन्तज्ञानी हैं ॥१०९॥

वे तीन कम ९ करोड मुनियो के गुरु हैं ॥११०॥

वे निर्मल ज्ञान शरीर-धारी हैं ॥१११॥

वे भौतिक शरीर के अवयवो से रहित हैं किन्तु आत्म-अवयव (प्रदेशों) वाले हैं ॥११२॥

परिपूर्ण ९ अक समान परिपूर्ण दर्शन वाले वे सिद्ध भगवान हैं ॥११३॥

'आदौ सकारप्रयोग सुखद' के अनुसार सिद्ध भगवान आदि अक्षर वाले है ॥ ११४॥

वे अन्न आदि अन्य पदार्थों की सहायता से जीवन व्यतीत नहीं करते अत स्वतन्त्र-जीवी हैं ॥११५॥

वे अत्यन्त रुचिकर सर्वस्वरूप सुख के सार का अनुभव करते हैं ॥११६॥

वे सिद्ध भगवान अवतार (पुनर्जन्म) रहित होकर अपना सुखमय जीवन व्यतीत करते है ॥११७॥

वे अनन्त वीर्य वाले है ॥११८॥

वे अनन्त सुखमय हैं ॥११९॥

वे गुरुता लघुता-रहित अत्यन्त रुचिकर अगुरुलघु गुणवाले है ॥१२०॥

उन्होने नवीन सूक्ष्मत्व गुण को प्राप्त किया है ॥१२१॥

वे महान कवियो की कविता द्वारा प्रशसा के भी अगोचर है ॥१२२॥

वे अव्यावाध गुण वाले है ॥१२३॥

वे समस्त ससारी जीवो द्वारा इच्छित महान् आत्मनिधि के स्वामी हैं ॥१२४॥

वे ही अर्हन्त भगवान के तत्व (रहस्य) को अच्छी तरह जानने वाले हैं ॥१२५॥

उन्होने समस्त विशाल जगत को अपने ज्ञान दर्शन द्वारा देखा है ॥१२६॥

इस कारण मै उनके चरणो को नमस्कार करता हूँ ॥१२७॥

क्योकि उन्होने (सिद्धो ने) समस्त ससार-भ्रमण का नाश कर दिया है ॥१२८॥

विवेचन—सिद्ध परमेष्ठी मे वैसे तो अनन्त, पूर्ण विकसित शुद्ध गुण होते हैं किन्तु ८ कर्मों के नष्ट होने से उनके ८ विशेष गुण माने गये हैं।

ज्ञानावरण कर्म के नष्ट होने से लोक अलोक के त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को उनकी समस्त पर्यायो सहित एक साथ जानने वाला अनन्त ज्ञान होता है ॥१॥

दर्शनावरण कर्म के समूल नाश हो जाने से समस्त पदार्थों की सत्ता का प्रतिभासक दर्शन गुण है ॥ २॥

मोहनीय कर्म के समूल क्षय से आत्मा की अनुपम अनुभूति कराने वाला सम्यक्त्व गुण है ॥३॥

अनन्त पदार्थों को निरन्तर अनन्त काल तक युगपत् जानते हुए भी आत्मा मे निर्बलता न आने देकर अनन्त शक्तिशाली रखने वाला वीर्य गुण है। जो कि अन्तराय कर्म के क्षय से प्रगट होता है ॥४॥

उक्त चारो गुण अनुजीवी गुण हैं।

वेदनीय कर्म नष्ट हो जाने से आत्मा मे आकुलता-वाधा आदि का न रहना अव्यावाध गुण है ॥५॥

आयु कर्म सर्वथा न रहने से शरीर की अवगाहना (निवास) में न रह कर स्वय अपने आत्म-प्रदेशो मे निवास रूप अवगाहनत्व गुण है ॥६॥

नाम कर्म द्वारा पौद्गलिक शरीर के साथ ससारी दशा में आत्मा सतत स्थूल रूप बना रहता है। नाम कर्म नष्ट होने से आत्मा में उसका सूक्ष्मत्व गुण प्रगट होता है ॥७॥

गोत्र कर्म आत्मा को ससार मे कभी उच्च-कुली, कभी नीच-कुली बनाया करता है। गोत्र कर्म नष्ट हो जाने पर सिद्धो मे गुरुता (उच्चता), लघुता (नीचता) रहित अगुरुलघु गुण प्रगट होता है ॥८॥

अन्तिम चारो गुण प्रतिजीवी गुण हैं। ये ४ अनुजीवी तथा ४ प्रतिजीवी गुण सिद्धो मे पाए जाते हैं।

अर्हन्त भगवान्–

व्यास पीठ मे उल्लिखित अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु, जिन वाणी, जिन धर्म, जिन चैत्य, जिन चैत्यालय, ९ स्थानो का सूचक ९ अंक क्या ९ केवल लब्धियो के अधिपति अर्हन्त भगवान को सूचित करता है ? हां वे ही अर्हन्त भगवान इष्ट देव हैं ॥१२९॥

विवेचन—विशेष आध्यात्मिक निधि के प्राप्त होने को 'लब्धि' कहते हैं। अर्हन्त भगवान को चार घाति कर्म नाश करने के अनन्तर ९ लब्धियां प्राप्त होती हैं। (१) केवल ज्ञान, (२) केवल दर्शन, (३) क्षायिक सम्यक्त्व, (४) क्षायिक चारित्र, (५) क्षायिक दान, (६) क्षायिक लाभ, (७) क्षायिक भोग (८) क्षायिक उपभोग, (९) क्षायिक वीर्य (अनन्त वीर्य) ये नौ लब्धियां हैं।

ज्ञानावरण के नाश से केवल ज्ञान लब्धि प्रगट होती है जिससे अर्हन्त भगवान त्रिलोक, त्रिकाल के ज्ञाता होते हैं।

दर्शनावरण कर्म के नाश हो जाने से लोकालोक की सत्ता की प्रतिभासक केवलदर्शन लब्धि प्राप्त होती है।

दर्शन मोहनीय कर्म सर्वथा हट जाने से, अक्षय आत्मानुभूति कराने वाली क्षायिक सम्यक्त्व लब्धि प्रगट होती है।

चारित्र मोहनीय नष्ट हो जाने पर आत्मा मे अनन्त काल तक अटल अचल स्थिरता रूप क्षायिक चारित्र लब्धि का उदय होता है।

दानान्तराय के क्षय होने से असख्य प्राणियो को अपनी दिव्य वाणी द्वारा ज्ञान दान तथा अभय दान करने रूप अर्हन्त भगवान के अनन्त दान लब्धि होती है।

लाभान्तराय के नष्ट हो जाने से बिना कवलाहार किए भी अर्हन्त भगवान के परमौदारिक शरीर की पोषक अनुपम पुद्गल वर्गणाओ का प्रति समय समागम होने रूप क्षायिक या अनन्त लाभ नामक लब्धि प्राप्त होती है।

भोगान्तराय के क्षय हो जाने पर जो अर्हन्त भगवान पर देवों द्वारा पुष्प वर्षा होती है, वह क्षायिक भोगलब्धि है।

उपभोगान्तराय के क्षय हो जाने पर अर्हन्त भगवान को जो दिव्य सिंहासन, चमर, छत्र, गन्धकुटी आदि प्राप्त होते है वह क्षायिक उपभोग लब्धि है।

वीर्यान्तराय के क्षय हो जाने पर जो अर्हन्त भगवान के आत्मा मे अनन्तशक्ति प्रगट होती है वह क्षायिक या अनन्त वीर्य लब्धि है।

उन नौ लब्धियो के स्वामी अर्हन्त भगवान है, उनसे ही आध्यात्मिक इष्ट मनोरथ सिद्ध होता है, अत वे ही इष्ट देव है।

इष्ट देव श्री अर्हन्त भगवान ने चार घाति कर्मों का क्षय करके ससार के परिभ्रमण का अन्त किया और ओंकार के अन्तर्गत अपनी दिव्यध्वनि द्वारा भूवलय सिद्धि के लिए उपदेशामृत की वर्षा की ॥१३०॥

गन्धकुटी पर रक्खे हुए सिंहासन के सहस्रदल कमल के ऊपर चार अंगुल अधर विराजमान अर्हन्त भगवान ने अनन्त अको को गणित में गर्भित करके तीन स ध्या काल में अपनी दिव्यध्वनि द्वारा भव्य जीवों को कहा। वे ही जिनेन्द्र भगवान हैं ॥१३१॥

शान्त वैराग्य ज्ञान आदि रसों से युक्त भूवलय सिद्धान्त को अभव को श्री जिनेन्द्र भगवान ने तीनकाल-वर्ती विषयों को अन्तर मुहूर्त में प्रतिपादन करके धर्म तीर्थ बना दिया ॥१३२॥

ओ एक अक्षर है और उसपर लगी हुई बिन्दी एक अंक है, इस प्रकार ॐ (ओ) की निष्पत्ति है। समस्त भूवलय ६४ अक्षरात्मक है। ६४ अक्षर ६ मे गर्भित हैं। वह कैसे ? सो कहते हैं—६४ अक्षर (६+४=१०) १० रूप हैं। १० मे एक का अक 'ओ' अक्षर रूप है और बिन्दी अक रूप है। इस तरह ॐ मे ६४ अक्षर गर्भित हैं। अंक ही अक्षर हैं और अक्षर ही अंक हैं ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है ॥१३३॥

स्पष्टीकरण— ० (बिन्दी) को अर्द्ध रूप में विभक्त करके उसके दोनों टुकडों को विभिन्न प्रकार से जोडने पर कनडी भाषा में समस्त अंक बन जाते है जैसे ० (बिन्दी) को आधे रूप मे विभक्त करने से ⌒ दो टुकड़े हुए उस टुकडा का आकार क्रमश एक आदि अ क रूप बन जाता है।

मन्मथ (कामदेव) की गुद्गुदी मे जीने वाले समस्त नर पशु आदि प्राणियो को श्री जिनेन्द्र भगवान के चरणो का स्मरण करने से पांच अ क (५)की सिद्धि होती है अर्थात् पच परमेष्ठी पद प्राप्त होता है ॥१३४॥

श्री अर्हन्त भगवान के परमौदारिक शरीर में नख (नाखून) और केश (बाल)एक से रहते हैं, बढते नही हैं। उन अर्हन्त भगवान के एक सर्वाङ्ग शरीर से द्वादश अग रूप द्रव्य श्रुत प्रगट हुआ। वह द्वादश अग एक ॐ रूप है ॥१३५॥

अर्हन्त भगवान की उपर्युक्त अनुपम चराचर पदार्थ गर्भित दिव्यवाणी को सुनकर विद्याधर, व्यन्तर, भवनामर, कल्पवासी देवो ने श्री जिनेन्द्र देव मे अचल भक्ति प्रगट की ॥१३६॥

रसना इन्द्रिय की लोलुपता से विरक्त भव्य मनुष्य ६ अंक परिपूर्ण भगवान का उपदेश सुनकर पूर्ण तृप्त हुए और अनुपम भूवलय को नमस्कार करके अपने अपने स्थान पर चले गये ॥१३७॥

कभी भी रंचमात्र कम न होने वाला एक ज्ञान प्राप्त हो जाने पर समवशरण मे विराजमान श्री जिनेन्द्र देव के सिर के ऊपर तीन छत्र झुक रहे हैं, देवों द्वारा पुष्प वृष्टि होती है तथा पीठ के पीछे प्रभामण्डल होता है। ऐसी ज्ञान प्रभा प्रगट करने वाला भूवलय है ॥१३८॥

भूवलय के प्रभावशाली इस 'आ' (दूसरे) मगल प्राभृत में विविधता परिपूर्ण ६५६१ अक्षर प्रमाण श्रेणी बद्ध श्लोक हैं। अन्तर श्लोकों के अक्षर आगे बताते हैं ॥१३९॥

अन्तर श्लोक

अन्तर में ५८७७ ॥१४०॥

अनेक भाषामय काव्य प्रगट होते हैं ॥१४१॥

अ को द्वारा अक्षर बनालेने पर उन विविध काव्यो का निर्माण होता है ॥१४२॥

बड़ी युक्ति से उन अ को को परस्पर मिलाने से उन काव्यो का उदय होता है ॥१४३॥

[८३४२] आठ तीन चार दो एक ॥१४४॥

११२५०० ॥१४५॥

यह अ क चारित्र का वर्णन करने वाला है ॥१४६॥

अन्तरान्तर मे जो काव्य प्रगट होता है, वह चारित्र का वर्णन करता है ॥१४७॥

इस अन्तराधिकार में जितने अक्षर हैं उन्हे बतलाते हैं ॥१४८॥

वे अक्षर जितने हैं उतने ॥१४९॥

वर्ण मिलाने से ॥१५०॥

जो कठिनाई से प्राप्त हुआ ॥१५१॥

उससे अंक रूपी यश काव्य की सिद्धि होती है ॥१५२॥

यह ऋषीश्वर भगवान जिनेन्द्र देव का वाक्य है ॥१५३॥

अन्तर श्लोको की अक्षर संख्या ७८४८ है ॥१५४॥

१ से प्रगट हुआ ७७८५। अन्तर में ७८४८ अंकाक्षर रहने वाला सर्व सम्मत 'अ' अध्याय भूवलय है ॥१५५॥

६५६१+अन्तर ७८४८=१४४०९

अथवा

अ (प्रथम) अध्याय ६५६१+अन्तर ७७८५=१४३४६+ 'अ, (दूसरा) अध्याय १४४०९=२८७५५ अक्षर हैं दोनो अध्यायों में १८ अंक चक्र हैं।

इस द्वितीय अध्याय के मूल श्लोकों श्रेणी-बद्ध आद्य अक्षरों से (ऊपर से नीचे तक पढने पर) जो प्राकृत गाथा प्रगट होती है उसका अर्थ निम्नलिखित हैं।

प्रथम सहनन (वज्रऋषभ नाराच) तथा समचतुरस्र संस्थान-धारी, दिव्य गन्ध महित एव नख केश न बढने वाला अर्हन्त भगवान का परमौदारिक शरीर होता है।

तथा मध्यवर्ती (२७वें) अक्षर की श्रेणी से जो सस्कृत श्लोक निकलता है उसका अर्थ निम्नलिखित है—

अविरल (अन्तर रहित) शब्दो के समुदाय-रूप, समस्त जगत के कलंक को धो देने वाली, मुनियो द्वारा उपास्य तीर्थ-रूप सरस्वती (जिन-वाणी) हमारे पापो का क्षय करे।

तीसरा अध्याय

आ दिवेवनु आदियकालदि पेळ्व । साधनेयध्यात्म योग ॥ दादिय अ ज्ञानवळिद धर्मध्यान । साधित काव्य भूवलय ॥१॥
ऐ रदोळात्मनभ्युदय सौख्यवपोदे । दारियुदोरेताग अ ज् ज ॥ सारा त्मशिखियेरि बरुवागयोगद । सारवैभववु मंगलवु ॥२॥
हि तवाबतिशय मंगलप्राभृत । सततवु भद्रपर्याय ॥ ज्ञा वज्ञात तत्वगळनेल्लव पेळ्व । ख्यातांक शिवसौख्य काव्य ॥३॥
म नवनु सिंहपीठवनागिपकाव्य । दनुभव जिनमार्गवागे ॥ न नेकोनेवोगिसुत् अध्यात्मयोगद । घनसिद्धांत लेक्कवलि ॥४॥
अ रिवुदे ज्ञान तन्नरिविनोळ्नोळ्पुदे । सरुवज्ञ दर्शन् ति येंब ॥ परमनकाण्केइवेरडरोळ्बेरेवुदे । सरुवचारित्र अनंत ॥५॥
परमात्मनरिव अनन्त ॥६॥ करुणेयुबेरेद अनंत ॥७॥ वरसिद्धगोष्ठियनंत ॥८॥ अरिवु तन्नात्मअनंत ॥९॥
अरिदुनोडिदरिगनंत ॥१०॥ दोरेवुदेमूरुरत्नांक ॥११॥ सरससमख्यातदनत ॥१२॥ सरमग्गियोळगसंख्यात ॥१३॥
बरुवुद गुणिसलनंत ॥१४॥ करगदनंत संख्यात ॥१५॥ परिशुद्ध चारित्रिदंक ॥१६॥ विरचित गणनेयनंत ॥१७॥
ण वशुद्ध चारित्रदतिशयदिंदलि । अवनियधरिसुव नव मि ॥ सवरदे मेरुवप्रदेनिल्वकुळितिपं ॥ नवयोगशक्तियंकवदु ॥१८॥
नवशुद्द दर्शनयोग ॥१९॥ अवरु ध्यानिपशुद्धयोग ॥२०॥ अवनियमरेवसुज्ञान ॥२१॥ नवमांकवद्वयुतयोग ॥२२॥
सुविशाल पृथ्विधारणेय ॥२३॥ अवसरदोळ्बंद योग ॥२४॥ सविद्वैतअध्यात्मयोग ॥२५॥ नवदेवतेय काण्वयोग ॥२६॥
नवमांकबादिययोग ॥२७॥ अवरु साधिपशक्तियोग ॥२८॥
न् मसिद्धपरमात्मएन्नुतननवलि । ममकारवेन्नात्म रा ग ॥ समनिसेद्रव्यागम बंधदोळ् कट्टि । दमलात्मयोग चारित्र ॥२९॥
तै नम शुद्धात्मयोगायेन्नुत । आनत भावस्वभाव ॥ ध्यानान न् दवेबाह्याभ्यंतर । वेनिल्ल परभाववेनुत ॥३०॥
हि तयोगवताळ्दवसरदोळ्योगि । अतिशय बहिरंतरंग ॥ आ त्रियनेनहनेल्लव मरेदातनु । प्रीतियोळ्मेरुविवप्र ॥३१॥
म थनिसिदध्यात्मयोग वैभवकेंदु । सततदुद्योग पर ना गि ॥ हितवेनगागेलोकाग्रवेरुवेरुवेनेंब । मतियुतनागुत योगि ॥३२॥
हितदनुभवहोंदिबाग ॥३३॥ अतिशय शिवभद्रसौख्य ॥३४॥ सततदभ्यासद बुद्धि ॥३५॥ हितवीवचारित्रशुद्ध ॥३६॥
हतिसलुवीर्यांतराय ॥३७॥ हतवुदर्शनमोहनीय ॥३८॥ अथवाउपशमवागे ॥३९॥ अथवाक्षयवागलात्म ॥४०॥
हिनदेशुद्धात्मस्वरूप ॥४१॥ नुत शुद्धसम्यक्त्वसार ॥४२॥ नुतस्वसंवेद विराग ॥४३॥ अतिशय सबलविराग ॥४४॥
हितवदेतन्नस्वरूप ॥४५॥ हतकर्मलीनवात्मनोळु ॥४६॥ अथवास्वरूपाचरण ॥४७॥
गु रुगळाचरिसुव चारित्रसारद । परिये देशचारित्र ॥ दिर्वि म अप्रत्याख्यान दुपशम । बरलथवा क्षयोपशमं ॥४८॥
णे रदे क्षयवागे देशचारित्रद । दारियु सकलचारित्र ॥ शूर ज्ञा निगळसोम्मागुवकालदे । मूरने क्रोधादिनाल्कु ॥४९॥
हि तवल्लदिरुवकषायगळुपशमं । अथवाक्षयवुपशम ना ॥ सततोद्योगद फलदिंवक्षयवागे । क्षिति पूज्यमहाव्रतबहुदु ॥५०॥
णु ब्युणुणु रेनुवदिव्यध्वनि सारद । गणनेयसकलचारित्रा न् ॥ अणाक्षरणकाव्रतउज्वलवागुत । कुणियुतबहुवात्मयोग ॥५१॥

नगेबंद ध्यानवनुभवविदलि । घनवाद यथाख्यात ज निसे ॥ गुणस्थानवेरुव परमावधियागे । जिनरयथाख्यातववु ॥५२॥
त् रवेतोरुत जारुतबरुतिपं । चारित्रदंतल्लवदु ॥ शूर न योगवदारिद्दवैतंव । चारित्रसार भूवलय ॥५३॥
तो सेरुत गुणस्थानदग्र ॥५४॥ सारात्म चारित्रयोग ॥५५॥ भूरिवैभवदात्मयोग ॥५६॥ दारियसिद्ध लोकाग्र ॥५७॥
नेर कषायवियोग ॥५८॥ शूर कषायद भाव ॥५९॥ दारिये शुद्धविशेष ॥६०॥ चारित्रवे यथाख्यात ॥६१॥
दूरपूर्णतेयाश्रयोग ॥६२॥ शूरअयोगीकेवलियु ॥६३॥ आरेंदु गुणास्थानदग्र ॥६४॥ शूररध्यात्मस्वातन्त्र्य ॥६५॥
गारादसंसारनाश ॥६६॥ नेरदेदेहवर्जितवु ॥६७॥ पूर्णदंडदे कपाटकवु ॥६८॥ सारप्रतर लोकपूर्ण ॥६९॥
वेरिद बळिक सिद्धत्व ॥७०॥

बि ष पूर्ण कुंभदेम्भत्नाल्कु लक्ष । वशद औंदमृत शरावे ॥ य ग्र वदरोळगे अंधकनु आकाशदि । नेशेवचिंतामणि रत्न ॥७१॥
शु भ भद्रवागि बिद्दन्ते मानवदेह । अभवनागलु बट्टुद ना ॥ उभयभवार्थ साधनेय तद्द्वय । शुभमंगललोक पूर्ण ॥७२॥
द् शंनज्ञान चारित्रभूरग । स्वर्शमणि सोकलाग ॥ मर् क ट मानवनादन्ते मानव । स्वर्मनवळिवुदेनरिदे ॥७३॥
ध रणियमेलिर्दु धरेयन्तरगद । परिपरियणुविनविष या ॥ वरिदुतन्नात्मन दर्शनवेरसिदं । धरेयग्र लोकव होन्दे ॥७४॥
चा मरवादतिशयवावैभव । आमहात्मरिगिल्लवागे ॥ प्रेम च राचरवन्नेल्ल काणिप । कामिनि मोक्षव पोन्दि ॥७५॥
भामेयोळ् कूडुवनात्म ॥७६॥ प्रेमादिगळगेल्द कामी ॥७७॥ श्रीमयसुख सिद्ध भद्र ॥७८॥ आ महात्मनु भूमियळिद ॥७९॥
सीमेयगडिदान्टिदभव ॥८०॥ नेमदे चिरकालविरुव ॥८१॥ स्वामियेजगदादिगुरुवु ॥८२॥ राम लक्ष्मण हृदयाब्ज ॥८३॥
नामरूपगळेल्लवळिद ॥८४॥ कामसनिभनल्लि बेरेद ॥८५॥ गोमटेश्वरनप्य वृषभ ॥८६॥ श्री महासूक्ष्मस्वरूप ॥८७॥
आमहिमनु श्री अनंत ॥८८॥ भूमिकालातीत संज्ञा ॥८९॥ स्वामि अनन्तांकवन्नय ॥९०॥

रि द्धिवैभवदलि ज्ञान साम्राज्य । शुद्धदर्शनद अन् त अ ॥ होद्दे चारित्रव देहद सेरेमने ॥ इद्दरुबंधवळिवुदु ॥९१॥
नु नुविद्दरेनवनमलात्म संपद । जिननन्ददे तानक् व बंध ॥ दनुभव होन्दुवध्यात्मदाळिरुवाग । घनतेय देहवळियुव ॥९२॥
नो रुव मुनिमार्गदारैकेयिहदेह । सेरुतलात्मन बळिय ॥ सा – बनावाग कारागृहदल्लि ॥ सेरिरुवात्मन बिडिसे ॥९३॥
भ यविनिर्सिल्लदे ध्यानदोळा योगि । नयमार्गवनु बिडदिरुव न ॥नियतदोळात्मनोळ् बाळ्वाग ध्यानाग्नि । लयमाळ्पुबधवनेल्लवनु ॥९४॥
व शवागलाध्यान तनुवु कायोत्सर्ग । दसमान पल्यकय गो ॥ वशदेरडरोळोन्दासनदोळगिर्दु । रस परिपूर्णनागुवनु ॥९५॥
वशद रागवनु चिंतिपनु ॥९६॥ स्वसमाधियोळगे निल्लुवनु ॥९७॥ स्वसंपूर्णनागुतलिवनु ॥९८॥
हुसिमार्गवनु तोरेदिहनु ॥९९॥ बशिवनु अपराधगळनुम् ॥१००॥ यसेवनु कर्म दंडवनु ॥१०१॥
होस दीक्षेवडेदनन्तिमनु ॥१०२॥ यशदे लक्ष्यवनु साधिपनु ॥१०३॥ होसदाद गुणवोळगवनु ॥१०४॥
रससिद्धियनु बेंडदिहनु ॥१०५॥ कुसुमकोदंडदल्लणनु ॥१०६॥ होसहोसपरियचिंतिपनु ॥१०७॥

बसिरनु दंडिसुतिहनु ।।१०८।। यशद चारित्रदोळिहनु ।।१०९।। एसेवनु परद्रव्यगळनुम् ।।११०।।
हुसिय प्रेमव तोरेदिहनु ।।१११।। रिसिय रूपिन भद्रदेहि ।।११२।। असम भूवलयदोळिहनु ।।११३।।
यशव मंगलद प्राभृतनु ।।११४।।

भ यवेन्तेन्दु केळु तलायोगियु । जयिपपरानुरागवनु ।। नयद लि चिंतिप आकुलितेय बिट्दु स्वयंशुद्ध रूपानुचरण ।।११५।।
य शवदु शाश्वतसुखवेन्दरियुत । असमान शान्तभावदलि ।। न स स्थावर जीवहितवनु साधिप । हसवळिदेल्ल पौद्गलिक ।।११६।।
द लिबन्द सुखदुःखगळलि आकुलितेय । बलवेष्टिहुदेन्द म् अवनु ।। बळिसार्द व्याकुलबेल्लव केडिपनु । कलिलहन्तकनात्मशुद्ध ।।११७।।
नृ वपद धर्मद गणितव गुणिसुत । अवरोळगात्म गौरव ग ।। ल्लवनुसाधिसुतिर्प कालदोळनुराग । दवयवविनिसिल्लविहनु ।।११८।।
ज यजयवेन्नुत तन्न देहदोळिह । स्वयंशुद्धआत्मन न वनु ।। भर्यादिद बिडसुत परद्रव्यदनुरागद् । जयवन्ने चिंतिसुतिहनु ।।११९।।
ग वपद योगवनदरोळु रतियिदं । सवियादंकाक्षर सार त ।। नवमांक गणितदोळ् स्वद्रव्यवरिवनु । भवभय नाशनकरनु ।।१२०।।

अवतारविनिसिल्लदवनु ।।१२१।। कविदकळ्तलेयनोडिपनु ।।१२२।। अवनु निरंजनपवनु ।।१२३।।
सुविशाल धर्मसाम्राज्य ।।१२४।। अवनु धर्मदबेट्टवेरि ।।१२५।। कविकल्पनेगे सिक्कदिहनु ।।१२६।।
अवधरिसुव तत्वगळनु ।।१२७।। नववनु भागिपनेरडिम् ।।१२८।। भवसागरवनु गुणिसुव ।।१२९।।
नवकार जपदोळगिरुवम् ।।१३०।। नवस्वर्गगळ कूडिसुव ।।१३१।। नवसिद्धकाव्य भूवलय ।।१३२।।

द रुसनमाड़े परद्रव्यंगळ । बरुवा कर्मद वंध ।। वर स म्यक्त्व शुद्धवागिसदेन्दु । अरिवरु मूवरु गुरुगळ् ।।१३३।।
च् रितेयोळात्मन संसारदिं कित्तु । अरहन्त सिद्धरम् स नके ।। बरुवन्ते माडलु सिद्धतानक्केम्ब । परम स्वरूपाचरणर् ।।१३४।।
छो द्यवागिरुव चारित्रवम् सारिद । राद्तराचार्य ऽवर य् अ ।। साध्य असाध्यवेम्बेरडनु तिळिदिह । आद्याचार्यर हितवर् ।।१३५।।
म हर्वोरिदेवन वाणियिबंदिह । महिमेयभद्रसौख्यवु श् रो ।। सहनेय धर्म निराकुलवेन्नुव । महिमेयंकाक्षर वाणी ।।१३६।।
ह रुषवर्द्धनवाद आ निराकुलितेय । सरमागे मंगलवर श् नो ।। करुणेय वेरेसिह गणितदे गुणिसिह । बरुव दयापर धर्म ।।१३७।।

अरहंतदेवर कृपेयु ।।१३८।। बरुवुदु संख्यात गुणित ।।१३८।। परमौषध रिद्धिय गणित ।।१४०।।
सरलांकं बुद्धियरिद्धि ।।१४१।। परिपरियतिशय सिद्धि ।।१४२।। गुरुगळाशिसुतिह सिद्धि ।।१४३।।
शरणु बंदवर पालिसुव ।।१४४।। हरुषदायकवाद वाक्य ।।१४५।। परिपूर्ण भरतव सिरियु ।।१४६।।
परम सम्यज्ञान निधियु ।।१४७।। सरस साहित्यद गणित ।।१४८।। अरिवु येळनूर्हदिनेंदु ।।१४९।।
परमभाषेगळेल्ल वरिव ।।१५०।। अरहंत रोरेद भूवलय ।।१५१।।

त्री रमहादववाणिय सर्वस्व । शूरदिगंबरमुनियु ।। सारिद गु रुगळु दारियोळ् बरुवाग । नेरवध्यात्म भूवलय ।।१५२।।
गो षवळिव काव्यसिद्धसंपदकाव्य । आशेय भव्यभावुक रु ।। लेसिनिभजिसुत बरुव निर्मलकाव्य । श्री शन गणितद काव्य ।।१५३।।

अ ष्ट कर्मगळं निर्मूलवंमाळ्प । शिष्टरोरेव पूर् वे काव्य ॥ दृष्टांतदोळगेल्ल वस्तुवसाधिप । अष्टमंगलविह काव्य ॥१५४॥
त् नुमन वचनद कृतकारितनुमोद । जिन भक्ति न् वाद ॥ गुणकारवेन्नुव गणकर्विवविह । अनुभव वैभव काव्य ॥१५५॥
थ ळथळिसुव दिव्य कलेगळरवत्त् नाल्कु । गेलुवकद्नम न काव्य ॥ बळेसुत चारित्रव शुद्धगोळिसुत । बळियसर्वार्थदिव्य काव्य ॥१५६॥

इळेय पालिप नव्यकाव्य ॥१५७॥ बेळेव सर्वोदय काव्य ॥१५८॥ घळिगे बट्टल दिव्य काव्य ॥१५९॥
सुळिय बाळेय दग्र काव्य ॥१६०॥ तिळियादसरसांक काव्य ॥१६१॥ गिळिय कोगिले दनि काव्य ॥१६२॥
यळेवेण्णदनियंक काव्य ॥१६३॥ इळेगादि मनसिज काव्य ॥१६४॥ सुलिदल्ल सुलियद काव्य ॥१६५॥
इळेय कळ्तले हर काव्य ॥१६६॥ बळिय सेरलु व्रतकाव्य ॥१६७॥ गेलवेरिदर व्रत काव्य ॥१६८॥
नलविनध्यात्मद काव्य ॥१६९॥ सलुव दिगम्बर काव्व ॥१७०॥

क मोटक मार्तिनिवलि बळेसिह । घर्म मूर्नूररर्व तुम्र म् ॥ निर्मलवेन्नुत बळिय सेरिपकाव्य । निर्मल स्याद्वाद काव्य. ॥१७१॥
नृ नगे बारद मातुगळनेल्लकलिसुतम् । विनयदध्यात्म अ चल ॥ घनदंकएळु साविरदिन्नुरु तोंबत्तु । एनलु अंतरदलि बरुव ॥१७३॥
ता नल्लिहत्तूवरे साविरअरवत्तारु । रानदवेरडम् हॅ अ ॥ काणुवद् हदिनेंटुसाविरदेळ्नूर । काणदनलवत्तनाल्कंक ॥१७४॥
रो वनवेल्लवनळिसुव (ओडिप) सोहं । आदि ओदोवत्तु बद् आ ॥ साधिसि मूरु काव्य वकूडिदक्षर । आदि जिनेंद्र भूवलयम् ॥१७४॥

इस तीसरे 'आ' अध्याय मे ७२९० अक्षरांक हैं। अंतर काव्य में १०,५६६ अंकाक्षर हैं। कुल मिला देने से १७८५६ अंकाक्षर होते हैं। अथवा पहला और दूसरा अध्याय मिला कर २८७५५ और इस अध्याय के १७८५६ मिलकर ४६६११ अंक हुए।

इस अध्याय में आने वाली प्राकृत गाथा:—

आर्होंहि अणन्तेंहि गुणे हि जुत्तो विशुद्धचारित्तो । भवभयदन्जणदच्छो महवीरो अत्थकत्तारो ॥

संस्कृत श्लोक:—

अज्ञानतिमिरान्धाना ज्ञानांजनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं एन तस्मय् श्री गुरवेन्नमह ॥

इस श्लोक में एन के स्थान मे व्यंजन "येन" रहना चाहिए था, किन्तु अंक भाषा मे स्वर होने के कारण उसे ही रक्खा गया, है या यों समझिये कि धातूनामनेकार्थत्वात् धातुओं के अनेक अर्थ होने से एन, और येन दोनों समान हो हैं। अतः विद्वानों को इसकी शुद्धि न करके मूल कारण का अन्वेषण करना चाहिए।

यह भूवलय नामक अपूर्व चमत्कारिक ग्रन्थ सर्वभाषामयी होने के कारण प्रत्येक पेज ७१८ (सात सौ अठारह) भाषाओं से संयुक्त है अतः इस प्रकार व्यतिक्रम यदि आगे भी कहीं दृष्टिगोचर हो तो उसका सुधार न करके मूल कारणों का ही पता लगाना चाहिए। हो सकता है कि पुनरावृत्ति होने के समय यह स्वयं सुधर जाय। (संशोधक)

तीसरा अध्याय

आ विदेवनु आदियकालदि पेळ्द । साधनेयध्यात्म योग ॥ दादिय अ ज्ञानवळिव धर्मध्यान । साधित काव्य भूवलय ॥१॥
णे रदोळात्मनभ्युदय सौख्यवपोंदे । दारियुदोरेताग अ ज् ज ॥ सारा त्मशिखियेरि बरुवागयोगद । सारवैभववु मंगलवु ॥२॥
हि तवावतिशय मंगलप्राभृत । सततवु भद्रपर्याय ॥ ज्ञा वज्ञात तत्वगळनेल्लव पेळ्व । ख्यातांक शिवसौख्य काव्य ॥३॥
म् नवनु सिहृपीठवनागिपकाव्य । दनुभव जिनमार्गवागे ॥ न नेकोनेवोगिसुत् अध्यात्मयोगद । धवलसिद्धांत लेक्कवलि ॥४॥
अ रिवुदे ज्ञान तन्नरिविनोळ् नोळ् पुदे । सरुवज्ञ दर्शन् ति येंब ॥ परमनकारणकेंड्वेरडरोळ् बेरेवुवे । सरुवचारित्र अनंत ॥५॥
परमात्मनरिव अनन्त ॥६॥ करुणेयुबेरेद अनंत ॥७॥ वरसिद्धगोष्ठियनंत ॥८॥ अरिवु तन्नात्मअनंत ॥९॥
अरिदुनोडिदरिगनंत ॥१०॥ दोरेवुदमूरुरत्नांक ॥११॥ सरससमृख्यातदनंत ॥१२॥ सरमगियोळगसंख्यात ॥१३॥
बरुवुद गुणिसलनंत ॥१४॥ करगदनंत संख्यात ॥१५॥ परिशुद्ध चारित्रिदंक ॥१६॥ विरचित गणनेयनंत ॥१७॥
ण वशुद्ध चारित्रवतिशयदिंदलि । अवनियधरिसुव नव मि ॥ सवरदे मेरुवप्रदेनिल्वकुळितिर्प ॥ नवयोगशक्तियंकववु ॥१८॥
नवशुद्ध दर्शनयोग ॥१९॥ अवरु ध्यानिपशुद्धयोग ॥२०॥ अवनियमरेवसुज्ञान ॥२१॥ नवमांकवद्वयुतयोग ॥२२॥
सुविशाल पृथ्विधारणेय ॥२३॥ अवसरदोळु बंद योग ॥२४॥ सविद्वैतअध्यात्मयोग ॥२५॥ नवदेवतेय काव्ययोग ॥२६॥
नवमांकवादिययोग ॥२७॥ अवरु साधिपशक्तियोग ॥२८॥
न् मसिद्धपरमात्मएन्नुत ननदलि । ममकारवेन्नात्म रा ग ॥ समनिसेद्रव्यागम बंधदोळ् कट्टिट । दमलात्मयोग चारित्र ॥२९॥
ते नम शुद्धात्मयोगायेन्नुत । आनत भावस्वभाव ॥ ध्यानान न् ददेंबाह्याभ्यंतर । वेनिल्ल परभाववेनुत ॥३०॥
हि तयोगवताळ्दवसरदोळु योगि । अतिशय बहिरंतरंग ॥ धा त्रियनेनहनेल्लव मरेदात्तनु । प्रीतियोळ्मेरुविनम्र ॥३१॥
म् थनिसिदध्यात्मयोग वैभवकेंदु । सततदुद्योग पर ना गि ॥ हितवेनगागेलोकाग्रवेरुवेरुवेनेंब । मतियुतनागुत योगि ॥३२॥
हितवनुभवहोंदिवाग ॥३३॥ अतिशय शिवभद्रसौख्य ॥३४॥ सततदभ्यासद बुद्धि ॥३५॥ हितवीवचारित्रशुद्ध ॥३६॥
हतिसलुवीर्यांतराय ॥३७॥ हतवुदर्शनमोहनीय ॥३८॥ अथवाउपशमवागे ॥३९॥ अथवाक्षयवागलात्म ॥४०॥
हिनदेशुद्धात्मस्वरूप ॥४१॥ नुत शुद्धसम्यक्त्वसार ॥४२॥ नुतस्वसंवेद विराग ॥४३॥ अतिशय सबलविराग ॥४४॥
हितवदेतन्नस्वरूप ॥४५॥ हतकर्मलीनवात्मनोळु ॥४६॥ अथवास्वरूपाचरण ॥४७॥
गु रुगळाचरिसुव चारित्रसारद । परिये देशचारित्र ॥ दिरवि म् अप्रत्याख्यान दुपशम । बरलथवा क्षयोपशमं ॥४८॥
णे रदे क्षयवागे देशचारित्रद । दारियु सकलचारित्र ॥ शूर ज्ञा निगळसोम्मागुवकालदे । मूरने क्रोधादिनाल्कु ॥४९॥
हि तवल्लदिरुवकषायगळुपशमं । अथवाक्षयदुपशम ना ॥ सततोद्योगद फलदिंदक्षयवागे । क्षिति पूज्यमहाव्रतबहुदु ॥५०॥
नु ब्युजुणु रेनुवदिव्यध्वनि सारद । गणनेयसकलचारित्रा न् ॥ क्षणाक्षणकाव्रतउज्वलवागुत । कुणियुतबहुवात्मयोग ॥५१॥

नगेबंद ध्यानदनुभवदिंदलि । घनवाद यथाख्यात अ निसे ॥ गुणस्थानवेरुव परमावधियागे । जिनरयथाख्यातवदु ॥५२॥
तं रवेतोरुत जारुतबरुतिपं । चारित्रवंतल्लवदु ॥ शूर न योगददारिइदंतंद । चारित्रसार भूवलय ॥५३॥
तो सेरुत गुणस्थानदग्र ॥५४॥ सारात्म चारित्रयोग ॥५५॥ भूरिवैभवदात्मयोग ॥५६॥ दारियसिद्ध लोकाग्र ॥५७॥
नेर कषायवियोग ॥५८॥ शूर कषायद भाव ॥५९॥ दारिये शुद्धविशेष ॥६०॥ चारित्रवे यथाख्यात ॥६१॥
दूरपूर्णतेयाग्रयोग ॥६२॥ शूरअयोगीकेवलियु ॥६३॥ आरेंदु गुणास्थानवग्र ॥६४॥ शूररुयात्मस्वातन्त्र्य ॥६५॥
गारादसंसारनाश ॥६६॥ नेरदेदेहवर्जितवु ॥६७॥ पूर्णदंडदे कपाटकवु ॥६८॥ सारप्रतर लोकपूर्ण ॥६९॥
वेरिद बळिक सिद्धत्व ॥७०॥

वि ष पूर्णं कुंभदेम्भत्नाल्कु लक्ष । वशद ओंदमृत शरावे ॥ य श वदरोळगे अंधकनु आकाशदि । नेशेदंचितामणि रत्न ॥७१॥
शु भ भद्रवागि बिद्दन्ते मानवदेह । अभवनागलु बट्टुद ला ॥ उभयभवार्थ साधनेय तद्द्वय । शुभमंगललोक पूर्ण ॥७२॥
द् शंनज्ञान चारित्रमूरग । स्वर्शमणि सोकलाग ॥ मर् क ट मानवनावन्ते मानव । स्वर्मनवळिवुदेनरिदे ॥७३॥
ध रणियमेलिदुं धरेयन्तरगद । परिपरियणुविनविष या ॥ वरिदुतन्नात्मन दर्शनवेरसिदं । धरेयग्र लोकव होन्दे ॥७४॥
बा मरवादतिशयवावैभव । आमहात्मरिगिल्लवागे ॥ प्रेम च राचरवन्नेल्ल काणिप । कामिनि मोक्षव पोन्दि ॥७५॥
भामेयोळ् कूडुवनात्म ॥७६॥ प्रेमादिगळगेल्द कामी ॥७७॥ श्रीमयसुख सिद्ध भद्र ॥७८॥ आ महात्मनु भूमियळिद ॥७९॥
सीमेयगडिदान्टिदभव ॥८०॥ नेमदें चिरकालविरुव ॥८१॥ स्वामियेजगदादिगुरुवु ॥८२॥ राम लक्ष्मण हृदयाब्ज ॥८३॥
नामरूपगळेल्लवळिद ॥८४॥ कामसंनिभनल्लि बेरेद ॥८५॥ गोमटेश्वरनय्य वृषभ ॥८६॥ श्री महासूक्ष्मस्वरूप ॥८७॥
आमहिमनु श्री अनंत ॥८८॥ भूमिकालातीत संज्ञा ॥८९॥ स्वामि अनन्तांकवलय ॥९०॥

रि द्धिवैभवदलि ज्ञान साम्राज्य । शुद्धदर्शनद अन् ज अ ॥ होद्दे चारित्रव देहद सेरेमने ॥ इद्दरुबंधवळिवुदु ॥९१॥
नु, नुविद्दरेनवनमलात्म सपद । जिननन्ददे तानक् न ब्ध ॥ दनुभव होन्दुवध्यात्मदोळिरुवाग । घनतेय देहवळिपुव ॥९२॥
तो स्व मुनिमार्गदारंकेयिहदेह । सेरुतलात्मन बळिय ॥ सा र बनावाग कारागृहदल्लि ॥ सेरिरुवात्मन बिडिसे ॥९३॥
भ यविनिर्मिसल्लदे ध्यानदोळा योगि । नयमार्गवनु बिडदिरुव नु ॥नियतदोळात्मनोळ् बाळ्वाग ध्यानाग्नि । लयमाळ्पुदघवनेल्लवनु ॥९४॥
व शवागलाध्यान तनुवु कायोत्सर्ग । दसमान पल्यंकय मो ॥ वशदेरडरोळोन्दासनदोळगिर्दु । रस परिपूर्णनागुवनु ॥९५॥
वशद रागवनु चिंतिपनु ॥९६॥ स्वसमाधियोळगे निल्लुवनु ॥९७॥ स्वसंपूर्णनागुतलिवनु ॥९८॥
हुसिमार्गवनु तोरेदिहनु ॥९९॥ बशिवनु अपराधगळनुम् ॥१००॥ यसेवनु कर्म दंडवनु ॥१०१॥
होस दीक्षेवडेदनन्तिमनु ॥१०२॥ यशदे लक्ष्यवनु साधिपनु ॥१०३॥ होसदाव गुणदोळगवनु ॥१०४॥
रससिद्धियनु बेंडविहनु ॥१०५॥ कुसुमकोदंडदल्लणनु ॥१०६॥ होसहोसपरियचिंतिपनु ॥१०७॥

बसिरनु वंडिसुतिहनु ।।१०८।। यशद चारित्रदोळिहनु ।।१०९।। एसेवनु परद्रव्यगळनुम् ।।११०।।
हुसिय प्रेमव तोरेदिहनु ।।१११।। रिसिय रूपिन भद्रदेहि ।।११२।। असम भूवलयदोळिहनु ।।११३।।
यशद मंगलद प्राभृतनु ।।११४।।

भ यवेल्लेन्दु केळु तलायोगियु । जयिपपरानुरागवनु ।। नयद न्नि चिंतिप आकुलितेय बिट्टु स्वयंशुद्ध रूपानुचरण ।।११५।।
य शवनु शाश्वतसुखवेन्दरियुत । असमान शान्तभावदलि ।। न स स्थावर जीवहितवनु साधिप । हसवळिवेल्ल पौद्गलिक ।।११६।।
ङ लिबन्द सुखदुःखगळलि आकुलितेय । बलवेष्टिहुदेन्द म् अवनु ।। बळिसार्द व्याकुलवेल्लव केडिपनु । कलिलहन्तकनात्मशुद्ध ।।११७।।
न् वपद धर्मद गणितव गुणिसुत । अवरोळगात्म गौरव ए ।। ल्लवनुसाधिसुतिर्प कालदोळनुराग । दवयवविनिसिल्लदिहनु ।।११८।।
ज यजयवेन्नुत तन्न देहदोळिह । स्वयंशुद्धआत्मन न वनु ।। भयविद बिडसुत परद्रव्यदनुरागद् । जयवन्ने चिंतिसुतिहनु ।।११९।।
ण वपद योगवनदरोळु रतियिर्द । सवियादंकाक्षर सार त ।। नवमांक गणितदोळ् स्वद्रव्यवरिवनु । भवभय नाशनकरनु ।।१२०।।
अवतारविनिसिल्लदवनु ।।१२१।। कविदकळ्तलेयनोडिपनु ।।१२२।। अवनु निरंजनपदनु ।।१२३।।
सुविशाल धर्मसाम्राज्य ।।१२४।। अवनु धर्मदबेट्टवेरि ।।१२५।। कविकल्पनेगे सिक्कदिहनु ।।१२६।।
अवधरिसुव तत्वगळनु ।।१२७।। नववनु भागिपनेरडिम् ।।१२८।। भवसागरवनु गुणिसुव ।।१२९।।
नवकार जपदोळगिरुवम् ।।१३०।। नवस्वर्गगळ कूडिसुव ।।१३१।। नवसिद्धकाव्य भूवलय ।।१३२।।

रुसनमाड़े परद्रव्यंगळ । बरुवा कर्मद वंध ।। वर म् म्यक्त्व शुद्धवागिसदेन्दु । अरिवरु मूवरु गुरुगळ् ।।१३३।।
द रितेयोळात्मन संसारदिं कित्तु । अरहन्त सिद्धरम् स नके ।। बरुवन्ते माडलु सिद्धतानक्केम्ब । परम स्वरूपाचरणर् ।।१३४।।
च् ध्वागिरुव चारित्रवम् सारिद । राद्तराचार्य अवर य् अ ।। साध्य असाध्यवेम्बेरडनु तिळिविह । आद्याचार्यर हितवर् ।।१३५।।
छो हर्वोरिदेवन वाणियिबंदिह । महिमेयभद्रसौख्यवु श् री ।। सहनेय धर्म निराकुलवेन्नुव । महिमेयंकाक्षर वाणी ।।१३६।।
म रुषवर्द्धनवाद आ निराकुलितेय । सरमागे मंगलवर श् रो ।। करुणेय वेरेसिह गणितवे गुणिसिह । बरुव दयापर धर्म ।।१३७।।
ह
अरहंतदेवर कृपेयु ।।१३८।। बरुवुदु संख्यात गुणित ।।१३८।। परमौषध रिद्धिय गणित ।।१४०।।
सरलांक बुद्धियरिद्धि ।।१४१।। परिपरियतिशय सिद्धि ।।१४२।। गुरुगळाशिसुतिह सिद्धि ।।१४३।।
शरणु बदवर पालिसुव ।।१४४।। हरुषदायकवाद वाक्य ।।१४५।। परिपूर्ण भरतद सिरियु ।।१४६।।
परम सम्यज्ञान निधियु ।।१४७।। सरस साहित्यद गणित ।।१४८।। अरिवु येळनूर्हदिनेंदु ।।१४९।।
परमभाषेगळेल्ल वरिव ।।१५०।। अरहंत रोरेव भूवलय ।।१५१।।

वी रमहादववाणिय सर्वस्व । शूरदिगंबरमुनियु ।। सारिद गु रुगळु दारियोळ बरुवाग । नेरवध्यातम भूवलय ।।१५२।।
रो धवळिद काव्यसिद्धसंपदकाव्य । आशेय भव्यभावुक रु ।। लेसिनिभजिसुत बरुव निर्मलकाव्य । श्री शन गणितद काव्य ।।१५३।।

अ ष्ट कर्मगळं निर्मूलवंमाळ्प । शिष्टरोरेद पूर् वें काव्य ॥ दृष्टांतबोळगेल्ल वस्तुवसाधिप । अष्टमंगलविह् काव्य ॥१५४॥
त् नुमन वचनद कृतकारितनुमोद । जिन भक्ति त् वाद ॥ गुणकारवेन्नुव गणकारिबविह् । अनुभव वैभव काव्य ॥१५५॥
थ ळयळिसुव विव्य कलेगळरवत्त् नाल्कु । गेलुवकद्नम न काव्य ॥ बळेसुत चारित्रव शुद्धगोळिसुत । बळियसारिपदिव्य काव्य ॥१५६॥

इळेय पालिप नव्यकाव्य ॥१५७॥ बेळेव सर्वोदय काव्य ॥१५८॥ घळिगे वट्टव दिव्य काव्य ॥१५९॥
सुळिय बाळेय वज्र काव्य ॥१६०॥ तिळियादसरसांक काव्य ॥१६१॥ गिळिय कोगिले दनि काव्य ॥१६२॥
यळेवेण्णदनियंक काव्य ॥१६३॥ इळेगादि मनसिज काव्य ॥१६४॥ सुलिवल्ल सुलियव काव्य ॥१६५॥
इळेय कळ्तले हर काव्य ॥१६६॥ बळिय सेरलु व्रतकाव्य ॥१६७॥ गेलवेरिदर व्रत काव्य ॥१६८॥
नलविनध्यात्मव काव्य ॥१६९॥ सलुव दिगम्बर काव्य ॥१७०॥

क मंटिक मार्तिनिवलि बळेसिह् । धर्म मूरनूररर्व तमूर म् ॥ निर्मलवेन्नुत बळिय सेरिपकाव्य । निर्मल स्याद्वाद काव्य ॥१७१॥
त् नगे बारद मातुगळनेल्लकलिसुतम् । विनयवध्यात्मं अ चल ॥ घनदंकएळु साविरविन्नुरु तोंबत्तु । एनलु अंतरदलि बरुव ॥१७३॥
ता नल्लिहत्तूवरे साविरअरवत्तारु । रानंदवेरडम् ह अ ॥ काणुवद् हदिनेंटुसाविरवेळ्नूर । काणदनलवत्तनाल्कंक ॥१७४॥
रो दनवेल्लवनळिसुव (ओडिप) सोहं । आदि ओंदोबत्तु बद् आ ॥ साधिसि मूरु काव्य वकूडिवक्षर । आदि जिनेंद्र भूवलयम् ॥१७४॥

इस तीसरे 'आ' अध्याय मे ७२९० अक्षरांक हैं। अंतर काव्य में १०,५६६ अंकाक्षर हैं। कुल मिला देने से १७८५६ अंकाक्षर होते हैं। अथवा पहला और दूसरा अध्याय मिला कर २८७५५ और दस अध्याय के १७८५६ मिलकर ४६६११ अंक हुए।

इस अध्याय में आने वाली प्राकृत गाथा:—

आर्णोहि अणन्तेहि गुणे हि जुत्तो विशुद्धचारित्तो । भवभयवन्जणदच्छो महवीरो अत्थकत्तारो ॥

संस्कृत श्लोक:—

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानांजनशलाकया । चक्षुरुन्मीलित एन तस्मय् श्री गुरवेन्नमह ॥

इस श्लोक में एन के स्थान मे व्यजन "येन" रहना चाहिए था, किन्तु अंक भाषा मे स्वर होने के कारण उसे ही रक्खा गया, है या यों समझिये कि धातूनामनेकार्थत्वात् धातुओं के अनेक अर्थ होने से एन, और येन दोनो समान ही हैं। अतः विद्वानों को इसकी शुद्धि न करके मूल कारण का अन्वेषण करना चाहिए।

यह भूवलय नामक अपूर्व चमत्कारिक ग्रन्थ सर्वभाषामयी होने के कारण प्रत्येक पेज ७१८ (सात सौ अठारह) भाषाओं से संयुक्त है अतः इस प्रकार व्यतिक्रम यदि आगे भी कहीं दृष्टिगोचर हो तो उसका सुधार न करके मूल कारणों का ही पता लगाना चाहिए। हो सकता है कि पुनरावृत्ति होने के समय यह स्वयं सुधर जाय। (संशोधक)

तीसरा अध्याय

कर्म भूमि के प्रारम्भ काल में श्री ऋषभनाथ भगवान ने भोले जीवों के अज्ञान को हटा कर अध्यात्म योग के साधनीभूत धर्म ध्यान को प्राप्त करा देने वाला जो प्रक्रम बताया था उसी को स्पष्ट कर बताने वाला यह भूवलय काव्य है ॥१॥

श्री आदिनाथ भगवान के द्वारा प्राप्त हुये उपदेश से अभ्युदय और निःश्रेयस का मार्ग अब सरलता से प्राप्त हो गया तब धर्म रूप पर्वत पर चढ़ने के लिए उत्सुक हुये आर्य लोगों को योग का मङ्गलमय सम्वाद प्रदान करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥२॥

यह मंगल प्राभृत प्राणिमात्र का सातिशय हित करने वाला है। क्योंकि ज्ञात और अज्ञात ऐसी सम्पूर्ण वस्तुओं को बतलाकर ऐहिक सुख तथा पारमार्थिक सुख इन दोनों को सम्पन्न करा देने वाला है ॥३॥

यह मंगल प्राभृत मन को सिंहासन रूप बनाने वाला है। तथा काव्य-शैली के द्वारा जिन-मार्ग को प्रगट करते हुए अध्यात्म योग को भीतर से बाहर व्यक्त कर दिखलाने वाला है। तथा यह मंगल प्राभृत या भूवलय ग्रन्थ अक्षर विद्या में न होकर केवल गणित विद्या में विनिर्मित महा सिद्धान्त है ॥४॥

जानना ही ज्ञान है और अन्दर देखना ही दर्शन है। इन दोनों को पूर्णतया सर्वज्ञ परमात्मा ने ही प्राप्त कर पाया है। जानने और श्रद्धान करने के बीच में मिलकर रहने वाला चारित्र है जो कि अनन्त है ॥५॥

अब आगे अनन्त शब्द की परिभाषा बतलाते हैं—

अनन्त के अनन्त भेद होते हैं जिन सब को सर्वज्ञ परमात्मा ही देख सकता तथा जान सकता है और दूसरा कोई भी नहीं ॥६॥

पाप को भी अनन्त के द्वारा नापा जाता है और पुण्य को भी अनन्त के द्वारा नापा जाता है। याद रहे कि आचार्य श्री ने यहां पर अनन्त शब्द से दया धर्म को लिया है ॥७॥

सब जीवों में श्रेष्ठ श्री सिद्ध भगवान हैं उनको भी अनन्त से नापा जाता है ॥८॥

अपनी आत्मा को जानना भी अनन्त है, यानी उसमें भी अनन्त गुण हैं ॥९॥

यह सब जान कर अपने अन्दर ही देखना भी अनन्त गुण है ॥१०॥

अपने आप को प्राप्त करना सारे रत्नत्रय का अङ्क (मुख्य स्थान) है सो भी अनन्त है ॥११॥

सरलता से इस अनन्त को सख्यात राशि से भी गिनती कर सकते हैं। उदाहरण के लिए चौबीस भगवान में से प्रत्येक में अनन्त गुण हैं ॥१२॥

इसी रीति से असंख्यात से भी अनन्त को गुणा कर सकते हैं ॥१३॥

तथा अनन्त को भी अनन्त से गुणा किया जा सकता है ॥१४॥

परमोत्कृष्ट शुद्ध चारित्र का अङ्क यही है ॥१५॥

इन सभी बातों को ध्यान में लेकर अनन्त की रचना की गई है ॥१६॥

महामेरु पर्वत के शिखर पर अधर विराजमान योगिराज अपनी अपूर्व योगशक्ति के द्वारा इस अंक की महिमा को देख पाये हैं ॥१७॥ यहां पर भौम शब्द से पृथ्वी धारण समझना, जो कि विशुद्ध चारित्र के अतिशय से उपलब्ध हुई है ॥१८॥

जितना चरित्र अंक है उतना ही दर्शन योग का अंक है ॥१९॥

ऐसा सबमी महापुरुषों के शुद्धोपयोग ध्यान द्वारा जाना गया है ॥२०॥

यहां पर बताई हुई पृथ्वी धारणा या सुमेरु पर्वत से पृथ्वी या सुमेरुगिरि न लेकर अपने चित्त में कल्पित सुमेरु पर्वत या पृथ्वी को लेना, जो कि अपने ज्ञान में गृहीत है ॥२१॥

यह भूवलय ग्रन्थ भी उन्हीं योगियों के ज्ञान में योग के समय झलका हुआ है। भूवलय ग्रन्थ नवमाङ्क से बद्ध होने के कारण अद्वैत है। क्योंकि १ के बिना ९ नहीं होता और जहां पर ९ होता है वहां १ अवश्य होता है। एवं अद्वैत भी अनन्त है ॥२२॥

जो पार्थिवीय सुमेरु है वह एक लाख योजन परिमित माना गया है जो

कि असख्यात प्रदेशी है। किन्तु योगियो के ध्यान मे आया हुआ सुमेरु पर्वत तो इससे कई गुणा अधिक है, जो कि अनन्त रूप है ॥२३॥

उस कल्पित पृथ्वी के ध्यान किये विना अनन्त का दर्शन नही हो सकता ॥२४॥

इस कल्पित पृथ्वी की धारणा मूल पृथ्वी के विना नही होती अत यह कथञ्चित् अद्वैत भी है ॥२५॥

इस विशाल योग मे अर्हत् सिद्धादि ९ देवताओ का समावेश हो जाता है ॥२६॥

जो ९ देवता इसी योग शक्ति के द्वारा अपने अनन्त गुणो को प्रकाश मे लाये हुये हैं ॥२६॥

इस अद्भुत महत्वशाली योग को हम नवमाक का आदि योग कह सकते हैं ॥२८॥

"नम सिद्ध परमात्म' (सिद्धपरमात्मने नम) ऐसा मन मे कहते हुए, ममकार ही मेरा आत्म राग है, इस प्रकार अपने मन मे भाते हुए द्रव्यागम बधन मे इसे बाध कर उसी मे रमण करने का नाम अमल चारित्र है।

विवेचन—यहा कुमुदेदु आचार्य ने इस श्लोक मे यह बतलाया है कि योगी जन बाह्य इद्रिय-जन्य परवस्तु से समस्त ममकार अहकार रागादिक को हटा कर इससे भिन्न अपने अन्दर योग तथा सयम तप के द्वारा प्राप्त करके देखे हुए शुद्ध आत्माके स्वरूपमे प्रीति करते हैं, उसी को अपना निज पदार्थ मान कर परवस्तु से राग नही रखते अर्थात् केवल अपने आत्मा पर आप ही राग करते और उसी मे रत होते हुए द्रव्यागम मे उसे बाँधकर उसी मे रमण करते हैं। इसी को अमल अर्थात् निर्मल चारित्र बताया गया है।

द्रव्यागम क्या वस्तु है ?—

श्री वृषभनाथ भगवान ने अनादि काल से लेकर अपने काल तक चले आये हुए समस्त विषयों को उपर्युक्त क्रमानुसार नवमाक बधन मे बाध कर द्रव्यागम की रचना की। उसके बाद अपने सयम के सम्पूर्ण द्रव्यागम को विभिन्न विधि से नवमाक पद्धति के द्वारा रचा और पूर्व मे कथित नवमाक मे बाधकर मिला दिया। तत्पश्चात् आगे अनागत अनत समय मे होने वाले समस्त द्रव्यागम विषय को संक्षेप से तीसरे नवमाक बंधन मे बाध कर रचा और उसे भी पूर्वोक्त नवमाक में मिला दिया, और जो तीन काल सम्बधी द्रव्यागम को भिन्न २ रूप में रचना की गयी थी वह सभी इसी मे एकत्रित होकर नवमाक रूप बन गयी। यह द्रव्यागम इस भरत क्षेत्र मे लगभग अजितनाथ भगवान् के समय तक स्पष्ट तथा अस्पष्ट रूप में चला आया और अतराल काल मे नष्ट-सा हो गया। पुन अजितनाथ भगवान् ने वृषभनाथ भगवान् के कथन को और अनादि कालीन कथन को मिश्रित कर चौथे नवमांक पद्धति का अनुसरण करके रचना करते हुए अपने समय के समस्त द्रव्यागमों को पूर्वोक्त क्रम में मिला दिया और सक्षेप मे अनागत काल मे होने वाले समस्त द्रव्यागम को छठवे तथा नववे बध में बाधकर पूर्वोक्त सभी अनादि कालीन द्रव्यागम रूपी नवम बंध मे बांध कर सुरक्षित रक्खा। यह द्रव्यागम सभवनाथ के अतराल काल तक चला आया। इसी क्रमानुसार सातवें नववे तथा आठवे नववें भंगादि रूप से भगवान् महावीर श्री कुदकुदाचार्य भद्रबाहु स्वामी, धरसेण आचार्य, वीरसेन, जिनसेन और कुमुदेदु आचार्य तक चले आये। इस क्रम के अनुसार कुमुदेदु आचार्य ने अपने समय के सम्पूर्ण विषय को नवमाक बध विधि को अपने दिव्य अंक तथा गणित ज्ञान के द्वारा रचना कर भूवलय रूप से अनादि कालीन-सिद्ध द्रव्यागममे मिला दिया और अनागत काल के सम्पूर्ण द्रव्यागम को भिन्न नवमाक में सक्षेप रूप से बाध कर मिला दिया इसी तरह अतीत, अनागत और वर्तमान के समस्त द्रव्यागम एकत्रित करके सुरक्षित रखने की जो विधि है वह जैनाचार्यों की एक अद्भुत कला है।

आत्महित मे सलग्न होने के अवसर मे योगी अतिशय संपूर्ण विश्व की बाह्य और आभ्यतर दोनो प्रकार की वस्तुओ से अपने ध्यान को हटाकर आत्मा मे अत्यन्त मग्न होकर मेरु के शिखर के समान निश्चल स्थित होता है ॥३०॥

आत्महित करने के लिये स्वानुकूल योग धारण करते हुए वह योगी बहिरग और अतरग अतिशय को प्रगट करने के लिये सम्पूर्ण विश्व की वस्तुओं को भूल कर उत्साह से महान मेरु पर्वत के अग्रभाग पर है ॥३१॥

मथन किये हुए अध्यात्म योग के वैभव की प्राप्ति के लिए प्रयत्न

शील होकर लोक के अग्रभाग पर विराजमान होने की इच्छा से ज्ञान युक्त योगी ॥३२॥

अन्तर श्लोक

हितानुभव के बाद ॥ ३३ ॥ अतिशय शिव भद्र सौख्य ॥ ३४ ॥ सर्वदा अभ्यास में रत रहने की बुद्धि । ३५ । हित करने वाले निर्मल चारित्र । ३६ । वीर्यान्तराय के नाश हो जाने पर । ३७ । दर्शन मोहनीय के नाश हो जाने पर । ३८ । अथवा मोहनीय के उपशम हो जाने पर । ३९ । अथवा मोहनीय के क्षय हो जाने पर आत्मा । ४० । हित कारक शुद्धात्म स्वरूप । ४१ । प्रशस्त सम्यक्त्व का सार । ४२ । स्वसवेदन का और विराग । ४३ । अतिशय सबल विराग । ४४ । वही हितकारक अपने स्वरूप । ४५ । में लीन आत्मा । ४५ । अथवा इसी स्वरूपाचरण मे योगी रत होता है । ४७

गुरुजनों के द्वारा जो आचरण करने का सार है वही देश चारित्र का अंश है। देश चारित्र मे प्रत्याख्यान का उपशम होने से अथवा क्षयोपशम से मुनियो के आचरण करने योग्य सकल चारित्र प्राप्त होता है । ४८ । सुगम रीति से प्रत्याख्यानावरण कषाय का क्षयोपशम होकर देश चारित्र का जो मार्ग है वही सकल चारित्र है । जब सकल चारित्र की प्राप्ति होती है तब शूरवीर ज्ञानी दिगम्बर मुनि के तीसरे क्रोधादि चार कषायो का उपशम होता है ॥ ४९ ॥

अकल्याणकारी कषाय के उपशम अथवा क्षयोपशम के सतत उद्योग के फल से क्षय होकर तीन लोक मे पूजनीय महाव्रत होता है ॥५०॥

जब सकल चारित्र होता है तब 'जुरण जुरण' अर्थात् वीणा ध्वनि के नाद के समान जुरण जुरण आवाज करते हुए दिव्य ध्वनि सार का गणनातीत सकल चारित्र उसी क्षण क्षण में महाव्रत रूप उज्वल होकर नाचता हुआ आत्म-योग उस मुनि में प्रगट होता है ॥५८॥

अपने को प्राप्त हुए अध्यात्म के अनुभव से महान सी यथाख्यात चारित्र उत्पन्न होकर गुणस्थान चढने योग्य परम समाधि रूपी भगवान केवली जिनेश्वर के अत्यत निर्मल यथाख्यात निर्मल चारित्र प्रगट होता है ॥५२॥

कभी दिखने वाला कभी आवरण में छिप जाने वाला यह चारित्र मुनियो के योग-मार्ग के द्वारा आया है उस चारित्र का सार नामक भूवलय है ॥५३॥

ऐसे चढते चढते सयोग केवली नामक तेरहवें गुणस्थान तक चढ जाता है ॥५४॥

खाने पीने तथा चलने फिरने के व्रत नियम इत्यादि मे भी व्यवहार चारित्र है ऐसा चरित्र यह नही है। यह केवल शुद्धात्म-योग रूपी सार से उत्पन्न होकर आया हुआ सार-आत्म चारित्र है ॥५५॥

अर्थात् यह आत्म योग के साथ आने वाला अद्भुत आत्म-वैभव रूपी योग सार है ॥५६॥

लोकाग्र तक चढ जाने के लिए यही मार्ग है ॥५७॥

इसी मार्ग से सरलता पूर्वक चढते हुए जाने से कषाय का नाश होता है ॥५८॥

संसार को बढाने वाला अत्यत शूरवीर एक कषाय ही है। उस कषाय को नाश करने वाला यह शुद्ध चारित्र योग है ॥५९॥

यह रास्ता शुद्ध है और इसमे विशेषता भी है ॥६०॥

इसी चारित्र का नाम यथाख्यात है ॥६१॥

अयोगी चौदहवा गुण स्थान अग्र अर्थात् अंतिम है ॥६२॥

जब अर्हंत भगवान अयोगी कहे जाते हैं तब इस गुणस्थान में अल्प काल तक स्थित रहता है ॥६३॥

आठवे अपूर्व करण गुण स्थान में दो श्रेणी होती हैं, एक उपशम और दूसरा क्षायिक, जब जीव इस आठवे गुण स्थान मे प्रवेश करता है तो उसी एक एक क्षण में हजारो २ अद्भुत आत्मा के विशुद्ध परिणामो को देखता है। ऐसे परिणाम को अनादि काल से लेकर आज तक कभी भी इस प्रकार नहीं देखा, इसलिए इसका नाम अपूर्वकरण—गुणस्थान है जब यह संसारी मानव रूपधारी जीवात्मा संपूर्ण संसार या इंद्रिय-जन्य वाह्य और आभ्यन्तर समस्त वासनाओ को त्याग कर मुनि व्रत धारण करके एकाकी महान गहन जगल, नदी, समुद्र तट इत्यादि किनारे पर आत्म-योग मे रत होकर जब उसके शरीर पर होने वाले अनेक परिषह तथा दुष्ट जन, और क्रूरतियँच इत्यादि द्वारा

होने वाले उपसर्ग तथा धूप सर्दी बरसात इत्यादिक परीषहों को सहन करते हुए मन में विचार करता है कि जैसा मैंने पूर्व जन्म में कर्म किया था उसी के अनुसार पाप का उदय आकर मुझे फल देकर जा रहा है। इसे तो मुझे आनन्द के साथ सहन कर लेना चाहिए। ऐसा विचार कर वे मुनिराज एक दम उपशम श्रेणी पर चढ जाते हैं। तब इस मुनि को आकाश मे गमन करने तथा जल के अन्दर गमन करने की ऋद्धि प्राप्त होती है तथा इन्हे यहां पर्वत के शिखर पर भूमि के अन्दर एव आकाश मार्ग में गमन करने की शक्ति उत्पन्न होती है। ऋद्धि के मोह से दूसरे सासादन गुणस्थान मे गिर जाता है।

वह मुनि दश पूर्व तक जिन वाणी का पाठी होकर भी फूटे हुए घडे के समान होता है अत वह भिन्न दश पूर्वी या भिन्न चतुर्दश पूर्वी कहलाता है। ऐसे लोगों को महान् आचार्य नमस्कार नही करते।

अब जो क्षपक श्रेणी प्राप्त कर आगे बढने वाला अपूर्व करण गुणस्थानी जीव है वही वास्तविक अपूर्व करण वाला होता है क्योंकि वह आगे आगे अपूर्व यानी पहिले कभी भी प्राप्त नही होने वाले ऐसे परिणामों को प्राप्त होता हुआ अविच्छिन्न गति से बढता चला जाता है। और वही अभिन्न दशपूर्वी या अभिन्न चतुर्दशपूर्वी होता है, उसी को महात्मा लोग नमस्कार करते हैं।

इसी विषय को गणित मार्ग से बतलाते हुए श्री आचार्य कुमुदेन्दु जी ने कहा है कि आठवा गुणस्थान अपूर्व करण है और उससे आगे जो छ गुण स्थान हैं उन दोनो को जोडने से चौदह होते हैं। अब उन चौदहो को भी जोड देने से एक और चार मिलकर पाच बन जाते हैं। तथा पञ्चम गति मोक्ष है। उसी मोक्ष को अगति स्थान भी कहते हैं ॥६४॥

अध्यात्म साधन मे जो मुनि इस प्रकार आगे बढता चला जाता है यानी क्षपक श्रेणी में चढता चला जाता है वह अनादि काल से खोये हुए अपने स्वातन्त्र्य को क्षण मात्र में प्राप्त कर लेता है ॥६५॥

तब ससार का अभाव हो जाता है ॥६६॥

अन्तिम भव का मनुष्य देह दूर होकर आत्मा अशरीरी बन जाता है। अथवा यों कहो कि शरीरी होते हुए अमूर्त्त ही रहता है।६७।

अब आगे केवली समुद्घात का वर्णन करते हैं.—

अरहन्त परमेष्ठी के जो चार अघातिया कर्म शेष रह जाते हैं उनमें से एक आयु कर्म की स्थिति कुछ न्यून तथा नामादि कर्मों की स्थिति कुछ अधिक होती है तो वे अरहन्त परमेष्ठी अपनी आयु के शेष होने में अन्त मुंहूर्त बाकी रहने पर केवली समुद्घात करना प्रारम्भ करते हैं। तो प्रथम एक समय में अपने आत्म-प्रदेशों को चौदह राजू लम्बे और अपने शरीर प्रमाण चौड़े ऐसे दण्ड के आकार मे कर लेते हैं। फिर एक समय में उन्हीं आत्म प्रदेशों को पूर्व से पश्चिम वात-वलयों के प्रान्त तक फैला लेते हैं कपाट की तरह। इसके बाद एक समय में आत्म-प्रदेशों को उत्तर से दक्षिण में फैलाते हैं जिसको प्रतर कहा जाता है। इसके भी बाद में एक समय में उन्हीं आत्म प्रदेशो को वातवलयों तक में भी व्याप्त करके लोकपूर्ण कर लेते हैं इस प्रकार चार समयों में करके फिर इसी क्रम से चार समयो में अपने आत्म-प्रदेशों को वापिस स्वशरीर प्रमाण कर लेते है ऐसे आठ समय में केवलि समुद्घात करते हैं। इस क्रिया से नामादि तीन अघातिया कर्मों की स्थिति आयु कर्म के समान हो जाती है। इसको स्पष्ट करने के लिए कुमुदेन्दु आचार्य ने दृष्टान्त देकर समझाया है कि जैसे गीले कपड़े को इकट्ठा करके रखे तो देरी से सूखता है किन्तु उसी को अगर फैला देवें तो वह शीघ्र ही सूख जाया करता है उसी प्रकार आत्मा भी अपने अघातिया कर्मों को समान बनाकरके खपाने मे समर्थ होता है।

तब अघाति कर्म को नाश कर सिद्ध परमात्मा होता है।६८-७०।

किसी एक स्थान में विष से परिपूर्ण चौरासी ८४ लाख घड़े रखे हुए है उनके बीच मे एक अमृत भरा हुआ कलश है। किसी अंधे पुरुष ने [illegible] से इच्छित फल को देने वाले चिंतामणि रत्न को फेंक दिया।७१।

वह चिंतामणि रत्न शुभ भाग्य से उस अमृत कुंभ में गिर जाता है, उसी प्रकार चौरासी लाख जीव-योनि इस जगत में हैं। उसके भीतर अमृत से भरे हुए कुंभ के समान एक मनुष्य योनि ही है। उस मानव योनि में पूर्व जन्म मे किये हुए अल्पारम्भ परिग्रह रूपी शुभ कर्मोदय से अंधे मनुष्य के हाथ से गिरे हुए रत्न के समान मनुष्य देह रूपी अमृत कुंभ में भाग्यता पूर्वक जीव गिर जाता है। यह मनुष्य भव कैसा है? सो कहते हैं:—

जैसे गंगा नदी है उसके दोनों तटो पर शुद्ध तथा निर्मल जल रहता है, एक तट पर मनुष्य जन्म का मार्थक अर्थात् अमृन कुंभ के समान अपने को अखंडित चक्रवर्ती पद तक ऐहिक सुख को प्राप्त करता है अत मे पारसाथिक सुख प्राप्त करने के लिए लोक-पूर्ण समुद्घात फल को प्राप्त करते हुए चौदहवे गुणस्थानवर्ती अयोगिकेवली तथा सिद्ध भगवान बनकर अखंड नित्य सुख को प्राप्त होता है। जैसे उसने उभय मुख का प्राप्ति कर लिया उसी तरह चौरासी लाख विष-कुम्भ के समान योनियो मे रहने वाले मम्पूर्ण जीव निकायो को अमृत कुम्भ के समान उत्कृष्ट मानव योनि रूप बनाकर, साथ ही साथ उनको मन्मार्ग बतलाते हुए उन जीवो को भी सिद्ध शाश्वत सुख प्राप्त करा देते हैं। इस प्रकार ऐसे सुन्दर महत्वपूर्ण विषय को छोटे सूत्र रूप से दिया गया है सो देखये—"उभय भवार्थ साधन तट द्वय शुभ मंगल लोक पूर्ण" ॥७२॥

दर्शन, ज्ञान, और चारित्र ये तीनो अग आत्मा का स्वरूप है। यह तीनों प्रत्येक जीव के अदर हैं। इन तीनो को रत्नत्रय कहते हैं। इन तीनों को पारसमणि के समान समझना चाहिए जैसे पारस मणि लोहे को स्पर्श कर देने से सोना बन जाता है उसी प्रकार आत्मा के अंदर तादात्म्य सबध रूप से रहने वाले रत्नत्रय रूप पारस मणि का अनादि काल से स्पर्श नही किया। जिन्होने इसका स्पर्श कर लिया उन्होने ससार से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर ली। इस समय मे भी भव्य ज्ञानी जीव अपने अदर छिपे हुए रत्नत्रय रूपी मणि को एक सेकंड भी स्पर्श करले तो वह भव्य जीव अज्ञान, अदर्शन, और दुश्चारित्र को अंतर मुहूर्त मे दूर हटाकर मर्कट रूप मे विचरने वाले जीव मनुष्य बन जाता है और मनुष्य देव बन जाता है और देव पुनः उत्कृष्ट मनुष्य पर्याय प्राप्त कर लेता है नब मनुष्य मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है, तब मन इंद्रिय, शरीर ये सब नष्ट होकर सिद्ध पद प्राप्त करने में क्या देर है? अर्थात् कुछ देर नही ।७३।

इस पृथ्वी पर रहते हुए इस पृथ्वी के अंतरग के विषय तथा पृथ्वी के बहिरंग विषय को, अनेक प्रकार की भिन्न भिन्न आयु के विषय को जानते हुए भी ज्ञान दर्शन से मिश्रित अपने आत्मतत्व में मग्न होकर तीन लोक के अग्र भाग मे मोक्ष सुख को प्राप्त होता है ।७४।

विवेचन—

यह पृथ्वी अनेक परमाणुओं के पिंड से बनी हुई है उदाहरणार्थ—जैसे एक सरसो के दाने के ऊपर का लाल रग और उसके अंदर का सफेद रंग है उसे सम्पूर्ण को पेल कर उसका तेल निकाल दिया जाय तो उस तेल का रग पीला निकलता है। इसके अलावा अनेक रङ्ग इसमे बनते जाते हैं। उसमें से प्रत्येक अणु अर्थात् अंश लेकर उसको और भी छोटे छोटे करते जायं तो केवली-गम्य शुद्ध परमाणु तक चला जाता है। आज कल वैज्ञानिको ने मशीन के द्वारा स्कन्ध काटे हैं किंतु उन्हे अन्तिम अर्थात् फिर जिसका टुकड़ा करने में न आवे इस प्रकार का सूक्ष्म परमाणु उन वैज्ञानिकों को अभी तक नही मिला तो भी महानशक्तिशाली हैड्रोजन बम, ऐटम बम बना लिया है किंतु केवली-भगवान के समान सूक्ष्म परमाणु देख नही सके।

केवली गम्य जो शुद्धपरमाणु है उसकी शक्ति अचित्य है। वह एक परमाणु अनादि कालीन ऐतिहासिक पदार्थ है, आगे अनन्त काल पर्यन्त ऐतिहासिक पदार्थ बनने वाला है। वह इस प्रकार है—वह इतना सुदृढ है कि चक्रवर्ती के चक्ररत्न से भी वह नही कट सकता, पानी उसे गीला नही कर सकता, अग्नि उसे जला नही सकती, कीचड़ मे घुसकर वह कीचड़ रूप नहीं बन सकता, वह कल भी था, एक मास पीछे भो था तथा एक वर्ष से भी उत्तरोत्तर आगे था। इस रूप से एक परमाणु का इतिहास यदि लिखते जावें तो अनादि काल से लेकर अनन्तकाल पर्यन्त समाप्त नही हो सकता। यह भूवलय ग्रन्थ कालानुयोग प्रकरण की अपेक्षा से है इस परमाणु का कथन करते आयें तो वह इस प्रकार है—

"आयासं खलु खेत्तम्"

आकाश की प्रदेश-श्रेणी को क्षेत्र कहते हैं। केवली-गम्य परमाणु जितने आकाश में रहता है उसे सर्वजघन्य क्षेत्र कहते हैं। इसी प्रकार यदि दो परमाणु मिलाये जाय तो दो अणुका सर्वजघन्य क्षेत्र हो जाता है। अर्थात्

जितनी संख्या आगे बढाते जायँ उतनी ही वृद्धि होकर अन्त में बृहद्ब्रह्माण्ड पर्यन्त हो जाता है। यह भूवलय के क्षेत्रानुयोग-द्वार का कथन है। इसी वस्तु को यदि भूवलय के भाव प्रमाणनुगमन योग द्वार की अपेक्षा से देखा जाय तो इतना महान् अद्भुत अर्थात् १ परमाणु रूप बृहद् ब्रह्माण्ड पर्यन्त स्कंध का १ सिद्ध जीव के ज्ञान मे गर्भित है। सिद्ध जीव अनन्त हैं। एक एक सिद्ध जीव मे एक एक बृहद् ब्रह्माण्ड का विषय यदि गर्भित है तो अनन्त सिद्ध भगवानो के ज्ञान को इकट्ठा करने पर कितने बृहद् ब्रह्माण्ड का ज्ञान होगा ? उन सभी ज्ञान को लिखने के लिए जैनो का कथन है कि एक हाथी के ऊपर की अम्वारी भरी हुई स्याही मे यदि लिखा जाय तो उससे केवल १ अ श लिखा जा सकता है तो भूवलय के समस्त भागो को यदि लिखा जाय तो कितनी स्याही लगेगी ? इसको सोच लीजिये।

ईश्वर वादी ग्रन्थो मे भी भगवान् की महिमा अवर्णनीय है। कहा भी है कि —

असितगिरिसम स्यात् कज्जल सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानामीश पार न याति ॥

अर्थ—पर्वत के बराबर कज्जल को समुद्र रूपी पात्र मे घोलकर स्याही बनाई जाय और कल्पवृक्ष की कलम मे यदि शारदा स्वय भगवान के गुणो को अहर्निशी लिखती रहे तो भी वह पार नही पा सकती।

तो जब एक भगवान मे इतनी शक्ति है तो जहा पर अनेको सिद्ध भगवान हैं वहा पर कितनी शक्ति होगी ? यह नही कहा जा सकता। इन समस्त सिद्ध भगवान की कथा कितनी स्याही से लिखी जा सकती है? इस विषय को आधुनिक वैज्ञानिक विद्वान पौराणिक ढंग अर्थात् व्यर्थालाप कहते थे, किन्तु उनके समक्ष जब ६४ अक्षरो से गुणाकार किये हुए अ क, ९२ डिजिट्स (स्थान पर बैठने वाले अ क) को अक्षर बनाकर यदि अपुनरुक्त रूप से लिखते जायं तो क्या उपर्युक्त स्याही का अनुमान गलत है ? कदापि नही। जब यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध हो चुकी तब पुन भगवान की शक्ति अपार है ही ॥७४॥

अत्यत अतिशयशाली छत्र चमरादि वैभव उन महात्मा योगियों के पास न होने पर भी वे महात्मा योगी जन सम्पूर्ण चराचर वस्तु को दिखा देने वाली मोक्ष रूपी कामिनी को प्राप्त कर लेते हैं ॥७५॥

मुक्त अवस्था मे यह जीव समस्त चराचर पदार्थों को जानने वाला हो जाता है इसलिए अलकार की भाषा में मुक्ति रूपी भामिनी का यह संग करने लगता है ॥७६॥

मुक्त जीव यद्यपि समस्त प्रकार के सासारिक प्रेम का पूर्ण त्यागी हैं, फिर भी वह मुक्ति कामिनी का कामी है। ॥७७॥

चराचर पदार्थो के जानने के कारण जो सुख मिलता है वही सर्व श्रेष्ठ सिद्ध सुख है और सब सुख ससार मे असिद्ध ही है ॥७८॥

अर्हंत अवस्था मे समवसरण में अधर स्थिर होकर चराचर को जानता था परन्तु सिद्ध अवस्था मे लोक के अग्र भाग में बिना आधार के स्थिर रहता है और अपनी आत्मा मे ही स्थिर रहकर देखना जानता है ॥७९॥

ससार अवस्था मे जानने देखने की सीमा थी परन्तु सिद्ध अवस्था में देखने जानने की सीमा न रहकर अपरिमित हो गई ॥८०॥

ससार अवस्था मे सुख क्षणिक था परन्तु सिद्धावस्था में वह क्षणिकता नष्ट हो गई और नित्य सुख हो गया ॥८१॥

ससार अवस्था मे जो सब से लघु था वह ही मुक्त अवस्था में सबका स्वामी और सब का गुरु हो जाता है ॥८२॥

ससार अवस्था मे जिसको कोई ध्यान में भी न लाता था वह ही मुक्त हो जाने पर राम लक्ष्मण आदि महापुरुषो के हृदय कमल मे वास करने लगता है ॥८३॥

ससारावस्था मे इस जीव के साथ नाम कर्म उत्पन्न होने वाले रूप रस गन्ध स्पर्श आदि पौद्गलिक भाव थे परन्तु सिद्ध हो जाने पर वह नहीं रहे इसलिए अरूपी अमूर्तिक हो गया ॥८४॥

समार अवस्था में यह जीव नाना कामनाओ से लिप्त रहता था परन्तु

सिद्ध हो जाने पर सम्पूर्ण कामनाओ से रहित हो जाने से स्वय ही कमनीय हो गया ।८५।

ऐसे गुण विशिष्ट कौन हैं ? तो कहना होगा कि वे युग के प्रारम्भ मे होने वाले गोम्मटेश्वर के पिता जगद् गुरु आदिनाथ भगवान है ।८६।

वे सबसे महान है तो भी सबसे सूक्ष्म हैं ।८७।

अनन्त गुणो के स्वामी होने के कारण वे महान है ।८८।

क्षेत्र और माला की परिधि से रहित हैं ।८९।

अनन्त अ कवलय मे वेष्टित हैं अर्थात् इनके अनन्त गुणो को अनन्त अंको के वलयों से ही जान सकते हैं ।९०।

अर्हंत अवस्था मे ऋद्धियो का वैभव था, सम्पूर्ण ज्ञान साम्राज्य प्राप्त था, और चारित्र मे लीन थे इसलिए परमौदारिक दह मे रहने पर भी देह के विकारों से अलिप्त थे इसीलिए उन्होने अन्त मे देह बन्ध को तोड दिया ।९१।

जिनका मन अपने आत्म सम्पत्ति मे लीन है वह हमेशा भगवान जिनेश्वर के समान अक्षुब्ध अर्थात् राग रहित वीतरागी होकर अपने आत्मानुभव मे लीन रहता है। इस प्रकार मे अक्षुब्ध आत्मानुभव मे रत रहने वाले के अत्यन्त निबिड कर्मो की अनन्त निर्जरा होती है।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

विवेचन—

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस श्लोक मे शुद्धात्म रत ध्यानी योगी के योग सामर्थ्य का वर्णन इस प्रकार किया है कि ज्ञानी योगी के शरीर होने पर भी न होने के समान है, कारण यह है कि जिस योगी का मन सदा आत्म-सम्पत्ति रूपी सम्पदा मे मग्न रहता है वह हमेशा वीतराग जिनेन्द्र भगवान के समान अक्षुब्ध है, ऐसे शुद्धात्म अनुभव मे रहनेवाले योगी के अनादि काल से लगे हुए अत्यन्त कठिन कर्मो के पिघलने मे क्या देरी है ? अर्थात् कुछ नही।

इसप्रकार श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने यहा तक सिद्ध भगवान तथा अर्हंत भगवान के गुणो का वर्णन किया। अब ९३ तिरानवे श्लोक से आचार्यादि तीन परमेष्ठियो के स्वरूप का वर्णन करेंगे।

ससारी जीव को अपने शरीर की रक्षा करने के लिए तेल, साबुन, मर्दन, कपडे लत्ते, कोट कम्बल इत्यादि अनेक प्रकार के चीजों की जरूरत पड़ती है। जब वह ससारी जीव मुनि व्रत धारण करता है तब उसे अपनी आत्म रक्षा करने के लिए शरीर की रक्षा करना पडता है। अनादि काल से शरीर रूपी कारागृह में बन्धे हुए आत्मा को बाहर निकाले बिना उसकी सेवा नहीं हो सकती क्योकि शरीर की सेवा वास्तविक सेवा नही है क्योकि उसकी सेवा जितनी ही अधिक की जाती है उतनी ही और आकाक्षा दिनों दिन बढती जाती है पर यदि आत्मा की सेवा एक बार भी सुचारु रूप से हो जाय तो पुनः कभी भी उसकी सेवा करने की आवश्यकता नही पडती। अत आत्मा को शरीर से मुक्त करना ही यथार्थ सेवा है ॥९३॥

तिल मात्र भी भयभीत न होते हुए जब ध्यान में रत होकर नयमार्ग को न छोडने वाले नियम से आत्मा में रत होने वाला योगी ध्यानाग्नि के द्वारा अनन्त कालीन पापकी निर्जरा करले, इसमे क्या आश्चर्य है ? अर्थात् नहीं है।

निर्भय होकर योगी नये मार्ग पर बढता चला जाता है। नियम से आत्मा के शुद्ध स्वरूप मे लीन होता है तब ध्यानाग्नि द्वारा अनन्त राशि सचित पाप कर्मो का नाश कर देता है। इसमे कुछ भी आश्चर्य नही है ।९४।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस श्लोक मे यह बतलाया है कि—

योगी समस्त मदो से दूर रहकर व्यवहार और निश्चय दोनों नय मार्ग का आश्रय लेता हुआ स्व वशीकृत खड्गासन अथवा पद्मासन से ध्यान में रत होता है और तब स्वरस से परिपूर्ण हो जाता है ।९५।

स्वरस मे परिपूर्ण हो जाने पर अपने वशीभूत हुए मार्ग का ही चिंतवन करता है ।९६।

स्वसमाधि मे स्थिर हो जाता है ।९७। स्व मे सम्पूर्ण हो जाता है ।९८। समस्त मिथ्या मार्गो को छोड देता है ।९९। पूर्वकृत अपराधों को बहा देता है ।१००। कर्म रूपी दड को जला देता है ।१०१। नवीन दीक्षित को जैसे आनन्द का अनुभव होता है वैसा आनन्दानुभव होने लगता है ।१०२। यश को पैदा करने वाले लक्ष्य को सिद्ध कर लेता है ।१०३। नवीन गुणो की वृद्धि से युक्त होता हैं ।१०४। इस सिद्धि की इच्छा से रहित होता है।

भावार्थ—ससारी जीव जिस प्रकार नाना ऋद्धियों की इच्छा से

आकुलित रहता है इस प्रकार वह किसी भी ऋद्धि की इच्छा से आकुलित नही रहता। यहा उपयोगी होने से श्रीभर्तृहरि और शुभ चद्रो चार्य का कथानक लिख देना उचित है। एक राजा के दो पुत्र थे, एक का नाम भर्तृहरि और दूसरे का नाम शुभचन्द्र था ससार की दशा का विचार कर दोनो वैरागी हो बनवासी हो गये। भर्तृहरि रस आदि ऋद्धियो के साधन करने वाले गुरु के शिष्य हो गये और शुभचन्द्र किसी भी ऋद्धि को न चाहने वाले आत्म योगी वीतराग साधु के शिष्य बने। भर्तृहर ने बहुत वर्षों की साधना के बाद रस ऋद्धि को प्राप्त की अर्थात् इस-पारद को सिद्ध कर लेने के कारण सुवर्ण बनाने लगे।

एक दिन उन्हे अपने भाई का ख्याल आया कि मैने तो रस सिद्धि प्राप्त करली है और मेरे भाई ने क्या सिद्ध किया है इसलिए एक शिष्य को शुभचद्र की तलास मे भेजा। इधर उधर खोजते हुए शिष्य ने शुभचद्र को दिगम्बर (वस्त्र आदि के आवरण से रहित) वेष मे देखा और मन मे सोचा कि हमारे गुरु के तो बडे ठाठबाट हैं परन्तु इनके शरीर पर तो वस्त्र तक नही है। अस्थि-मात्र शेष हैं, आहारादि भी नही मिलता। इस तरह मन में दुखित हो शिष्य गुरु भर्तृहरि के पास लौट गया और सब वृत्तान्त कह सुनाया।

भर्तृहरि ने अपने भाई की यह दशा सुनकर सिद्ध रस तूबडी मे भर भेजा और कहलाया इससे मन चाहा सोना बनाकर वस्त्र आहार आदि आवश्यक वस्तुओ को प्राप्त करना।

शिष्य सिद्ध रस से भरी तुम्बडी लेकर शुभचद्र के पास पहुचा और गुरु का वक्तव्य कह सुनाया। शुभचद्र ने यह सब सुना, मन मे भर्तृहरि की बुद्धि पर दया भाव किये और शिष्य से कहा कि इस रस को फेंक दो तो वह श्रम साध्य सिद्ध रस को इस प्रकार निरर्थक फेकने के लिए राजी न हुआ। परन्तु वापिस रस को ले जाने से गुरु नाराज हो जायेगे इस बात से इसको शिला पर फेंक देना पड़ा। वापिस लौटकर जब गुरु भर्तृहरि से सब वृतान्त कहा तो वे बडे दुखित हुए और स्वय भाई के पास पहुंचे। शुभचन्द्र को अत्यन्त दुर्बल देखकर आश्चर्य में आ गये और सिद्ध रस लेलेने का आग्रह करने लगे। भर्तृहरि की भ्रांति को दूर भगाने के उद्देश्य से शुभचद्र ने रस भरी तुंबडी पत्थर पर पटक दो जिससे सब रस फैल गया। अब तो भर्तृहरि के हाहाकार का ठिकाना न रहा वे अपने रस सिद्धि की कठिनता और उसके लिए किये गये परिश्रम का बार बार बखान करते हुए उलाहना देने लगे।

यह देखकर शुभचन्द्र तो जमीन पर से धूलि चुटकी में उठाई और शिला पर डाल दी जिससे सम्पूर्ण शिला सोने की बन गई और भाई भर्तृहरि से बोले कि—भाई ! तुमने अपने इतने समय को व्यर्थ ही रस सिद्धि के फेर में पडकर गवा दिया। सोने से इतना प्रेम था तो अपने राज महल में वह क्या कम था। वह वहा अपरिमित था। उसे तो आत्म गुण की पूर्णता प्राप्त करने के लिए हम लोगो ने छोडा था। आत्मसिद्धि हो जाने पर वह जड पदार्थ अपने किस काम का है ? इसलिए यह सब छोडकर आत्म सिद्धि मे लगाना उचित है।

शुभचन्द्र की यह यथार्थ बात सुनकर भर्तृहरि को यथार्थ ज्ञान होगया और वे दिगम्बर वीत रागी यथार्थ साधु बन गये।

इसीलिए योगी आत्मसिद्धि करते हैं और इस सिद्धि की तरफ लक्ष्य नही करते ।१०५।

रस सिद्धि जब नही चाहते तब काम देव का प्रभाव उनपर पड ही कैसे सकता है ? अर्थात् कामवासना उनको नही सताती ।१०६।

योगी उस समय नवीन नवीन पदार्थों का ध्यान मे चिंतवन करता है ।१०७। क्षुधा आदि परिष हैं पर विजय करते हुए शरीर से दंडित करता हैं ।१०८। कीर्ति देने वाले चारित्र मे स्थिर रहना है ।१०९। पर द्रव्यों को फक कर पृथक् कर देना है ।११०। दिखावटी प्रेम से रहित होता है ।१११।

इसी प्रकार के ऋषि रूप को धारण करने वाले भद्र देही होते हैं ।११२।

इस मध्य लोक की पृथ्वी पर रहकर भी आत्म रूपी भूवलय में रहता है अर्थात् अपने शुद्धात्म स्वभाव मे रत रहता है ।११३।

विश्व मे ख्याति को आत्मा को फैलाने वाले मगल प्राभृत में रहता है ।११४।

विशेषार्थ—समस्त मगल प्राभृत मे २०७३६०० अक्षर अंक है वे ही पुन पुन घुमा फिरा कर समस्त भूवलय में प्रयुक्त हुए हैं इसलिए भूवलय ही

मंगल प्राभृत है और मंगल प्राभृत ही भूवलय है। इसी भूवलय के अक्षरो को भिन्न भिन्न प्रणालि से भिन्न भिन्न पृष्ठों के पढने पर ३२४०० भूवलय बन जाते हैं।

सर्व जीवों के भय को निवारण करने वाले योगी को भय कहा से आयेगा। जिस योगी ने परानु राग को जीत लिया है इन योगी राज को भय कहां से होगा, स्वयं शुद्ध रूपानु चरण मे रत रहने वाले योगी को भय कहां ? सम्पूर्ण नय मार्ग की आकुलता को छोडकर आत्म चितवन में रहने वाले योगी पूछता है कि भय कैसा है ॥११५॥

जो योगी असमान शान्त भाव में रहने के कारण त्रस स्थावर जीवो के हित को साधन करने वाला होता है, वह योगी शाश्वत मुक्ति सुख को प्राप्त कर लेता है। क्योकि वह योगी देहादिक ससार के सम्पूर्ण पोद्गलिक पदार्थो को अपने से भिन्न समझता है और वह योगी विचार करता है कि इन पौद्गलिक पर पदार्थों मे होने वाले सुख दु.ख की आकुलता का कितना बल है इसको मैं देख लू गा। इस प्रकार धैर्य धारण करते हुए सम्पूर्ण कर्म मल को नाशकर शुद्धआत्मा बन जाता है ॥११६-११७॥

अर्हंत्सिद्धादि नव पदो को गुणा कार रूप अपने आत्म गौरव को बढते हुए वह योगी अपने आत्मस्वरूप को शुद्ध बनाता है तो उसके पास पर पदार्थो के प्रति तिलमात्र भी राग नही रह जाता है ॥११८॥

हे आत्मन ! जय हो जय हो ! इस प्रकार परम उल्लास को प्राप्त होते हुए तथा पर पदार्थों के लगाव को दूर हटाते हुए केवल अपने शुद्ध आत्मा के चितवन में ही लीन हो रहा है ॥११९॥

वह योगी—जब अर्हंत्सिद्धादि नव पदों के चितवन मे एकाग्रतापूर्वक तल्लीन होता है एंव नवम अङ्क की महिमा को प्राप्त करता है तब उस समय उस नवम अङ्क की महिमामय अपने आप को ही अनुभव करते हुए तथा नवम अङ्क और अक्षर को समान देखते हुये वह भव भय का नाश करन वाला होता है ॥१२०॥

जब तक कि यह संसारी जीव नवम अक और अक्षरों में भेद समझता जा रहा था तभी तक इसको जन्म मरण करना पड रहा था। अतः जब उन दोनों में अभेद स्थापना कर लेता है तो सहज में जन्म मरण से रहित हो जाता है। ॥१२१॥

अज्ञान रूपी जो अंधकार था अब वह नष्ट हो गया अर्थात् उसको भगा दिया ॥१२२॥

वह योगी निरजन पद का धारी होता है ॥१२३॥

उनको विशाल धर्म साम्राज्य मिल जाता है ॥१२४॥

धर्म रूपी पर्वत की शिखर पर पहुंच जाता है ॥१२५॥

अर्थात् धर्म द्रव्य लोक के अन्त तक है इस लिये यह आत्मा उसके अन्त तक पहुंच जाता है।

उसकी कवि कल्पना भी नही कर सकता है ॥१२६॥

अपने आत्म-तत्व के साथ अन्य सपूर्ण तत्व को जानता है ॥१२७॥

सभी गणित शास्त्र तत्वज्ञों का यह कथन है कि नव अंक को दो अंक से विभाजित करने पर शेष शून्य नहीं आता है किन्तु जैनाचार्यों ने असाध्य कार्य को भी साध्य कर दिया है, अर्थात् नव को दो से विभाजित करके शेष शून्य को बचा दिया है। इसका विवरण दूसरे अध्याय के विवेचन में कर चुके हैं, वहां से समझ लेना ॥१२८॥

यह योगी अनादि काल से चले आये भव समुद्र के जन्म रूप जल के कणों को ऊपर रहे हुए गणित रूप से जान लेता है।

नवकार मत्र को जपते रहता है ॥१२०॥

अ. इ. उ ऋ लृ ए ऐ. ओ. औ. इन नव स्वरों को मिला देता है। ऐसे

योगियों का गुण गान करने वाला यह भूवलय है। परद्रव्य के दर्शन करने से जिस कर्म का बंध होता है वह कर्म सम्यक्त्व को शुद्ध नहीं करता है अैसा अरहंत, आचार्यादि, गुरुओ ने समझाया है। परम स्वरूपाचरण में रहने वाले आत्मा को समार से निकाल कर सम्यक्त्व चारित्र में रहने के कारण मन की ओर अरहत और सिद्धों को लाकर स्थिर करने से सिद्ध पद प्राप्त होता है। ऐसा अरहत परमेष्ठियो ने कहा है। अर्थात् कानडी काव्य का १ छन्द सांगत्य २ चरित्र मे ही गर्भित है ऐमा भी इसका अर्थ होता है।

जिन जिन भावो मे जो असाध्य है, इस बात को वृषभ सेन आदि आचार्यों ने साध्य कहा है भव्य जीवो को आचार विचार चारित्रादि में स्थित करने वाले अन्य आगम मे किसी प्रकार उधृत नही किया है ॥१३५॥

सभी आचार्यों ने परम्परा परिपाटी के अनुमार मगल तथा सुख मय निराकुलतायें सराहनीय धर्म को अकाक्षर मिश्र रूप से उत्पन्न होने वाली वाणी की परम्परा पद्धति के अनुमार ही भगवान महावीर की वाणी मे लिया है, इसलिये यह वाणी यथार्थ रूप है ॥१३६॥

यह निराकुल अर्थात् आकुलता रहित मार्ग मगल रूप होने के कारण सनोष की वृद्धि करने वाला है। और परम अर्थात् उत्कृष्ट करुणामय गणित से निकल आता है. इमलिए इसका दूसरा नाम दयामय धर्म भी हैं ॥१३७॥

यह धर्म अरहंत भगवान के मुख कमल से प्रकट हुआ है ॥१३८॥

संख्यात अंको से भी गुणा कर मकते है ॥१३९॥

उत्कृष्ट औषध ऋद्धि गणित को यह बनलाने वाला है ॥१४०॥

आठ प्रकारों की बुद्धि ऋद्धि को सुलभ अको से बनलाने वाला है ॥१४१॥

भिन्न भिन्न अनेक अतिशय युक्त सिद्धि को प्राप्त करा देने वाला है॥१४२॥

भव्य जीवो का उपकार करने के लिए आचार्यों ने लिखा है ॥१४३॥

संसार सागर मे अनेक बार भ्रमण करते करते अत्यंत भय भीत होते आये हुए जीवों की रक्षा करता हे सभी जीवों को हर्ष उत्पन्न करने वाला यह वाक्य है। यह वाक्य सम्पूर्ण भरत खंड की सम्पत्ति है ॥१४६॥

परमोत्कृष्ट सम्यग्ज्ञान की निधि है ॥१४७॥

सुलभ साहित्य का गणित है ॥१४८॥

परम उत्कृष्ट ज्ञान को ७१८ भाग में विभाजित किया गया है ॥१४९॥

उन अनेक प्रकार की विधियों को भाषाओं के नामसे अंकित किया है वे सभी इस भूवलय में हैं ॥१५०॥

इसलिये अरहंत देव ने ही इस भूवलय का कथन किया हं ॥१५१॥

इस श्री महावीर की सर्वांग सुन्दर दिव्य ध्वनि को शूर दिगम्बर मुनियों ने मार्ग में विहार करते समय अध्यात्म रूप में लिखा तद्रूप यह भूवलय ग्रन्थ हैं॥१५२॥

इस काव्य को पढने से सम्पूर्ण कषाय नष्ट हो जाती है। शेष को नष्ट कर सिद्ध पद को प्राप्त करता है। इस लिए भव्य भावक (जीवो) मनुष्य के द्वारा इसकी आराधना करते हुए गुणाकार रूपी काव्य है ॥१५३॥

इस भूवलय ग्रन्थ में साठ हजार प्रश्न हैं। इन प्रश्नो उत्तर को देते समय प्रत्येक प्रश्न पर दृष्टान्त पूर्वक विवेचन है। इस ग्रन्थ को चौदह पूर्व तथा उस से प्रकट हुई वस्तु भी कहते हैं। जिन्होने अष्ट कर्मों को नष्ट किया है ऐसे भगवान ने कहा है। अत. इस भूवलय ग्रन्थ में अष्ट मंगल द्रव्य हैं ॥१५४॥

जिनेन्द्र देव की भक्ति करते समय मन वचन काय को कृत कारित अनुमोदना इन तीनों से गुणा करने से नौ गुणनफल आता है। फिर इन अंकों को अरहन्त सिद्धादि नौ पदों से गुणा करने से ८१ (इक्यासी) संख्या हो जाती है। इस प्रकार गणना करने वाले 'गणक' ऐसा कहते हैं। उन गणकों के अनुभव में आया हुआ यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१५५॥

इस भूवलय में चौसठ कलायें है। यह सब चौसठ कलाएँ नौ अंक में ही अन्तर्गत हैं। यह नौ अंक समस्त जीवों के चारित्र को शुद्ध करते हुए

अपने आत्मा के समीप में लाने वाला यह दिव्य भूवलय काव्य है ॥१५६॥

जनता का पालन, सच्चरित्र द्वारा कराने वाला यह काव्य है ॥१५७॥

इस काव्य को पढ़ने से सर्व प्रकार की उन्नति होती रहती है इसलिये सर्वोदय काव्य है ॥१५८॥

काल को बताने वाली जल, घटिका के समान यह दिव्य एक है॥१५९॥

केलों के पत्ते के उद्गम काल में जैसी कोमलता और सुन्दरता रहती है वैसे ही यह मृदु सुन्दर काव्य है ॥१६०॥

अत्यंत सूक्ष्म अक्षर वाला यह सरसाक काव्य है ॥१६१॥

तोता और कोयल के शब्द के सामान सुनने मे प्रिय लगने वाला यह काव्य है ॥१६२॥

कुमारी बालिका की बोली जैसे सुनने मे प्रिय लगती है और मांगलिक होती है वैसे ही यह काव्य सुनने मे प्रिय लगता है और मगल को देता है ॥१६३॥

प्रथम कामदेव गोम्मटेश्वर का यह काव्य है ॥१६४॥

अदंत धावनदि अठाईस मूल गुणों को धारण करने वाले दिगम्बर मुनियों का यह काव्य है ॥१६५॥

सम्पूर्ण जगत के अज्ञान अधकार का नाश करने वाला यह काव्य है। ॥१६६॥

इस काव्य का अध्ययन करने वाला मनुष्य व्रती बन जाता है ॥१६७॥

व्रत को उज्ज्वल करने वाला यह काव्य है ॥१६८॥

आनन्द को अत्यत बढाने वाला यह आध्यत्मा काव्य है ॥१६९॥

दिगम्बर मुनि विरचित यह काव्य है ॥१७०॥

जिसको कर्णाटक कहा जाता है उस भाषा का नाम वास्तव में कर्माटक है यह बात कर्णाटक राज्य के दो करोड आदमियों में आज भी प्रचलित है। भगवान की वाणी भी मूल में इसी भाषा में प्रचलित हुई थी इसलिए ग्रन्थ को कुमुदेन्दु आचार्य ने इसी भाषा में लिखा है।

इस भूतल पर तीन सौ त्रेसठ मत देखने में आ रहे हैं जो कि एक दूसरे से परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं और सदा ही लड़ते रहते हैं उन सब को एकत्रित करके मैत्रीपूर्वक रखने वाला स्याद्वाद है। एवं उस स्याद्वाद के द्वारा श्री आचार्य ने इस भूवलय ग्रन्थ में बडी खूबी के साथ शांतिपूर्वक उन सब को अपनाया है ॥१७१॥

इस ग्रन्थ का अध्ययन करने से जिन भाषाओं का लाभ हमको नहीं है उन सब भाषाओ का ज्ञान भी सरलता पूर्वक हो जाता है। एवं विनय पूर्वक इसका अनुमान करने से अध्यात्मसिद्धि होकर वह आदमी अचल बन जाता है। इस प्रकार प्रतिपादन करने वाले इस तीसरे अध्याय में, ७२१० अङ्क हैं जिन में आ जाते हैं ऐसे दश चक्र हैं। उन्ही दशचक्रो को दूसरी रीति से पढ़ने पर १०५६६ अक और निकलते हैं। इनदोनो को मिलाने पर १४४ कम १८००० अंकाक्षर हो जाते हैं ॥१७२॥

सम्पूर्ण ससार के दुःख को नष्ट करने वाला सोऽहं यह अपूर्व मन्त्र है इसका अर्थ होता है कि युग के आदि में होने वाले भगवान ऋषभ देव की सिद्धात्मा का जैसा स्वरूप है वैसा ही मेरा भी स्वरूप है।

प्रश्न -सिद्ध भगवान तो अनादि से हैं फिर श्री ऋषभदेव को हो क्यों लिया? इसका उत्तर यह है कि—श्री ऋषभ देव भगवान ने ही प्रारम्भ में अपनी पुत्री सुन्दरी को अक भाषा में यह भूवलय ग्रन्थ पढाया था। जो कि नौ ९ अंको में सम्पादित किया हुआ है ॥१७४॥

इति तीसरा आ ३ प्लुत अ अध्याय समाप्त हुआ।

इस अध्याय के अन्तर्गत प्राकृत भगवद्गीता है उसको यहा उधृत करते हैं।

णाणेहि अणन्तेहि गुणेहि जुत्तो विशुद्धचारित्तो।
भवभयवञ्जणदच्छो महवीरो अत्थकतारो।

अर्थ–णा (णा) णेहि यान ज्ञानादी अनन्त गुणो से युक्त विशुद्ध चारित्र वाले भव भय का नाश करने वाले भगवान महावीर ही इस ग्रंथ के अर्थ कर्ता हैं।

इसी के अन्तर्गत यह निम्न लिखित मंगलाचरण का श्लोक निकलता

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं एन तस्मै श्री गुरु वेन्नमः॥

इस श्लोक में आये हुये 'एन' के स्थान पर संस्कृत भाषा की दृष्टि से 'येन' होना चाहिये परन्तु चित्र काव्य और श्लेषालंकार में एक तथा ये को एक ही मान लिया जाता है। इसी प्रकार गुरुवेन्न नम. के बारे में भी समझलेना।

चौथा अध्याय

इ* ष्टोपदेशव नष्ट कर्माशव । स्पष्टदे अरहंतरु श्* री ॥ अष्टगुणान्वित सिद्धर स्मरिसिद । अष्टमजिन सिद्ध काव्य ॥१॥
य* शश्वतिदेविय करविडिदादि । वृषभजिनेशन काव्य ॥ अश रो* र सिद्धत्व वडदु बाळुव काव्य । ऋषिवंशवादि भूवलय ॥२॥
मू* रुवेळेयोळु सामायिकदेनिल्व । वीरजिनेन्द्रदारियद ॥ सेरि प* द्धतियतिशयदनुभव । सारभव्यर दिव्य काव्य ॥३॥
ल* क्षणवरियुत स्वसमयवद सारि । अक्षरदंकदोळ्बे र सि* ॥ शिक्षेयोळेदिद्रिय मत्तु मनवनु । लक्षणदिस्तब्धगोळिसि ॥४॥
त* नुवनु मरेयुत जिनरूपे नानेब । घनविद्यॆयनुभववागे ॥ म* नवेसिम्हासनवागिरलमलात्म । जिननंते कमलदासनवि ॥५॥

घनवैभवदिंद कुळितु ॥६॥ जिननंते कायोत्सर्गदलि ॥७॥ अनुदिनदभ्यासबलदि ॥८॥
दिनदिनयोगहेच्चुतिरे ॥९॥ इननंतेतण्पिन ज्योति ॥१०॥ घनवागि बेळगुत्तलिरलु ॥११॥
तनगेताने अह्मनेनुव ॥१२॥ जिन धर्मदनुभव बरलु ॥१३॥ ऋणद देहव मरेतिहरु ॥१४॥
एणिकेगे बारदध्यात्म ॥१५॥ घनप्रतिक्रमण तानागे ॥१६॥ चिनुमय मुद्रेयदोदगे ॥१७॥
घनरत्न मूरर बेळकु ॥१८॥ तनगेताने बदु बेळगे ॥१९॥ मनुमथनुपटल करगे ॥२०॥
जिननाथनोरेद भूवलय ॥२१॥ तनुविनोळात्म भूवलय ॥२२॥ वेनुतितु निलुव कुळ्ळिरुव ॥२३॥
तनुवदे स्वसमय सार ॥२४॥

न्* अवदकंदंते स्वयम् परिपूर्णद । अवयववदे शुद्ध गु* णद ॥ अवतार स्थानद हृदिनाल्करत्नद । चिनुमय सिद्ध सिद्धांत ॥२५॥
त* नुवनु परवेंदरियुत आपर । दनुरागवनु तोरेदाग ॥ जिन र* सिद्धर रूपिननुभव हेच्चुत । तनु रूपिनंतात्म रूपु ॥२६॥
क* रगुवुदास्रव बरुव बंधवदिल्ल । निराकुलतेय पद्म वे* ळु ॥ सरमालेयंते तन्नेदेयलिकाण्बाग । अरुहनपददंग गुणित ॥२७॥
त्* रतरवाद अद्भुतपरिणामद । सरस संपदवेल्ल अव न* ॥ हरुषवनेरिप समयद लब्धियु । बरुवागआ अंतरात्म ॥२८॥

वरुवाग अवनतरात्म ॥२९॥ परिणाम लब्धियागुवदु ॥३०॥ बरलरहंत तानेनुव ॥३१॥
वरुषवर्द्धनकादि एनुव ॥३२॥ बरे बरुवाग तन्नात्म ॥३३॥ गुरुवादे जगकेएंदेनुव ॥३४॥
अरहंतरनु कडेनेनुव ॥३५॥ परिशुद्ध नाने एंदेनुव ॥३६॥ परमात्म पदवडदेनुव ॥३७॥
गुरुपद दोरेयितेंदेनुव ॥३८॥ सिरियाय्तुज्ञानवें देनुव ॥३९॥ परममंगलनाल्कु एनुव ॥४०॥
परमात्म चरण भूवलय ॥४१॥

ता* नु तन्नंद पडेव कार्यदोळिर्प । आनन्द शाश्वत सुख म* ॥ तानु तन्निंदले तनगागि पोंदुव । तानल्लदन्यरिगरिया ॥४२॥
सि* वनव शाश्वत निर्मल नित्यनु । भववनेल्लव केडिसुव् ह* ॥ अविरल सुखसिद्धियवने महादेव । अवनादि मंगल भद्र ॥४३॥
रि* द्धियाशेय होद्धदिरुव चिन्मयनु । शुद्धत्ववेल्लमह श्* री ॥ बुद्धिर्द्धियाचार्य पाठक साधुवु । शुद्ध सम्यक्त्वदसारा ॥४४॥

वी* तरागनु निरामयनु निर्मोहियु । कातरविनितिल्लविह ॥ ख्यात री* योळु बाळुव भव्यरिगाश्रय । पूत पुण्यनु शुभ सौख्य ॥४५॥
रों* ष तोषगळिल्ल क्रोध मोहगळिल्ल । आशेयनंतानुबंध ॥ प* असरिसल्नेडेयिल्लदवननुभव काव्य। श्री शन सिद्ध भूवलय ॥४६॥
श्री शनाडिद दिव्य वाणि ॥४७॥ घासि अप्रत्याख्यान ॥४८॥ राशि कषायगळिगुम् ॥४९॥
मासुत प्रत्याख्यान ॥५०॥ रोषद सूक्ष्मसम्ज्वलन ॥५१॥ लेसिन जलरेखेयन्ते ॥५२॥
आशाजलद संज्वलन ॥५३॥ लेसिनि भावदोळ् मेरेये ॥५४॥ तासुतासिनोळगनन्त ॥५५॥
राशिकषायभेदगळ ॥५६॥ घासिय माडुतवहुदु ॥५७॥ लेसिन जलरेखेयन्ते ॥५८॥
मासदे बन्दुसेरुवुदु ॥५९॥ आसेय भेदविज्ञान ॥६०॥ राशिमाळ्पुदु तुषगळनु ॥६१॥
माषवकाळिनन्तात्मा ॥६२॥ श्री सनन्ददलि योगदोळु ॥६३॥ श्री सिद्धालयवे अल्लिहुदु ॥६४॥
आसिद्धालयद अनन्त ।७५॥ राशिय सिद्ध भूवलय ॥६६॥
इ* दरोळगिरुव षड्द्रव्यगळेल्लव । हुदुगिसिकोन्डिह प र* म ॥ पदप्राप्त जीवने पंचास्तिकायदे । अदु मत्ते एळु तत्वगळ ॥६७॥
नृ* वपदार्थगळेम्ब अवसर वस्तुव । नवयवदोळु तुम्बि म* रळि ॥ अवनेल्लवनोन्दकूडिसि तिळियुव । अवुगळ लेक्कवे जीव ॥६८॥
व* रुशन ज्ञान चारित्रव वशगोन्डु । सरमाले इवनेल्ल मुरु गु* ॥ शरदओम्वत्तेळु ऐदारु कूडलु बरुव दिप्पत्तेळरंक ॥६९॥
भू* वलय सिद्धान्त दिप्पत्तेळु । तावेल्लवनु होन्दिसि रु* व ॥ श्री वीरवाणियोळ्वह "इ" मंगल काव्य । ईविश्वदूर्ध्वलोकदलि ॥७०॥
दि* वगळप्रद तुत्ततुदियलि बेळगुव । शिवलोक सलुव मान व* वरु ॥ धवल छत्राकार दग्रदगुरुलघु । सवियात्म गुणदोळगिहरु ॥७१॥
अवरव्याबाध गुणरु ॥७२॥ नवनवोदित सूक्ष्म घनरु ॥७३॥ अवरवगाहदोळिहरु ॥७४॥
सवियनन्तद ज्ञानधररु ॥७५॥ नव सम्यक्त्व दर्शनरु ॥७६॥ अवरनन्तानन्त बलरु ॥७७॥
अवरनागत सुखधररु ॥७८॥ अवरती तद ज्ञानधररु ॥७९॥ सविरुपिनशरीर घनरु ॥८०॥
अवरुशाश्वतरुचिन्मयरु ॥८१॥ अवरावागलु नित्यर् ॥८२॥ अवरसुखवु बेकेन्देनुव ॥८३॥
नवपद काव्य भूवलय ॥८४॥
वि* श्वदग्रके गमनवनिट्टु आ योगि । विश्वेश्वर सिद्धवर वे* ॥ दस्वरूपरध्यानिसुत भावदोळिर्प । विश्वज्ञ काव्यदप्रविदु ॥८५॥
पु* रमामृतकाव्य अरहन्त भाषित । गुरु परम्परे यादि प* दद ॥ गुरु सिद्धपदप्राप्तियागबेकेम्वर्गे । सरसविद्यागम काव्य ॥८६॥
प* द्धतियोळु चक्रबध हसदबध । शुद्धाक्षरांक र* क्षेयनु ॥ होद्दिद अपुनरुक्ताक्षर पद्मद । शुद्धद नवमांक बंध ॥८७॥
व* र पद्म महापद्म द्वीप सागर बंध । परम पल्यद अ मृ* बु बध ॥ सरस सलाके श्रेणिय अंकदबंध । सरियागेलोकदबंध ॥८८॥
रो* मकूपद बंध क्रौंच मयूरद । सीमातीतद बन्ध ॥ कामन प* दपद्म नख चक्रबंधद । सीमातीतद लेक्क बन्ध ॥८९॥
ने मर्वकिरणदबंध ॥९०॥ स्वामिय नियमदबन्ध ॥९१॥ हेमरत्नद पद्मबन्ध ॥९२॥ हेमसिंहासन बन्ध ॥९३॥
ने मनिष्टेय व्रतबन्ध ॥९४॥ प्रेमरोषद गेल्दबन्ध ॥९५॥ श्री महावीर नबन्ध ॥९६॥ ई महियतिशयबंध ॥९७॥

का मनगणितदबन्ध ॥९८॥ श्रा महामहिमेयबध ॥९९॥ स्वामियतपद श्रीबन्ध ॥१००॥ सामन्तभद्रन बन्ध ॥१०१॥
श्री मन्तशिवकोटिबंध ॥१०२॥ श्रा महिमन तप्तबंध ॥१०३॥ कामितफलवीवबध ॥१०४॥ नेमशिवाचार्य बंध ॥१०५॥
स्वामि शिवायनबंध ॥१०६। नेमनिष्ठेयचक्र बंध ॥१०७॥ कामितबंध भूवलय॥ १०८॥

उ॥ सम संहननद चक्रबंध म। सुतत्कृष्ट वेहद रा॥ ग॥ चित्तजनन्दद संस्थान बंधदे॥ सुत्तुर्वारव दिव्यबंध ॥१०९॥
व॥ रवसम्यग्दर्शनदादिय बंध। गुरु परम्परेय श्रा चा॥ मल। वरतपबधद सरमग्गी कोष्टक। विश्वअध्यात्मबंध ॥११०॥
त॥ पिसुत देहवुउपसर्ग केड़ेयागे। अपरिमितानन्दनव र्॥ श्रा। सुपवित्रभावद सत्यवैभव बंध उपशमक्षयदादि बंध ॥१११॥
न्॥ वपद्मबंधद कट्टिनोळ्कट्टिद। अवरसच्चारित्र य॥ बंध॥ अवतारविल्लद अपुनरावृत्तिय। नवमांक बंध सुबंध ॥११२॥
ते॥ रसगुणठाणदोळगात्मनकूडि। सारधर्मवराशिमाड़ि॥ वीर गु॥ णंगळअनन्तांकदोळु कट्टि। सारवागिसिह भूवलय ॥११३॥

शूरवागिसिद भूवलय ॥११४॥ नूरारनन्त भूवलय ॥११५॥ सारात्मरावास वलया ॥११६॥
धीररचारित्रयवलय ॥११७॥ दारियोळपवर्ग निलय ॥११८॥ सेरुवध्यात्म निर्ममव ॥११९॥
क्रूर कर्मारिविलयद ॥१२१॥ दारियतोर्वक निलय ॥१२०॥ भूरिवैभववसद्वलय ॥१२२॥
घोरोपसर्गदविलय ॥१२३॥ सारात्म शिखेयादिनिलय ॥१२४॥ क्रूरकार्मणदेह विलय ॥१२५॥
चारित्र सारसद्वलय ॥१२६॥ सारज्ञानामृननिलय ॥१२७॥ दारकेयवरंकवलय ॥१२८॥
घोर त्ववळिद भूवलय ॥१२९॥

क॥ रुणेय धर्म वर्द्धनवागेलोकदे। बहुव कष्ट गळेल्लक र गि॥ ॥ गुरुविगेशिष्यने गुरुवागुवागल्लि। दोरेवसमाधियोळ् मोक्ष ॥१३०॥
त्॥ नगेताने सिद्धियागुवकाल। जिन धर्मदतिशय बेळगि॥ घन वे॥ दद्वादशदनुभवबेरलु। जिन वर्द्धमानन धर्म ॥१३१॥
ता॥ रुण्यव होंदिमंगल प्राभृत। वारदंददेनवनम न॥ ॥ वेरलुवंबिह अध्यात्मवैभव। शूरमुनिगळवारिदह ॥१३२॥
रो॥ गशोकगळेल्लकरगुवयोगदे। सागर पल्यशलाके॥ यागुव म॥ हिमेय नवमांक बंधव। साधनकर्म सिद्धान्त ॥१३३॥

श्रीगुरुपदद सिद्धान्त ॥१३४॥ नागनरामरकाव्य ॥१३५॥ श्रागर्पोळवयोग काव्य ॥१३६॥
तागुवात्मध्यान काव्य ॥१३७॥ नागसंपगेपुष्पवैद्य ॥१३८॥ भोगयोगदसिद्धि काव्य ॥१३९॥
भोगदतृप्तिय कळेव ॥१४०॥ श्रीगुरुशिवकोट्याचार्य ॥१४१॥ श्रागबाळिद शिवायनन ॥१४२॥
रोगवकेडिसिदकाव्य ॥१४३॥ नागमल्लिगेकृष्णपुष्प ॥१४४॥ तागलुस्वर्ण सिद्धान्त ॥१४५॥
हेगेधुतप्पद योग ॥१४६॥ नागार्जुन सिद्धकाव्य ॥१४७॥ श्रागिर्दकक्षपुटांक ॥१४८॥
श्रीगुरुवर सेनगणदि ॥१९४॥ रागदिपेळ्दसिद्धान्त ॥१५०॥ साधन वहस्वर्णकाव्य ॥१५१॥
राग विराग भूवलय ॥१५२॥

अ॥ ष्टमहाप्रातिहार्य वैभववनु। स्पष्टगोळिसिदावि वर ह॥ ॥ इष्टार्थवेल्लात्म संपदावेन्नुव। अष्टमजिन सिद्धकाव्य ॥१५३॥

एगु॰ एगुपाद गुडुचाद धर्म कर्मदलोह् । वनुभववदे स्वर्ण श्री॰ ॥ अनुभवगम्यद समवसरण काव्य । घनसिद्धरसदिव्यकाव्य ॥१५४॥
त॰ नुवनकाशकेहारिसिळिलिसुव । घनवैमानिक दिव्य काव्य ॥ प॰ नसपुष्पद काव्य विश्वम्भर काव्य । जिनरूपिनभद्र काव्य ॥१५५॥
नृ॰ नेकोनेवोगिसि भव्यजीवरनेल्ल । जिनरूपिगैदिपकाव्य ॥ र॰ एकहळेय कूगनिल्लवागिप काव्य । दनुभवखेचर काव्य ॥१५६॥
तै॰ रनुयळेयुवदारियोळ् बरुवंक । दारैकेय मादलद । सार मा॰ दंववनु बेरसिमाडुवदिव्य । नूराररोग नाशकव ॥१५७॥
दारिय पुष्पायुर्वेद ॥१५८॥ मारनगेयकेदगेय ॥१५९॥ सारहुविन दिव्य योग ॥१६०॥
साराग्निपुट दिव्य योग ॥१६१॥ पारदपादरिपुष्प ॥१६२॥ पारद जयदग्नि योग ॥१६३॥
सारात्मशुद्धि पारदव ॥१६४॥ नूराऱुसंपुटयोग ॥१६५॥ सारस्वतर वाहनद ॥१६६॥
एरिसितिळिव पारदद ॥१६७॥ श्रीरमेगिरियकर्णिकेय ॥१६८॥ सेरिसेबरुव हूवगळ ॥१६९॥
दारियगुणवृद्धियंक ॥१७०॥ मूररवर्ग शलाके ॥१७१॥ यारैके यिरुव भूवलय ॥१७२॥
शूररकाव्य भूवलय ॥१७३
सै॰ रदमनवनु पारददोळु कट्टि । नूरुसाविर हूवुगळ ॥ सारव त्॰ न्दुमाड त रसमणियनु । सेरिसे भूवलय सिद्धि ॥१७४॥
स॰ रुवार्थसिद्धियग्रदश्वेत (शिलेयद) क्षत्रव । बरेदकमार्ग म्॰ बरलु ॥ अरुहादि श्रोबत्तम् बेरेसिह ताणदो (लरियिरिसिद्धान्तवदम्)
ळरिवसिद्धान्त भूवलय ॥१७५॥
आ॰ गममार्गदहदिमूरु कोटिय । तागिदआयुर्वेद (प्राणावाय)॥ सागरवन् ने॰ रिअपुनरुक्तंकद (अपुनरुक्ताक्षर) । सागर रत्नमंजूष ॥१७६॥
इ॰ रुव भूवलय दोळेळ्नूरहदिनैदु । सरस भाषेगळवतार ॥ न॰ ररिगे प्रथम संयोगदे बहुदंब । शिरियिह सिद्ध भूवलय ॥१७७॥
सरियिह एरडने योग ॥१७८॥ सिरियिह मूरु संयोग ॥१७९॥ सिरियिह नाल्कु संयोग ॥१८०॥
परिबाह अरवत्तनाल्कु ॥१८१॥ परमात्म कलेयक भग ॥१८२॥ परमामृतद भूवलय ॥१८३॥
रि॰ द्धियादामूरु आदिभगदतेर । होददिकोडिहअकगळ ॥ म॰ द्दिनोळेळु साविरदिन्नूरतो बत्तु । सिद्धांक बागलु "इ"ल्लि ॥१८५॥
या॰ वअंतर आरेरडोम्बत्ताहत्तु । ईवक्षरगळेल्लवा ह॰ ॥ पावन दकगळतर काव्यव । नोवदे [भावदेबरुवंकवेल्ल]काव भूवलय ॥१८६॥

"इ" ७२९०+ अंतर = १०९२६ = १८२१६ अथवा अ । इ – ४६६११ +१८२१६=६४८२७ । अब पहले अक्षर से लेकर ऊपर से नीचे तक आ जाय तो प्राकृत भाषा भगवद्गीता अर्थात् पुरुगोता आती है सो देखिये, यिय मूल तंतकत्ता सिरिवीरो इंदभूदिविप्पवरो ।

उवतंते कत्तारो अणुतं ते सेसाआइरिया ॥४॥

इसी प्रकार संस्कृत भाषा भी निकलती है–श्री परम गुरवे नमह । श्री परमगुरवे परंपराचार्य गुरवे नमह । श्री परमात्मने नमह ।

इति चतुर्थोध्यायः ।

चौथा अध्याय

यह भूवलय आत्मा के लिये इष्ट उपदेश है, यह अष्ट कर्म को नष्ट करने वाला है। अर्हन्त भगवान की लक्ष्मी को प्रदान करने वाला और अष्ट गुणो से युक्त सिद्ध परमेष्ठियो मे सदा स्थिर रहने वाला अष्टम जिन (चन्द्रप्रभु) सिद्ध काव्य है।॥१॥

श्री वृषभ देव ने जब यशस्वती देवी के साथ विवाह किया उस समय का यह काव्य है और अशरीर अवस्था अर्थात् मुक्ति अवस्था प्राप्त कराने वाला यह काव्य है।

यह ऋषि वश का आदि स्थान भूवलय है ॥२॥

यह तीन काल में होने वाले सामायिक को बताने वाला, उन वीर जिनो के मार्ग का अतिशय अनुभव करा देने वाला सार भव्यात्मक काव्य है ॥३॥

स्वशुद्धात्मा के कथन रूपी अक्षर को जानकर उसी शिक्षा के द्वारा मन और पाचो इन्द्रियो को लक्षण से स्थिर करके स्वशरीर को भूलकर "भगवान जिनेन्द्र देव के समान मैं स्वय हू" ऐसी महान् विद्या का अनुभव होकर निजमन ही भगवान के लिये सिहासन स्वरूप प्रतीत होता है और मेरी आत्मा भगवान् जिनेश्वर के समान हृदय रूपी पद्मासन पर विराजमान होकर सुशोभित हो रही है ॥४, ५॥

जिस प्रकार भगवान् जिनेन्द्र देव समवशरण में अष्ट महा प्रातिहार्य तथा ३४ अतिशयो से समन्वित होकर प्रशान्त मुद्रा से विराजमान हैं उसी प्रकार मेरी आत्मा भी हृदय रूपी पद्मासन पर विविध प्रकार के वैभव से सुशोभित हो रही है ॥६॥

इसी प्रकार मेरी आत्मा जिनेन्द्र देव के समान कायोत्सर्ग में खडी हुई है ॥७॥

कायोत्सर्ग में किसके बल से खडा है ?

कायोत्सर्ग मे होने वाले ३२ दोषों मे रहित निरन्तर सिद्धात्मा के अभ्यास के बल से योगी खडा है ॥८॥

जैसे जैसे अभ्यास बढता जाता है वैसे वैसे योग भी बढता जाता है ॥९॥

तत्पश्चात् शीतल चन्द्रमा के समान आत्म-ज्योति बढती जाती है ॥१०॥

तब आत्मज्योति पूर्ण रूप से प्रकाशित हो जाती है ॥११॥

ऐसा हो जाने पर यह अपने को आप ही ब्रह्मस्वरूप अनुभव करने लगता है ॥१२॥

इस प्रकार अनुभव करते हुए जब विशुद्ध जैन धर्म का अनुभव आता है ॥१३॥

तब अनादि काल से प्राप्त ऋण रूपी शरीर को भूल जाता है ॥१४॥

गणना मे न आने वाले अध्यात्म को ॥१५॥

आप स्वय महान् प्रतिक्रमण रूप होकर ॥१६॥

चिन्मय अर्थात् चित्स्वरूप मुद्रा प्राप्त होती है ॥१७॥

तत्पश्चात् उपर्युक्त सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूपी रत्न की ज्योति प्रकट हो जाती है ॥१८॥

तब वह ज्योति अपने पास पहुचकर स्वयमेव अपनी आरती करती है ॥१९॥

ऐसा होते ही मन्मथ रूपी पटल पिघल जाता है ॥२०॥

मन्मथ रूपी पटल पिघलने के बाद जिस प्रकार भगवान् जिनेन्द्र देव को सपूर्ण भूवलय दिखाई देता है उसी प्रकार उस आत्मरत योगी को सकल भूवलय दिखाई पडता है ॥२१॥

तब अपने शरीरस्थ आत्मरूपी भूवलय में समस्त भूवलय दिखाई पडता है ॥२२॥

इस प्रकार विचार करके अपनी आत्मा के निकट विराजमान हुये योगी को ॥२३॥

वही शरीर स्व-समय सार है ॥२४॥

जिस प्रकार ९ अक के ऊपर कोई दूसरी सख्या न होने से ९ को परिपूर्ण अक माना जाता है उसी प्रकार शुद्ध गुण अवयवों से सहित शुद्ध आत्मा भी परिपूर्ण है। वही परिपूर्ण शुद्धावस्था सिद्ध पद में है। वह सिद्ध पद कौनसा

गुणस्थान के अन्त में चिन्मय सिद्ध स्वरूप है ऐसा भूवलय सिद्धान्त का कथन है। इस प्रकार अनुभव होने के बाद अपने शरीर को पर मानते हुये उसे त्याग देने के पश्चात् श्री जिनेन्द्र भगवान् तथा सिद्ध भगवान के स्वरूप को अनुभव अपने आत्म मे बढ़ते जाने से ऐसा प्रतीत है कि "इस आत्म का रूप ही मेरा शरीर है" ॥२५, २६॥

इस प्रकार जब आत्मरत योगी की भावना सिद्धात्मा मे सुदृढ हो जाती है तब आने वाला कर्मास्त्र तथा बंध रुक जाता है। तत्पचात् वह निराकुल होकर भगवान के चरण कमल के नीचे सात कमल को माला रूप मे जब अपने हृदय मे धारण करके देखता है तब अरहन्त भगवान के गुणाकार द्विगुण वृद्धि को प्राप्त कर लेता है ॥२७॥

तब विविध भाँति के चित्र विचित्रित अद्भुत परिणामो के साथ सरस संपत्ति उस योगी के हृदय मे हर्ष को बढाने वाली काललब्धि जब प्राप्त हो जाती है तब उस अन्तरात्मा अर्थात् उस योगी की अन्तरात्मा को परिणाम लब्धि होती है ॥३०॥

विवेचन :—

श्री कुमुदेन्दु आचार्य जी ने इस भूवलय के "चतुर्थ" अध्याय मे २७ वे श्लोक से लेकर ३० वे श्लोक तक इस प्रकार विवेचन किया है कि जब जिनेन्द्र देव तथा सिद्ध भगवान् के स्वरूप का अनुभव बढता जाता है तब अपने आत्म रूपी शरीर मे रत हो जाता है। तब सत्ता मे रहने वाले कर्म स्वय पिघल जाते हैं और बाहर से आने वाले नये कर्म रुक जाते हैं। तत्पश्चात् निराकुलता उत्पन्न करने वाले ७ कमलो की माला के समान जब अपने हृदय में योगी देखने लगता है तब अरहन्त भगवान् के चरण के नीचे सात कमलो के द्वारा अपने शुभ परिणामो को द्विगुण २ वृद्धि प्राप्त कर लेता है वह द्विगुण इस प्रकार है

२२५ × २२५

११२५
४५०
४५०

५०६२५

तब विलक्षणपरिणमन सहित सरस संपत्ति के द्वारा उसके हर्ष को बढाने वाली काय लब्धि प्राप्त होने से उस अन्तरात्मा को करण लब्धि होती है।

करण लब्धि भेदाभेद रत्नत्रयात्मक रूप मोक्ष मार्ग को दिखाती है, तथा सकल कर्मक्षय के लक्षण स्वरूप मोक्ष को दिखलाती है और आगे अतीन्द्रिय परम ज्ञानानन्दमय मोक्ष स्थल को अनेक नय निक्षेप प्रमाणों से दिखा देती है। उसे करण लब्धि कहते हैं। वह करण तीन प्रकार का है.—

अध प्रवृत्ति करण, अपूर्व करण तथा अनिवृत्ति करण। प्रत्येक करण का समय अन्तर्मुहूर्त होता है। उस अन्तर्मुहूर्त मे पहले की अपेक्षा दूसरा सख्यात गुण हीन काल होता है जो कि अल्प समय मे ही अधिक विशुद्धि को प्राप्त होता है और अध प्रवृत्ति करण से प्रति समय अनन्तगुण विशुद्धि रूप धारण करते हुये अन्तर्मुहूर्त तक चला जाता है अर्थात् पहले समय में जितनी विशुद्धि प्राप्त हुई थी उससे अनन्त गुणी विशुद्धि दूसरे समय मे प्राप्त होती है।

अध प्रवृत्ति करण प्रत्येक समय मे अनन्तगुण विशुद्धि करता हुआ निरन्तर अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त चला जाता है। वहा पर होने वाली विशुद्धि असंख्यात लोक प्रमाण गणना का महत्व रखती हुई चरम काल पर्यन्त समान वृद्धि मे होती जाती है।

प्रश्न—लोक तो एक ही है, फिर असख्यात लोक की कल्पना कैसे हुई?

उत्तर—एक परमाणु के प्रदेश मे अनन्तानन्त जीव रहते है। उन अनन्त जीवो मे से एक जीव के अनन्तानन्त कर्म होते हैं। ये समस्त जीव और अजीव एक परमाणु प्रदेश मे भी रहते हैं। एक परमाणु प्रदेश में इतने ही जीव और अजीव समाविष्ट होने से असख्यात परमाणु प्रदेशात्मक इस लोक मे अनन्तानन्त पदार्थ रहने मे क्या आश्चर्य है? अर्थात् असख्यात लोक प्रमाण हो सकते हैं।

स्थिति बंधापसरण का कारण होने से इस करण को अधःप्रवृत्ति करण कहते हैं। यहा पर भिन्न समयवर्ती जीवो के परिणाम समान भी होते हैं। तदन्तर यहा से ऊपर अपूर्वकरण नामक करण होता है। उस करण में प्रति समय में असख्यात लोक मात्र परिणाम होते है। जोकि क्रम से समान सख्या से बढते हुए असख्यात लोक मात्र हुआ करते हैं। जोकि स्थिति

बंधापसरण, स्थिति काण्डकघात, अनुभाग काण्डकघात, गुणसक्रमण और गुण श्रेणी निर्जरा इत्यादि क्रिया करने का कारण होते हैं।

वहा से ऊपर अनिवृत्तिकरण मे प्रति ममय एक ही परिणाम होता है। स्थिति बधापसरणादि क्रियाये पहले की भाँति होनी है। उस करण के अन्तिम समय मे होने वाली क्रिया को देखिये —

चारो गतियो मे से किसी भी गनि मे जन्मा हुआ गर्भज, पचेन्द्रिय, सज्ञी पर्याप्तक सर्वविशुद्धि वाला जागृत अवस्था मे रहते हुये जोव प्रज्वलित होने वाली शुभ लेश्या को प्राप्त होकर, ज्ञानोपयोग मे रहने वाला होकर अनिवृत्ति करण रूप शक्ति को प्राप्त होता है वह शक्ति वज्रदडकघात के समान घात किये हुये ससार दुर्ग रूपी मिथ्यात्वोदय को अन्तर्मुहूर्त काल मे विच्छेद कर सम्यग्ज्ञान लक्ष्मी के सगमोचित सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त होना है। सम्यक्त्व प्राप्ति का शुभ मुहुर्त यही है।

उस अन्तर्मुहूर्त के प्रथम समय मे पापान्धकार को नाश करने के लिए सूर्य, सकल पदार्थों को इच्छा मात्र से प्रदान करने वाला चिन्तामणि, कभी भी न्यून न होने वाला, सवेगादि गुण की खानि ऐसा सम्यक्त्व होता है। और तब सम्यग्दर्शन हो जाने से ससार से मुक्त होने को स्वय अरहन्त देव स्वरूप वह अंतरात्मा अपने को मानता है ॥३१॥

अनादि काल मे आज तक अनन्त जन्म-मरण धारण किये और प्रत्येक जन्म मे अनित्य जयन्तिया (वर्ष वर्द्धनोत्सव) मनाई। परन्तु आज से (करण लब्धि हो जा पर) नित्य जीवन की प्रथम जयन्ती (वर्ष वर्द्धन महोत्सव) प्रारम्भ हुई, जो अनन्त काल पर्यन्त उत्तरोत्तर विजय देती हुई स्थिर रहेगी। इतना ही नहीं सब, ससारी जीव भी इसका जयगान करते हुये वर्षवर्द्धन महोत्सव मनाते रहेंगे ॥३२॥

इस प्रकार निन्य सुखानुभव के प्रथम वर्ष प्रारम्भ होने के पश्चात् अपने आत्मा मे ॥३३॥

तीनो लोको का मै स्वय गुरु बन गया, ऐसा चिन्तन करता है ॥३४॥
मैंने अपने अन्दर अरहत भगवान को देख कर पहिचान लिया ॥३५॥
में समस्त परभाव रूप अशुद्धियो से रहित परम् विशुद्ध हू ॥३६॥
अब हम अन्तरात्मा पद से परमात्मा बन गये ॥३७॥
अब हमे सच्चा पचपरमेष्ठी का पद प्राप्त हो गया ॥३८॥

सम्पत्ति के दो भेद हैं। (१) अन्तरग सम्पत्ति (लक्ष्मी) और (२) वाह्य सम्पत्ति (लक्ष्मी)। धन गृह, वाहन इत्यादि से लेकर समवसरण पर्यन्त समस्त वस्तुयें वहिरग सम्पत्ति (लक्ष्मी) तथा ज्ञान, दर्शनादि अनन्त गुणों वाली अतरग सम्पत्ति (लक्ष्मो) है। इन दोनो सम्पत्तियो को प्राकृत और कानड़ी भाषा मे 'सिरि' और सस्कृत, हिन्दी इत्यादि मे श्री कहते हैं। लौकिक काव्य की रचना के प्रारम्भ और आत्म-शुद्धि के प्रारम्भ में या दीक्षा के प्रारम्भ में 'सिरि' और 'श्री' शब्दो का प्रयोग मगलकारी मान कर किया जाता है। कहा गया है कि —

"आदौ सकार प्रयोग सुखद"। अर्थात् आदि में सकार का प्रयोग मुखदायक होता है। 'सिरि' और 'श्री' ये दोनो शब्द हमें आत्म ज्ञान रूप में उपलब्ध हुये हैं, ऐसा वे योगी चिन्तन करते हैं ॥३९॥

मगल चार प्रकार के होते हैं। [१] अरहत मगल, [२] सिद्ध मंगल, [३] साधु मगल, (४) तथा केवलि भगवान प्रणीत धर्म मगल ॥४०॥

ऊपर कहा हुआ जो भगवान का चरण है वही परमात्म-चरण रूप भूवलय है ॥४१॥

अपने आप के द्वारा प्राप्त किए जाने वाले तथा उस कार्य में रहनें वाले आनन्द से शासित जो आत्म रूप सुख है वह अपने आत्म ज्ञान-गम्य है, अन्य कोई जानने मे अशक्य है ॥४२॥

वही शिव है वही शाश्वत है, निर्मल है, नित्य है और अनन्त भव को नष्ट करने वाले- अविरल सुख सिद्धि को प्राप्त किया हुआ महादेव है। वही अनादि मगल स्वरूप है ॥४३॥

वह ऋद्धि इत्यादि की आशा न करने वाला चिन्मय रूप है। अत्यन्त निर्मल शुद्धात्मा को प्राप्त हुआ बुद्धि, ऋद्धिधारी, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी है। यही शुद्ध सम्यक्त्व का सार है ॥४४॥

वह यही मेरी शुद्धात्मा वीतराग, निरामय, निर्मोही है। समस्त प्रकार के भय और चिन्ता से रहित है। संसारी भव्यजन के लिए इहलोक और परलोक

के सुख का साधन है, पवित्र है, पुण्यमय है तथा उत्तम सौख्य को देने के लिए आश्रयदाता है ।।४५।।

राग, द्वेष, क्रोध, मोह आदि से रहित है, क्रोध, मान, माया लोभ जो अनन्तानु बन्धी की चौकडी है उससे रहित तथा अन्य प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान, संज्वलन इत्यादि कषायो के भेदो से रहित आप अपने अन्दर ही अनुभव किया हुआ शुद्धात्म काव्य नामक शिरीर अर्थात् सिद्ध भगवान का यह भूवलय है।।४६।।

यही भगवान की दिव्य वाणी है ।। ४७ ।।
प्रत्याख्यानावरण नामक ।। ४८ ।।
कषाय के ढेर को ।। ४९ ।।
भस्म करते आये हुए प्रत्याख्यान ।। ५० ।।
सयम को न घातने वाला सूक्ष्म सज्वलन कषाय है ।। ५१ ।।
वह निर्मल जल रेखा के समान है ।। ५२ ।।

ऐसे निर्मल जल के समान उज्ज्वल कषाय के मन्दोदय-वाले आत्मानुभव में मग्न होते हैं ।। ५३ ।।

अपने आत्मा के अन्दर हमेशा रमण करते है ।। ५४ ।।
प्रति समय में अपने आत्मा के अन्दर ।।५५ ।।
कषाय राशियो के ढेर को ।।५६।।
नाश करते हुए आता है कि ।।५७।।
जैसे निर्मल जल रेखा के समान ।।५८।।

तब अत्यन्त निर्मल शुद्धात्म-स्वरूप अपने अन्दर जैसे निर्मल गगा का पानी अपने घर मे आकर पाइप के द्वारा प्रविष्ट होता है और पीने योग्य होता है उसी प्रकार जैसे-जैसे कषाय ढेरो का उपशम होता जाता है वैसे ही अपने अन्दर आकर निर्मल शुद्ध भावो का प्रवेश होता है ।।५९।।

तब उसी समय उस योगी को भेद-विज्ञान प्राप्त होता है। यानी सम्पूर्ण पर-वस्तुओ से भिन्न तथा अपने शरीर से भी भिन्न विज्ञानमय आत्मानन्द सुख स्वरूप का अनुभव वह जीव प्राप्त कर लेता है ।।६०।।

तब उस समय आत्म-ध्यान-रत योगी जैसे उडद के ऊपर के छिलके को अलग कर देता है ।।६१।।

उसी तरह छिलके से भिन्न उडद की दाल के समान अत्यंत परिशुद्ध अपने आत्मा में रत होते हुए ।।६२।।

भगवान जिनेश्वर के समान निश्चल योग में स्थिर होकर बैठ जाता है ।।६३।।

इस प्रकार योगी अपने योगान में जिस समय रत रहता है उस समय अपने आत्मा के अन्दर ही सिद्धालय को प्राप्त हो जाता है अर्थात् में इस समय शुद्धस्वरूप हू और अन्य किसी स्थान में नही हू । शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर मैं सच्चे सिद्धालय में विराजमान हूँ ।।६४।।

उस सिद्धालय के अनन्त ।।६५।।
राशि के तुल्य यह सिद्ध भूवलय है ।।६६।।

इस भूवलय मे रहने वाले समस्त ६ द्रव्य पचास्ति काय सप्ततत्त्व नौ पदार्थ नामक वस्तुओ को मिलाकर गणित के अनुसार जानने वाला परमात्म स्वरूप जीव ही गणित है ।।६७-६८।।

दर्शन, ज्ञान, चारित्र, इन तीनो को मिलाकर सकलित कर गुणा करने मे अर्थात् ३ × ३ = ९ × ३ = २७ इस तरह करने से २७ अक आता है । ॥६९॥

इस भूवलय सिद्धान्त के ६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ तत्व, ९ पदार्थ इन सभी को मिलाकर आया हुआ जो २७ है यही श्री भगवान महावीर की वाणी के द्वारा आया हुआ यह मगल काव्य है । तीनो लोको के अग्र-भाग में अनन्त अनागत काल तक हमेशा प्रकाशमान होने वाला वह शिवलोक प्राप्त करने वाला मानव धवल छत्राकार के अग्र-भागमे अगुरुलघु आदिअत्यंत अमृतमय शुद्धात्म गुणो मे चिरकाल पर्यन्त वास करता है । इसी प्रकार मेरी शुद्धात्मा भी धवल छत्राकार के मध्य मे अगुरुलघु सहित अत्यन्त अमृतमय सिद्धात्मा के गुणों में विराजमान है ।।७०-७१।।

विवेचन—मोक्ष मे परमात्मा के अगुरुलघु नामक एक गुण है, यह गुण आत्मा का स्वभाविक गुण है, इस गुण के बल से आत्मा नीचे नहीं गिरता है और सिद्ध लोक से बाहर अलोक आकाश में भी नही जाता है । इस प्रकार इस अगुरुलघु गुण का स्वभाव है । यह अगुरुलघु नामक जो गुण है आत्मा के

आठ गुणो में से एक गुण है। इसी तरह आगम में आठ कर्मों को आपस मे गुणाकार करके निकालते समय नाम कर्म के अनेक भेदो मे से एक अगुरु लघु नामक शब्द भी आता है वह नही समझना चाहिए। क्योकि सिद्धो के आठ गुणो में जो अगुरुलघु शब्द आया है उसे 'अगुरुलघुत्व' कहते हैं इसलिए दोनो भिन्न-भिन्न हैं। वह अगुरुलघुत्व गुण कर्म से रहित है और जो अगुरुलघु है वह कर्म से सहित है।

सिद्ध भगवान अव्याबाध गुण से युक्त हैं।

अव्याबाध—

जिस जगह में हम बैठे हैं उस जगह में दूसरे मनुष्य नही बैठ सकते है इतना ही नहीं किन्तु हमारे पास भी नही बैठ सकते हैं, इसका कारण यह है कि उनके शरीर का पसीना हमको अपाय कारक होता है अर्थात् दोनो जनो का पसीना आपस मे विरोध रूप है। परन्तु सिद्ध भगवान के एक ही जगह मे अनन्त सिद्ध भगवान होने पर भी हमारे शरीर धारी के समान उनको कोई भी बाधा नही होती है। श्री महावीर भगवान सर्व जघन्यावगाह के सिद्ध जीव हैं। उनके जीव प्रदेश मे अनन्तानन्त सिद्ध जीव एक क्षेत्रावगाह रूप से हमेशा रहते हुए भी परस्पर बाधा रहित हैं ॥७२॥

सूक्ष्मत्व गुण—

प्रत्येक सिद्ध जीव मे सूक्ष्मत्व नामक एक गुण है। इस गुण से महान गुणो से युक्त अनन्त जीवो मे रहने वाले अनन्तानन्त गुणो के समूह को एक ही जीव ने अपने अन्दर समावेश कर लिया है इसी का नाम सूक्ष्मत्व है।

उदाहरणार्थ एक कमरा लीजिए उस कमरे को चारो ओर से बन्द करके उसके भीतर हजारो विद्युत दीपक रखिये। पहले समय में एक बल्ब का बटन दबाया जाय तो एक दीपक जलता है तब उस दीपक का प्रकाश कमरे के आकाररूप फैल जाता है, अर्थात् जिस समय उस बल्ब का प्रकाश फैल जाता है उस समय उस कमरे के अन्दर रखी हुई कोई चीज बिना प्रकाश से बच नही सकती, सभी पदार्थों पर प्रकाश पडता है। उसी समय अगर उसी कमरे के अन्दर दूसरा बटन दबाया जाय तो उतना ही प्रकाश उसमें ही समावेश हो जाता है और उसमें भिन्न प्रकाश मालूम न होकर एक रूप दीखता है। इसी तरह हजारो बल्बो के बटनो को दबाते जायें तो उन सबका भी प्रकाश उसी में शामिल होते हुए उसमें भिन्नता दिखाई नही देती है। तब इन हजारों बल्बो का प्रकाश जैसे एक ही प्रकाश में समा गया? सबसे पहले जो एक दीपक का अखड प्रकाश था, उसमें जितने-जितने और प्रकाश पडते गये उतने-उतने पहले के दीपक सूक्ष्म रूप होते हुए प्रकाश गुण बढता जाता है। जहां मूर्ति रूप पुद्गल में यह शक्ति देखने मे आती है, तो अमूर्त रूप सिद्धो में अन्य सिद्धों का सूक्ष्मत्व गुण के कारण समावेश होनेमें कौनसा आश्चर्य है? अर्थात् नही है ॥७३॥

अवगाहगुण का विवेचन—

एक क्षेत्र में अनेक पदार्थों का समावेश हो जाना अवगाहन शक्ति है। जैसेकि ऊटनी के दूध से भरे हुए घडे मे चीनी समा जाती है उसके बाद उसमें भस्म भी समा जाती है। कोई किसी को रुकावट नही पहुंचाती, उसी प्रकार जिन आकाश के प्रदेशो में एक आत्मा के प्रदेश हैं उन्हीं मे अनन्त आत्माओ के प्रदेश भी समा जाते है और धर्म अधर्म आकाश काल और पुद्गल परमाणु भी बने रहते हैं। इसी को अवगाहन गुण कहते हैं। इसी प्रकार इस भूवलय में जितने प्रतिपाद्य विषय हैं उनके वाचक शब्द है और भिन्न-भिन्न अर्थ हैं, वे सब एक दूसरे को न तो बाधा देते हैं और न विरुद्ध अर्थ कहते हैं, सब विषय परस्पर में एक दूसरे की सहायता करते हुए रहते हैं ॥७४॥

जैसे सिद्ध भगवान मे अनन्त ज्ञान रहता है, उसी प्रकार इस भूवलय ग्रन्थ मे भी अनत ज्ञान भरा हुआ है ॥७५॥

जिस प्रकार सिद्धो मे अनन्त दर्शन, सम्यक्त्व रहता है उसी प्रकार इस भूवलय ग्रन्थ में सम्यक्त्व तथा अनत दर्शन विद्यमान है शब्द रूप में अनत बल सहित है ॥७६-७७॥

वे सिद्ध अनागत सुख के धारक हैं ॥७८॥

वे अतीत ज्ञान के धारक हैं ॥७९॥

शरीर रहित होने पर भी उनका आकार चरम शरीर से किंचित् ऊन है और आत्मघन प्रदेश रूप है ॥८०॥

वे शाश्वत और चित्स्वरूप हैं ॥८१॥

वे हमेशा नित्य हैं ॥८२॥

उनका सुख हमको प्राप्त हो ॥८३॥

इन सब को बतलाने वाला यह नव पद काव्य नामक भूवलय है ॥८४॥

प्रश्न ?

६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ तत्व, ६ पदार्थ ये मिलकर २७ हुए। २७ चक्र कोष्ट भूवलय मे हैं तब आप नवपद भूवलय कैसे कहते हैं ?

उत्तर—२७ सत्ताईस सख्या के अक ७—२ जोड देने से ६ होते है इस लिए नव पद से निर्मित भूवलय है।

सिद्ध लोक के अग्रभाग की तरफ गमन अर्थात् उपयोग करने वाले योगीराज विश्व के अधिपति हुए, सिद्ध परमात्मा वेद अर्थात् जिन वाणी रूप हैं। ऐसे ध्यान करते हुए अपनी आत्मा को प्रफुल्लित करने वाला यह विश्वज्ञ काव्य सभी काव्यो मे अग्रमर है, अर्थात् यह अग्रायणीय पूर्व से निकला हुआ काव्य है ॥८५॥

यह काव्य अरहत परमेष्ठी की दिव्य वाणी के अनुसार और श्री वृषभसेनादि आचार्य परपरा के आदि पद से आने के कारण परमामृत काव्य अर्थात अत्यन्त उत्कृष्ट अमृतमय काव्य है। अपने को गुरु या अरहत या सिद्ध पद प्राप्ति की जो इच्छा रखता है उन्ही को यह भूवलय काव्य रास्ते मे सरस (सुगम) विद्यागम को पढाते हुए अत मे परम कल्याण कर देने वाला है ॥८६॥

विवेचन—यहा तक कुमुदेन्दु आचार्य ने ८६ श्लोक तक अरहत की अतरग सम्पत्ति के बारे मे, सिद्ध भगवान के गुणो के बारे म और तीनो गुरु आदि समस्त आचार्यों के शीलगुणादिक के वर्णन मे ६ द्रव्य ५ अस्तिकाय ७ सात तत्व और नौ ६ पदार्थादिक के वर्णन मे बहुत सुन्दरता के साथ लिखे है। ये सब तीन लोक के अन्तर्गत हैं इतने महान होते हुए भी इनका एक जीवात्मा के ज्ञानके अदर समावेश है। ऐसे जीव सख्या मे अनन्त है। उन अनतो म से प्रत्येक जीव के अदर ऊपर कहे हुए समस्त विषय समाविष्ट हे। उन सब विषयो को श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने एकत्र रूप मे अपने भूवलय ग्रन्थ मे समाविष्ट किया है। यह किस तरह से समाविष्ट है ? इस का उत्तर निम्नलिखित श्लोको मे निरूपण किया है। हम पहिले से ही लिखते आए है कि इस भूवलय मे कोई भी अक्षर नहीं है। यदि भिन्न-भिन्न ग्रन्थो की रचना जैसे का तैसा भिन्न-भिन्न करते तो उन ग्रन्थो मे इतने विषय समावेश नहीं कर सकते थे, परन्तु अनादि काल से चले आये दिव्य ध्वनि के आधार से सम्पूर्ण विषयो को आदि से लेकर अनंत काल तक ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ६ अको मे गर्भित करते हुए उन अको मे परस्पर गुणाकार करते हुए अनत गुणाकार तक अर्थात् सिद्धभगवान के अनत ज्ञान तक ले जाकर उस महान् अक राशि को अर्धच्छेद रूप गणित रूपी शस्त्र द्वारा काटते हुए जघन्य सख्या से २ तक लाकर दिखाने के लिए चक्र बध रूप २७×२७ कोठा बना कर अनेक प्रकार की पद्धति से निकाल कर अक रूप कोष्ठक मे भरा है। वह कोष्टक अनेक विकल्प रूप है। वे विकल्प कितने प्रकार के हैं ? जितनी अर्धच्छेद-शलाकाये हैं उतने मात्र हैं। वे अर्धच्छेद-शलाका कितने प्रकार की हैं ? इसके उत्तर मे आचार्य समाधान करते है कि हमने उसे अनन्त राशि से लिया है। हमारे अनत बार अर्धच्छेद करते चले आने पर भी वह शलाकाछेद भी अनन्त होना अनिवार्य है, अर्थात् वह अनन्त अर्धच्छेद हैं। इन समस्त अनन्त राशियो को उपर्युक्त कोष्ठको मे सख्यान रूप से हम भर चुके है। इसलिए समस्त भूवलय मे समस्त विषयो को गर्भित करने मे हम समर्थ हुए। मगल प्राभृत के इस चौथे 'इ' अध्याय के अक्षर रूपी काव्य मे जो भिन्न २ प्रकार की भाषाये और विषय उपलब्ध होते हैं, वे बडे महत्वशाली तथा रुचिकर श्लोक हैं। इसे देखकर पाठकगण को स्वाभाविक रूप से आनन्द प्राप्त होगा ही, किन्तु उन्हे सावधान रहकर केवल प्रस्तुत आनन्द मे ही रत नही हो जाना चाहिए क्योकि यदि वे केवल इसी में मग्न रहेगे तो आगे आने वाले अत्यन्त सूक्ष्म विषय को समझ नही सकेगे।

नम्म ज्ञानवदेष्टु निम्म ज्ञानवदेष्टु, नम्मनिमेल्लरगॆ पेळ्व ।
नम्म सर्वज्ञ देवन ज्ञान वेष्टॆब हेम्मेय गणित शास्त्र वोळु ।
नम्मय गणित शास्त्रदोळु । निम्मय गणित शास्त्र वोळु ॥
इत्यादि—

अर्थात् हमारा ज्ञान कितना है, तुम्हारा ज्ञान कितना है तथा हम सब को सदुपदेश देकर सन्मार्ग पर लगाने वाले सर्वज्ञ भगवान् का ज्ञान कितना है ? इन सब को बताने वाला गौरव शाली यह गणितशास्त्र भूवलय है। यह गणित

शास्त्र हमारे ज्ञान की भी गणना करता है, आपकी (हम से भिन्न जीव के) भी गणना करता है। इस प्रकार यह गणित शास्त्र हमारे गौरव को बढाता है। आपके गौरव को बढाता है और सबके गौरव को बढाता है।

भूवलय रचना चक्रबन्ध पद्धति —

इसकी पद्धति मे (१) चक्रबन्ध, (२) हसबन्ध, (३) शुद्धाक्षर बन्ध, (४) शुद्धाक बन्ध, (५) अक्षबध (६) अपुनरुक्ताक्षर वध (७) पद्म बन्ध (८) शुद्ध नवमाक बन्ध (९) वर पद्म बन्ध (१०) महा पद्म बन्ध (११) द्वीपवध (१२)सागर बन्ध (१३) उत्कृष्ट पल्य बन्ध (१४) अम्बु बन्ध (१५) शलाका बन्ध (१६) श्रेण्यक बन्ध (१७) लोकबन्ध (१८) रोम कूप वन्ध (१९) कौञ्च बंध (२०) मयूर बन्ध (२१) सीमातीत बध (२२) कामदेव बन्ध [२३] कामदेव पद पद्मबन्ध [२४] कामदेव नख बन्ध [२५] कामदेव सीमातीत बन्ध [२६] गणित बन्ध [२७] नियम किरण बन्ध [२८] स्वामी नियम बन्ध [२९] स्वर्ण रत्न पद्म बन्ध [३०] हेमसिहासन बन्ध [३१] नियमनिष्टाव्रत बन्ध [३२] प्रेमरोषविजय बध [३३] श्री महावीर बन्ध [३४] मही-अतिशय बंध [३५] काम गणित बध [३६] महा महिमा बध [३७] स्वामी तपस्री बध [३८] सामन्तभद्रबध [३९] श्रीमन्त शिवकोटि वध [४०] उनकी महिमा तप्त बंध [४१] कामित फल बध [४२] शिवाचार्य नियम वध [४३] स्वामी शिवायन वध [४४] नियमनिष्ठा चक्र बन्ध [४५] कामित बध भूवलय "९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८।

छह प्रकार के सहनन होते हैं, ४४ आदि का बध उत्तम सहनन है। ४४ सहनन का अर्थ हड्डी की रचना है उत्तम सहनन का अर्थ वज्र के समान निर्माण हुए हड्डी और सधि बधन इत्यादि जो चीजे है ये सभी वज्र के समान बने हुए हैं। यह सहनन तद्भव अर्थात् उसी भव मे मोक्ष जाने वाले भव्य मनुष्यो को होता है। तद्भव मोक्षगामी वज्र समान सहनन वाले मनुष्य के शरीर को किसी मामूली शस्त्र के द्वारा काट नही सकते है। जैसे शरीर आदि भूवलय के कर्ता गोमटेश्वर अर्थात् वृषभनाथ भगवान के पुत्र बाहुबली का भी था। वही बाहुबली भूवलय ग्रन्थ के आदि कर्ता थे। उनका शरीर जैसा था वैसी ही दृढ इस भूवलय चक्र वध की रचना की है। इसलिये इस बंध का नाम उत्तम संहनन चक्रबंध उत्कृष्ट शरीर का राग उस बाहुबली के शरीर स स्थान ४५ समचतुर संस्थान अर्थात् सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार अंगोपांग की सबसे सुन्दर रचना की है। इस भूवलय ग्रन्थ के अनेक बध हैं। इन सभी बधो में से एक ४६ सूत्र बलय बध हे ४७ प्रथमोपशम सम्यक्त्व बंध ४८ गुरु परम्परा आचाम्ल व्रत बंध, ४९ मत् तप बध, ५० कोष्ठक बध, अध्यात्म बध, ५१ सोपसर्ग तथा तपो बंध, ५२ (उपसग आने पर भी तप जैसे उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता है, उसी प्रकार वक्तव्य विषय में वाधा पड जाने पर भी अपने अपने अर्थ को स्पष्ट बतलाता है) ५३ उत्तम सुपवित्र भाव को देने वाला सत्य वैभव बध है, ५४ उपशम क्षयादि बध है।

५५ नव पद बधन से बधा हुआ योगी जनो का चारित्र बंध है। ५३ अवनरण रहित अपुनरावृत्ति नवमाक बध होने से यह सुबंध है। तेरहवाँ गुणस्थान प्रदान कर आत्मा के सार धर्म की राशि को एकत्रित कर वीर भगवान के अनन्त गुणो मे सम्मिलन कर देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१०९ ॥११०॥१११॥११२॥११३॥

अनन्त पदार्थों से गर्भित यह भूवलय है शुद्धात्मा का सार यह भूवलय है धीर, वीर पुरुषो का चारित्र बल है। भव्य जोवो को अपवर्ग देने के लिए यह आवास स्थान है। निर्ममत्व अध्यात्म को बढाने वाला है, क्रूर कर्म रूपी शत्रु का नाश करने वाला है, भव्य जीवो को मार्ग बतलाने वाला यह भूवलय है। अनेक वैभव को देने वाला सत्यवलय अर्थात् भूवलय है। अनेक महान उपसर्ग को दूर करने वाला भूवलय है, शुद्ध आत्मा के रूप को प्राप्त कर देने वाला आदिवलय है। अत्यन्त क्रूप कामादि को नाश करने वाला भूवलय है, चारित्र सार नामक यह मद्वलय है। अत्यन्त ज्ञान रूपी अमृत से भरा यह सूवलय है। हमेशा जागृतावस्था को उत्तम करने वाला भूवलय हे। अत्यन्त सम्पूर्ण कठिन कर्मों का नाश करने वाला भूवलय है। ससार मे अनेक प्राणी निर्भयता से परस्पर विरोध करते हुये दूसरे जीवो के प्रति अनेक प्रकार के कष्ट पहुचाकर अन्त में क्रूर परिणाम के साथ मरकर कुगति मे जाते हैं अर्थात् आपस में विरोध करते हुये पापमय धर्म को अपना धर्म मानकर निर्दयता पूर्वक अनेक जीवों को घात

पहुचाते हुये अपना जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे समय मे इस स सार में पुण्य मय दया धर्म के प्रचार के साथ फैलाते हुए आने वाले के सम्पूर्ण कष्ट नाश होते हैं। उस समय मोक्ष मार्ग खुल जाता है। जिस समय स सार में मनुष्य के अन्दर सुख का मार्ग मिलता है तब जीव स सार से छूटने की इच्छा करते है, तब उनको ठीक समाधि से मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा होती है। जब मोक्ष प्राप्त करने की समाधि उन्हे प्राप्त हो जाती है तब गुरू और शिष्य का भेद समाप्त हो जाता है ॥ १३० ॥

उसी समय अपने अन्दर शुद्ध होने का समय प्राप्त होता है। तब उसी समय जिन धर्म का अतिशय चारो ओर प्रसारित होता है जब महान द्वादश अगो का द्वादश अनुभव वृद्धि प्राप्त कर लेता है उसी का नाम जिन वर्द्धमान भगवान का धर्म है ॥१३१॥

समाधि के समय मे मगल प्राभृमयि यौवनावस्था को प्राप्त होता है जैसे कि चरखे पर कातने से रूई का धागा बढता जाता है उसी तरह अध्यात्म वैभव भी तारुण्य को प्राप्त होता जाता है। यही शूरवीर मुनि का मार्ग है।

इसी प्रकार नवमाॅक मे अपने अन्दर ही तारुण्य को प्राप्त कर अपने अदर ही दृढ रहता है ॥१३२॥

यौवनावस्था मे यदि कोई रोग हो जाये तो जैसे वह स्वास्थ्य को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जब अध्यात्म योग समाधि को प्राप्त हो जाता है तब रोग, क्रोधादि सब को नष्ट कर देता है। उसी प्रकार नवमाँक बन्ध सागर पल्य शला का रूप होते हुए भी अपने अन्दर रहना है। ऐसा कथन करने वाला कर्म सिद्धाँत बन्ध है ॥१३३॥

श्री गुरु पद का सिद्धाँत है ॥१३४॥

यह नाग, नर, अमर काव्य है ॥१३५॥

उसी समय कहा हुआ योग काव्य है ॥१३६॥

यह आत्मध्यान काव्य है ॥१३७॥

नाग पुष्प, चम्पा पुष्प, वैद्य काव्य है ॥१३८॥

योग, भोग को देने वाला सिद्ध काव्य है ॥१३९॥

अतृप्त, भोग को नाश करने वाला काव्य है ॥१४०॥

श्री शिवकोटि आचार्य शिवानन के रोग को नास किया हुआ यह काव्य है।

नाग पुष्प, कृष्ण पुष्प स्पर्श होने से स्वर्ण बनाने वाला सिद्धांत काव्य है। कभी भी असत्य न होने वाला काव्य है।

नाग अर्जुनक द्वारा सिद्ध किया हुआ काव्य है, अर्थात् नाग अर्जुन के कक्षपुट मे रहने वाला कक्षपुटाँक है ॥१४१।१४२।१४३।१४४।१४५।

श्री गुरू सेनगण से चला आया है। प्रेम से कहा हुआ सिद्धांत है।

महान सुवर्ण को प्राप्त करा देने वाला काव्य है।

राग और विराग दोनो को बतलाने वाला भूवलय है ॥१४६, १४७ १४८, १४९, १५०, १५१, १५२॥

ऊपर कहा हुआ अष्टमहा प्रातिहार्य वैभव का हमने यहाँ तक विवेचन कर दिया है। यह काव्य अष्टम श्री जिनचन्द्रप्रभु तीर्थंकर से सिद्ध करने के कारण यह अन्तिम आत्म सम्पत्ति नामक अष्टम जिनसिद्ध काव्य है ॥१५३॥

अब आगे श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि रसमणि सिद्धि तथा आत्म सिद्ध का एक हो श्लोक में साथ साथ वर्णन करेंगे ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं।

आत्मा मृदु है और स्वर्ण मृदु है लोहा कठिन है, और कर्म भी कठिन है जब लोहा और कर्म दोनो ही मृदु होते हैं तो वह समवशरण का वैभव बन जाता है जब कर्म नर्म हो जाता है तो आत्मा जाकर समवशरण मे विराजमान हो जाता है और जब लोहा नर्म होता है तो वह स्वर्ण बन जाता है ऐसे दोनों को एक साथ अनुभव करा देने वाला यह काव्य समीकरण काव्य अथवा धन सिद्ध रस दिव्य काव्य है ॥

विमान के समान शरीर को उडा कर आकाश में स्थिर करने वाला यह काव्य है।

यह पनस पुष्प का काव्य है।

यह विश्वम्भर काव्य है।

यह भगवान जिनेश्वर रूप के समान भद्र काव्य है।

भव्य जीवों को उपदेश देकर जिन रूप प्राप्त कराने वाला काव्य है।

सिद्ध रसमणि के प्रताप से आकाश मे उड कर लडती हुई सेनाओ के युद्ध को बन्द कर देने वाला काव्य है। आकाश में गमन करने वाले खेचरता के अनुभव का काव्य है ।।।१५६।।

मादल (विजौरा)—जैसे एक रथ को रस्सी पकड कर हजारो आदमी खीचते हैं वैसे ही मादल रस से बने हुए रसमणि के आश्रय मे हजारो रोग नष्ट हो जाते हैं ।।१५७।।

पुष्पायुर्वेद मे यह काम सिद्ध हो जाता है ।।१५८।।

बाहुबलि अपने हाथ मे केतकी पुष्प रखते थे। उस केतकी पुष्प के सिद्ध हुए पारद में भी सैकडो रोगो को नष्ट करने की शक्ति रहती है ।।१५९।।

आयुर्वेद के वृक्ष आयुर्वेद, पत्र आयुर्वेद, पुष्प आयुर्वेद, फल आयुर्वेद आदि अनेक भेद हैं, उनमे से यह पुष्प-आयुर्वेद है। श्रेष्ठ पुष्प-निर्मित दिव्य योग है ।।१६०।।

अग्निपुट के चार भेद हैं—१ दीपाग्नि, २ ज्वालाग्नि, ३ कमलाग्नि, ४ गाढाग्नि। यहा चारो ही अग्नियो का ग्रहण है ।।१६१।।

पादरी पुष्प से भी रस सिद्ध होता है ।।१६२।।

पारा अग्नि का सयोग पाकर बढ जाता है, परन्तु इस क्रिया से उड नही पाता ।।१६३।।

सर्वोत्तम रूप से शुद्ध हुए पारे को हाथ में लेकर अग्नि मे भी प्रवेश किया जाता है ।।१६४।।

सैकडो अग्नि पुट देने से पारे मे उत्तरोत्तर गुण वृद्धि होती जाती है ।।१६५।।

जो इस क्रिया को जानता है वह वैद्य है ।।१६६।।

तैयार किया हुआ शुद्ध निर्मल पादरस को साफ से कमरे मे अग्नि के ऊपर रखकर थोडी देर के बाद ऊर्ध्व गमनरूप मे उडाकर जैसे कमरे के नीचे दीपक जलता रहता है उसी प्रकार यह पारा उडकर छत से नीचे के दीपक के समान चमकता हुआ छत्राकार मे स्थिर रहता है, उस समय वह व्यक्त रूप में आखो से देखने मे नहीं आता अर्थात् जैसे शरीर को छोडकर प्राण निकल जाते समय आखो से दीखता नही है, उसी प्रकार पारा भी नही दीखता है। बहुत से विवाद करने वाले अज्ञानी लोग इसके मर्म अर्थात् भेद को न जानने वाले उसे यह समझते हैं कि यह आकाश में उड़ गया अर्थात् नष्ट हो गया और अपना काम बेकार हुआ ही समझते हैं। परन्तु वह पारा कहीं भी नहीं जाता है जहाँ का तहा ही है, किंतु विद्वान लोग, पारा उडते समय उसके नीचे की अग्नि को हटा कर तुरन्त ही उसके नीचे कागज का सहारा लगाते हुए जहां पारा ठहरता है वहा तक कागज नीचे पकडे रहते हैं। तब वह पारा उस कागज मे आकर ठहर जाता है। इसी प्रकार जगल में आकाश स्फटिक भी रहता है। सूर्योदय के समय मे जैसे सूर्य क्रमश ऊपर २ गमन करता है, और जब ठीक बारह बजे के समय ठीक बीच मे आता है और स्थिर रहता है तब उसके बाद पश्चिम की तरफ उतर जाता है और साय काल में अस्त होता है। उसी प्रकार यह आकाश स्फटिक भी नीचे उतरते-उतरते सध्या काल में जमीन में प्रवेश भीतर ही भीतर करता जाता है। रात के बारह बजे तक इसी क्रमानुसार बढते २ एक स्थान पर स्थिर हो जाता है। इस को अधो-गमन या पाताल-गमन कहते हैं।

यदि आकाश स्फटिक मणि पर सिद्ध रसमणि सहित पुरुष बैठ जाय तो मणि के साथ-साथ सूर्य के साथ २ आकाश में और पृथ्वी के अन्दर गमन कर सकता है अर्थात् आकाश मे ऊपर उड सकता है और नीचे पृथ्वी के अंदर घुसकर भ्रमण कर सकता है ।।१६७।।

गिरिकर्णिका नामक एक पुष्प है। इस पुष्प के रस से पारा सिद्ध किया जाता है जो ऊपर बताये हुए आकाश गमन और पाताल गमन दोनों में ठीक काम देता है ।।१६८।।

इसी प्रकार भिन्न-भिन्न पुष्पो के रस से पारा सिद्ध किया जा सकता हैं ।।१६९।।

उससे भिन्न-भिन्न चमत्कारिक कार्य किये जा सकते हैं ।।१७०।।

उन भिन्न पुष्पों के नाम तीन अक के वर्ग शलाकाओं से जो अक्षर प्राप्त हों उनसे मालूम हो सकता है ।।१७१।।

इस प्रकार कार्य-क्रम को बतलाने वाला यह भूवलय है ।।१७२।।

शूरवीर दिगम्बर मुनियो के द्वारा सिद्ध किया हुआ काव्य भूवलय नामक है ॥१७३॥

जैसे दिगम्बर मुनि अपने चचल मन को बाध लेते हैं अर्थात् स्थिर कर लेते हैं उसी तरह सैकडो हजारो पुष्पो के रस से पारा स्थिर किया जाता है। इस तरह भूवलय मे मन और पारा दोनो स्थिर किये जाते हैं ॥१७४॥

सर्वार्थसिद्धि के अग्रभाग मे सिद्धशिला है उसके श्वेत छत्राकार रूप मे लिखा हुआ अक मार्ग जो आता है उसी अक को अरहतादि नौ अको से मिश्रित अपने अदर देखना, जानना ही भूवलय नामक सिद्धात है ॥१७५॥

परमागम मार्ग से आयुर्वेद को निकाल दिया जाय तो—१३ ००००००० करोड पदो को मध्यम पद से गुणाकार करने से २१२५२८००२५४४०००००० इतने अक्षर आगम मार्ग से सिद्ध है अर्थात् निकल आते हैं। ये अक एक सागर के समान हैं। तो भी यह अकाक्षर अपुनरुक्त रूप है। इसलिए यह सागर रूप 'रत्न मजूषा' नाम से प्रसिद्ध है ॥१७६॥

इस भूवलय मे ७१८ भाषाओ के अवतार हैं, यह अवतार प्रथम सयोग से भी निकल आता है ऐसा कहने वाला यह सिद्ध भूवलय नामक काव्य है॥१७७॥

दूसरे सयोग से भी आता है ॥१७८॥

तीसरे सयोग मे भी आता है ॥१७९॥

चौथे सयोग से भी आता है ॥१८०॥

६४ अक्षर सयोग से भी आता है ॥१८१॥

इससे परमात्म कला अंक भी देख सकते हैं ॥१८२॥

इसलिए यह परम अमृतमय भूवलय है ॥१८३।

इस तरह [१] ६४×१=६४ [२] ६४×६३=४०३२

[३] ६३×६२=२४९९८४ [४] ६२×६१=१५२४९०२४

इस क्रम के अनुसार है। इस प्रकार महारशि को बतलाना ही परमात्मा का अर्थात् केवली भगवान की ज्ञानरूपी कला है। यह कला इसमें गर्भित होने के कारण यह भूवलय ग्रन्थ परमात्म-रूप है।

उत्तरोत्तर ऋद्धि प्राप्त योगी मुनि के समान पहले के तीन अकोने समस्त अको को अपने अदर समावेश कर लिया है। उसी तरह यह चौथा अध्याय भी यहा ७२९० अको को अपने अदर गर्भित कर नौ अक मे सिद्धाक रूप होकर श्रेणी रूप मे स्थित है, अर्थात् १० चक्र के अदर यह गर्भित है ॥१८४॥

इतने अको मे से और भी अतर रूपसे निकाल दिया जाय तो १०९२६ इतने और भी अक आ जाते हैं, इतने अको को अपने अदर गर्भित करता हुआ यह भूवलय नामक ग्रन्थ है ॥१८५॥

'इ' ७२९०+ अतर १०९२६=१८२१६।

अथवा 'आ' – ई = ४६६११+१८२१६=६४८२७।

इति चौथा 'इ' अध्याय समाप्त हुआ।

चौथे अध्याय के प्रथम अक्षर से लेकर उपर से नीचे तक पढते जाय तो प्राकृत गाथा निकल आती है उस का अर्थ इस प्रकार है—

इस भूवलय ग्रन्थ के मूल तन्त्र कर्ता श्री वीर भगवान हैं। उनके पश्चात् इन्द्रभूति ब्राह्मण, उपतत्र कर्ता हुए, कुमुदेन्दु आचार्य तक सभी आचार्य अनुतत्र कर्ता हैं। अब आगे इस अध्याय के बीच मे आने वाले सस्कृत गद्य का अर्थ कहते हैं —

श्री परम पवित्र गुरु को नमस्कार, श्री परमगुरु और परम्परा आचार्यो को नमस्कार, श्री परमात्मा को नमस्कार।

पांचवां अध्याय

ई* ग आवाग हिन्दवण मुन्दके बहा । नागतकाल वेल्लवनु ।। आग स* दन्तव सागुत काणुव । श्री गुरुवय्यर ज्ञान ॥१॥
य* वेयकाळिन कृपेत्रवळतेयोळडगिसि । अवरोळनत वस क* लान् ।। कवनवदोळ् सवियागिसिपेळुव । नव सिरिइरुव भूवलय ॥२॥
म* र्मव सम्यज् ज्ञान वात्मनरूपु । निर्मलानन्तद् अ सक ल* धर्मव परसमयद वक्तव्यतेयलि । निर्मलगोळिसुव ज्ञान ॥३॥
ण* णवरणीय कर्मवळियलु । तानु केवल ज्ञानियागि ।। आनन्द क* रनु आत्म स्वरूपव ताळ्व । श्री जिनयान क ओम्बत्तु ॥४॥
या* वाग नोडिदरावागअललिये । ठाविनपूर्णान्कवेनसि ।। तावुका लु* ष्यव होन्दुवन्कगळनु । तीविकोन्डिरुवात्म नवम ॥५॥
पावन परिशुद्ध नवम ॥६॥ ईविश्व परिपूर्ण नवम ॥७॥ साविर लक्षान्क नवम ॥८॥ पावन सूक्ष्मगर नवम ॥९॥
श्री विश्वदादियु नवम ॥१०॥ साविर कोटिगळ् नवम ॥११॥ सावु वाळ्विकेयोल्ल नवम ॥१२॥ सावु नोवुगळल्लि नवम ॥१३॥
नावुगळरियद नवम ॥१४॥ श्री वीरनरिकेय नवम ॥१५॥ दावानल कर्म नवम ॥१६॥ ऋवागमवर्प नवम ॥१७॥
श्रीविद्यासाधन नवम ॥१८॥ पावनवागिप नवम ॥१९॥ कावुदेल्लवनु इ नवम ॥२०॥ तावुताविनोळेल्ल नवम ॥२१॥
श्रीवीर सिद्धान्त नवम ॥२२॥ श्री वीरसेनर नवम ॥२३॥ नावुगळळेयुव नवम ॥२४॥ कावुतलिरुव भूवलय ॥२५॥
व* रव हस्तव नवपदद निर्मलदन्क । गुरुगळय्वर इ ष्* टदन्क ।। सरससाहित्यदवर्णनेगादिय । वरदकेवललब्धियन्क ॥२६॥
हा* रदग्रदरत्न नायक मणियन्क मूरु । मूर्ल ओम्बत्र् अ* न्क नूरु साविर लक्ष कोटियोळ् ओम्दय । वारिवेगेयलोम्बत्त् अन्क॥२७॥
रि* द्धि सिद्धिगळनु कूडिसि कोडुवन्क । होद्दि बरुव दिव्यद् वि* द्ये ।। अध्यात्मसिद्धियसाधिसिकोडुवन्क । शुद्धकर्माटकदन्क॥२८॥
य* शस्वतियाडुव प्राकृत लिपियन्क । रसद समस्कृत ध* रव्यदन्क।। असमानद्रविडआन्ध्र महाराष्ट्र। वशदलिमलेयाळदन्क२९
रिसिय गुर्जर देशदंक ॥३०॥ रससिद्ध अन्गद अन्क ॥३१॥ यशद कळिन्गद अन्क ॥३२॥ रसद काश्मीरान्गबन्क ॥३३॥
ऋषिय कम्भोजादियन्क ॥३४॥ वसनद हम्मीरदन्क ॥३५॥ यश शौरसेनीयदन्क ॥३६॥ रस वालियन्क बोम्बत्तु ॥३७॥
वशवा तेबतियादियन्क ॥३८॥ रसवेन्मि पळुविन अन्क ॥३९॥ असमान वन्ग देशान्क ॥४०॥ विषहर ब्राम्हियाद्यन्क ॥४१॥
रस नेमि विजयार्धदन्क ॥४२॥ वृषभनवळिय पद्मदन्क ॥४३॥ रस सिद्धि वयदर्भ्यरन्क ॥४४॥ वशद वय्शालियाद्यन्क ॥४५॥
रसद सौराषट्र दाद्यन्क ॥४६॥ यशद खरोष्ट्रिय अन्क ॥४७॥ वशव निरोष्ट्रद अन्क ॥४८॥ वशदापभ्रम्शिकदन्क ॥४९॥
विशेय पय्शाचिकरन्क ॥५०॥ यशद रक्ताक्षरदन्क ॥५१॥ वशवादरिष्ट देशान्क ॥५२॥ कुसुमाजियर देशदन्क ॥५३॥
रसिकर सुमनाजियन्क ॥५४॥ रसदयन्द्रध्वजदन्क ॥५५॥ रस जलजद दलवन्क ॥५६॥ वशद महा पद्मवन्क ॥५७॥
रसदर्ध मागधियन्क ॥५८॥
आ* रस पारस सारस्वतदन्कम् । बारस देशदाद्यन्क ।। वीर व* शद देशदारय् के सेरिद । शूर मालव लाट गवुड ॥५९॥
इ* वुगळ नेरेनाड मागध देशान्क । अवराचेय विहारान्क ।। नव म* दक्षरद उत्कल कन्याकुब्जान्क । सविय वराह मा[illegible] ॥६०॥
रि* द्धिय वय्श्रमणर नाडिनन्कवु । शुद्ध वेदान्तदाद्य स* र । इद्लूले इरुव सम्दर्भद नाडन्क । एब्बु बरुव चित्रकरव ॥६१॥
य* डगय्य नाडन्क वेन्नेने ब्राम्हिय । एडगय्य सरद क* न्नडद मडुविनन्कवे बेरेसलु मय्वय्बाकन्क ।। एडबलसन्नारियन्क ॥६२॥

५४ में १ मिलकर = ५५ = १० (यह सौंदरिय अन्क) पोडविय हविनेन्दु लिपिय ॥६३॥ बिडिसलार् ओम्बत्तरन्क ॥६४॥
मडिय मूरल मूररन्क ॥६५॥ सडगरदलि हविनेन्दु ॥६६॥ बिडिगळनोड गूडिदन्क ॥६७॥ कडेगे ऐवत्नाल्करन्क ॥६८॥
ओडगूडे अयहृदिनेन्दु ॥६९॥ नडेय मूरर ओम्बत्तन्क ॥७०॥ अडविय अनवासियन्क ॥७१॥ मडविय त्वर्गमगळन्क ॥७२॥
इडिदु कूडिदर् ओम्दे अन्क॥७३॥ बिडिसि नोडिदरोम्दे अन्क ॥७४॥ गुडियोळाडुव ज्ञानदन्क ॥७५॥ नुडियु करमाटकद्अन्क ॥७६॥
हिडिय मातुगळ भूवलय ॥७७॥ ओडगूडे करमाटकद्अनक ॥७८॥

प* रमम् पेळिद हविनेन्दु मानिन । सरसद लिपि ई नवम ॥ वर मृ* वमल प्राम्हतदोळु अन्कव । सरिगूडि बरुवे भाषेगळम् ॥७९॥
र* सवु मूलिकेगळ सारव पोर् वन्ते । होस करमाटक भाषे ॥ रस श्* री नवमान्कवेल्लरोळ्बेरेयुत । होसेवु बन्दिह ओम् ओम्दन्क ॥८०॥
मृ* रम् वादा ओम्कार दोळडगिद । सर्वज्ञ वाणियम् होसेये ॥ श् रे* यम् पोन्दुतगणितबन्धदोळ् कट्टि । परम साम्राज्यवन्कदोळु ॥८१॥
प* दवागिसि पद पद्मवनागिसि । हरुदय पद्मा दलरि ॥ सद य* स्ववेनिसिमेयुळ होयकु केल्वर । ह्रुदयके कर्मबाट्यवु ॥८२॥
रा* गव वय्राग्यवनोम्दे बारिगे । तागिसे कर्णाटकद ॥ बागिल सा* लिनिम् परितन्द कारण । श्री गुरु वर्धमानान्क ॥८३॥

९×६ = ५४ ईगदु सम्ख्यातवन्क ॥८४॥ तागल सम्ख्यातवन्क ॥८५॥ वेगदनन्त सम्ख्यान्क ॥८६॥ रागव मध्यमानन्त ॥८७॥
तागलु उत्कृष्टानन्त ॥८८॥ आगुवनन्तानन्तान्क ॥८९॥ श्री गुरु मध्यमानन्त ॥९०॥ ओम् गुरु उत्कृष्टानन्त ॥९१॥
आगर रत्नत्रयान्क ॥९२॥ चागर शाश्वतानन्त ॥९३॥ जागरविश्व भूवलय ॥९४॥

ग* मनिसे 'अथवा प्राकृत संस्कृत । विमल 'मागध पिशाच' मृ* भा ॥ सम 'भाषाश्च शूरसेनी च' व । क्रमदे' षष्ठोत्तर' बहुधि ॥९५॥
व* रणिसे 'भेदोदेशविशेषआ'द । वर'विशेषादपभ्रम्शह ॥ परम् प* दघतियिन्तिवरनु मूररिम् । परि गुणिसलु हविनेन्दु ॥९६॥
म* रळिसलथवा 'कर्णाट मागध'वरे। बरलु'मालव लाट गौड' । वरि* यिरि 'गुर्जर प्रत्येक अवमित्य' । बरद 'ष्टादश महा भाषा' ॥९७॥
म* रळि मरलि बेरे विषदिन्द पेळुव । गुरुवर सन्ध भेदगळ ॥ व* र काव्य सरणिय शब्दियन्तिरळोग । सरस सवनुदविय रिदन्क ॥९८॥
ण* वमान्क गणनेयोळ् भूवलय सिद्धांत । अवरनुलोमवव र* नक ॥ नवमवु प्रतिलोमवागिसि बन्दन्क । सविय भूवलय सिद्धांत ॥९९॥
सा* विरदेन्दु भाषेगळिरलवनेलल । पावन महावीर वाणि ॥ काव ध* र्मांकवु ओम्बत्तागिपांग । तावु एळ्नूर् हविनेन्दु ।१००॥

६×३=१८ । १८×३ =५४ कावुदु हम्सद लिपियम् ॥१०१॥ नावरियद भूत लिपियु ॥१०२॥ श्री वीर यक्षिय लिपियु ॥१०३॥
ठाविन राक्षसि लिपियु ॥१०४॥ तावहिज ऊहिया लिपियु ॥१०५॥ कावे यवनानिय लिपियु ॥१०६। कावद तुर्किय लिपियु ॥१०७॥
पावक द्रमिळर लिपियु ॥१०८॥ पावेय सइन्धव लिपियु ॥१०९॥ ताव मालवणीय लिपियु ॥११०॥ श्री विषकौरिय लिपियु ॥१११॥
पावन नाडिन लिपियु ॥११२॥ देव नागरियाद लिपियु ॥११३॥ वय्विध्य लाडद लिपियु ॥११४॥ काविन पारशि लिपियु ॥११५॥
काव आमित्रिक लिपियु ॥११६॥ भूवलयद चाणक्य ॥११७॥ देवि ब्राह्मियु मूलदेवि ॥११८॥ श्री वीर वाणि भूवलय ॥११९॥
देवि सवुनुदरिय भूवलय ॥१२०॥

पु* ट्ट भाषेगळेळु नूरन्क मातिन । गट्टिय लिपिगळिल्लदं न् क* हुट्टदनक्षर भाषेय नरियुव । हुट्टलिल्लव लिपियन्क ॥१२१॥
व* र 'सर् वभाषाम इ भाषा' एन्नुव । अरहन्त भाषितव् वाक्य मृ* वर 'विश्व विद्यावभासिने'(एन्नुव)एन्देमृबा परिभाषेय अंक ॥१२२॥
वा* सवरेल्लराडुव दिव्य भाषेय । राशिय गणितदे कट्टि ॥ आ अ* मृताम्हत कुम्भदोळडगिसि श्रीशनेळ् नूरन्क भाषे ॥१२३॥
इ* दरोळु हुदुगिह हविनेन्दु भाषेय । पदगळ गुणिसुत बरुव र* सदनव तोरेवु तपोवनवनु सेरे । हृदय के शान्ति ईवन्क ॥१२४॥

रि* प्राकृतेल्लव कूडि महिमेय लिपिगळ । वशगेन्दु भाषेय सर म* हसगोळिसुत ईगरण हिन्दरण मुन्दे । वशवप्प मातुगळंक ॥१२५॥
या* व भाषेगळलि एप्टंक वेन्नुव । ठाविन शन्केगे तावु ॥ तावु स* मन्वयगोळिसि समाधान । वीव सिद्धान्त भूवलय ॥१२६॥
ई विश्वबाळुव ग्रन्क ॥१२७॥ श्री वीरवाणिय ग्रक ॥१२८॥ साविरलक्षशन्केगळ ॥१२९॥ ठाविन उत्तरदन्क ॥१३०॥
पावन स्वसमयदंक ॥१३१॥ आविद्य काव्यद ग्रंक ॥१३२॥ कावनाडुव मातिनंक ॥१३३॥ ई विश्वदध्यात्मदंक ॥१३४॥
तीविकोण्डिह दिव्य ग्रंक ॥१३५॥ सावनळिसुव ग्रक्षरान्कम् ॥१३६॥ धावल्य बिन्दुविनन्क ॥१३७॥
आ* विश्वदंक 'तुरिषष्टिहि चतुहुषष्टि' । पावनवावा ग्रंक म* तीवि 'र्स्वावरणाह शुभमतेमताह'द। काव 'प्राकृतेस स्कृतेवा'।१३८।
रा* 'पिस्वयस प्रोक्ताह स्वयम्भुवा' । आपद विरुवन्कद्र ब* व ॥ धापद सम्योगदोळु ग्ररवत्नाल्कु । श्रीपदपद्म सम्पुगिसे ॥१३९॥
णु* णुपाव ब्राह्मिय एडगय्योळंकित । पुणनद सरमाले ब न* धापद सम्योगदोळु ग्ररवत्नाल्कु । श्री पद पद्म सम्पुगिसे ॥१४०॥
स* रस सउंदरिय बलद कय्योळच्चोत्ति । ग्ररवत्नाल्कु ध* दणुविनोळ् आदीशवरेदक्षरोष्टिय । तनियाद वृषभांकितवु ॥१४१॥
र* सयुतवा 'ग्रकारादि हकारान्ताम्' । वश 'शुद्धाम् मुक्तावली' म् क* रस 'मिवस्वर व्यन्जनमोदेन ववि । वश 'वाभेद युपय्यु ॥१४२॥
ण* वर 'योम् ग्रयोगवाह' द 'परयताम् सर्व' । विवर 'विद्यासु' म* 'सरग'॥ नव 'ताम्ग्रयोगाक्षरसम्भूतिम्'। सवि नय्कबीचाक्षरयविब
म* नु 'ताम् समवादि दधत्ब्राह्मि मेधा । विन्यति सुन्दरो, वर भ* घन 'सुन्दरी गणितम्स्थानम्'स'क्रमहि । घनवह'सम्यगधास्यत्।१४४।
क* र ततो भगवतो वक्त्रान्निहिस्रुता । क्षरावलीम् सिद्ध व* ह 'नमइ'। सरतिव्यक्तसुमनगलाम् सिद्ध' गुरु मारुकाम् 'स भूवलय
व* रशनमाडलम्याचार्य वान्गमय । परियलि ब्राह्मियु ब य* वे । हिरियळावुदरिन्द मोदलिन लिपियंक । एरडनेयवु यवनांक१४६
मू* रळिद दोष उपरिका मूरदु । वराटिका नालकने ग्रंक ॥ सर्व जे* खरसापिका लिपि ग्रइदंक । वरप्रभारात्रिका आरुम् ॥१४७॥
सर उच्चतारिका एळुम् ॥१४८॥ सर पुस्तिकाक्षर एन्टु ॥१४९॥ वरद भोगयवत्ता नवमा ॥१५०॥ सर वेदनतिका हत्तु ॥१५१॥
सिरि निन्हतिकाहन्मोंदु ॥१५२॥ सर माले ग्रंक हंनेरडु ॥१५३॥ परम गणित हदिमूरु ॥१५४॥ सर हदिनाल्कु गान्धर्व ॥१५५॥
सुरि हदिनय्दु आदर्श ॥१५६॥ वर माहेश्वरि हदिनारु ॥१५७॥ बरुव दामा हदिनेळु ॥१५८॥ गुरुवु बोलिदि हदिनेन्टु ॥१५९॥
इरुविवेल्लवु ग्रंक लिपियु ॥१६०॥
ति* रियन्च नारकररियद हदिनेन्टु । परिशुद्ध लिपियंक व* वनु । वरेयलु बहुबुहेळ केळलु बहुदव । सरसान्क ग्रक्षर लिपियोळ्१६१
र* सभाव काव्य सनदर्भदुचित नुडि । यशस्वती देविय म* गळ ॥ होसदाद रीति वेसिक दरिकेयनेल्ल । हेसरिट्टुकलियलु बहुदु१६२
य* शस्वतियम्मन तन्गि सुनन्देय । बसरलि बनद् ग्रन्गजन न* । यशद कामम्पुर् वेददोळ् त्यागव । रससिद्धियिम् कारणबहुदु ॥१६३॥
ण* वमन्मथ रोळगादिय मन्मथ । ग्रवनादि केवलिनग्र ह* सुविशाल कायद परमात्म रूपनु । ग्रवनिन्द सवन्दरि कन्डु ॥१६४॥
ग्रवधरिसुत तन्गिर्दन्क ॥१६५॥ छवियोळु कारणव सत्यान्क ॥१६६॥ नवमन्मथराविषन्क ॥१६७॥
भवभय हरण दिव्यान्क ॥१६८॥ ग्रवरोळु प्रतिलोमदन्क ॥१६९॥ ग्रवनु कूडलु ग्रोम्बतव् ग्रोम्बु १७०॥
नवकार मन्त्रवु ग्रोम्दु ॥१७१॥ सवणर धर्मान्क ग्रोम्दु ॥१७२॥ सवियागिसिरुव भूवलय ॥१७३॥

ग्रनुलोम १-२-३-४-५-६-७-८-९
प्रतिलोम ९-८-७-७-५-४-३-२-१

लब्धान्क १-१-१-१-१-१,१-१-१-० ग्रोम्गत्ग्रोम्दु

णि* जव हत्तनु ग्रोम्बत्तागिसिदन्क । ग्रवरनुलोमान्कपद पु* * ॥ ग्रवरलिबरुवसोन्नेय बिट्टग्रोम्बत्तु । पदगळकाव्यभूवलय ॥१७४॥

मि✽ क्किह् एळ्नूरु नक्षरभाषेयम् । दक्किप द्रव्याग अम र✽ तक्क ज्ञानव मुन्दकरियुव आदेय । चोक्क कन्नाड भूवलय ॥१७५॥
त रुणनु दोर्बलियवरक्क ब्राम्हियु । किरियसौन्दरि अरि ति✽ र्द ॥ अरवत्नाल्कक् धर नवमान्कसोन्नेय । परियिह् काव्य भूवलय ॥१७६॥

सरमग्गिकोष्टक काव्य ॥१७७॥ गुरूगळिम् परितन्दगणित ॥१७८॥ गुरुगळय्वरघणितान्क ॥१७९॥
अरह्न्तरीरेविह् गणित ॥१८०॥ सिरि व्रुष भेश्वर गणित ॥१८१॥ गुरुवर अजित सिद्धगणित ॥१८२॥
परमात्म शम्भव गणित ॥१८३॥ सुरपूज्य अभिनन्दनेश ॥१८४॥ सुर नर वन्दय श्री सुमति ॥१८५॥
तिरियन्च गुरु पद्म किरण ॥१८६॥ नरकर वन्द्य सुपार्श्व ॥१८७॥ गुरुलिन्ग चन्द्र प्रभेश ॥१८८॥
सिरि पुष्पदन्त शीतलरु ॥१८९॥ गुरु श्रेयाम्स जिनेन्द्र ॥१९०॥ सरुवज्ञ वासुपूज्येश ॥१९१॥
अरहन्त विमल अनन्त ॥१९२॥ हरुषन श्री धर्म शान्ति ॥१९३॥ गुरु कुन्थु अर मल्लि देव ॥१९४॥
सिरि मुनि सुव्रत देव ॥१९५॥ हरि विष्टर नमि नेमी ॥१९६॥ वर पार्श्व वर्धमानेन्द्र ॥१९७॥
गुरु माले इप्पत्नाल्कुम् ॥१९८॥

त✽ रुण मन्मथनारु सोन्ने एरडु । सरियोम्दु अनन्तर बो✽ ध ॥ सरस कव्य यागमदरवत् नाल्क क्षर । विरुव 'ई' काव्यवु ऐदु ।१९९।
शिरसिनन्तिह् सिद्धराशि [भूवलय] ॥२००॥

म✽ नविडेओम्बत् ओम्दुसोन्नेयु एन्दु । जिनमार्गदतिशय ध✽ र्म ॥ वेनुत स्वीकरिसलु नवपद सिद्धय । घनमर्म काव्य भूवलय ॥२०१॥

, ५ वा ई ८०१९+अन्तर १२००६=२००२५ अथवा अ-ई ६४,८२७+ई २०,०२५=८४,८५,२

पहले श्रेणी के सुरु के अक्षर से लेकर नीचे पढते आचाय तो प्राकृत निकलता है—

ईयमणाया वहारिय परम्परा गद्म् मणासा ।
पुव्वाइरिया आराणु सरणं कदं तिरयण निमित्तम् ॥५॥

बीच में लेकर ऊपर से नीचे के तरफ इसी श्लोक के ममाण पढने आजाय तो संस्कृत श्लोक निकलता है—

सकल कलुष विध्वसकं श्रेयसां परिवर्द्धकं ।
धर्म संबन्धकं भव्य जीव मनः प्रति बोधः ॥

६५ श्लोक से इनिवर्टिड कामा तक पढते जाय तो पुन संस्कृत काव्य की दूसरी भाषा निकलती है। अर्थात्—

प्राकृक, संस्कृत, मागध, पिशाच, भाषाश्च, सूरशेनीच । षष्ठोत्तर भेदा देश विषेशादपभृंशह ॥
कर्णाट मागध मालव लाट गौड गुर्जर प्रत्येकत्रय मित्याष्टादश महा भाषा । सर्व भाषा मई भाषा विश्वविद्यालयाव भाषिणे ॥
त्रिषष्टिः चतुषष्ठिर्वा वर्णहा शुभमते मतह । प्राकृतेसंस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताह स्वयभुवह ॥
अकारादि हकारांतां शुद्धाम् मुक्तावली-मिव । स्वरव्यंजन भेदेन द्विधाभेदमुपेययुषीम् ॥
अयोग वाह पर्यंतां सर्व विद्या सुसगताम् । अयोगाक्षर संभूतिम् नैक बीजाक्षरैश्चिताम् ॥
समवादि ददत्ब्राम्ही मेधाविन्यति सुंदरी । सुंदरी गणित स्थानं क्रमैः सम्येग्हृस्यत् ॥
ततो भगवतो वक्त्रानिहृह श्र ताक्षरावली । नवइति र्व्यक्ति सुमंगलां सिद्ध मातृकाम् ॥

पांचवां अध्याय

अब हम पाचवें अध्याय का विवेचन करेंगे ।

इस समय वर्तमान काल, बीता हुआ अनादि काल और इस वर्तमान के आगे आने वाला भविष्य काल, इन तीनो कालो के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारो दिशाओ ईशान, वायव्य, आग्नेय और नैऋत्य, ऊर्ध्व आकाश और नीचे के भाग में यानी आकाश की सभी दिशाओ मे, विद्यमान समस्त पदार्थ अर्हन्त सिद्ध परमेष्ठी के ज्ञान में स्पष्ट झलकते हैं । ससार का कोई भी पदार्थ उनके ज्ञान से बाहर नही है ।

विवेचन —अतीत (भूत) काल बहुत विशाल है, जितना-जितना पीछे जाते हैं, आकाश की तरह उसका अत नही मिलता । इस लिये इस काल को अतीत काल या अनादि काल कहते हैं । इतना विस्तृत होने पर भी अनागत काल से भूतकाल बहुत छोटा है । अतीत काल को अनन्ताङ्क से गुणा करने पर जितना लब्धाङ्क आता है उतना अनागत काल है । इन दोनो कालो के बीच मे वर्तमान काल समय मात्र है, यह वर्तमान काल बहुत छोटा होने के कारण भूतकाल और भविष्य काल को छोटी कडी के समान जोडता है । इसी तरह क्षेत्र भी है, क्षेत्र का अर्थ आकाश है । यह आकाश अनन्त–प्रदेशी होते हुए भी तीन लोक की अपेक्षा से असख्यात-प्रदेशी भी है । परमाणु की अपेक्षा से सख्यातप्रदेशी (एक प्रदेशी) भी है ।

एक घडा रक्खा हुआ है उसके बाहर किसी भी ओर देखा जावे आकाश ही आकाश मिलता है उस का अन्त नही मिलता, इसलिये आकाश को 'अनन्त-प्रदेशी' कहा है । घडे के भीतर जो आकाश है वह सीमित है, क्यो कि वह घडे के भीतरी भाग के बराबर है, अत उसका अन्त मिल जाता है । फिर भी उस छोटे आकाश के प्रदेशो को अको से गणना नही कर सकते, इसलिये वह असख्य प्रदेशी है । यदि उस घडे के भीतर बहुत छोटा (सख्यात प्रदेशी) मिट्टी का बर्तन रख दिया जाय तो उस मे जो आकाश के प्रदेश हैं वे सख्यात है, उनकी गिनती की जा सकती है । १, २, ३, ४, ५ आदि रूप से उनकी गणना कर सकते हैं । इस प्रकार अखण्ड आकाश को घट आदि पदार्थो की अपेक्षा के भेद से खण्ड रूप और आकाश की अपेक्षा अखण्ड रूप कह सकते हैं । उस छोटी मटकी के अदर जो आकाश का प्रदेश है उसमें रक्खे हुए एक परमाणु को आकाश का सर्व-जघन्य प्रदेश कह सकते है । उस परमाणु को आदि लेकर १-२-३-४–५ आदि परमाणु बढाते हुये समस्त आकाश के प्रदेशों की पक्ति जानना केवली-गम्य है क्योकि केवल ज्ञान के द्वारा समस्त विश्व के पदार्थ जाने जाते हैं ॥१॥

ऊपर कही हुई समस्त वस्तुओ को सरसो के दाने के बराबर क्षेत्र में छिपा कर उसमें अनन्त को स्थिर करके उस सकलांक को नौ अक में मिश्रित करे, मृदु रूप में करने वाले नव श्री अर्थात् अर्हन्त सिद्धादि नव पद रूप में रहने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥२॥

विवेचन.—असंख्यात प्रदेश वाले इस लोक में अनंतानन्त पुद्गल परमाणु परस्पर विरोध रहित अपने-अपने स्वरूप मे स्थित हैं । (परमाणु प्रदेशोष्वनन्तानन्तकोटयः जीव राशयः) इस उक्ति के अनुसार वैद्य-शास्त्र के कर्ता वाग्भट्ट ने कहा है। जीव राशि में से प्रत्येक जीव में अनन्त कर्म वर्गणाओ का कैसे समावेश होता है ? इस बात का खुलासा पिछले अध्याय में कह चुके हैं । आकाश प्रदेश में अनन्त जीव और उनके कर्माणुओ को जानने के ज्ञान को नवमाक में बद्ध कर अनेक भाषात्मक रूप में व्यक्त करके उन सब को एकत्र करके इस भूवलय ने कथन किया है ।

लोक में अनादि काल से ३६३ मत है, एक धर्म कहता है कि सम्पूर्ण जीवो की रक्षा करनी चाहिए । दूसरा धर्म कहता है जीवों का नाश करना चाहिए । तीसरा धर्म कहता है ज्ञान ही श्रेयस्कर है, तथा चौथा धर्म कहता है कि अज्ञान ही श्रेष्ठ है । इस तरह परस्पर हठ करके कलह करते रहते हैं । इस प्रकार भिन्न-भिन्न मतो में परस्पर सघर्ष होने के कारण जैनाचार्यों ने इन धर्मों को पर-समय मे रखा है । इन सब पर-समयो को कहने के जो वचन हैं उसको पर-समय-वक्तव्य कहते हैं । जब इन सभी धर्मो को एकत्र करके कहने के लिए वाक्य की रचना होती है तब सभी धर्मो को समन्वित करके छोड़ देता है । यह समन्वय दृष्टि भूवलय का एक विशिष्ट रूप हुआ है । ३६३ इस अंक को

बाहिनी तरफ से मिलाने पर ६ और ३ = ९ आता है और बायी तरफ से ३ और ६ मिला देने से ९ आता है। इस प्रकार इन अको मे समन्वय कर देना है। यह क्रिया सम्यक् ज्ञान मात्र से ही साध्य है, अन्यथा नही। यही ज्ञान सभी मतो को समन्वय करने वाला है, और यही सम्यकज्ञान दर्शन चारित्र के साथ मिलकर रत्नत्रय स्वरूप करके छोड देता है। वह रत्नत्रय ही आत्मा का स्वरूप है। सम्पूर्ण मल दोषो से रहित होने के कारण अनतानत वर्ग स्थान के ऊपर जाकर सब को जान लेता है। इसी तरह अनतानन्त वर्ग स्थान के नीचे उतर कर सर्वोत्कृष्ट असख्यात तक आकर, वहा से जघन्य असख्यात मे उतर कर वहा से पुन सर्वोत्कृष्ट असख्यात तक आकर और पुन वहा से २ अक तक आकर वहा से गणनातीत होकर एक अक्षर रूप मे होता है। अब कुमुदेन्दु आचार्य इस नवमाक की महिमा का वर्णन करते हैं ॥३॥

ज्ञानावरण कर्म का सर्वथा क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त कर अनन्त सुख देने वाला अन्तरग बहिरग लक्ष्मी का आश्रयभूत यह नवमाक है ॥४॥

यह नवमाक जहा भी देखें, सभी जगह पूर्णाङ्क दिखाई देता है नवाक से पहिले के अक अपूर्ण और मलिन दीख पडने हैं। उन अकों को अपने अन्तर्मुख करके पूर्ण और विशुद्ध बनाने वाला यह नवमाक है ॥५॥

भावार्थ—नव ९ अक से पहिले के अक एक दो आदि सब ही अपूर्ण हैं क्योकि उनसे अधिक–अधिक सख्या वाले अक मौजूद हे। एक नवमाक ही ऐसा है जहां सख्या पूर्ण हो जानी है क्योकि उसके आगे कोई अक ही नही है। यह नवमाक पावन और परिशुद्ध है ॥६॥

विश्व भर मे व्याप्त यह नवमाक है ॥७॥

हजार, लाख आदि गिनती मे भी नवमाक है ॥८॥

पावन सूच्यग्र मे भी नवमाक है अर्थात् छोटे मे छोटे भाग मे भी नवमाक है और बडे मे बडे भाग में भी नवमांक है ॥९॥

श्री विश्व अर्थात् अतरङ्ग विश्व में भी नवमाङ्क है ॥१०॥

हजारों करोडो आदि रूप मे रहने वाला नवमाङ्क है ॥११॥

जन्म मरण जिस प्रकार परस्पर सापेक्ष हैं, वैसे ही नवमाक की अपेक्षा अन्य सभी अङ्क रखते हैं। मरण अन्त को कहते हैं, सख्या का अन्त-मरण, नवमाक प्राप्त हो जाने पर हो जाता है। नवम अङ्क प्राप्त हो जाने के बाद ही सख्या का जन्म हो जाता है अर्थात् ९ के बाद एक, दो बोले जाते हैं इसीलिए जन्म मरण रूप दोनो अवस्थाओ मे नवमांक रहता है ॥१२॥

सुख दुःख दोनो मे नवमाक काम आता है ॥१३॥

छद्मस्थ की बुद्धि के अगम्य नवमाक की गम्भीरता है ॥१४॥

श्री वीर भगवान का ज्ञान-गम्य यह नवमाक है ॥१५॥

कर्म वन के लिए दावानल के समान जलाने वाला नवमांक है ॥१६॥

ऋषि-सूत्र द्वादशाग नवमाक से बद्ध है ॥१७॥

समस्त विद्याओ का साधक नवमाक है ॥१८॥

वाणी को पवित्र करने वाला नवमाक है ॥१९॥

विश्व का रक्षक यह नवमाक है ॥२०॥

विश्व मे व्याप्त नवमाक है ॥२१॥

श्री वीर भगवान का सिद्धान्त नवमाक है ॥२२॥

श्री वीरसेन आचार्य का सिद्धान्त नवमाक है ॥२३॥

हमारा (कुमुदेन्दु आचार्य का) सिद्धान्त नवमाक है ॥२४॥

इन सब ९ अङ्को का रक्षक भूवलय है ॥२५॥

यह नवमाक वरद हाथ के समान है, नव पद पच परमेष्ठियो का इष्ट है, सरस साहित्य के निर्माण मे प्रधान है। क्षायिक नव केवल लब्धि (क्षायिक सम्यक्त्व, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग, अनन्त वीर्य) प्रदान करने वाला है ॥२६॥

रत्न हार की मध्यवर्ती प्रधान मणि के समान ही गणित का यह अङ्क प्रधान अक (नव ९) है। ३ अक को ३ अक से गुणा करने पर यह नवमांक होता है। सौ, हजार, लाख, करोड आदि जितनी सख्या है उनमें एक संख्या घटा दी जाय तो नौ अक ही सर्वत्र दिखाई पडता है। जैसे १०० में से १ घटा देने मे ९९ हो जाता है, १००० मे से १ घटा दें तो ९९९ हो जाता है, १००००० मे से १ घटा दे तो ९९९९९ हो जाता है, १००००००० में से १ घटा दें तो ९९९९९९९ हो जाते हैं ॥२७॥

१००००००००००००००००००००
—१

९९९९९९९९९९९९९९९९९९९

केवलज्ञान आदि ज्ञान ऋद्धि- जघा आदि से आकाश में गमन करा देने वाली चारण-ऋद्धि और अणिमादिक अतिशय प्रदान करने वाली समस्त ६४ ऋद्धियों की सिद्धि कर देने वाला यह नवमाक है। सदा साथ-साथ रहने वाला दिव्य विद्या रूप यह नवमाक है। अध्यात्म-सिद्धि का साधन करा देने वाला नवमाक है। अष्ट कर्मों को नष्ट कर देने वाला नवमाक है। अथवा शुद्ध कर्माटक भाषा का महानकाव्य है। अथवा घाति-कर्मों के नष्ट हो जाने के बाद बचे हुए ८५ अर्थात कर्मों का वर्णन करने वाला यह काव्य है। इसलिए (१) शुद्ध कर्माटक है ।।२८।।

यशस्वती देवी द्वारा बोली जाने वाली प्राकृत भाषा १, लिपि २, रस भरी सरस नित्य संस्कृत भाषा ३, अस्मान् द्राविडा ४, (१ कानडी, २ तामिल, ३ तेलङ्गी, ४ मलेयाल और ५ तुलु) इन पाच भाषाओ को पच द्रविड भाषा कहते हैं ५, महाराष्ट्र ६, गुर्जर ७, अगद ८, कलिग ९, काश्मीर १०, काम्भोज ११, हम्मीर १२, शौरसेनी १३, व्हाली (पाली) १४, तिब्बत १५, वेगी इत्यादि सात सौ भाषायें हैं। बग १६, विषहर ब्राह्मी। नेमि विजयार्द्ध १७, पद्म १८, वैधर्मी १९, वैशाली २०, सौराष्ट्र २१, खरोष्ट्र २२, नीरोष्टा २३, अपभ्रशिका २४, पैशाची २५, रक्ताक्षर २६, ऋष्ट २७, कुमुमाजी २८, सुमनाजी २९, ऐन्द्रध्वजा ३०, रसज्वलज ३१, महा पद्म ३२, अर्द्ध मागधी ३३। यहा तक ५८ श्लोक हो गये। आगे ५९ श्लोक से लिखेगे ।।२९ से ५८ तक ।।

३४ आरस, ३५ पारस, ३६ सारस्वत, ३७ बारस, ३८ वीर वश, ३९ मालव, ४० लाट (लाड देश मे इस भाषा के अनेक भेद हैं) ४१ गौड (गौड देश के पास रहने वाले मागध), ४२ मागध के बाहर का देश बिहार, ४३ नौ अक्षर वाले, ४४ कान्य-कुब्ज, ४५ बराह (वराड), ४६ ऋद्धि प्राप्ति को कर देने वाले वैश्रवण, ४७ शुद्ध वेदान्त भाषा तथा दो ढाई हजार वर्ष पहिले की संस्कृत भाषा को गीर्वाण भाषा कहते हैं। भूवलय के श्रुतावतार नामक दूसरे खण्ड के संस्कृत विभाग में गीर्वाण इसी को कहा है।

ऋग्वेद ऋषिमण्डल स्तोत्र आदि इसी भाषा द्वारा श्री भूवलय में कहे गये हैं।

जिस देश में जो भाषा बोली जाती है, वह उसी देश में लोगों का उपकार करती है और उसे "सदर्भ" कहते हैं। ४८ 'चित्रक भाषा' (चित्रों द्वारा कही जाने वाली भाषा) अर्थात् चित्र बना कर अपना अभिप्राय बताना, सब देश मे सफल रूप से लोगो का उपकार करती हैं। जैसे कि—चीनी भाषा चित्र भाषा है। कही लोगो मे परस्पर गाली गलौज हो गयी तो वहां वाले अपने सामने दो स्त्रियो का चित्र लिख देते हैं। यदि 'मारपीट हो गई' यह कहना होता है तो तीन अर्थात् बहुतसी स्त्रियो का चित्र बना देते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि स्त्री का स्वभाव सब देशो में एक जैसा रहता है। जहां दो स्त्रियां इकट्ठी हुईं कि बातो-बातो मे गाली देने लगतीं हैं और जहां तीन आदि ज्यादा एकत्र हुई तो मारपीट भी करने लगती हैं। इसीलिए चित्र में २-३ आदि स्त्रिया दिखाते हैं।

भगवान ऋषभदेव ने अपनी बडी पुत्री को जो लिपि (अक्षर विद्या) दहिने हाथ की हथेली पर लिख कर सिखाई थी उसमे जो अक्षर हथेली के सीधे मार्ग पर लिखे गये थे उनका आश्रय लेकर बोली जाने वाली भाषा एक प्रकार की हुई और हथेली के निम्न भाग में लिखी गई लिपि (अक्षर) का आश्रय लेकर जो भाषा बोली गई वह दूसरी प्रकार की भाषा हुई। इसी प्रकार दक्षिण देश के भिन्न-भिन्न भागो में बोली जाने वाली आठ भाषायें हैं।

अथवा—

प्राकृतसंस्कृतमागधपिशाचभाषाय सूरासेनीय।
छट्टोत्तर भेदाहिदेशविशेषादपभ्रंश ।।

अर्थ—प्राकृत, सस्कृत, मागध, पिशाच, शौरसेनी तथा अपभ्रश इन मूल ६ भाषाओं का ३ से गुणाकार करने पर १८ महाभाषाएें क्रम से होती हैं ।।९५ ९६।।

पुन—कर्णाटक, मागध, मालव, लाट, गौड और गुर्जर इन मूल ६ भाषाओ का ३ से गुणा करने पर १८ महाभाषायें हैं ।।९७।।

इस रीति से दिगम्बर जैन आचार्यो के सघ भेद के कारण काव्य रचना को पद्धति सरणी तथा शैली आदि बदलनी रहती है किन्तु यह परिवर्तन हमें यहां इष्ट नही है अपितु भगवान ऋषभनाथ ने अपनी सुपुत्री सुन्दरी को जो कभी न बदलने वाली अक विद्या सिखलाई थी, वही अक विद्या हमे यहा इष्ट है ॥९८॥

क्योंकि नवमाक विद्या सदा एक ही रूप मे स्थिर रहती है, इस कारण अनुलोम प्रतिलोम पद्धति द्वारा नवमाक से भूवलय सिद्धान्त की रचना हुई है ॥९९॥

जगत मे प्रचलित हजारो भाषाओं को रहने दो । भगवान महावीर की वाणी नवमाक मे व्याप्त होने के कारण नवमाक पद्धति से ७१८ भाषाओ का प्रगट होना क्या आश्चर्यजनक है ? ॥१००॥

इसी प्रकार ऊपर कहे अनुसार ४६ भाषाओ के अलावा और भी भाषा तथा लिपि कुमुदेन्दु आचार्य उद्धृत करते है—

हस, भूत, वीरयक्षी, राक्षसी, ऊहिया, यवनानी, तुर्की, द्रमिल, सेंधव, मालवणीय, किरीय, नाडु, देवनागरी, वैविध्यन, लाड, पारसी, आमित्रिक, भूवलयक, चाणक्य, ये ब्राह्मी देवी की मूल भाषाये हैं। ये सभी भाषाये श्री भगवान् महावीर की वाणी से निकल कर भूवलय रूप बन गयी हैं।

यह सुन्दरी देवो का भूवलय है ॥११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२०।

इस ससार (विश्व) मे सात सौ क्षुद्र भाषाऐ हैं, उन सब भाषाओ की लिपि नही है। शेष भाषाओ को बोलने वाले कही किसी प्रदेश में रहने वाले हैं। किसी देश मे क्षुद्र भाषा बोलने वाले प्राणी नही हैं जहा हो वहा भाषा भी उत्पन्न हो सकती है। जो भाषा जहा उत्पन्न होने वाली है उसको वहा के प्राणी जान सकते हैं। क्योकि यह भूवलय ग्रन्थ त्रिकालवर्त्ती चराचर वस्तु को देखने वाले महावीर भगवान की वाणी से निकला है। इसलिए इससे जान सकते हैं ॥१२१॥

अर्हन्त भगवान की वाणी को सर्व-भाषामयी भाषा कहते हैं। सम्पूर्ण जगत्त में जो भाषाऐं है वे सभी भगवान महावीर की वाणी से बाहर नही। अत अर्हन्त भगवान की दिव्य भाषा को विश्वविद्याभाषिणी भी कहते हैं। इस भूवलय ग्रन्थ में चौंसठ अक्षर होने के कारण विश्व की सर्व विद्याओं की प्रभा निकलती है। इसलिये विविध भाषाओ को कुमुदेन्दु आचार्य ने अंक में बद्ध कर दिया है ॥१२२॥

स्वर्गो मे प्रचलित भाषा को दिव्य भाषा कहते हैं। उन सब भाषाओं की एक राशि बनाकर के गणित के बध से बाधते हुए जिनेन्द्र देव की दिव्य वाणी सात सौ भाषाओ मे मिलती हुई धर्मामृत कुम्भ में स्थापित हुई है ॥१२३॥

इस कुम्भ में समावेश हुई सब भाषाओं में रहने वाले पदों को गुणा करके बुद्धिमान दिगम्बर जैन ऋषि जब अठारह भाषा के लिपिबद्ध के महत्व को तपोवन मे अध्ययन करते हैं तब उनके हृदय को शान्ति मिलती है ॥१२४॥

इन महिमामयी लिपियो को अपने हाथ में लेकर महा ऋद्धि-प्राप्त ऋषियो ने सुन्दर काव्य रूप बनाया है। वर्तमान अतीत और अनागत काल में होने वाली सब भाषाओं के अक इसमे हैं ॥१२५॥

किस भाषा मे कितने अक हैं और कितने अक्षर हैं इन सब को एक साथ आचार्य जी ने कैसे एकत्रित किया। इन शकाओ को समन्वय रूपात्मक सिद्धान्त रूप से उत्तर कहने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१२६॥

इस भूवलय ग्रन्थ में सर्वोपरि रहने वाला जो नौ अक है, वह विश्व का आधिपत्य करने बाला है ॥१२७॥

श्री भगवान महावीर की अनक्षरी वाणी इन्ही नौ अंक रूप में थी ॥१२८॥

शका अनेक प्रकार की होती हैं। शका में शंका ही उत्तर रूप से अर्थात् पूर्ण से उत्तर न मिलने वाला और उत्तर मिलने वाला इत्यादि रूप से अनेक समाधान होते हैं। उन सबका ॥१२९॥

जिस जगह मे शका उत्पन्न होती है उसी जगह में समाधान करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१३०॥

इस भूवलय में स्वसमय-वक्तव्यता, परसमय-वक्तव्यता और तदुभय-वक्तव्यता ऐसे तीन प्रकार की वक्तव्यता का अर्थ प्रतिपादन करना है। स्वसमय

का अर्थ आत्म-द्रव्य है। स्वसमय वक्तव्यता मे केवल आत्म द्रव्य का कथन है। पर-समय का अर्थ पुद्गल आदि द्रव्य हैं। उसका जहा वर्णन हो उसे 'पर-समय वक्तव्यता' कहते है। जिसमे 'स्व' यानी आत्म-द्रव्य की और पर पुद्गल द्रव्य की बात आई हो उसे उभय वक्तव्यता कहते हैं।

इन तीनों तरह की वक्तव्यताओ में से इस भूवलय ग्रन्थ में स्वसमय-वक्तव्यता की प्रधानता है ॥१३१॥

यह भूवलय—सहज अंकमय काव्य को उत्पन्न करने वाला है ॥१३२॥

इस भूवलय ग्रन्थ को सबसे पहले गोम्मट देवने प्रकट किया था ॥१३३॥

यह भूवलय ग्रन्थ समस्त जीवो के लिए अध्यात्म विद्या को प्रगट करने वाला है ॥१३४॥

इसके सिवाय और भी समस्त प्रकार की विद्याओ को सिखलाने वाला है ॥१३५॥

मरण को जीतकर नित्य जीवन देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१३६॥

इस भूवलय मे जो चक्राक हैं सो सब धवल बिन्दु के समान हैं ॥१३७॥

श्री स्वयम्भू भगवान के बताए गए हुये ६३ अथवा ६४ अक्षर प्राकृत भाषा मे तथा सस्कृत भाषा मे विद्यमान हैं ॥१३८॥

ये सभी अक्षराङ्क पवित्र हैं और विश्व को नापने वाले हैं। इन अक्षरो को परस्पर संयोगात्मक करके अनेक प्रकार के बन्धनो मे बाँध कर चक्राकार पद्म रूप में बनाने वाला यह भूवलय है। चक्र के भीतर २७×२७ = ७२९ आरे बनते हैं ॥१३९॥

इस भूवलय काव्य को आदिनाथ भगवान ने श्री ब्राह्मी देवी की हथेली में लिख कर प्रगट किया था ब्राह्मी देवी की हथेली अत्यन्त मृदु थी इसलिए यह भूवलय भी अतिशय कोमलरूप है। उपर्युक्त अक्षरो को गुणाकार रूप मे लाकर रत्नहार की भाति उनसे गुथा हुआ यह भूवलय काव्य है। इस भूवलय ग्रन्थ को श्री भगवान ने ब्राह्मी देवी की हथेली मे लिखा था और कागज, कलम तथा स्याही की सहायता के बिना सिर्फ अपने अगुष्ठ से लिखा था और आठ-आठ अक्षरो वाली आठ पक्तियो में लिखा था जो कि लेख कहलाया। इसलिए उसका दूसरा नाम 'खरोष्ठ' पड़ गया ॥१४०॥

इसी ६४ अक्षर मय काव्य-बन्ध को श्री ऋषभदेव भगवान ने सुन्दरी की हथेली मे एक आदि नौ अको में गर्भित करके लिखा था जिन नौ अंकों को पहाडो के प्रस्ताव रूप मे करने से उन में विश्व भर को महिमा आजाती है जिस की लिपि अक गणित कहलाती है ॥१४१॥

अथवा प्राकृत सस्कृतमागधापिशाचभाषाश्च।
षष्ठोत्तर [९५] भेदो देशविशेषावपभ्रंश. । [९६]
कर्णाटमागधमालवलाटगौडगुर्जरप्रत्येकत्रय—
मित्यष्टादशमहाभाषा [९७]
सर्वभाषामयीभाषा विश्वविद्यावभासिने ।११२।
त्रिषष्टिश्चतु:षष्टिर्वावर्णाः शुभमते मताः ।
प्राकृते संस्कृते चा [१३८] पिस्वयं प्रोक्ताःस्वयम्भुवा ।१३९।
अकारादिहकारान्तां शुद्धां मुक्तावलीमिव ।
स्वरव्यंजनभेदेन द्विधा भेदमुपेयु-।१४२।षीम् ।
अयोगवाहपर्यन्तां सर्वविद्यासु सङ्गताम् ।
आयोगाक्षर सम्भूतिं नैकबीजाक्षरैश्चि-[१४३] ताम् ।
समवादी दधत् ब्राह्मीमेधाविन्यपि सुन्दरी ।
सुन्दरी गणितस्थानं क्रमैः सम्यगधारयत ॥१४४॥
ततो भगवतोवक्त्रा निःसृताक्षरावलीम् ।
नम इति व्यक्तांसुमंगलां सिद्ध मातृकाम् ॥१४५॥

अर्थ—भगवान ऋषभनाथ के मुख से प्रगट हुए अकार से हकार तक अयोगवाह अक्षरो (क ख प फ) सहित शुद्ध मोतियों की माला की तरह वर्णमाला को ब्राह्मी ने धारण किया। जो (वर्णमाला) कि स्वर और व्यंजनों के भेद से दो प्रकार है, समस्त विद्याओ से संगत है, अनेक बीजाक्षरों से भरी हुई है, नमःसिद्धेभ्य से प्रगट हुई सिद्धमातृ का है। भगवान ऋषभ नाथ की दूसरी पुत्री सुन्दरी ने क्रम से ९ अको द्वारा गणित को मोतियों की माला को की तरह धारण किया।

ब्राह्मी देवी वृषभनाथ भगवान की बडी पुत्री होने के कारण ब्राह्मी लिपि को ही पहली लिपि माना गया है। दूसरी लिपि यवनांक लिपि है ऐसा अन्य आचार्यों का भी मत है ॥१४६॥

"दोषउपरिका तीसरी भाण है, वराटिका (वराट) चौथी है। सर्वजी, अथवा खरसापिका लिपि पाचवी है। प्राभृतिका छटी है ॥१४७॥

उच्चतारिका सातवी है, पुस्तिकाक्षर आठवी है, भोमयवत्ता नौवी है। वेदनतिका दशवी है। निन्हतिका ११ वी, सरमालाक १२वी, परम गणिता १३ वीं है, १४ वी गान्धर्व, १५ आदर्श, १६ माहेश्वरी, १७ दामा १८ बोलिदी ये सब अङ्क लिपिया जाननी चाहिए ॥१४८॥

दिगम्बर मुनियो के सघ भेद के कारण भाषाओ मे भी भेद देखने मे आया है। परन्तु इन में भेद रूप समझकर परस्पर विरोध रूप मे ग्रहण नही करना चाहिए। इसके अतिरिक्त जितनो भी प्रचलित भाषायें हैं उनमे भेद मानना चाहिए ॥१४८—१६०॥

ऊपर कही हुई बातो को नारकी जीव, तिर्यंच जीव नही जानते हैं। परिशुद्ध अक को देवता लोग, मनुष्य जान सकते हैं। कोई लिपि न होने पर भी ध्वनि शास्त्र के अवलम्बन से केवल नौ अको से ही लिख सकते हैं कह भी सकते हैं और सुन सकते हैं, ऐसे सरसाक लिपि को अक्षर लिपि रूप मे परिवर्तन कर सकते हैं ॥१६१॥

विवेचन—श्री भूवलय ग्रन्थ मे एक भी अक्षर नही है १ से लेकर ६४ तक अङ्क रूप में रहने वाले १२७० चक्र हैं। उन चक्रो के द्वारा १६००० अक चक्रो को निकाला जाता है।

भगवान ऋषभनाथ ने यशस्वती और दोनो पुत्रियो ब्राह्मी, सुन्दरी को अक्षर तथा अक पद्धति से भूवलय पढाया था। उनकी देशभाषा मे आने वाला काव्य रस, शब्द रीति आदि जो उस समय थी उसको हम आज भी भूवलय द्वारा पढ सकते हैं। ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं ॥१६२॥

विवेचन—यह भूवलय ग्रन्थ आधुनिक शैली मे लिखा गया है अत आज कल के विद्वान इसको दशवीं शताब्दी का मानते हैं अथवा अमोघवर्ष नृपतु ग के तथा इन्द्रनंदी श्रुतावतार के ग्रन्थ के तथा और भी कुछ श्लोक भूवलय में मिलते हैं। अतः यह सर्व भाषामय न होकर यदि एक ही भाषा में होता तो उसी के अनुसार इसका प्रचार हो सकता था। ऐसा कुछ लोग कहते हैं परन्तु अनेक भाषायें कनडी से सम्मिश्रित होकर गणित रूप से उनका प्रादुर्भाव होता। दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदेन्दु ने अपने स्वतन्त्र अनुभव द्वारा यद्यपि इस भूवलय की रचना की है फिर भी यह काव्य परम्परा से भगवान जिनेन्द्र देव के मुख से प्रगट हुए शब्दो में से चुन कर बनाया गया है। इस तरह प्रामाणिक परम्परा से यह भगवान की वाणी रूप काव्य है। चौथे काल में भी यह अंकमयी भाषा थी। इसलिए आचार्य कुमुदेन्दु 'उस काल की भाषा को भी गणित से ले सकते हैं, ऐसा लिखा है।

यशस्वती देवी की छोटी बहिन सुनन्दा के गर्भ से पहले कामदेव बाहुबली का जन्म हुआ। वे काम शास्त्र तथा आयुर्वेद के ज्ञाता थे। किन्तु उन्होंने उन दोनो विषय मे त्याग तथा रस सिद्धि को बतलाया ॥१६२॥

श्री गोम्मटदेव (बाहुबली) कामदेवो में पहले कामदेव (अपने समय में सबमे अधिक सुन्दर) थे। इसके सिवाय वे प्रथम केवली भी थे, अत उनको हमारा नमस्कार हो।

प्रश्न—भगवान ऋषभनाथ को बाहुबली से पहले केवल ज्ञान हुआ था अत बाहुबली को प्रथम केवली कहना उचित नही।

उत्तर—बाहुबली भगवान ऋषभनाथ से पहले मुक्त हुए हैं अत उनको प्रथम केवली कहा गया है।

सुन्दरी ने अपने पिता से भी २५ धनुष अधिक ऊंचे अपने भाई बाहुबली को देखकर भक्ति की ओर जगत मे यही सबसे अधिक विशालकाय परमात्मा हैं, ऐसा अनुभव किया ॥१६४॥

सुन्दरी देवी ने अपने बडे भाई से चक्रबन्ध गणित को जाना और १० के भीतर ९ अ क को गर्भित हुआ समझा ॥१६५॥

उस गणित के मानचित्र (छबि) में अन्तर्भूत सत्मांक है ॥१६६॥

समस्त कामदेवो में प्रथम बाहुबली द्वारा कहा हुआ यह अंक है ॥१६७॥

जन्म मरण रूपी भवभय को हरण करने वाला यह अंक है ॥१६८॥

उन अंकों में प्रतिलोम अंक को स्थापित करना, उसके ऊपर अनुलोम अंक को स्थापित करना ॥१६९॥

उन दोनो को जोड देने पर नौ बार १-१ तथा एक बिन्दी आती है ॥१७०॥

इस रीति से नवकार मत्र एक ही है ॥१७१॥
दिगम्बर मुनियो का धर्मांक १ है ॥१७२॥
इस रीति से मृदु-काव्य रूप यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१७३॥

अनुलोम १२३४५६७८९
प्रतिलोम ९८७६५४३२१
१११११११११०

इस रीति से जो १० अंक आये वह दस धर्म का रूप है इसलिए वह परिपूर्णांक ९ मे गर्भित है। वह कैसे ? समाधान-बिन्दीको छोड़ देने से ९ रह गया। इस प्रकार परिपूर्णांक ० से बना यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१७४॥

शेष ७०० भाषाएं अंको द्वारा लिखे हुए होने के कारण अनक्षरी भाषाएँ हैं। द्रव्य प्रमाणानुगम के ज्ञाता दिगम्बर मुनि उन भाषाओ को जानते हैं। उनके ज्ञान को आगे दिखावेंगे। ऐसा प्रतिपादन करनेवाला यह कर्माटक भूवलय हैं ॥१७५॥

बाहुबली, ब्राह्मी ओर सुन्दरी ने जो अपने पिता भगवान ऋषभनाथ से ६४ अक्षर तथा बिन्दो सहित ९ अंक सीखे थे, उसे अब बतावेंगे ॥१७६॥

उस सबको पहाडे रूप गणित से जाना जा सकता है ॥१७७॥
यह सब गुरु-परम्परा से आया हुआ गणित है ॥१७८॥

पाँच परमेष्ठियो से अर्थात् ५ मे गुणा किया हुआ यह गणित अंक है ॥१७९॥

सबसे पहले तीर्थंकरो ने इसे सिखाया ॥१८०॥
सबसे पहले भगवान ऋषभनाथ ने इस गणित को सिखाया ॥१८१॥
फिर भगवान अजितनाथ ने इसका प्रतिपादन किया ॥१८२॥
इसी प्रकार श्री सम्भवनाथ ने इसे सिद्ध किया ॥१८३॥

तत्पश्चात् देवों द्वारा वन्दनीय श्री अभिनन्दननाथ तीर्थंकर ने इसे बतलाया ॥१८४॥

देव, मनुष्यों द्वारा पूज्य श्री सुमतिनाथ ने इसे कहा ॥१८५॥
तत्पश्चात् श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र ने इसको बतलाया ॥१८६॥

श्री सुपार्श्व नाथ तीर्थंकर धर्म प्रचार करके अन्त में शेष कर्म क्षय करके मोक्ष चले गये। नारकी जीव इनकी वाणी को स्मरण करते हैं ॥१८७॥

चन्द्रप्रभतीर्थंकर की दिव्य ध्वनि सुनकर उन्हे 'चन्द्रशेखर' अथवा 'शिव, गुरु लिंग' इत्यादि नामो से पूजते हैं ॥१८८॥

इसी प्रकार पुष्पदन्त और शीतलनाथ भगवान का उपदेश क्रम समझना चाहिए ॥१८९॥

श्री श्रेयांश तीर्थंकर का भी यही क्रम है ॥१९०॥
श्री वासुपूज्य का क्रम भी यही है ॥१९१

श्री अरहनाथ तीर्थंकर, विमलनाथ, और अनन्तनाथ का भी यही क्रम रहा ॥२९२॥

श्री धर्मनाथ और शान्तिनाथ का क्रम भी इस तरह है ॥१९३॥

श्री कुंथुनाथ, अरनाथ और मल्लिनाथ तीर्थंकर का भी यही क्रम है ॥१९४॥

श्री मुनिसुव्रततीर्थङ्कर का क्रम भी इसी तरह था ॥१९५॥

श्री नमि और नेमिनाथ तीर्थङ्कर का क्रम भी इसी प्रकार समझना चाहिए ॥१९६॥

और पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर तथा श्री वर्द्धमान तीर्थंङ्कर का क्रम भी इसी प्रकार था ॥१९७॥

इस प्रकार चौबीस तीर्थङ्करो ने भूवलय की रचना (अपनी दिव्य-ध्वनि द्वारा) की थी इसलिए यह भूवलय ग्रन्थ की परिपाटी प्रमाण रूप में अनादि काल से चली आई है ॥१९८॥

अब इस पाचवे अध्याय को कुमुदेंदु आचार्य संकेत रूप करते हुए अंक से सम्पूर्ण विषयो को बतलाते हैं। इसी अंक से इस अध्याय के समस्त अंक का भी ज्ञान होता है। वह इस प्रकार है—

बाहुबली ने अपनी तरुण अवस्था मे इस भूवलय काव्य मे गर्भित अन्तर काव्य का परिज्ञान कर लिया था। ६००२१ अथवा १२०६ यह अक ६४ अक्षर का ही भग है, इससे अत्यन्त सुन्दर सरस काव्यागमरूप भूवलय निकल आता है। इस लिए इस अध्याय का नाम "ई" अध्याय लिखा है ॥१९९॥

जगत के अग्र-भाग मे सिद्ध समुदाय है। जोकि तीन लोक रूपी शरीर के मस्तक स्वरूप है। इसी प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ भी मस्तक के समान महत्वशाली है ॥२००॥

जिन मार्ग का अतिशय मानकर स्वीकार करने से नव पद सिद्धि के घन मर्म रूपी पाचवा अध्याय भूवलय नामक काव्य श्रेणी मे ग्यारहवा चक्र है। इसके सब अक्षराक ८०१९ हैं। २०१

पाँचवें "ई" ८०१९॥+अन्तर २२००६=२००२५

अथवा अ–ई ६४, ८२७+ई २०, ०२५= ८४, ८५, २।

जो इस अध्याय में श्रेणी-बद्ध प्राकृत गाथा निकलती है उस गाथा को और उसका अर्थ यहाँ दिया जाता है।

"ऊपर कहे हुए" अनुसार यह भूवलय ग्रन्थ आचार्य परम्परा से चला आया है उन सब मुनियो की संख्या तीन कम नौ करोड कहते हैं। उनके द्वारा कहे हुए इस भूवलय ग्रन्थ को समस्त भव्य जीव अध्ययन करे, सुने और मनन करे। इसका भक्ति तथा त्रिकरण शुद्धि-पूर्वक अध्ययन करने से इस लोक और परलोक के सुख की प्राप्ति होती है अन्त मे मोक्ष प्राप्त होती है।

मध्यम श्रेणी के सस्कृत काव्य का अर्थ –

यह भूवलय काव्य पढने से समस्त कर्म रूपी कलंक नाश होकर श्रेयोमार्ग की प्राप्ति होगी। सदा धर्म का सम्बन्ध तथा अभ्युदय को देने वाला यह काव्य है। एवं हमेशा भव्य जीवो को प्रतिबोध करने वाला यह भूवलय काव्य है।

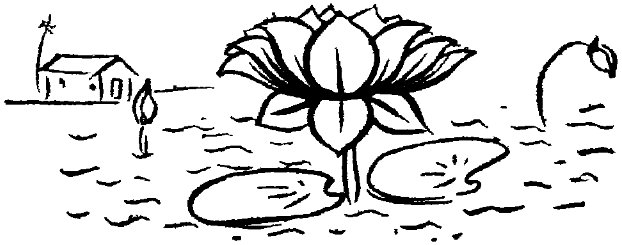

छटा अध्याय

अ॰ रि गण मुन्दणानागत हिन्दण । सागिद कालवेल्लरली ॥ सागु तका॰ णुव सर्वज्ञदेवन । योगव काव्य भूवलय ॥१॥
स॰ र्वज्ञदेवनु सर्वांगदिम् पेळ्द । सर्वस्व भाषेयस र॰ णि ॥ पर्वदन्ददलि हव्बुत होगि लोकाग्र । सर्वार्थसिद्धि बळसि ॥२॥
मु॰ क्तियोळिह सिद्ध जीवर तागुत । व्यक्ताव्यक्तवदागि ॥ स क॰ लवु कर्माटदणुरूप होन्दुत । प्रकटदे ओम्बरोळ् अडगि ॥३॥
ह॰ दिनेन्दु भाषेयु महाभाषेयागलु । बदिय भाषेगळ् एळ्नूर म॰ ह वयदोळडगिसि कर्माट लिपियागि । हुदुगिसिदन्क भूवलय ॥४॥
ग॰ रुड गान्धर्व किन्नररु किम्पुरुषरु । नरक तिर्यंच पु॰ ळिन्द ॥ नररू देवतेगळनक्षर भाषेय । तिरुगिसि गणिसळु बहुदु ॥५॥
ग॰ मकद कलेयोळु तोर्ष वर्धविध्यद । सम् विषमान्कद आग ण॰ य ॥ विमलव समलव क्रम मूरमग्गिय । गमकदि तिळियलु बहुदु ॥६॥
ह॰ कसेरलेन्टेण्दु समगळएरड कूडे । सकळवु विषम एळुव य॰ ॥ हकद वन्धद बन्ध पाहुड भेदव । नकलन्क सूक्षान्क वरिविस ॥७॥
प्रकटिसलध्यात्म योगि ॥८॥ सकलद्वि सम्योग भंग ॥९॥ विकलांक सम्योग भंग ॥१०॥ सकलवु अपुनरुक्तांक ॥११॥
निखिल द्रव्यागमदग ॥१२॥ ओकटि ओम् ओण्णु ओम् अंक ॥१३॥ प्रकटित सर्व भाषांक ॥१४॥ विकलवागिहसर्व बंध ॥१५॥
सकल नोसर्व उत्कृष्ट ॥१६॥ अकलक अनुक्तरुष्ट बंध ॥१७॥ निखिल जघन्य अजघन्य ॥१८॥ सकलवु सादि अनादि ॥१९॥
सकलवु ध्रुव अध्रुवांक ॥२०॥ निखिलवु बंध स्वामित्व ॥२१॥ शकमय बंधद काल ॥२२॥ प्रकट बंधांतर काल ॥२३॥
हक बंध सन्निकर्षांक ॥२४॥ शक भगविचय विभाग ॥२५॥ सकल भागाभाग क्षेत्र ॥२६॥ निखिलद परिमाण स्पर्श ॥२७॥
सकल कालांतर भाव ॥२८॥ सकलांक अल्पबहुत्व ॥२९॥ सकल बंधद नाल्कु गुणित ॥३०॥
व॰ रद प्रकृति स्थिति अनुभाग सरणिय । सरिय प्रदेशद् प॰ रकृति॥ विरचित गुणकार'एन्टेन्दु'बन्दुद। मरळि अदम् 'एन्ट'रिंद ॥३१॥
य॰ शदिन्द गुणिसलु बर्पएळ्नूर्र । वशदोळ्उन्आल्क र॰ कळेये ॥ यशस्वति देविय मगळरिदेळ्नूर । पशु देव नारक भाषे ॥३२॥
ण॰ वदन्दद ई भाषेगळेल्लवु । अवतरिसिदि कर्मवाट ॥ सव का॰ येन्देन्नदे सवियागिसिकोन्डत्रि वरद काव्य भूवलय ॥३३॥
म॰ नुमथनरवत्त नाल्कुकलेय बल्ल । जिन धर्मदनुभवद् श॰ रधि ॥ घन कर्माटकदादियोळ् बहभाषे । विनयत्व वळवडिसिहुदु ॥३४॥
८८×८ = ७०४–४=७०० ।
सुनयदुर्नयवडगिहुदु ॥३५॥ जिन धर्मवदु मानवर ॥३६॥ तनुवनेल्लव होक्इ बहुदु ॥३७॥ मनदोषवनु कोल्लुवुदु ॥३८॥
घन भाषेगळ लेक्कबहुदु ॥३९॥ धनद सम्पदवेल्ल बहुदु ॥४०॥ मनुजर मोक्षकोय्युवुदु ॥४१॥ तर्नियाद भाषेगळिहुदु ॥४२॥
कोनेगे मतगळकूडिपुदु ॥४३॥ जिनमार्गदणुव्रत बहुदु ॥४४॥ घनवादेळ्नूर्हदिनेन्दु ॥४५॥ जिन वर्धमान भाषेगळ ॥४६॥
ननेकोनेपोगिसुव भाव ॥४७॥ जिनर भूवलयदोळि हुदु ॥४८॥ घनकले अरवत्तनाल्कु ॥४९॥
तनगे ताने तन्नोळगे ॥५०॥ जीवि सितुम् बिरुव भूवलय ॥५१॥
भू॰ वलयद सिद्धांतद अंकवम् तोविकोन्डा अक्षरद ॥ पाव क॰ रेल्लर्गे मूरारु मूरर । आ विश्वधर्मवेल्लवनु ॥५२॥
व॰ शगोन्डु हृदताद्वयत (वनेल्लव) अनेकांत । रसदोळु ओम्कारद म॰ कम् ॥ यशवादक्षरवोन्दिगे बेसेदिह । होसदादनादिय ग्रन्थ ॥५३॥

ल✻ व मात्रवावरू भेदवम् तोरदे । शिव विष्णु जिन ब्रह्म भू पा✻ भवभय हरिसेम्ब रत्न मूरन्कदे । नवकैलाश वैकुण्ठ ॥५४॥
य✻ शसत्य लोक वोमूरन् कदग्रद । सु सौभाग्य दध्यात्म वनु ॥ प✻ सरिप समवसरण दिद होरबन्दु । दिशेगळहत्तनु व्यापिसिदव ॥५५॥
म✻ हावीरवाणि येम्बुदे तत्वमसियागि । महिमेय मंगलवदु प✻ रा ॥ भरुहत्ववअणुविनोळ् तोरुव । महिमेयवहिसिहविश्वप्राभृतव॥५६॥
मह सिद्धि काव्य वेन्देनिप ॥५७॥ सहनेयम् दयेयोडवेरसि ॥५८॥ महिमेय समतावादर्दाल ॥५९॥ सिहि समन्वयदोडवेरसि ॥६०॥
कहियन् कवम् कळेविरिसि ॥६१॥ महिय भूवलयदोळ् वहिसि ॥६२॥ सहनेय विद्येयोळ् कूडि ॥६३॥ षहदन्कवबनेल्ल गुणिसि ॥६४॥
महिमेय भाग सम्प्रहिसि ॥६५॥ इह परवेरडरोळ् कट्टि ॥६६॥ रहमदन्कव नेलेगोळिसि ॥६७॥ वहिसिद धर्मदोळ् इरिसि ॥६८॥
छह खण्डदागम विरिसि ॥६९॥ णहदक अपुनरक्त लिपि ॥७०॥ टहवद तिरुगिसि बिडिसि ॥७१॥ गहनद विषयव वहिसि ॥७२॥
इहदोळु मोक्षव वहिसि ॥७३॥ अहमोन्दर पदविय सहिसि ॥७४॥ महावीर सिद्ध भूवलय ॥७५॥ महिमेय त्रयरत्न वलय ॥७६॥
दो✻ षवु हदिनेन्दु राशियागिर्दाग । ईशरोळ् भेद तोरुवुदु ॥ राशि र✻ त्नत्रयदाशेय जनरिगे । दोषवळिद वुद्धि बहुवु ॥७७॥
स✻ हवास सम्सार वागिर्प काल । महिय कळ्तले तोरुवुदु ॥ मह णा✻ णावरणीय दोषवदळियलु । बहु सुखविह मोक्ष बहुवु ॥७८॥
वि✻ ष हरवागलु चैतन्यवप्पन्ते । रससिद्धि अमृतद श✻ क्ति ॥ यशवागे एकान्त हटवदुकेट्टोडे । वशवप्पनन्तु शुद्धात्म ॥७९॥
र✻ त्नत्रयदे आदियद्वैत । द्वितीयवु द्वैत वेम्बन् क✻ तृतीयदोळने कांतवेने द्वैताद्वैतव। हितदि साधिसिद जैनांक ॥८०॥
हि✻ रियत्वविवु मूरु सर मणिमालेय। अरहत हारदरत्न मु✻ सरपणियन्ते मूरर मूर ओम्बत्त । परिपूर्ण मूराह मूरु ॥८१॥
य✻ शदन्कवदरोळगोम्दम् कूडलु । वशदा मोन्नेगे ब्राम्ह इ✻ वेसरिन लिपियंक देवनागरियेम्ब । यशवदे ऋग्वेददंक ॥८२॥
म✻ नुजराडुव ऋवकु दिविजराडुव ऋवकु । दनुजराडुव ऋवकु द✻ नद॥ विनयवु गोब्राह्मणेभ्यह शुभमस्तु। जिनधर्मसमसिद्धिरस्तु ॥८३॥
घनद प्राकृत वृद्धिरस्तु ॥८४॥ जिनवर्धमानांक नवम ॥८५॥ एनुवक लिपिय अक्षाम्श ॥८६॥ एनुव समस्त शून्यांक ॥८७॥
वनुज मनुजरय्क्यदंक ॥८८॥ सनुमत धर्मदय्क्यांक ॥८९॥ अनुदिन बाळ्विके यन्त्र ॥९०॥ मनुजरेल्लर धर्मवंक ॥९१॥
कोनेयादि परिपूर्णदक ॥९२॥ मनु मुनिगळ ध्यानदक ॥९३॥ कर्नासिनोळ् शुभदादियंक ॥९४॥ मनुमथराद्यनलवंक ॥९५॥
जिनरूप साधनेयनक ॥९६॥ इननंते ज्योतियाद्यनक ॥९७॥ घन कर्माटक रिद्धियक ॥९८॥
तनुविन परिशुद्धदनकम् ॥९९॥ कोनेयादि ब्राह्मि भूवलय ॥१००॥
सु✻ विशाल गणनेय पूर्वानुपूर्विय । सविषयवागलद्वैत म✻ सवियादियदु पश्चादानुपूर्वियदागे । नवदनते कोनेगे अद्वयत ॥१०१॥
द✻ रुशनज्ञान चारित्रव् मूर रोळ् । परमात्मरूपडगिरला शा✻ सिरि मूर तदुभयवेने यत्रतत्रानु । वर पूर्वेय पपुदअद्वयत ॥१०२॥
ध✻ र्ममवविनुतु समन्वयवागलु । निर्मलवअद्वयत्अ शा स✻ त्र ॥ शर्मरिगा मूरु आनुपूर्विगेवंदु । धर्मद ऐक्यवनु साधिपुवु ॥१०३॥
म✻ नर्वार्थियिद अनेकांत जयनर । जिन निरूपितवह शास् त✻ र ॥ दनुभय द्वयत कथन्चिदद्वयतद । घर्नसिद्धियात्म भूवलय ॥१०४॥
सनुमत दिव्य सिद्धांत ॥१०५॥ जिन सिद्धरात्म भूवलय ॥१०६॥ कोनेयादियनक भूवलय ॥१०७॥ घनधर्मवनक भूवलय ॥१०८॥
अनरिगनन्त भूवलय ॥१०९॥ नेनेवाग सिद्ध भूवलय ॥११०॥ अणुमहान् काव्य भूवलय ॥१११॥ जिनरवाक्यार्थ भूवलय ॥११२॥

मन शुद्धियात्म भूवलय ॥११३॥ तनुविन अतनु भूवलय ॥११४॥ तनगात्म शुद्ध भूवलय ॥११५॥ कनकद कमल भूवलय ॥११६॥
अ* दिगनादिय कालवे निन्नेदु ई दिन नीनु बाळुवुदु ॥ श्रादियवश र* त्नत्रयगळ साधिप । नादि अनन्तवे नाळे ॥११७॥
ग* मनिसलेल्लर्गे सम्यक्त्व रत्नद । क्रमदन्कवधुनाम् हु* ट्टि॥ समतेय खड्गदिम् क्रोधमानवगेल्व चिमलांकनाळेय दिवस ॥११८॥
म* नव दोषके शास्त्र तनुविन दोषके । घन हृदिमूरु कोटियवश् अ* जिनर वयद्द्यागम वचन दोषके शब्द । वेनुवन्क मूरु भूवलय ॥११९॥
मि* दु मधुरतेयिद ह्रुदयवाळुवदिव्य । हृदनाद मुदवीश्री व* यण ॥ ह्रुदयांक पद्मद दलवेरि नाळेय । हृदनकाणिसुवअद्वैत ॥१२०॥
दि* व्रुविदु वर्तमान निनेयतीतवु । घननाळे अनागतवा भू* तणवु द्वैताद्वैत जयनव कूडिप । मनुज दिविज धर्मदन्क ॥१२१॥
जिन वर्धमान धर्मांक ॥१२२॥ मनुजरेल्रिगोम्दे धर्म ॥१२३॥ तनु विनोळात्म सद्धर्म ॥१२४॥ घननाळे इन्दु निनेगळ ॥१२५॥
कोनेयादियन्क मूराउ ॥१२६॥ जिन धर्मदंदया सिद्धांत ॥१२७॥ मनुजरिग् श्रोम्दे सद्धर्म ॥१२८॥ मनुजर ज्ञानसूत्रांक ॥१२९॥
ज्ञाणसदे बाळ्व(सूत्रांक)सम्यक्त्व ॥१३० ।अनुजरागिसुव सन्मन्तर ॥१३१॥ घन विराड्रूप सूत्रांक ॥१३२॥ जिन विष्णु शिव दिव्य ब्रह्म ॥१३३॥
तनयर सलहुव मन्त्र ॥१३४॥ घनबंध पुण्य सद्बंध ॥१३५॥ विनय सद्धर्मद् अहिम्से ॥१३६॥ घनसत्य भद्र भूवलय ॥१३७॥
प* रिशुद्ध व्रतगळम् अणु महान् एन्नुव । हनुमन्त जिन व* ररन्क॥ मुनिसुव्रतर कालदे बंद रामांक । जिन धर्म वर्धमानांक ॥१३८॥
रि* द्धियोळ् श्री वालि मुनिगल गिरियंक । शुद्ध सम्यक्त्व ल* क्षणद॥ बुद्धिरिद्धियोळगण यशद समन्वय । शुद्ध रामायणदंक ॥१३९॥
क* विगे वाल्मीकिय रसकूट उणिसुव । सविये महाव्रतदक । य* वेय मुच्चुव कालदलि बहदोषव । नवशुद्धिगोळिप दिव्यांक ॥१४०॥
हि* रिय दोषगळिगे अणु व्रतगळनित्तु । हिरिय महाव्रत सि द्धि ॥ धरेगे मंगलदप्राभृतद दर्शनवित्तु परिशुद्धवागिसिवक ॥१४१॥
य* शस्वति देविय बसिरिन्द वन्दन्क । वशद ब्रह्माण्ड द* अक्षरद॥ रसवनन्गय्य मूलदलि सुरिसिदंक ॥ विषहर नीलकंठांक ॥१४२।
मृ* नमथ दोर्बलियादिय तंगिगे । घनद् नवमांक दर्शन धा* अनुभव वन्नित्तु जिनरादि श्रोम्बत्त । तनुजर्गे शून्यदोळ् तोरि ॥१४३॥

जिन धर्मद् श्रोमबत्तम् सारि ॥१४४॥ जिन स्मार्त विष्णुगळन्क ॥१४५॥ तनुविनोळात्मन तोरि ॥१४६॥
कोनेयलि 'सोन्ने' यागिसुत ॥१४७॥ तनुवोष श्रोम्दे एनुदेनुत ॥१४८॥ सुनय दुर्नयगळ तोरि ॥१४९॥
कोनेगे दुर्नयगळ केडिसि ॥१५०॥ सुनयद अतिशयवेरसि ॥१५१॥ कोनेगे अनेकान्तवेरसि ॥१५२॥
चिनुमयत्वव तनगिरिसि ॥१५३॥ दनुजर हिम्सेयम् बिडिसि ॥१५४॥ जिनमार्ग सुन्दरवेनिसि ॥१५५॥
विनय धर्मांक भूवलय ॥१५६॥

ते* रस गुणस्तथानवन्त के बरुवाग । वारि सम्यक्त्ववेन्दे न* ब॥ सार श्रीजिन वाणियनुभवबन्दाग । नूरुसागरकर्म केडुगु ॥१५७॥
ण* वपवदादिय अरहंत श्रोम्दुम् । अवेरडरलि सिद्धम् त* नवदादि मूरन्क आचार्य नाल्कर । विवर उपाध्याय ऐदु ॥१५८॥
दु* रितर दहनवे साधु समाधिय । सरुव साधुत्व आररलि ॥ बरे ना* ळे सद्धर्म एळन्क आगम परिशुद्ध जिनबिम्ब एन्टु ॥१५९॥
क* विद गोपुर द्वार शिखर मानस्तम्भ । दवनिय बिम्बालय म* नवमवेन्देनुवरु आगम परिभाषे । विवरवे नव पदम्क ॥१६०॥
हि* रियाशे यिदरलि बयकेयद्वैतवु । वरमुन्द के द्वैत धे* नु॥ सरियवरिगे मुक्तियुभयमुक्तिय लाभ गुरुपदसिद्धि ईवरिगे ॥१६१॥

या❀ वाग दोरेवुदो आग अनेकांत । ताविन नयमार्ग दोरेये ॥ नावा य❀ श होन्दे जैनत्व लाभद । सावकाशवै हृविनाल्कु ॥१६२॥
आविध योग राहित्य ॥१६३॥ श्री विश्वदग्र वैकुन्ठ ॥१६४॥ कावदे कैलास मुक्ति ॥१६५॥ श्री वीरवाणिय विद्ये ॥१६६॥
नावु बेकेन्नुव सिद्धि ॥१६७॥ कावन्क सत्यद लोक ॥१६८॥ पावन परिशुद्ध लोक ॥१६९॥ सावु हुट्टुगळिल्लविह श्री ॥१७०॥
भाव अभाव राहित्य ॥१७१॥ नीवुगळाशिप मुक्ति ॥१७२॥ ई विश्व काव्य भूवलय ॥१७३॥
ह❀ रि हर जिन धर्मवरिवु मूरार्मूरु । सरसिजदलदक्षर मृ❀ ओम्॥ बरुवन्कगणनेयमूरुकालदोळ् कूडे। परिदुर्बदिहकाव्यसिद्धि ॥१७४॥
व❀ शवागे ओम्बत्तु कामदम् जनरिगे । हसिवु बायारिके निद्र् अ❀ देसेगेट्टु हृदिनेंन्दु इत्यादि भवरोग । हेसरि ल्लवन्ते होगुवुवु ॥१७५॥
न❀ वदन्क सिद्धियकरण सूत्राक्षर । दवयव सर्ववुव स्❀ य ॥ सविय भाषेगळेन्टोम्देळर वस्य । अवुगळे मूरारुमूरु ॥१७६॥
ति❀ रेयु कालगळु ई बरुव मूरुगळलि । हरिव भव्यर भवदभ य❀ सरुवार्थसिद्धि सम्पदद एरडु भव। परिशुद्ध जीव स्वभाव ॥१७७॥
परदुगेय्यलु बद लाभ ॥१७८॥ अरहन्त रूपिन लाभ ॥१७९॥ करुणेय मारिद लाभ ॥१८०॥ गुरु हम्सनाथ सन्मार्ग ॥१८१॥
अरहन्त रर्डरिद मार्ग ॥१८२॥ चिरकालविरुवसौभाग्य॥१८३॥ सरुवराराधित धर्म ॥१८४॥ गुरुपरम्परेयादि लाभ ॥१८५॥
धरसेन गुरुगळ अंग ॥१८६॥ हरुष वर्धनरादि भंग ॥१८७॥ मरणकालदेसिद्धकवच ॥१८८॥ हरिहर सिद्ध सिद्धांत ॥१८९॥
अरहन्तराशा भूवलय ॥१९०॥
त❀ त्वार्थ सूत्र महार्थ प्रसन्गद । सत्यार्थ दनुभव मू❀ रु ॥ रत्न प्रकाश वर्धन दिव्य ज्योतिय । तत्व एळ्र समन्वयद ॥१९१॥
च्❀ रितेय सान्गत्य रागदोळडगिसि । परितन्द विषयगळेल् ल्❀ अरहत मुख पद्मवेने सर्व अन्गदिम् । होरटु बंदिह दिव्यध्वनिय ॥१९२॥
च❀ दुरिन 'अरी' भूवलय सिद्धात दोळ् । हुदुगिसि पेळ्ददिव्य्आ ग्❀ र ॥ पद पददक्षरदंक अंकदरेखे । अदर क्षेत्रगळ स्पर्शनव ॥१९३॥
त्❀ निकाल कालद अन्तर भावद । कोनेगल्पबहुत्व विन्तह् र❀ जिन धर्मवदु मानव जीवराशिय । घन धर्मवागिसिदंक ॥१९४॥
मनुजरोळ्यक्य वप्पन्द ॥१९५॥ दिन दिन प्रेम वृध्यंग ॥१९६॥ घन दुष्कर्म विध्वम्स ॥१९७॥ जिन शास्त्र वेल्लर्गेम्बंग ॥१९८॥
विनयवेल्लरिगे समांग ॥१९९॥ जनपद नाडिन संग ॥२००॥ जनरिगय्दने काल (भंग) दंग ॥२०१॥ कोनेगाररोळु इल्लवंग ॥२०२॥
एनुवंगधर ज्ञानरंग ॥२०३॥ जनरिगे [बह अरी] वशवाद धर्म ॥२०४॥
थ्❀ ण थण थण वेम्ब द्वैत अद्वैतद । कोनेगे जैनर म न❀ त्र सेरि॥ जिनरेन्दु नाल्केळुएन्दुकाव्याक्षर । घनवाह्नि सन्दरियंक ॥२०५॥
आ❀ गमविदर'अरी'भागदेबंदन्क। रागविरागसाम्राज्य ॥ आगु थ❀ एन्टेन्दु ओम्बत्तु ओम्दोम्दु । तागुवक्षरद भूवलय ॥२०६॥

ई ८७४८+ अन्तर ११९८८=२०,७३६=१८=९ अथवा अ–ई ८४८५२+२०,७३६=१०,५५,८८

पहले श्लोक के श्रेणीवद्ध काव्य—

ईस मुहग्गहवयण भूवलय दोषवि रहियं शुद्धं । आगमामिदि परि कहियं तेणदु कहिया हवन्ति तच्चत्था ॥६॥

❀ कानडी काव्य के मध्यमे से निकलनेवाले सस्कृत श्लोक–

कारकं पुण्य प्रकाशक पाप प्रणाशकम् इदं शास्त्र हुअव भूवलय सिद्धांतनामध्येयं अस्य मूल ग्रन्थ........... ॥

छठा अध्याय

विद्यमान वर्तमान काल, आने-वाला अनागत काल, और बीता हुआ अतीत काल, इन तीनो कालो के प्रत्येक समय मे अनत घटनाये घटित होती हैं तथा होगी । उस-उस घटना के समीप जाकर प्रत्यक्ष रूप मे दिखा देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है, तथा त्रिकालवर्ती अरहत देव के योग को भी दिखाने वाला यह भूवलय है ।।१।।

प्रत्येक शब्द मुख आदि से उत्पन्न होकर अपने कानमे पहुचने तक बेलके समान बढते बढते लोकाग्र (लोक शिखर) को स्पर्श कर (छू कर) सर्वार्थ-सिद्धि के चारो ओर होकर पुनः समस्त लोक में व्याप्त होते हुए कान को स्पर्श कर स्थिर हो जाता है । अर्थात् किसी व्यक्ति के मुख से निकला हुआ शब्द सपूर्ण लोकमें घूमकर कान में पहुंचता है । शब्द वर्गणाओमें इतनी तीव्र गमन करने की शक्ति है । तो श्री सर्वज्ञ भगवान के सर्वाङ्ग से निकली हुई वाणी के तीन लोक में व्याप्त होने में क्या आश्चर्य है ? अर्थात् कुछ आश्चर्य नहीं ।।२।।

विवेचन—अनादि काल से जितने भी शब्द निकले हैं वे सब कालाणु के साथ आकाश प्रदेश में हमेशा के लिए स्थित हैं । आगे होने वाले सभी शब्द राशि उन ही कालाणु के प्रदेश मे घुसकर मिल जाती है । इस रीति से समस्त शब्द-राशि एक क्षेत्रावगाह रूप से स्थित हो जाती है । इसमे से हमको जिस वस्तु का नाम-निर्देश शब्द चाहिये उस को महर्षि गण अपनी योग दृष्टि से जानकर सूत्र रूप में रचना कर लेते हैं । उसको ज्ञापक सूत्र अथवा प्रज्ञापक सूत्र कहते हैं । उसके विस्तार रूप व्याख्या को सूत्रार्थ पौरुषी व्याख्यान कहते हैं। इस व्याख्यान को बुद्धि ऋद्धि आदिमें जो प्रवीण होते हैं, वे ही इसका अर्थ कर सकते हैं । हमारे समान छद्मस्थ ज्ञानियो से नही हो सकता ।

दृष्टात के लिए—भूवलयमें आया हुआ षट्खड आगम और कषाय पाहुड आदि हैं । ग्रन्थ का विवेचन करते हुए 'कषाय' शब्द मे रहने वाले तीन अक्षरों को "पेज्ज" शब्द के दो अक्षरो में सग्रह करके सूत्र-बद्ध कर दिया है। सूत्रके इन ही दो अक्षरों का वीरसेन, जिनसेन, आचार्यों ने साठ हजार श्लोकों में विस्तार कर दिया है । उन ही ६०००० साठ हजार श्लोकों को गणित पद्धति से मिला कर श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय में ७१८ अठारह भाषाओ में निबद्ध कर दिया है ।

कषायपाहुड तथा जय धवल को गणित से निकाला है । और इसके प्रथमानुयोग कथन को गणित पद्धति से निकाल कर व्यास ऋषि ने जयाख्यान काव्य लिखा है, उसने २२ वे तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ की दिव्य ध्वनि से प्रगट द्वादशाग शास्त्र का संग्रह करके हरिवंशी और कुरुवशी राजाओ का कथन जिनवश और मुनिवंश के कथन के साथ मिलाकर २५००० हजार श्लोकों के साथ जयाख्यान ग्रन्थ की रचना की थी ।

व्यास से लेकर आज तक के विद्वानों ने अपने बुद्धि कौशल से घटा बढ़ा कर रद्दोबदल करते हुए उस महाभारत को सवा लाख श्लोकों में विस्तृत कर दिया । इसलिए द्वादशाग पद्धति के साथ मे उसका मेल न खाने से अथवा नवमाक गणित पद्धति मे न आने से असंगत होने के कारण जैनों ने उसे नहीं माना ।

यहां पर यह शंका होती है कि व्यास ऋषि को जिस प्रकार इस ग्रन्थ में मान्य किया है उसी प्रकार और जैन ग्रन्थों मे इस का उल्लेख क्यों नहीं मिलता है ?

इसका समाधान यह है कि यहां पर व्यास शब्द से तीन कम नव करोड़ मुनियो को लिया गया है । उन्ही में से किसी एक महर्षि के द्वारा इसका निर्माण हुआ है ।

न्यूनकोटिनवाचार्यान् ज्ञानदृक्चरणांचितान् ।
ज्ञानदृक्सुखवीर्यार्थिमानमानम्यार्यवंदितान् ।।

अर्थात्—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के धारक तीन कम नव करोड मुनि महाराज लोग हैं जो कि अनन्त ज्ञान अनन्तदर्शन अनन्त सुख और अनन्त वीर्य रूप अनन्त चतुष्टयो के लाभ के लिए आर्य-लोगों के द्वारा वन्दना किये जाते हैं, उन महर्षियों को मैं नमस्कार करता हूं ।

इस श्लोक के प्रारम्भ में जो तकार अक्षर आया हुआ है वह भगवद्गीता जयाख्यान और ऋग्वेद इन तीनो से सम्बन्ध रखने वाला है। क्योकि ॐ तत्सवितुर्वरेण्य इत्यादि जो गायत्री मन्त्र है उसके एक एक अक्षर का सम्बन्ध यहाँ चौवन-चौवन श्लोको तक चल कर जहा गायत्री मन्त्र पूर्ण होता है उसमें ऋग्वेद जयाख्यान गीता और भगवद्गीता ये तीनों आ जाते हैं। उन सब का समाहार रूप संग्रह इस भूवलय की गणित पद्धति के अनुसार एक तकार में आ जाता है। त् अक्षर नित्य सदा से चला आया है ॥२॥

जब भगवान् घाति कर्मो का नाश करके केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं तो अपनी वाणी द्वारा विश्व भर को प्रतिबोधित करते हैं इसके बाद अघाति कर्मों का नाश करने के समय में उसके पूर्व मे जब केवली समुद्घात करते हैं तो अपने आत्म-प्रदेशो द्वारा समस्त लोक का स्पर्श करके फिर वापिस हो शरीरमें आ जाते हैं इसका तात्पर्य यह है कि भगवान अपनी वाणी द्वारा पूर्व मे विश्व को व्यक्त करते हुए अन्त मे सम्पूर्ण कर्माटक के अणु रूप मे होते हुये अव्यक्त रूपमे आ जाते हैं ॥३॥

जिस प्रकार केवली समुद्घात के समय केवली के आत्म-प्रदेश मोक्ष में रहने वाले सिद्ध जीवो को स्पर्श कर लेने पर (लोक पूर्ण समुद्घात के अनन्तर) पुन. अपने मूल शरीर मे आ जाते हैं। इसी प्रकार कर्णाटक भाषा १८ महाभाषाओं रूप होकर ७०० क्षुल्लक भाषाओ को अपने अन्तर्गत करके पुन अपनी कर्णाटक लिपिबद्ध रूप बनाने वाला यह 'भूवलय' है ॥४॥

सात सौ क्षुल्लक भाषाओ को तथा १८ महाभापाओ को उपर्युक्त गुणाकार क्रम से ६४ अक्षरो के साथ गुणा करने पर सुपर्ण कुमार, (गरुड), गधर्व, किन्नर, किम्पुरुष, नरक, तिर्यञ्च, भील (पुलिन्द), मनुष्य और देवो की भाषा आ जाती है ॥५॥

जिस प्रकार नाट्यशास्त्र मे गमक कला द्वारा विविध नृत्य क्रिया प्रगट होती है उसी प्रकार उपर्युक्त ३ पहाड़े के अनुसार गुणा करते समयसम तथा विषम अक निकलते जाते हैं। उन लब्धांक तथा भंग अंकों से विमल और समस्त पदार्थ प्रगट हो जाते हैं ॥६॥

जिस प्रकार ह् (६०) को क् (२८) का योग करने पर ८८ होता है फिर ८ और ८ को योग कर (जोड) देने पर १६ होते हैं, उस १६ के अंक १ तथा ६ को परस्पर जोड़ने से विषम अक ७ होता है। यह ह् क् बन्ध बंध-पाहुड़ से प्रगट हुआ है जहा पर सूक्ष्म अतिसूक्ष्म विवेचन है ॥७॥

जो अध्यात्म योगी हैं वे ही इस अक-प्रक्रिया को बतला सकते हैं ॥८॥

सक्षेप में हम उस प्रक्रिया का नाम बतला देंगे। बन्ध-पाहुड़ में विषम योग भग मे प्रारम्भ होता है ॥९॥

विषम योगभग मे ही सम विषम अंक बन जाते हैं ॥१०॥

उन अको से जो शब्द बनते हैं वे सब अपुनरुक्त होते हैं ॥११॥

इस प्रक्रिया से समस्त द्रव्य आगम (द्वादश अंग) प्रगट हो जाता है।.१२॥

वह द्रव्य आगम एक-एक राशि रूप हो जाता है। तब तेलगू भाषा में 'वकटि' कनडी भाषा मे '**ओंदु**' तामिल भाषा मे '**ओंनु**' तथा इसी प्रकार अन्य भाषाओ में 'ओम्' निकल कर आता है ॥१३॥

उन शब्द राशियो मे सर्व भाषाओ के अक प्रगट हो जाते हैं। अब ८८ बन्ध का नाम कहेगे ॥१४॥

सर्वबन्ध, नो सर्वबन्ध, उत्कृष्ट बध, अनुत्कृष्ट बध, जघन्य बंध, अजघन्य बन्ध, सादि बन्ध, अनादि बन्ध, ध्रुव बन्ध, अध्रुवबन्ध, निखिलबन्ध, बन्ध स्वामित्व, बन्ध काल, बन्धान्तर काल, ह् क् बन्ध सन्निकर्ष, मंगलिक्य, भागाभाग, क्षेत्रबन्ध, परिमाण बध, स्पर्शबन्ध, कालान्तर बध, भाव बन्ध, अल्प बहुत्व बन्ध, इस तरह २२ बन्ध हुए ॥१५-२९॥

इन २२ ❀बन्धो को प्रकृति, स्थिति अनुभाग और प्रदेश बंध से गुणा करने पर २२×४=८८ अठासी भेद हो जाते हैं ॥३०॥

❀ १ प्रकृति बंध, २ स्थिति बध, ३ अनुभाग बध और ४ प्रदेश बंध बध के दो चार भेद हैं। इनमे भी प्रत्येक के १ उत्कृष्ट २ अनुत्कृष्ट ३ जघन्य, और ४ अजघन्य, इस तरह ज्ञानावरणादि कर्मों की प्रकृति (स्वभाव) ज्ञान को ढकना आदि है। कर्मों के इन स्वभावो का आत्मा के सम्बन्ध को पाकर प्रगट होना प्रकृति है। और आत्मा के साथ कर्मो के रहने की काल-मर्यादा को स्थिति बंध कहते हैं। कर्मो मे फल देने की शक्ति की हीनता वा अधिकता को अनुभाग

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बध का प्रकृतिके द्वारा रचा हुआ ऊपर आया जो गुणाकार आठ-आठ ८, ८ है पुन: उसे आठ से अथवा आठ कर्मों से गुणाकार करे तो सात सौ चार (८८×८=७०४) होते हैं ॥३१॥

उसमें से चार कम कर दिया जाय (७०४—४=७००) तो ७००रह जाते हैं। इन क्षुल्लक भाषाओ का प्रमाण यशस्वती की पुत्री ब्राह्मी देवी ने पशु देव, नारकियो की भाषाओ को जो वृषभनाथ भगवान से सीखा है वे भाषाए निकल आती हैं। ये भाषाएँ नव अंक रूप कर्म सिद्धात के अवतार रूप होने के कारण कर्नाटक भाषा रूप होकर परिणत हुई हैं। ऐसा कहते हुए रसायन के समान अपने भीतर समावेश कर लेने यह वालाभूवलय काव्य है ॥३२-३३॥

बाहुवली ने भगवान ऋषभन से चौंसठ कलाओ को समझ लिया था। कर्नाटक देश के आदि मे आने वाली भाषा ने सम्पूर्ण विनयत्व को अपने भीतर गर्भित कर लिया है ॥३४॥

कर्नाटक भाषा में कर्म की कथा और कर्म मे मुक्त होने की कथा का वर्णन है अत इसमें अनेक नय गर्भित है। उन सब को यदि सक्षेप मे कहा जावे तो एक सुनय और दूसरा दुर्नय है। जगत में अनन्त नय होने के कारण अथवा ३६३ मत होने के कारण प्रत्येक मत और नय अपने आपको श्रेष्ठ तथा शेष सबको कनिष्ठ कहती है, अत वह दुर्नय है, क्योकि जिस अश को वह कहती है पदार्थ उतना ही नही है, और अश भी पदार्थ के हे उन अवशिष्ट अशो की उपेक्षा करने के कारण वह दुर्नय सिद्ध होती है। इस कारण इस दुर्नय को एकान्त पक्ष कहते हैं। सुनय इससे विपरीत है वह विविध अपेक्षाओ से पदार्थ के समस्त अशो का समावेश तथा समन्वय करती है। इसलिए उसको सुनय, सम्यग्नय, प्रमाणाधीन नय, आदि अनेक नामो से पुकारते हैं। इस तरह सुनय तथा दुर्नय है। समस्त दुर्नयो को और समस्त सुनयों को बतलाकर सबका ठीक समन्वय करने वाली कर्नाटक भाषा है। समस्त ससारी जीवो को ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों ने अपने आधीन कर लिया है उन सब अनादिअनन्त जीवों का कथन करने वाली यह कर्नाटक भाषा है, इसलिए इसमें सुनय और दुर्नय अन्तर्भूत है ॥३५॥

जब इस भूवलय ग्रन्थ का स्वाध्याय श्रद्धा-पूर्वक किया जाता है तब दुर्नय निकलकर कल्याणकारी केवल सुनय मात्र शेष रह जाती है ॥३६॥

जब यह मानव सुनय और दुर्नय के स्वरूप को समझ लेता है तो जैन धर्म मे रुचि प्राप्त करता है यानी उसके अन्तरङ्ग मे जैन धर्म प्रविष्ट हो जाता है ॥३७॥

इस मानव का मन स्पर्शनादि पाचो इन्द्रियो में प्रवृत्त होता है उसके मनमे जो चचलता उत्पन्न होती है, उसको यह भूवलय ग्रन्थ निर्मूल करने वाला है ॥३८॥

जब उपर्युक्त दोष दूर होकर मन परिशुद्ध हो जाता है तव इस भूवलय की गणित पद्धति के द्वारा समस्त भाषाओं में तत्व को जानने की शक्ति उसे सहज प्राप्त हो जाती है ॥३९॥

जब गणित शास्त्र का सम्पूर्ण रहस्य प्राप्त हो जाता है तब फिर तीन लोक का सम्पूर्ण ऐश्वर्य हस्तगत होने मे क्या देर लगती है ॥४०॥

इस प्रकार यह गणित शास्त्र इस जीव को मोक्ष देने वाला है ॥४१॥

इस भूवलय शास्त्र मे विश्व की समस्त भाषाओ का समावेश है। यानी इसमे भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषाऐ बन जाती हैं ॥४२॥

इस भूतल पर नाना प्रकार के परस्पर विरुद्ध जो मत प्रचलित हैं उन सबको यह भूवलय एकता के सूत्र मे बाध कर सार्थक तथा सफल बनाने वाला है ॥४३॥

इस भूवलय ग्रन्थ के अध्येता को कम से कम जिन-मत-सम्मत अणुव्रत धारण करने की योग्यता तो अवश्य प्राप्त हो जाती है ॥४४॥

बंध कहते हैं तथा बधने वाले कर्मो की परमाणु सख्या को प्रदेश बध कहते हैं। उत्कृष्ट आदिक भेदो के भी १ सादि (जो छूटकर पुन बधा हो) २ अनादि बध (अनादि काल से जिसके बध का अभाव न हुआ हो) ३ ध्रुवबध अर्थात् जिसका निरन्तर बध हुआ करे और ४ अध्रुवबंध अर्थात् जो अत सहित बन्ध हो, इस प्रकार चार भेद हैं। इन बन्धो को नाना जीवो की तथा एक जीव की अपेक्षा से गुणस्थान और मार्गणा स्थानो मे यथासभव घटित कर लेना चाहिए।

जब वह अणुव्रतो पर रुचि प्राप्त कर लेता है तब फिर उसको इस बात का भी पूर्ण विश्वास हो जाता है कि भगवान महावीर की वाणी मे सात सौ अठारह भाषा होती हैं जैसा कि इस भूवलय ग्रन्थ मे है ।४५-४६।

जब यह विश्वास होता है कि भगवान महावीर की वाणी सात सौ अठारह भाषाओ में सम्पूर्ण तत्व का प्रकाश करने वाली है तो उस जीव के चित्त मे एक प्रकार का उल्लास होता है एव उस उल्लास को पैदा कर देने की शक्ति जिन भगवान के इस भूवलय ग्रन्थ मे है ।४७-४८।

भगवान जिनदेव की वाणी जो ६४ अक्षरो के गुणाकार-मय है वह निरर्थक नही है ।४९।

जब इस प्रकार की प्रतीति हो जाती है तब वह जीव उन चौंसठ अक्षरो को गुणाकार रूप से अपने अनुभव मे लाता है एव वह सहज मे द्वादशाङ्ग का वेत्ता बन जाता है ।५०।

उस महापुरुष के अनुभव मे जो कुछ आता है उसी को अभिव्यक्त करने वाला भूवलय है ।५१।

विश्व भर मे बिखरे हुए जो भिन्न-भिन्न तीन सौ तिरेसठ मत है उन सब को चौसठ अक्षरो के द्वारा नौ अङ्को मे बाधकर एकीकरण कर बतलाने वाला यह भूवलय है ।५२।

द्वैत यानी दो और अद्वैत यानी एक इन दोनो को मिलाने से तीन बनता है जोकि रत्नत्रय स्वरूप होते हुए अनेकान्त रूप है एव ॐकार मय है जोकि अनादि से चला आया हुआ है उसी ॐकार के अङ्कको चौसठ अक्षरो मे अभिव्यक्त करते हुए कुमुदेन्दु आचार्य ने इस भूवलय ग्रन्थ की रचना की है इस लिए यह कथचित् सादि तो कथचित् अनादि रूप भी है ।५३।

इस जगत मे शिव, विष्णु, जिन, ब्रह्मा आदि महान देव है जोकि सभी कैलाश, बैकुण्ठ सत्यलोक आदि मे रहते है ऐसा कहकर अपने अपने अपने मान्य देव की श्रेष्ठता प्रगट करते हैं और पक्षपात करके परस्पर विरोध बढाते है । परन्तु भूवलय के कर्ता श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने उस विरोध को स्थान न देते हुए समस्त जीवों को अध्यात्म-मार्ग ही कल्याण कारी बताया है । तदनुसार समवशरण से मिलने वाले सिद्धान्त को जगत मे दशो दिशाओ मे फैलाकर पारस्परिक विरोध मिटाने का भूवलय द्वारा प्रयत्न किया है ।५४-५५।

जितने प्राभृत हैं वे सब द्वादशाग से ही निकले हैं प्राभृत का अर्थ अनादि काल के सम्पूर्ण वेद को अनुरूप में बतला देना है । इसलिए इसका नाम प्राभृत रखा गया है कि महान विषय को सूक्ष्म रूप से कहने वाला है । वह कैसे हैं सो कहते हैं—

भगवान महावीर की वाणी से 'तत्त्वमसि' यह शब्द निकला हुआ है उसका अर्थ यह है कि 'तत् 'वह' 'त्व' 'तू' 'असि' यानी' है' । अर्थात् 'वह तू है' । ऐसा 'तत्त्वमसि' का अर्थ है । इससे यह सिद्ध हुआ कि तत् अर्थात् 'सिद्ध परमेष्ठी' 'त्वमसि हे आत्मन तू ही है ।५६।

"तत्त्वमसि" असि आ उ सा" इत्यादि महामहिमा-शाली मन्त्रो से भरे होने के करण इस भूवलय को महासिद्धि काव्य कहते हैं ।५७।

किसी कारणवश लोग सहिष्णुता (सहनशीलता) की बात करते हैं । परन्तु असहिष्णुता (दूसरो की बात या काम न सहसकने का स्वभाव) होने से सच्ची सहिष्णुता प्रगट नही होती है । सहिष्णुता के लिए मनुष्य के हृदय में दया का होना आवश्यक है, दया के बिना सच्ची सहिष्णुता नही आ सकती कहा भी है कि "दयामूलो भवेद्धर्म" यानी—जहा दया है वही धर्म है, जहा दया नहीं है वहा धर्म कहा से आवेगा ? आत्मा का स्वभाव दयामय है, अत आत्मा का धर्म दयामय ही है । अत जहा दया है वहा पर सहनशीलता स्वय आ जाती है । दया के सुरक्षित रखने के लिए ही समस्त व्रतो का पालन किया जाता है । जैसे कि "अहिसाव्रतरक्षार्थं मूलव्रत विशोधयेत्" यानी-अहिसा व्रत की रक्षा के लिए मूलव्रतो की शुद्धि करे ।५८।

ससार के सभी जीव कर्म-बन्धन की दृष्टि से समान हैं । दीखने वाला छोटा जीव जैसे कर्म जाल में फसा हुआ है बडा जीव भी उसी प्रकार कर्म से पराधीन है । इसी कारण महान ज्ञानी योगी सब जीवों को अपने समान समझते है । इसी कारण वे सभी छोटे बडे जीव पर दया भाव रखते हैं । जब सब जीवो की आत्मा एक समान है तब उनको दुख का अनुभव भी एक समान होता है इसलिए सब पर दया करनी चाहिए ।५९।

हृदय मे जब ऐसा भाव आता है तब समन्वय की बुद्धि उत्पन्न होती है । समन्वय बुद्धि वाला व्यक्ति ही समाज को, देश को, जाति धर्म, देव आदि

को समन्वय भाव से देखता है। तब वह समन्वय अमृतमय बन जाता है ।६०।

ऐसी भावना जब हृदय मे जाग्रत होती है तब "मे बडा हू शेष सब प्राणी मुझ से छोटे है।' ऐसा छोटा भाव हृदय मे नही रहता उस समय वह त्रिलोकपूज्य माना जाता है ।६१।

तब उसके जितने भी गुण हैं वे सभी भूवलय (जगत) के लिए प्रतिफलीभूत होकर पुन प्रज्वलित अवस्था प्राप्त करा देते हैं ।६२।

तब वह जीव ५८ श्लोक मे कहे अनुसार दयामय होने के कारण अपनी सहनशीलता के सभी गुणो को सुरम विद्यागम रूपी भूवलय मे देखता हुआ संतोष से अपना आत्म-कल्याण कर लेता है ।६३।

इस भूवलय ग्रन्थ का अध्ययन करने से मनुष्य मे सहनशीलता आती है जैसे कि—

किसी एक राजकीय बगीचे मे आकर एक तरुण सुन्दर सुडौल ऋषि विराजमान हुआ। उसी बाग मे राजा सोया हुआ था और उसकी रानिया इधर उधर टहल रही थी। उन्होने जब उस साधु को देखा तो सब इकट्ठी होकर धर्मोपदेश सुनने की इच्छा से उसके पास आकर बैठ गई। मुनि ने उस समय उनको अहिसा धर्म के अन्तर्गत क्षमा धर्म का उपदेश देना प्रारम्भ किया।

इतने में उस राजा की आख खुली तो उसने देखा कि—रानिया उस साधु के पास बैठी है। भ्रम से उसके मन मे यह विचार आया कि यह नवयुवक साधु इन रानियो को भ्रष्ट करना चाहता है इसीलिए यह उनसे वार्तालाप कर रहा हैं। इस विचार से क्रोध में आकर राजा उस साधु के पास गया और बोला कि तुम इन रानियो के साथ क्या व्यर्थ बातें कर रहे हो ?

साधु सरल परिणामी थे। अत उन्होने राजा से मीठे शब्द मे कहा कि 'मैं क्षमा धर्म का व्याख्यान कर रहा हू।' परन्तु राजा के मन मे तो कुछ और ही बात समाई हुई थी इसलिए उसने उस साधु के एक तमाचा जमा दिया और बोला कि मैं देखना चाहता हूं कि तुम्हारा क्षमा धर्म कहां है ?

साधु ने फिर शान्ति से उत्तर दिया कि—क्षमा धर्म मेरे हृदय में है। राजा को फिर क्रोध आया, अत उसने दूसरी बार उस साधु के ऊपर एक दण्डा जमा दिया। साधु ने शान्ति-पूर्वक फिर कहा कि—राजन् ! क्षमा तुम्हारे इस दण्डे में नही, बल्कि वह तो मेरे मन के भीतर है।

राजा को उत्तरोत्तर क्रोध आता रहा अत: उसने तलवार से साधु के दोनो हाथ काट दिये और बोला कि—अब बता तेरी क्षमा कहा हैं ?

साधु ने शान्ति से फिर वही उत्तर दिया कि वह मेरे भीतर हैं।

राजा ने तब साधु के दोनो पैर भी काट दिये और बोला कि बता, क्षमा कहा हैं ?

इतने पर भी साधु की शान्ति भङ्ग नही हुई। वह बोला कि राजन् ! मैने कह तो दिया कि वह मेरे हृदय के भीतर है, तुम्हारे इन शस्त्रों में वह नही हो सकती है

तब राजा को होश आया और वह सोचने लगा कि मैं बड़ा पापी हूं मैने बिना बात इस साधु को कष्ट दिया परन्तु महान कष्ट होने पर भी साधु जी ने अपनी क्षमा नही छोडी। ये साधु महात्मा बड़े धीर गम्भीर हैं। ऐसा विचार करते हुए वह साधु महाराज के चरणो मे गिर पड़ा और गिड़गिड़ाने लगा।

साधु बोले कि राजन् इसमे तुम्हारा क्या दोष है ? तुमने अपना कार्य किया और मैंने अपना कार्य किया तब राजा ने प्रसन्न होकर कहा कि प्रभो ! इसमे कोई भी सन्देह नही कि आप क्षमा के भण्डार हैं।

तात्पर्य यह है कि क्षमा के आगे सबको सिर झुकाना पड़ता है परन्तु यह क्षमा धर्म अध्यात्म-विद्या के अध्ययन किये बिना नही आ सकता। वह अध्यात्म विद्या इस भूवलय का सञ्जीवन है, अत यह भूवलय विश्वभर को क्षमा धर्म का पाठ पढ़ाने वाला है।

'ष' अर्थात् अट्ठावन और 'ह' यानी ६० इनको परस्पर जोड़ दिया जाय तो ११८ होते हैं इसका वर्ग करने पर १३९२४ होते हैं। उनमें से पुनरुक्त एक को कम करने पर १३९२३ रह जाते हैं जोकि नौ से विभक्त हो जाते हैं तो १५४७ लब्ध हुए इनमें उस पुनरुक्त एक को मिला दिया जाय तो १५४८ हो गये इनको नौ से भाग देने पर १७२ आते हैं इसमें से एक निकाल देने पर १७१ रह जाते हैं जोकि नौ से बंटकर १९ आते हैं उसमें से एक निकाल दिया जाय तो १८ रह गया जिसको परस्पर जोड़ देने पर (१+८=९) नौ हो जाते हैं। तात्पर्य

यह है कि इह सोख्य विषम है तथा परलोक का सौख्य सम है। इन दोनों को समान रूप से बतलाने वाला यह भूवलय शास्त्र है।६६।

र ५४ 'ह' ६० म ४२ इन तीनो को मिलाने से —

५४ × ६० × ५२ = १६६
४
१७०
१
एक मिलाने से १७१
तीनो मिलाने से ९ नौ आता है।

१७० एक षट् खण्ड आगम मिलाने से ण ४२ और ह = ६० १ मिलाने से १७० षट् खड आगम ९ मिलाने से १७९+४२+६० = २७८+१ = २७९ २+७ = ९९+१८ = ९ उपर्युक्त लिपि हुई।

इस प्रकार महान् महान् विषयो का मुलभ रीनि से इस के द्वारा अनुभव होता है॥ ६७ से ७२॥

यह भूवलय ग्रन्थ इस लोक मे मोक्ष के सम्पूर्ण विषय को बतलाता है। परलोक मे अहमिन्द्र पद को प्राप्त कराकर अन्त में मोक्ष प्रदान करता है।७३-७४।

इस भूवलय को भगवान महावीर ने सिद्ध करके अन्त मे मोक्ष फल प्राप्त किया ऐसी महिमा बतलाने वाले यह त्रय रत्न बलय यानी-रत्नत्रय रूपी वलय है।७६।

क्षुधा तृषादि १८ दोष जिनकी आत्मा मे प्रचुर मौजूद है उनको 'यह देव बडा है और यह देव छोटा है।' इस तरह उनको देवो मे अनेक भेद दीखते हैं। किन्तु जिनके हृदय मे १८ दोष नष्ट करने की तीव्र इच्छा है उनके मन मे 'रत्नत्रय रूप आत्म धर्म ही स्वधर्म है' ऐसी धारणा होती है।७७।

जिन्होने विपरीत धारणा से समार को ही अपना घर मान लिया है उनको स्वआत्म-धर्म मे अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है जब उनका ज्ञानावरण कर्म नष्ट होता है तब उन्हें अन्तकाल तक सुख देने वाले मोक्ष की प्राप्ति होती है।७८।

किसी मनुष्य को सर्प काटता है तो वह मुरदे के समान अचेत दीखता है यदि उसे सर्प विषनाशक औषधि दी जावे तो वह तत्काल सचेत हो जाता है। पादरस में रहने वाले दोष नष्ट हो जाने पर पादरस में अमृत के समान शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इमी तरह विपरीत मान्यता से जो देव में छोटा या बड़ा भाव रखता था वह अपनी विपरीत भावना (मिथ्या श्रद्धा) निकल जाने पर स्वयं शुद्ध आत्मा बन जाता है॥७९॥

विवेचन—इस ससार में शुद्धात्मा को न जानकर यह मेरा देव है यह मेरा ब्रह्म है। इम ससार मे एक ब्रह्म ही है दूसरा कोई नहीं है। इसलिए हमारा धर्म अद्वैत धर्म है। इत्यादि तरह से एकान्त पक्ष लेकर लोग सत्य का निर्णय नही करते, वे अन्धकार में स्वयं भटकते हैं और दूसरो को भी भटकाते हैं।

जब एक शैव शिव को जगत मे बडा मानता है तब वैष्णव अपने विष्णु को बडा मानकर विष्णु के साथ लक्ष्मी को भी मानकर द्वैत रूप में अपने धर्म का प्रचार करता है। इस तरह दोनो देवो के भक्तो मे परस्पर विरोध फैल जाता है। इस विरोध के निराकरण के लिए कुमुदेन्दु आचार्य ने उपर्युक्त दो श्लोक लिखे है।

आगे आचार्य श्री दोनो धर्मा का समन्वय करने के लिए श्लोक कहते है —

रत्नत्रय धर्म अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनो मे आदि का सम्यक् दर्शन अद्वैत धर्म माना जाता है। परन्तु यह सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र बिना पूर्ण नही होता।

तीर्थंकर जगज्ज्येष्ठा यद्यपि मोक्षगामिन.।
तथापि पालित चैव चारित्र मोक्षहेतवे॥

जगत मे श्रेष्ठ जन्म से ही मति, श्रुत, अवधि ज्ञान के धारक तद्भव मोक्षगामी तीर्थंकर भी मोक्ष प्राप्ति के लिए चारित्र को आचरण कहते हैं तभी उनको मोक्ष की प्राप्ति होती है।

इसलिए सम्यग्दर्शन के साथ सम्यक्चारित्र धारण करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

ब्रह्म को अद्वैत धर्म कहने वाले की मान्यता को सुनकर द्वैतवादी वैष्णवों को खेद हुआ अत. वे बोले कि ब्रह्म अद्वैत धर्म ठीक नही है हमारा विष्णु धर्म ही (द्वैत धर्म ही) श्रेष्ठ है क्योकि विष्णु के साथ लक्ष्मी रहती है। इस प्रकार दोनो धर्मो में स्पर्धा होने लगी। तब श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने कहा कि भाई ! विवाद मत करो आप यथार्थ बात सोचो। अद्वैत भी श्रेष्ठ है और द्वैत भी क्योकि 'न द्वैत = अद्वैत इस प्रकार कहने में दो का निषेध करके एक होता है अर्थात् दो के बिना एक नही होता।

विचार कर देखें तो अद्वैत शब्द का अर्थ ब्रह्म न होकर एक होता है तथा द्वैत शब्द का अर्थ विष्णु और लक्ष्मी न होकर दो होता है। एव इन दोनों को मिला कर तीन का अंक जो बनता है वह अनेकान्त स्वरूप हो जाता है। तात्पर्य यह है कि कथंचित् एक, और कथचित् दो ठीक होता है, अतएव दोनों का समावेश रूप रत्नत्रय धर्म अनेकान्त धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है और उसी को जैन धर्म कहते हैं। कर्मारातीन् जयतीति जिन जो सम्पूर्ण कर्मों को जीतने वाला हो उसको जिन कहते हैं और उस जिन भगवान का जो धर्म-आचरण है, वह जैन धर्म है, ऐसा सुन्दर अर्थ होता है। यही प्राणी-मात्र का धर्म सार्व-धर्म है।

कर्मों को अपने अन्दर बनाये रखना न तो द्वैत वादियो को इष्ट है और न अद्वैतवादियो को इष्ट है। इसलिए जैन धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है, यह सबको मानना पडेगा।

जैन धर्म रत्नत्रयात्मक है रत्नत्रय मे सम्यग्दर्शन पहले है जो कि एक होने से अद्वैत हैं और उसके अनन्तर ज्ञान तथा चारित्र हैं जो द्वैत रूप हैं। इस पर अद्वैतवादी कह सकता है कि पहले आने की वजह से हमारा धर्म प्रधान है परन्तु ऐसा नही है क्योकि यहा पर जिस प्रकार पूर्वानुपूर्वी क्रम लिया जाता है वैसे ही पश्चादानुपूर्वी क्रम भी लिया जाता है। पूर्वानुपूर्वी मे सम्यग्दर्शन रूप अद्वैत धर्म पहले आ जाता है तो पश्चादानुपूर्वी मे चारित्र और ज्ञान रूप द्वैत धर्म पहले आ जाता है। इस युक्ति को लेकर सब का समन्वय करके एक साथ रखने वाला अनेकान्त धर्म है।

जैसे कि एक गाड़ी को वहन करने वाले दो चक्के होते हैं उन दोनो को एक साथ रखकर घुमाते हुये चले जाने वाला उनके बीच में धुरा होता है उसी प्रकार द्वैत और अद्वैत इन दोनो को टकराने न देकर एक साथ रखने वाला और दोनो को सफल बनाने वाला धुरे के समान यह अनेकान्त धर्म है ॥८०॥

अद्वैत द्वैत और अनेकान्त ये तीनो रत्नत्रय रूप महान धर्म हैं और अर्हन्त भगवान के हार के प्रमुख रत्न हैं। इस रत्नत्रय हार की मन, वचन काय, कृत कारित अनुमोदना रूप ३×३ = ९ परिपूर्ण अंक रूप कडिया हैं। इन परिपूर्ण ९ अको मे ३६३ मतों का समावेश हो जाता है ॥८१॥

उसी परिपूर्ण ९ अक के ऊपर एक १ का अक मिलाने से एक सहित शून्य (१०) आता है। उससे ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति हुई है। उस ब्राह्मी लिपि को देव नागरी लिपि कहते है तथा उसी को ऋग्वेदांक भी कहते हैं।

एक से लेकर नौ तक अको द्वारा द्वादशाग की उत्पत्ति होती है उस ९ अक में एक और मिलाने से उस १० दश अक से ऋग्वेद की उत्पत्ति होती है। इसी को पूर्वानुपूर्वी, पश्चात् अनुपूर्वी कहते हैं। द्वादशांग रूप वृक्ष की शाखारूप ऋग्वेद है। इसलिए इस वेद का प्रचलित नाम ऋक् शाखा है ॥८२॥

ऋग्वेद तीन प्रकार का है मानव ऋग्वेद, देव ऋग्वेद तथा दनुज (दानव राक्षस) ऋग्वेद। इन वेदो द्वारा पशुओ की रक्षा, गो-ब्राह्मण की रक्षा तथा जैन धर्म की समानता सिद्धि हो, ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य आशीर्वाद देते हैं ॥८३॥

विवेचन—प्रचलित ऋग्वेद का प्रारम्भ 'अग्निमीले पुरोहितम्' से होता होता है परन्तु भूवलय मे ऋग्वेद का प्रारम्भ 'ॐ तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न प्रचोदयात्' से है। 'अग्निमीले पुरोहितम्' भी बाद में आ जाता है। अब तक वैदिक लोग जैनो को वेद न मानने के कारण वेद-बाह्य कहते थे। भूवलय के अतिरिक्त अन्य जैन ग्रन्थो ने वेदो मे हिंसा का विधान होने से उस को अमान्य मानकर छोड दिया है। किन्तु भूवलय में उपलब्ध ऋग्वेद मे हिंसा विधान, मद्यपान, द्यूत क्रीडा, दुराचार आदि नही है। यह दुराचार दानवीय ऋग्वेद मे है, मानवीय तथा देवीय ऋग्वेद नही है। जैन ग्रन्थों में हिंसा का विशद विस्तृत वर्णन है उसके विपरीत हिंसा के त्याग रूप अहिंसा का वर्णन है क्योकि हिंसा का विवरण बताने पर ही अहिंसा का विधान होता

हैं। दानवीय ऋग्वेद में मानवीय ऋग्वेद के हिंसा के विवरण के ही विधेय रूप से वर्णन किया है, अहिंसा का विधान छोड दिया है।

मानवीय ऋग्वेद के लुप्त हो जाने से दानवीय ऋग्वेद ही प्रचार में आता रहा, जैसे कि द्वादशाग वाणी विलुप्त हुई। मानवीय ऋग्वेद के लुप्त हो जाने पर मनुष्यों ने दानवीय वेद को अपना लिया। इस कारण पशु हिंसा आदि क्रियाएं वेद का आधार लेकर चल पडीं। इस वैदिक हिंसा को रोकने के लिए भगवान महावीर ने अहिंसा का प्रचार किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी वैदिक हिंसा के विरुद्ध आवाज उठाई। जब भूवलय में ऋग्वेद का समावेश उपलब्ध हुआ तब से स्वामी दयानन्द सरस्वतो के अनुयायी आर्य समाज की धारणा जैन धर्म या जैन समाज के प्रति बदल गई है।

तदनुसार आर्य मार्तण्ड, सार्वदेशिक पत्रिका आदि अपने मासिक पत्रो मे आर्य समाजी विद्वानो ने भूवलय ग्रन्थ को प्रशसात्मक लेखमालाए प्रकाशित की हैं। उन लेख-मालाओ के आधार से कल्याण, विश्वमित्र, P.E N. तथा आर्गनाईजर आदि विख्यात पत्रो ने भी भूवलय ग्रन्थ का महत्व विश्व मे फैला दिया है। बेंगलोर आर्य समाज के प्रमुख श्री भास्कर पत ने, अजमेर के प्रसिद्ध आर्य समाजी विद्वान डा० सूर्यदेव जी शर्मा एम० ए० तथा विश्वविख्यात विद्वान् स्वा० ध्रुवानन्द जी को तथा अन्य आर्य विद्वानो को आमत्रित करके सर्वार्थसिद्धि बेंगलौर मे लाने का प्रयास किया। उन विद्वानो ने बेगलौर मे भूवलय ग्रन्थ का अवलोकन करके हार्दिक प्रसन्नता प्रगट की तथा श्री डा० सूर्यदेव जी ने भूवलय की महिमा मे निम्नलिखित श्लोक निर्माण किया—

अनादि निधाना वाक्, दिव्यमीश्वरीयंवचः ।
ऋग्वदोहि भूवलयः दिव्यज्ञानमयो हि सः ।।

अर्थ—भूवलय ग्रन्थ अनादि अनन्त वाणी स्वरूप है, दिव्य ईश्वरीय वचन हैं, दिव्य ज्ञानमय है और ऋग्वेद रूप हैं।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य आशीर्वाद देते हैं कि इतिहास काल से पूर्व का प्रचलित वेद का ज्ञान प्रसार भविष्य मे भी हो ।।८४।।

श्री जिनेन्द्र वर्द्धमानाक यत्र तत्रानुपूर्वी के क्रम से नवम है ।।८५।।

यह नवमी कही जाने वाली लिपि ही अक्षांश मे है ।।८६।।

बिंदी से प्रारम्भ होकर बिंदी के साथ ही अंत होने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।।८८।।

इसकी उत्पत्ति इस तरह है—

९ अक शून्य से निष्पन्न हुआ है और वह शून्य भगवान के सर्वांग से प्रगट हुआ है। जिस प्रकार हम लोग वार्तालाप करते समय अपना मुख खोलकर बातचीत करते हैं उस प्रकार भगवान अपना मुख खोलकर नहीं करते। भगवद् गीता में भी कहा गया है कि —

सर्वद्वारेषु कौन्तेय प्रकाश उपजायते !

इसी प्रकार उपनिषद् में भी 'मौन व्याख्या प्रकटित परब्रह्म' इत्यादि रूप से कहते हैं। मौन व्याख्या का अर्थ भगवान के सर्वांग से ध्वनि निकलना है। अभी तक इसका स्पष्टीकरण नहो हो सका था, किन्तु जबसे भूवलय सिद्धांत शास्त्र उपलब्ध हुआ तब से यह आधुनिक विचारज्ञों के लिये नूतन विषय दृष्टिगोचर हुआ। ऋषभनाथ भगवान् ने अपनी कनिष्ठ कन्या सुन्दरी देवी की हथेली पर अमृतागुली के मूल भाग से बायी ओर एक बिन्दी लिखी। तत्पश्चात् उस बिन्दी को अर्द्धच्छेद शलाका से दो टुकडो मे बनाया। उन्हीं दोनों टुकडों के द्वारा अकशास्त्र को पद्धति के अनुसार घुमाते हुये ९ अक बनाये, जो कि अन्यत्र चित्र मे दिया गया है। किन्तु ९ अक मे रहने वाले दोनो टुकडो को यदि परस्पर मे मिला दिया जाय तो पुन. बिन्दी बन जाती है।

यही बिन्दी श्री ऋषभदेव भगवान के बन्द मुँह से हूं इस ध्वनि के रूप मे निकली जोकि भूवलय के ६४ अक्षरांकों में से इकसठवां अंकाक्षर है। यानी (०) अनुस्वार है न कि ५२ वा अक्षरांक (म्) है।

अब उस बिन्दी (०) को ठीक मध्य भाग से तोड़कर दो टुकड़े करने से उसके ऊपर का भाग कानडी भाषा का १ अंक बन जाता है, जोकि संस्कृतादिक प्राकिडेतर भाषाओं में नही बनता। भगवान के सर्वांग से जो ध्वनि निकली वह भी उपर्युक्त बिन्दी के रूप में ही प्रगट हुई। इसलिए उसका लिपि आकार भी "०" ऐसा प्रचलित हुआ। इस प्रकार लिपि के आकार का और ध्वनि निकलने के स्थान का परस्पर में सम्बन्ध होने से इसी बिन्दी का दूसरा

नाम "मौढ़" नाम पद है। इसी बिन्दी को कानड़ी भाषा में सोन्ने, प्राकृत मे शून्य तथा हिन्दी भाषा में बिन्दी इत्यादि अनेक नामो से पुकारते है।

शून्य का अर्थ अभाव होता है और उस शून्य को काटकर ही कानडी भाषा के १ और २ बने। इन दोनो को मिलाकर ३ हुए और ३ को परस्पर में गुणा करने से ९ होते है, जोकि सद्भाव को सूचित करते हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि अभाव और सद्भाव कथचित् अभिन्न और कथचित् भिन्न हैं। एवं भिन्नाभिन्न ही स्याद्वाद का मूल सिद्धान्त है। यहा तक ८७ श्लोक का अर्थ समाप्त हुआ।

ऋग्वेद जोकि भगवान-ऋषभ देव का यशोगान करने वाला है उस ऋग्वेद को देव, मानव और दानव ये तीनो ही गाते रहते है परन्तु उनमे परस्पर में कुछ विशेषता होती है। मनुज और देव ये दोनो तो सौम्य प्रकृति हैं इसलिए गौ, पशु और ब्राह्मण इन तीनो की रक्षा करने वाले तथा शुभाशीर्वाद देने वाले हैं एवं जैन धर्म की प्रभावना करने वाले है। किन्तु दानव क्रूरप्रकृति वाले होते हैं इसलिए उसी ऋगवेद को क्रूरता के रूप से उपयोग मे लाने वाले एवं हिंसा का प्रचार करने वाले हैं। अब यह भूवलय अङ्क उन तीनो के परस्पर विरोध को मिटाकर उन्हें एकता के साम्राज्य मे स्थापित करने वाला है।८८। तथा उपर्युक्त अद्वैत, द्वैत और अनेकान्त तीनो मे भी परस्पर प्रेम बढाकर समन्वय करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।८९।

यद्यपि ये तीनो धर्म परस्पर मे कुछ विरोध रखने वाले हैं। फिर भी इन तीनों को यहा रहना है अतएव यह भूवलय ग्रन्थ उन तीनों को नियन्त्रित करके निराकुल करने वाला है।९०।

यह भूवलल ग्रन्थ हम लोगों को बतलाता है कि सम्पूर्ण प्राणी मात्र के लिए समान रूप से एक ही धर्म का उपदेश देने वाला ऋग्वेदाङ्क हं।९१।

यह भूवलय ग्रन्थ आदि मे भी और अन्त मे भी परिपूर्णाङ्क वाला है। सो बताते हैं—यह भूवलय ग्रन्थ–बिन्दु से प्रारम्भ होता है अतएव आदि अंक बिन्दु है उस बिन्दु को काटकर कानड़ी लिपि के १-२-३ आदि नौ तक के अंक बनते हैं। अन्त में जो नौ का अङ्क है वह भी बिन्दु के दोनो टुकड़ों से बनता है। ऐसा हम पहले भी अनेक स्थानों पर बता चुके हैं। यह भूवलय आदि में और अन्त मे एकसा है।९२।

मनु और मुनि इत्यादि महात्माओ के ध्यान करने योग्य यह भूवलय ध्यानाङ्क है।९३।

यह भूवलय ग्रन्थ-स्वप्न में भी सब लोगों को सुख देने वाला है अतएव शुभाङ्क है।९४।

सभी मन्मथो का यह आद्यन्त अक है।९५।

जिनरूपता को सिद्ध कर दिखलाने वाला यह अंक है।९६।

जिस प्रकार चन्द्रमा के प्रकाश में आदि से लेकर अन्त तक कोई भी अन्तर नही पडता उसी प्रकार इस भूवलय में भी आदि से अन्त तक कोई अन्तर नही है।९७।

इस भूवलय की भाषा कर्मा (र्णा) टक है जोकि ऋद्धि रूप है और अपने गर्भ में सभी भाषाओ को लिए हुए है।९८।

शरीर को पवित्र और पावन बनाने वाला यह अंक है अर्थात् महाव्रतों को धारण करने की प्रेरणा देने वाला है।९९।

आदि से अन्त तक यह भूवलय ब्राह्मी (लिपि) अंक है।१००।

अद्वैत का प्रतिपादन करने वाला एक का अंक पूर्वानुपूर्वी में जिस प्रकार प्रारम्भ मे आता है उसी प्रकार पश्चाद्सानुपूर्वी में नौ के समान सबके अन्त मे आता है, इस बात को बताने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।१०१।

अद्वैत का अर्थ सम्यग्दर्शन है, क्योंकि सम्यग्दर्शन हो जाने पर यह जीव अपनी आत्मा के समान इतर समस्त आत्माओं को भी इस शरीर से भिन्न ज्ञानमय एक समान जानने लगता है। द्वैत का अर्थ सम्यग्ज्ञान हैं; क्योंकि ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण आत्माओ की या इतर समस्त पदार्थों की विशेषताओं को ग्रहण करते हुए आपापर का भेद व्यक्त हो जाता हैं। इसी प्रकार अनेकान्त का अर्थ सम्यक्चारित्र लेना चाहिए, क्योंकि वह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान इन दोनो को एकता रूप करते हुए स्थिरतामय हो जाता हैं। अब पूर्वानुपूर्वी क्रम में सम्यग्दर्शन प्रथम आने से प्रधान है, तो पश्चादानुपूर्वी क्रम में सम्यक्चारित्र प्रधान बन जाता है। इसी प्रकार यत्रतत्रानुपूर्वी क्रम में सम्यग्ज्ञान मुख्य ठहरता

है। इस तरह अपने अपने स्वरूप में सभी मुरुय और पर रूप से देखने पर गौण बनते रहते हैं। इम स्याद्वाद पद्धति से स्याद्वाद, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र का पूर्णतया प्राप्त होना ही परमात्मा का स्वरूप है। और यही अद्वैत है ।१०२।

इस प्रकार जो विद्वान पूर्वोक्त तीनो आनुपूर्वियो का ज्ञान प्राप्त कर लेता है उसका हृदय विशाल बन जाता है, क्योंकि उसमें समस्त धर्मों का समन्वय करने की योग्यता आ जाती है। और उसके विचार मे फिर सभी धर्म एक होकर परम निर्मल अद्वैत स्थापित हो जाता है ।१०३।

इस प्रकार अद्वैत का परम श्रेष्ठ हो जाना जैनियो के लिए कोई आपत्ति कारक नही है। क्योकि हम यदि गम्भीरता से अपने मन मे विचार करके देखें तो जैनियो के जिनेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित यह भूवलय शास्त्र अनुभय रूप है। अर्थात् अथचित् द्वैत रूप है, तो कथचित् अद्वैत रूप है और *कथचित् द्वैताद्वैत उभय रूप है। अनएव अथचित् दोनो रूप भी नही हैं।* इस प्रकार उभय अनुभय इन दोनो की घनसिद्ध (समष्टि) रूप यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१०४।

इसलिए यह भूवलय दिव्य सिद्धान्त ग्रन्थ है। यानी सर्व-सम्मत ग्रन्थ है अर्थात् सबके लिए माननीय है ।१०५।

वस्तुत यह भूवलय ग्रन्थ जिन सिद्धान्त ग्रन्थ है ।१०६।

प्रारम्भ से लेकर अन्त तक समान रूप से चलने वाला अकमय यह भूवलय ग्रन्थ है ।१०७।

आत्मा का स्वरूप घन स्वरूप है इसलिए यह घन धर्मांक भूवलय है ।१०८।

अक में सख्यात असख्यात और अनन्त ऐसे तीन भेद होते है। अनन्त केवली-गम्य है। उस अनन्त राशि को जनता को बतलाने वाला यह भूवलय है ।१०९।

जब अनन्त अक का दर्शन होता है तब सिद्ध परमात्मा का ज्ञान हो जाता है इसलिए नाम सिद्ध भूवलय है ।११०।

यह भूवलय ग्रन्थ बिन्दी से निष्पन्न होने के कारण अणुस्वरूप है और अनन्तानन्त अर्थात् ९ तक जाने के कारण महान् भी है। इसलिए यह अणु-महान् काव्य है ।१११।

यह भूवलय जिनेश्वर भगवान का वाक्यार्थ है ।११२।

यह भूवलय मन शुद्ध्यात्मक है ।११३।

शरीर विद्यमान रहने पर भी उसे अशरीर बनाने वाला यह भूवलय है ॥११६॥

जिसको कि तुम स्वय अवगत किये हुए हो, ऐसे व्यतीत कल में अनादि काल छिपा हुआ है। आज यानी–वर्तमान काल मे तुम मौजूद ही हो, अतः वह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार आने वाले कल मे अनन्तकाल छिपा हुआ है। परन्तु जब तुम रत्नत्रय का साधन कर लोगे तो बीते हुए कल के साथ में आने वाले कल को एक करके स्पष्ट रूप से जान सकोगे। एव अपने आप में तुम स्वयं अनाद्यनन्त हो जाओगे। अत आचार्य का कथन है कि तुम भरसक रत्नत्रय *साधन करने का सतत यत्न करो ॥११७।*

इस प्रकार सच्चा रत्नत्रय प्राप्त हो जाने पर ममतारूपी खड्ग के द्वारा क्रमश क्रोध, मान, माया लोभ का नाश करके आत्मा विमलाक बन जाती है और इसी का नाम अनागत काल है। इमको बताने वाला भूवलय है ॥११८॥

मन के दोषो को दूर करने वाला अध्यात्मशास्त्र है, जो कि इस भूवलय मे भरा हुआ है। बचन के दोषो को दूर करने वाला व्याकरण शास्त्र है, वह भी इसी भूवलय मे गर्भित है। इसी प्रकार शारीरिक वातादि दोषो को दूर करने वाला १३ करोड मध्यम पदात्मक वैद्यक शास्त्र भी इस भूवलय में आ गया है। इमलिए मन, वचन व काय को परिशुद्ध बनाने वाला यह भूवलय है ॥११९॥

यह भूवलय भगवान् की दिव्य ध्वनि से प्रगट हुआ है। अत यह श्री (शोभावान्) वचन होने से अत्यन्त मृदु, मधुर और मिष्ट है। तथा हृदय कमल पर आकर विराजमान होने से मन को प्रफुल्लित करने वाला है और मन प्रफुल्लित हो जाने पर भविष्यत् काल रूपी कल पूर्ण रूप से अवगत हो जाता है तथा आत्मा अद्वैत बन जाती है ॥१२०॥

यह भूवलय ग्रन्थ भूत भविष्यत् वर्तमान कालों को एक कर के बतलाने वाला, द्वैत अद्वैत और जय इन तीनों को एक कर बतलाने वाला एवं देव,

दानव तथा मानव इन तीनों को एक साथ समता से रखने वाला है। इसलिये यह धर्मांक है ॥१२१॥

इन समस्त धर्मों को एकत्रित कर बतलाने वाले श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र भगवान् के धर्म का भी यह भूवलय प्रसिद्ध स्थान है। अत धर्मांक है ॥१२२॥

वस्तुत सभी मानवो का धर्म एक है, जिसका कि इस भूवलय में प्रतिपादन किया गया है ॥१२३॥

प्रति शरीर मे जो आत्मा विद्यमान है, वह उत्तम धर्म वाली है ॥१२४॥

गत कल अनन्त काल तक बीता हुआ है और आने वाला कल भी अनन्त काल तक है अर्थात् आने वाला भूत काल से भी विशाल है इन दोनो को वर्तमान काल कडी के समान जोडता है ॥१२५॥

आदि मे रहने पर भी आदि को देख नही सकते, और अत मे रहने पर भी अत को नही देख सकते, ऐसा जो अक है वह ३×३ = ९ नौ अक है।

जैन धर्म में अनेक भेद हैं उन भेदो को मिटा कर ऐक्य करने वाला यह नव पद जैन धर्म नामक ऐक्य सिद्धात है ॥१२६॥

जगतवर्ती समस्त प्राणी मात्र के कल्याण करने वाले सभी धर्म नही हो सकते यद्यपि दुनिया में अनेक धर्म हैं परन्तु वे सभी धर्म कल्याणकारी नहीं है ॥१२७॥

जिस धर्मसे समस्त प्राणीमात्र का कल्याण हो उसी को सद्धर्म अथवा धर्म कहा जाता है, अन्य को नही ॥१२८॥

सम्यग्ज्ञान के पाँच भेद हैं, उन विभिन्न ज्ञानो की योग्यता को बताने वाला यह भूवलय है ॥१२९॥

हमारा ज्ञान अधिक है और तुम्हारा ज्ञान अल्प है, इस प्रकार परस्पर विरोध प्रगट करके झगडने वालों के विरोध को मिटा कर सम्यग्ज्ञान को बतलाने वाला यह भूवलय है। अर्थात् परस्पर विरोध को मिटाने वाला तथा सच्चा ज्ञान प्राप्त कराने वाला यह भूवलय है ॥१३०॥

देव लोग और राक्षस (सज्जन और दुर्जन) एक ही प्राणी के सन्तान हैं। जैन जनता भगवान महावीर की परम्परा सतान रूप से अनुगामिनी है अर्थात् उनकी भक्त है। परन्तु कलिकाल के प्रभाव से जैसे पांडव और कौरवो ने एकता को तोड़ कर आपस में विरोध पैदा किया उसी प्रकार जैन भाई आपसी प्रेम को नष्ट करके विरोध पैदा करके एक ही धर्म को अनेक रूप मानने लगे हैं। द्वेष भाव मिटा कर ऐक्य के लिए प्रेरणा देने वाला यह भूवलय है ॥१३१॥

अन्य ग्रन्थों में अक्षरो को कम करके सूत्र की सूचना हो सकती है। परन्तु भूवलय ग्रन्थ मे इस तरह नही हो सकता क्योकि इसमें एक भाषा के साथ अनेक भाषाए और अनेक विषय प्रगट होते हैं, अतः अन्य ग्रन्थों के सूत्रों के समान इस ग्रन्थ के सूत्र नही बन सकते। भूवलय के एक एक अक्षर में अनेकों सूत्र बनते हैं। इसलिए भूवलय ग्रन्थ सूत्र रूप है तथा यह ग्रन्थ विराट रूप भी है ॥१३२॥

अरहत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु ये परमेष्ठी विभिन्न गुणों के कारण भिन्न रूप दिखने पर भी आध्यात्मिक देव दृष्टि से पांचो समान हैं इनमें कोई भेद नही है। अथवा समस्त तीर्थंकर देवत्व की दृष्टि से समान हैं, पूर्ण शुद्ध परमात्मा मे जिन विष्णु शिव, महादेव और ब्रह्मा आदि नामो से कोई भेद नही होता ॥१३३॥

अर्हंदादि देवो के वाचक अक्षरो से बना हुआ मन्त्र भक्तों की रक्षा करता है ॥१३४॥

उपर्युक्त मन्त्रो को एकाग्रता के साथ जपने वाले को सातिशय पुण्य बन्ध होता है ॥१३५॥

इसी के साथ-साथ उनको विनत भाव और अहिंसात्मक सद्धर्म की भी प्राप्ति होती है ॥१३६॥

यह भूवलय ग्रन्थ परम सत्य का प्रतिपादन करने वाला होने से सभी के लिये कल्याणकारी है ॥१३७॥

यह भूवलय का नवमाक अणुव्रत और महाव्रत का स्पष्टरूप से प्रतिपादन करने वाला है इसलिये अण् महान् (हनुमान) जिन देव का कहा हुआ यह अङ्क है। उस हनुमान जिन देव की कथा रामाङ्क में आई हुई है और रामाङ्क यानी राम कथा भी मुनि-सुव्रतनाथ भगवान की कथा में आई है। श्री मुनि सुव्रतनाथ की कथा प्रथमानुयोग में अङ्कित है। प्रथमानुयोग शास्त्र श्री द्वादशाङ्ग वाणी का एक अश है। यह भूवलय ग्रन्थ द्वादशाङ्गात्मक है, इसलिये यह जिन धर्म का वर्द्धमानाङ्क है ॥१३८॥

इस भूवलय ग्रन्थ में अनेक महान् ऋद्धियो का वर्णन है। ऋद्धियां जैन मुनियों को प्राप्त होतो हैं। जिन ऋद्धियों के प्राप्त होने पर शुद्धात्मा की उपलब्धि होती है और सम्यक्त्व परिशुद्ध हो जाता है उन्ही ऋद्धि वाले महर्षियो में से एक श्री बालि महामुनि भी हैं जोकि राम-रावण के समय मे हो गये हैं। जब अपने बलके अभिमान में आकर रावण ने कैलाशगिरि को उठाकर समुद्र में डालना चाहा था उस समय श्री बालि मुनि ने अपने पैर के अंगुष्ठ से जरा सा दबाकर कैलास पर्वत के जिन मन्दिरो को रक्षा की थो और रावण के अभिमान को दूर किया था। ऐसे शुद्ध सम्यक्त्व के धारक श्री बालि मुनि की बुद्धि ऋद्धि का यशोगान करने वाला यह भूवलय शुद्ध रामायणाङ्क है ॥१३९॥

द्वादशाङ्ग वाणी में जो शुद्ध रामायण अंकित है उसी रामायण को लेकर वाल्मीकि ऋषि ने कवि लोगो को काव्य रस का आस्वादन कराने के लिए काव्य शैली मे लिखा और उसमे महाव्रतो की महिमा को बतलाया। उन महाव्रतो में परिस्थिति के वश होकर यथा समय मे आने वाले दोषो को दूर हटाने वाला यह भूवलय ग्रन्थ परिशुद्धाङ्क है ॥१४०॥

जो परिशुद्धाङ्क—ससारी जीवो के महादुखो को दूर हटाने के लिए अणुव्रतो की शिक्षा देना है, उन्ही अणुव्रतो के अभ्यास से महाव्रतो की सिद्धि होती है। जो मनुष्य महाव्रतो को प्राप्त कर लेता है उसको मगलप्राभृत की प्राप्ति हो जाती है। उस मगलमय महात्मा का दर्शन कराकर सम्पूर्ण जनता को परिशुद्ध बनाने वाला यह भूवलयाक है ॥१४१॥

विविध मगलरूप अक्षरो से समस्त ससार भर जावे फिर भी अक्षर बच जाता है। सबसे प्रथम उन सभी अक्षरो को भगवान आदिनाथ ने अमृतमय रस के समान यशस्वती देवी के गर्भ से उत्पन्न ब्राह्मी देवी की हथेली पर लिखा था वे ही अक्षर आज तक चले आये हैं। इन ६४ अक्षरो का ज्ञान होने से अनादि कालीन आत्माके विष के समान संलग्न अज्ञान दूर हो जाता है। इसलिये इन अक्षरो का नाम 'विषहर नोलकठ' भी है। नीलकठ का अर्थ ज्ञानावरणादि कर्म हैं। वे कर्म विषरूप हैं उन कर्मों का कथन करने वाला भगवान का कठ है, इस कारण यह भूवलय का अक नोलकठ अक है ॥१४२॥

आदि मन्मथ बाहुबली की बहिन सुन्दरी को इस नवमाक रूप भूवलय का दर्शन तथा अनुभव कराकर अरहतादि नव देवता सूचक जो ९ नौ अंक है, उस ९ अक को शून्य के रूप में अनुभव कराकर दिया हुआ ९ वां अंक है ॥१४३॥

जैन धर्म मे कहे हुए अर्हंतादि नव पद के समीप आकर ॥१४४॥

स्मार्त अर्थात् स्मृतियो के धर्म को और वैष्णव धर्म को इन्हीं अंकों में समावेश और समन्वय करते हुए ॥१४५॥

इन धर्म वालो को अपने शरीर में ही अपनी आत्मा को दिखला कर नव अक में शून्य बतलाकर इन धर्म वालों के शरीर के दोष एक ही-समान है कम अधिक नही है ऐसे बतलाते हुए सम्यग्नय और दुर्नय इन दोनों नामो को बतलाया। अत मे दुर्नय का नाश करके सुनय में अतिशय को बताकर अन्त मे उस अतिशय को अनेकात में सम्मिलित कर दिया फिर चैतन्यमय आत्म तत्व को अपने हृदय मे स्थापित करके हिंसामय धर्म से छुडा अहिंसा में स्थापित कर देते हैं। इसी रीति से जिन मार्ग को सुन्दर बना कर और विनय धर्म के साथ सद्धर्मांक को जगत मे फैलाने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१४६-१५६॥

चौथे गुणस्थान से लेकर तेरहवे गुण स्थान तक उत्तरोत्तर आत्मा के सम्यक्त्व गुण की निर्मलता होती जाती है जिससे कि आगे आगे असख्यात गुणी निर्जरा होती रहती है ॥१५७॥

ऊपर जो अनन्त शब्द आया है उसकी महिमा बतलाने के लिए सर्व-जघन्य संख्यात दो है। इस बात का खुलासा ऊपर बताया जा चुका है तथा एक का अक अनन्त है यह बात भी ऊपर बता चुके हैं। अब एक और एक मिलाकर दो होता है इसलिए कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि सर्व जघन्य सख्यात भी अनन्तात्मक है। इतना होकर भी आगे आने वाली सख्याओ की अपेक्षासे बिलकुल छोटा है। इस छोटे से छोटे अक को इसी से वर्गित सम्वर्गित करें तो ४ महाराशि आती हैं $२^२$=४ इसको आगम की परिभाषा में एकबार वर्गित सम्वर्गित राशि कहते हैं।

इस राशि (४) को इसी राशि से वर्गित सम्वर्गित करे तो दो सो छप्पन ४×४×४×४=२५६ आता है। इसका नाम दुबारा वर्गित सम्वर्गित राशि है। अब इस राशि को इसी राशि से वर्गित सम्वर्गित करें तो २५६ = ६१७ स्थानाक आते हैं इसको तीन बार वर्गित सम्वर्गित राशि कहते हैं।

२५६×२५६×२५६×२५६ × २५६ × २५६ इस प्रकार दो सो छप्पन बार गुणा करनेसे जो महाराशि उत्पन्न होती है उसका नाम ६१७ स्थानांक है ।

(१) २५६×२५६ इसी रीति से बार-बार दो सो छप्पन वार करना ।
(२) ६५५३६×२५६
(३) १६७७७२१६×२५६

इस तरह से सर्व जघन्य दो को सिर्फ तीन बार वर्गित सम्वर्गित करने से ही कितनी महान राशि हो गई । इससे भी अनन्त गुणा वढकर कर्म परमाणु राशि प्रत्येक संसारी जीव के प्रति सलग्न है । उन कर्म परमाणुओं को नष्ट कर दिया जावे तो उतने ही गुण आत्मा में प्रगट हो जाते हैं । अब सर्वोत्कृष्ट अनन्तानन्त सख्याङ्क को लाने की विधि श्री कुमुदेन्दु आचार्य बतलाते हैं—

उपर्युक्त तीन बार वर्गित सम्वर्गित राशि से वर्गित सम्वर्गित करे तो चार बार वर्गित सम्वर्गित राशि आती है । इस चार वार वर्गित सम्वर्गित राशि को इसी राशि से वर्गित सम्वर्गित करने पर पाच बार वर्गित सम्वर्गित राशि बनती है इसी प्रकार छटवें वार, सातवे वार, आठवे वार और नौवें वार उत्तरोत्तर वर्गित सम्वर्गित करते चले जावे तो जो अन्त मे महा-राशि उत्पन्न होती है उसका नाम नौ वार वर्गिन सम्वर्गिन राशि होता है । इस राशि का नाम उत्कृष्ट सख्यातानन्त है । इसके मध्य में दो से ऊपर जो भेद हुये सो सब मध्यम सख्यातानन्त के भेद हैं । इसमें एक और मिला देने से जघन्य असख्यात होता है यह असंख्यात का एक हुआ । इस असख्यात मे इतना ही और मिलावे तो असख्यात का दो हो जाता है । इस प्रकार करने पर उत्पन्न हुई महा राशि को श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने असख्यात के दो माने है । इस दो को इसी दो से वर्गित सम्वर्गिन करे तो असख्यात की वर्गिन सम्बर्गित राशि ४ हुई । यह असख्यात की प्रथम वार वर्गित सम्वर्गिन राशि हुई । असख्यात $^{२}_{२}$= ४ इस चार को इसी चार से चार वार गुणा करने पर जो महा राशि उत्पन्न हो वह असख्यात की दुबारा वर्गित सम्वर्गित राशि असंख्यात ४× असख्यात ४× असख्यात ४× असख्यात ४× = असख्यात २५६ होना है। इसी असख्यान महा राशि को इस महा राशि से इतनी ही वार वर्गित मम्वर्गित करने पर असख्यात की तीन वार वर्गित सम्वर्गित राशि असख्यात २५६ स्थानाक उत्पन्न होती है ।

इसी प्रकार चार बार असख्यात सम्वर्गित, इत्यादि नौ बार वर्गित सम्वर्गित कर लेने पर जो महाराशि होती है वह उत्कृष्ट असंख्यातानन्त हैं । और इसके बीच के सब भेद मध्यम असंख्यातानन्त होते हैं । इसी में एक और मिला देने पर अनन्तानन्त का प्रथम भेद हो जाता है अर्थात् अनन्तानन्त का एक होता है और इसमें इतना ही और मिला देवे तब अनन्तानन्त का दो हो जाता है । इस दो को इसी दो से वर्गित सम्वर्गित करने पर अनन्तानन्त का ४ आता है जोकि अनन्तानन्त का एक बार वर्गित सम्वर्गित राशि होती है । अब इसको भी पूर्वोक्तरीत्य नुसार के पश्चात् नौ बार वर्गित सम्वर्गित करने से जो महाराशि होती है वह उत्कृष्टानन्तानन्त होता है । यह अनन्तानन्त परिभाषा तो गणना को अपेक्षा से बताई गई है इससें भी अपरिमित अनन्तानन्त और हैं जिन के नाम एकानन्त, विस्तारानन्त, शाश्वतानन्त इत्यादि ग्यारह स्थानो तक चलता है । जोकि छद्मस्थ के बुद्धि-गम्य न होकर केवलि-गम्य है । यह गणित-पद्धति विद्वानो के लिए आनन्द-दायक होनी चाहिए क्योंकि यह युक्ति-सिद्ध है ।

नवमाक मे पहले अरहत, दूसरे सिद्ध तीसरे आचार्य चौथे उपाध्याय, पाचवे में ॥१५८॥

पाप को दहन करने के लिए साधु समाधि मे रत साधु छठा सच्चा धर्म, सातवा परिशुद्ध परमागम, आठवीं जिनेन्द्र भगवान की मूर्ति ।१५९।

नौवा गोपुर द्वार, शिखर, मानस्तभ इत्यादि से सुशोभित जिन मन्दिर है, आगम परिभाषा में ऊपर कहे हुए नौ को नव पद कहते हैं ॥१६०॥

इस नव पद का पहला मूल स्वरूप अद्वैत दूसरा द्वैत है इन दोनों से समान रूप से मोक्ष पद प्राप्त करने की जो प्रवल इच्छा रखते हैं । उनको एक ही समान द्रव्य और भाव मुक्ति के लाभ दोनो को ॥१६१॥

जब मिलता है तब अनेकात का मूल स्वरूप नय मार्ग मिलता है । हम लोग इसी तरह जैनत्व को प्राप्त करेगे तो चौदहवें गुणस्थान की प्राप्ति हो सकती है ॥१६२॥

तब उसमें मन वचन काय योग की निवृत्ति होती है । उसी समय विश्व के अग्रभाग पर यह आत्मा जाकर स्थित रहता है ॥१६३॥१६४॥

उसी सिद्ध अवस्था प्राप्त किये हुए स्थान को मोक्ष या बैकुण्ठ कहते हैं ॥१६५॥

यह श्री वीर वाणी विद्या है ॥१६६॥

इसी विद्या के सिद्धि के लिए हम अनादि काल से इच्छा करते थे ॥१६७॥

केवली समुद्घात के अन्तर्गत लोक-पूरण समुद्घात में भगवान के आत्म प्रदेश सर्वलोक को व्याप्त करते हैं उससमय केवली का आत्मा समस्त जीव राशि के आत्म प्रदेश में भी स्थित होने के कारण उस प्रदेश को सत्यलोक ऐसे कहते हैं ॥१६८॥

उस केवली भगवान के परिशुद्ध आत्म-प्रदेश हमारे आत्म-प्रदेश में सम्मिलित होने के बाद समस्त जीव लोक और भव्य जीव लोक इन दोनो लोक की शुद्धि होती है ॥१६९॥

उन भगवान के विराट् रूप का अन्तिम समय जन्म और मरण को नाश करने वाला है ॥१७०॥

और वही समस्त भाव और अभाव रहित है ॥१७१॥

इसलिए हे भव्य मानव प्राणियो ! तुम लोग इसी स्थान की हमेशा आशा करते रहो ॥१७२॥

इस प्रकार आशा को रखते हुए श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस विश्वरूप भूवलय काव्य का महत्व बताया है ॥१७३॥

श्री विष्णु का कहा हुआ द्वैत धर्म, ईश्वर का कहा हुआ अद्वैत धर्म तथा जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ अनेकात इन तीनो धर्मोंका ज्ञान हो जाय तो ३६३ अनादि काल के धर्म का ज्ञान होता है। उन धर्मों के समस्त मर्म के ज्ञानी लोग अपने हृदय कमल की पाखडियो मे लिखे हुए अक्षरो मे श्री अक को गुणाकार रूप से गुणनकर के आये हुए अक मे अनाद्यनत काल के समयो को शलाका खड के साथ मिला देने से आया हुआ जो काव्य सिद्ध है वही भूवलय है ॥१७४॥

भूवलय के नौ अको के रहस्य को जो कोई भी मनुष्य जान लेता है, इन को वश में कर लेता है उसके निद्रा भूख प्यास इत्यादि अठारह दोष जोकि संसार के मूल हैं, सभी नष्ट हो जाते हैं इनका नाम-निशान भी नही रहता है। उसको चतुर्थ पुरुषार्थ हस्तगत हो जाता है ॥१७५॥

वह नवमाक सिद्धि किस प्रकार होती है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि—इस भूवलय ग्रन्थ मे द्रव्य प्रमाणानुगम अनुयोग द्वारान्तर्गत जो करण सूत्र है उसका पुन-पुन अभ्यास करके उपस्थित कर लेने से नवमाक की सिद्धि हो जाती है। और वह पुरुष विश्व भर में होने वाली सातसौ अठारह भाषाओं का एक साथ ज्ञाता हो जाता है। तथा तीन सौ त्रेसठ मतान्तरो का भी जानकार बन जाता है ॥१७६॥

इस संसार मे यह जीव अनादि काल से अशुद्ध अवस्था को अपनाये हुए है, अत तीन काल मे एक रूप से बहने वाले अपने सहज भाव को न पहिचान कर भयभीत हो रहा है। इसलिए दोनो लोको मे सुख देने वाली अविनश्वर सर्वार्थ सिद्धि सम्पदा को प्राप्त करा देने वाले परिशुद्ध स्वभाव को प्राप्त नही किया है। इस भूवलय के द्वारा नवमाक-सिद्ध प्राप्त हो जाता है ॥१७७॥

विवेचन—परमाणु से लेकर तीनो वातवलय तक रहने वाले छ द्रव्यों से परिपूर्ण भरा हुआ क्षेत्र का नाम ही पृथ्वी है। एक परमाणु को जानने के लिए अनाद्यनन्त काल का परिचय कर लेने की भी जरूरत है। एक परमाणु के परिचय कर लेने मे अनाद्यनन्त काल बीत जाना है तो असख्यात अथवा अनन्तानन्त परमाणु के परिचय कर लेने मे कितना समय लगेगा ? इस प्रश्न के बारे मे श्री कुमुदेन्दु आचार्य से असख्याता सख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के अर्द्धच्छेद शलाका से भी इस परमाणु के कथन को घटा नही सकते ऐसा कहा है। इस प्रकार का महान ज्ञान इस भूवलय मे भरा हुआ है। उस सभी ज्ञान को एक क्षण मे कह देने वाला केवल ज्ञान कितना बड़ा होगा ? इस विचार को आप लोग ही करें।

एक व्यापारी थोडा सा रुपया खर्च करके बहुत सा लाभ प्राप्त करलेता है उसके समान तीन काल और तीन लोक के ज्ञान को प्राप्त कर लेने के लिए जा थोडी सी तपस्या की जाती है उससे महान लाभ होता है, रचमात्र भी नुकसान नही है ॥१७८॥

इन सब में जो सच्चा लाभ है वह एक अरहत भगवान को ही प्राप्त हुआ है, ऐसा समझना चाहिए। अर्थात् वही सच्चा लाभ है ॥१७९॥

दया धर्म को बेचकर उसके द्वारा आया हुआ जो लाभ है वही यथार्थ लाभ है ॥१८०॥

दया धर्म का महत्व—

एक दयालु धर्मात्मा श्रावक अपने काम के लिए परदेश जा रहा था। बीच में भयानक जगल पडा गर्मी के दिन थे और उस जगल की जितनी घास थी वह सभी सूख गई थी। भयानक जगल होने से उस में बहुत झाड और झाडिया उपजी हुई थी। इसलिए उस जगल मे बहुत बड़े-बड़े हाथी और अन्य अनेक जानवर इत्यादि रहते थे। एकाएक जंगल में चारो ओर आग लग गई, आग लगते ही उस जगल में रहने वाले जीव अग्नि के भय से भयभीत होकर चिल्लाने लगे। उस चिल्लाने की आवाज उस दयालु श्रावक ने सुनकर देखा तो चारो ओर आग लगी हुई थी। और सभी प्राणी भयभीत होकर चिल्ला रहे हैं। तुरन्त ही वह दयालु श्रावक पहुचकर उन सभी प्राणियो को बचाने का उपाय सोचने लगा। अर्थात् अग्नि को बुझाने की युक्ति सोचने लगा परन्तु गर्मी के दिन होने के कारण वह अग्नि बढ़ती जाती थी बुझने की कोई उम्मेद नही थी। वह विचारता है कि अगर इस समय पानी बरस जाय तो अग्नि ठण्डी हो जायगी अन्यथा नही परन्तु आकाश साफ अर्थात् एकदम निर्मल दीख रहा है, पानी बरसने की कोई उम्मीद नही है। अब क्या उपाय करना चाहिए ऐसा मनमे सोचते हुए उसने विचार किया कि इस अग्नि को शान्त करने के लिए एकान्त मे बैठकर प्रज्ञप्ति मत्र का जाप जपना चाहिए ऐसा मन मे निश्चय करके एक झाड के नीचे बैठकर एकाग्रता से मन्त्र का जाप करने लगा। ऐसे जाप करते-करते बहुत से जाप किये तब तुरंत ही बादल होकर खूब पानी बरसा जिससे अग्नि ठण्डी हो गयी और सभी जीव अपनी २ जान बचाकर शात चित्त मे विचरने लगे। परन्तु दयालु श्रावक अभी तक जाप में ही था जाप करते-करते उसी जाप मे निमग्न होकर अपने शरीर को भूल गया। उसे तुरन्त सच्चा ज्ञान प्राप्त हुआ और उसने दिगम्बर दीक्षा ग्रहण करली। तत्काल कठिन तप के द्वारा उसने केवल ज्ञान को प्राप्त कर लिया। यही परजीव पर दया करने का फल है।

यह ऊपर लिखे अनुसार गुरु हंसनाथ का सन्मार्ग है।१८१।

सभी तीर्थंकर परम देवो ने इसी मार्ग को अपनाया है।१८२।

यह सदाकाल रहने वाला आत्मा का सौभाग्य रूप है।१८३।

यही धर्म विश्वकल्याणकारी होने से प्राणी मात्र के द्वारा आराधना करने के योग्य है। १८४।

यह अविच्छिन्न गुरु परम्परा से प्राप्त हुआ आदि लाभ है।१८५।

यही धरसेन गुरु का अग है। अर्थात् काल दोष से जब अग ज्ञान विछिन्न होने लगा तब श्रुत की रक्षार्थं अपने अन्तिम समय में बुद्धि विचक्षण श्री भूतवलि और पुष्प दन्त नामक महर्षियो की साक्षी देकर श्रुत देवता की प्रतिष्ठापना जिन्होंने की थी उन्ही गुरु देव का अनुयायी यह भूवलय है।१८६।

जिन लोगो ने अपने जन्म में सत्य श्रुत का अध्ययन करके प्रसन्नता पूर्वक जन्म बिताया उन महापुरुषो कामूल भूत गणित भग यह भूवलय है।१८७।

युद्धार्थी शूरवीर को जिस प्रकार कवच सहायक होता है उसी प्रकार परलोक गमन करनेवाले महाशय के लिए परम सहायक सिद्ध कवच है।१८८।

हरि अर्थात् सबको प्रसन्न करने वाला और हर अर्थात् दुष्कर्मो का नाश करनेवाला इनके द्वारा सिद्ध किया हुआ सिद्धान्त ग्रन्थ भी यही भूवलय है।१८९।

अरहन्त पदो की आशा को पूर्ण करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।१९०।

रत्नत्रय के प्रकाश को बढाने वाला तथा सत्यार्थ का अनुभव करा देने वाला एव सात तत्वो का समन्वय करने वाला तत्वार्थ सूत्र ग्रन्थ है। उस तत्वार्थ सूत्र ग्रन्थ को इतर अनेक विषयो के साथ मे सगठित करते हुए इस भूवलय ग्रन्थ मे भगवान के मुख तथा सर्वाङ्ग से निकली हुई वाणी का सम्पूर्ण सार भर दिया गया है। इसलिए यह ग्रन्थ दिव्य-ध्वनि स्वरूप है ।१९१-१९२।

यह छठवा ई इ नामक अध्याय है। इस अध्याय में सम्पूर्ण सिद्धान्त भरा हुआ है। इसलिए इसमे जो पद का अक्षर, अक्षर का अङ्क, अङ्क की

रेखा, रेखा का क्षेत्र, क्षेत्र का स्पर्शन, स्पर्शन का काल, काल का अन्तर, अन्तर का भाव और अन्तिम मे अल्प बहुत्व इन अनुयोग द्वारो से उस महार्थ को मैंने बन्धन बद्ध किया है अत जैन धर्म का समस्तार्थ इसमे है, जोकि मानव मात्र का धर्म है।१९३-१९४।

इस ग्रन्थ का अध्ययन करने से सम्पूर्ण मानवो मे परस्पर एकता स्थापित होती है।१९५।

जिस एकता मे उत्तरोत्तर प्रेम बढता जाता है।१९६।

एकता और प्रेम के बढने से सभी के दुष्कर्मो का नाश हो जाता है।१९७।

जैन शास्त्र किसी एक सम्प्रदाय विशेष के ही लिए नही किन्तु सबके लिये, है ऐसा श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं।१९८।

जैन धर्म में विशेषत विनय धर्म प्रधान है जोकि सबके प्रति समानता का पाठ सिखलाता है। १९९।

सब देशो में रहने वाले तथा किसी भी प्रकार की भाषा के बोलने वाले सभी मनुष्यो के साथ में यह सम्बन्ध रखता है।२००।

यह धर्म पंचम काल के अन्त तक रहेगा।२०१।

छठे काल में धर्म नहीं रहेगा।२०२।

ऐसा कहनेवाले अङ्ग धरो का ज्ञान ही यह भूवलय ग्रन्थ है।२०३।

दूसरे इ अध्याय मे प्रतिपादन किये हुए धर्म का आराधन यदि सुगम नहीं है तो दुर्गम भी नही है किन्तु कुछ थोडा प्रयास करने पर प्राप्त हो जाता है।२०४।

प्रकाशमान हुआ द्वैत, अद्वैत और अनेकान्त इन तीनों का सूत्र ग्रन्थ इस अध्याय में अङ्कित है। इस अध्याय में आठ हजार सात सौ अड़तालीस श्रेणी में ब्राह्मी देवी का अक्षर और सुन्दरी देवी के इतने ही अंक हैं।२०५।

आगम के जानकार लोग इस ई इ अध्याय में से रागवर्द्धक और वैराग्य वर्द्धक दोनो ही प्रकार का मतलब ले सकते हैं। इसी अध्याय के अन्तर में ग्यारह हजार नौसौ अट्ठासी अ काक्षर रखनेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है।२०६।

ई इ—८७४८+अन्तर ११९८८=२०७३६

अथवा आ—ई इ तक ८४८५२+२०७३६= १०५५८८

ऊपर से नीचे तक प्रथमाक्षर जो प्राकृत गाथा है उस गाथा का अर्थ यहा दिया जाता है—

भगवान के मुखारबिन्द से निकले हुए वचनात्मक यह भूवलय ग्रन्थ होने मे बिलकुल निर्दोष है और शुद्ध है। इसलिए इसका दूसरा नाम महर्षियों ने आगम ऐसा बतलाया है। यह भूवलय ग्रन्थ समस्त तत्वार्थो का प्रतिपादन करने वाला है।२०६।

इसी के बीच मे मे जो सस्कृत भाषा निकलती है उसका अर्थ लिखा जा रहा है—

(भव्य जीव मन प्रतिवोध) कारक होता है, पुण्य का प्रकाशक होता है, पाप का नष्ट करने वाला है ऐसा यह ग्रन्थ है जिसका नाम भूवलय है इसका मूल ग्रन्थ —

सातवां अध्याय

उ॰ पपाद शाय्येय मारणान्तिकवाद । सफलव त्रस कोकदन् क॰ दुपरिम लोक पूरणदळतेयोळिह् । उपमेय त्रस नालियक्क ॥१॥
व॰ रव समुद्घातदोळुलोकपूरण । सरिदोरि बरलात्म रूप॥ दो र्॰ एताग अ इ उ ऋ ळ् ए ऐ ओ औ सर्व । बरेयलागद 'द' भूवलय ॥२॥
वी॰ द वैय्खरियोळु साधिसिदात्मन । साधनेयडगिदयोग॥ मोदव ता॰ गुव स्याद्वाद सिद्धिय । आदिगनादिय योग ॥३॥
द॰ रुशनशक्ति ज्ञानद शक्ति चारित्र । वैरसिद रत्नत्व र॰ व ॥ बरेयबारद बरेदरु ओदबारव । सिरिय सिद्धत्व भूवलय ॥४॥

परिशुद्धरात्म भूवलय (निर्मलद) ॥५॥ अरहन्त रूपळिदिरुव ॥६॥ गुरुवु सद्गुरुवाद नियम ॥७॥
हरि विरचिगळ सद्वलय ॥८॥ निरुपमवागिह् उपमा ॥९॥ सिरि सिद्धरूपिन परम ॥१०॥
अरहंत राशा भूवलय ॥११॥ परमामृतसिद्धनिलय ॥१२॥ पुरुदेवनोलिदश्रीनिलय ॥१३॥
हर सिव मंगल वलय ॥१४॥ बरेयलागद चित्र सरल ॥१५॥ करुणेय फलसिद्धि निलय ॥१६॥
परिपूर्ण सुखदादि वलय ॥१७॥ गुरुपरम् परेयाशा वलय ॥१८॥ धरसेन गुरुविन निलय ॥१९॥
परमात्म रूपिन निलय ॥२०॥ वरुवकालदशान्ति निलय ॥२१॥ इरुव वस्तुवनोळ्प बुद्ध ॥२२॥
मरणवागद जीव वरद ॥२३॥ परमात्म सिद्ध भूवलय ॥२४॥

मा॰ न मायवु लोभ क्रोध कषायगळ् । तानव्प्अ हदिनारु भन्ग ह्॰ तानल्लि बिट्टोडे निजरूपदोळात्म । आनन्द रूपनागुवुदम् ॥२५॥
र॰ त्न मूरर रूप धरिसिद आ शुद्ध । नूत्नान्तरन्गद वर श्॰ री ॥ यत्नदिम् बन्द सद्धर्म साम्राज्य । नित्यात्म रूपवी लोक ॥२६॥
ण॰ वर्दक परिपूर्ण वागिसिदरहन्त । अवनिगे सिद्धत्व री॰ ति॥ अवतारदादिये लोकाग्र मुकतिय । नवमान्क प्राप्तिय लोक ॥२७॥
न्॰ रनु लोकद रूपपर्याय होन्दलु । हरि हर जिनरेम्ब सर स॰ तिरेयग्र लोकाग्र मुक्तिय साम्राज्य । हरुषद लोकपूरणवु ॥२८॥
ति॰ रेय रूपनु होन्दिदात्मन पर्याय । विरुवाग हदिनाल्कु स र्॰ व ॥ वर साघु पाठक आचार्य ई मूरु । गुरुगळंकवु नवपदवु ॥२९॥
यं॰ शदग्र सर्वस्ववा ससुद्घात । दिशेयग्रवेनिसिद सर व॰ यशवेल्ल ओम्दाद मूर्तिये जिन बिम्ब । हसनाद बिम्बवाङ्मयवु ॥३०॥

वशवाद सद्धर्म लोक ॥३१॥ यशद दिव्यध्वनि शास्त्र ॥३२॥ रससिद्धि नवकारर्थ ॥३३॥ विषहर सौख्यांक नवम ॥३४॥
असमान सिद्ध सिद्धान्क ॥३५॥ कुसुमायुधन गेल्दन्क ॥३६॥ यसश्वतिदेविय पतिय ॥३७॥ यशद सुनन्देय पतिय ॥३८॥
रसऋषि व्रुषभनाथांक ॥३९॥ वशवादमृरुत निभान्क ॥४०॥ असद्रुशअजित नाथांक ॥४१॥ वशदशम्भवर क्रियांक ॥४२॥
रस अभिनन्दन सुमित ॥४३॥ वशद पद्म प्रभ विमल ॥४४॥ स सुपार्श्व चन्द्रप्रभांक ॥४५॥ वश पुष्पदन्त शीतलर ॥४६॥
सश्रेयाम्स वासु पूज्यांक ॥४७॥ ऋषि विमलानन्त धर्म ॥४८॥ वश शान्ति कुन्थु श्री अरह ॥४९॥ यशमल्लि मुनिसुव्रतांक ॥५०॥
यश नमि नेमि सुपार्श्व ॥५१॥ रस ऋषि वर्धमानान्क ॥५२॥ यशविन्तु वर्तमानांक ॥५३॥ यशदिप्पत्नाल्कु मत्तुमह ॥५४॥
विषहर काव्यदोळ् बहुदु ॥५५॥

पं॰ द भूतकालद् इप्पत्नालवरन्क । पद श्री शान्ति सर्व ज॰ ञ ॥ मुद इप्पत्मूरु अतिक्रान्त श्री भद्र । विवरंक वेप्पत्तएरडु ॥५६॥

रि॰ षि इप्पत् ओम्दु श्री शुद्धमति देव । रस ज्ञानमति सुज् अ॰ देव॥ वशदइप्पत् अन्कक्रुरुणहत् ओम्बतम् । यशोधर हदिनेन्दरंक ॥५७॥
ण॰ वपद्म विमलांक हदिन्एळु परमेश । अब्र हदिनार् एम्ब दे वा॰ ॥ नवमत्तु आरम्क जिनह ज्ञानेश्वर । नव ऐदु उत्साहरंक ॥५८॥
व॰ नवर वन्दित शिवगण हदिम्ऊरु । घन कुसुमान्जलि दे वा॰ जिनरु हन्एरडंक सिन्धवु हन्ओम्दु । जिनरु सन्मतियु हत्अन्क ॥५९॥

जिनरु अन्गोर ओम्बत्तु ॥६०॥ जिनरु उद्धररु एन्ट्न्क ॥६१॥ जिन अमलप्रभरेळु ॥६२॥
घन सुदत्त् आन्कवु आरु ॥६३॥ जिन श्री धरान्कवु ऐदु ॥६४॥ जिन विमल प्रभ नाल्कु ॥६५॥
जिन देव साधु मूरन्क ॥६६॥ घन सागर एरडन्क ॥६७॥ जिनरु निर्वाण ओम्दन्क ॥६८॥
अनुगाल विनितादअक ॥६९॥ जिन् भूत वर्नमानांक ॥७०॥ एनुवाग बन्द भूवलय ॥७१॥

त॰ नुवळिदतनुव गेल्दन्क विन्तागे । तनुवलिववरन्कम् स॰ व नव॥ एनुविप्पत्नाल्वरनागत तीर्थंक। जिन सिद्धनाम स्वरवप ॥७२॥
स॰ वण महापद्म मोदलागे सुरदेव । जिन एरडे सुमुपार्श्व ॥ त॰ नि मूरु स्वयप्रभ नाल्कु सर्वातम भू । तनुजिन ऐदबरन्क ॥७३॥
लो॰ कय्कर् देवपुत्राख्य आरन्कवु । आ कुल पुत्रर् सेरुवु दु॰ ॥ श्री कर एळु महोदन्क एन्टागे । श्री कर नवम प्रोष्ठिलरु ॥७४॥
य॰ श जयकीर्ति हत्ता मुनि सुव्रत ॥ ऋषिहन् ओम्दु एन्दुक् त॰ अ । यश अरद्वादश पुष्पदन्तेशरु । वशवागे हदिमूररन्क ॥७५॥

रस चतुर्दश विष्कषाय ॥७६॥ यश हदिनय्दु श्री विपुल ॥७७॥ वश हदिनारु निर्मलरु ॥७८॥
रिषि चित्रगुप्त सप्तदश ॥७९॥ यशहदिनेन्दु समाधि ॥८०॥ वश गुप्त श्री जिनरन्क ॥८१॥
रस्वयम्भू हत्ओम्बत्अक॥८२॥ यश अनिव्रुत्त इप्पन्तु ॥८३॥ रस विजयरु इप्पत् ओम्दु ॥८४॥
यशद विमल इप्पत् एरडु ॥८५॥ वश इप्पत्मूरु देवपाल ॥८६॥ असमान महानन्त वीर्य ॥८७॥
रस अनागतइप्पत् नाल्कु ॥८८॥ कुसुम कोदन्डदल्लणर ॥८९॥ रसदेप्पत् एरडन्क नेवम ॥९०॥
दिशेयन्क ओम्बत्तु काव्य ॥९१॥ रस काल तीर्थकरन्क ॥९२॥ यशदन्क काव्य भूवलय ॥९३॥
वशमूरु मूरळोम्बत्तम् ॥९४॥ बेसदन्क काव्य भूवलय ॥९५॥

पू॰ र्वापाराजित कर्मव केडिसिद । पूर्वदिप्पत्नाल्कु इनि त॰ ॥ निर्मलदीगण इप्त्नाल्वअन्कद । धर्म मुन्दण इप्पत्नाल्कु ॥९६॥
र॰ सद ई कालद श्रीतीर्थनाथर । रस कूडदलि एरडेळु॥ बेम र॰ तुनत्रय मूरु मूरल् ओम्बत्तु । वशवदे मूरु कालान्क ॥९७॥ २४×३=७२
णो॰ रदे ई मूरु गुणकारदिम्बन्द । हारमणियनुगवद ॥ सार ग॰ रन्थद हदिनाल्कु गुणस्थान । दारदगुणकारदिन्द ॥९८॥ ३×३=९
ण॰ वपद प्राप्तिय गुणकार मग्गियिम् । सविहदिनाल्कन्क र सदिम् ॥ सवनिसेसाविरदेन्दुदलद पद्म । दवतारदक्षरदंक ॥९९॥

[७३×१४=१००८]

ग॰ मनिसि साविरदेन्दु दलगळुळ्ळ । कमलगळ् एरड्उ काल् न॰ नूरु ॥ क्रमपाद ओम्दरिम् गुणिसे सोन्नेयु आ, विमल सोन्ने एन्टु आरेरडेरड्उ ॥१००॥ [१००८×२२५=२२६८००]

बो॰ ध विनाशनवादओम्देपाद । दाशक्तियतिशयपुण्य ॥ राशिय य॰ रतर गणितदोळात्मन । आ सिद्धरसव माडुवुदु ॥१०१॥
आशेयनेल्ल कूडिपुदुम् ॥१०२॥ राशिकर्मव कळेयुवुदु ॥१०३॥ ओशन माडुत बहुदु ॥१०४॥ लेसनु साधिसलहुदु ॥१०५॥

राशि ज्ञानव होरडिपुदु ॥१०६॥ श्री सिद्ध पदवसाधिपुदु ॥१०७॥ राशियनोमदुगूडिपुदु ॥१०८॥ ईशत्ववनु साधिपुदु ॥१०९॥
ईषत्प्राग् भारकेय्दिपुदु ॥११०॥ राशि सूक्ष्मत्व साधिपुदु॥१११॥ आशेयव्याबाधवहुदु ॥११२॥ नाशत्वेल्लगेल्वुदु ॥११३॥
ओषध रूप वागिपुदु ॥११४॥ ओषधवमृत वागिपुदु ॥११५॥ राशिय वगाहवागिपुदु ॥११६॥ लेसिनगुरु लघुवहुदु ॥११७॥
लेसनेल्लरिगे तोरुवुदु ॥११८॥ आ शक्तियनुभव काव्य ॥११९॥ ओशक्तियाद्यन्कवलय ॥१२०॥ भूवरणवाक्य भूवलय ॥१२१॥
के॰ ळुव भव्यर नालगेयग्रद । सालिनिम् परितन्दुदनु ॥ काल क॰ लापद अरवत्तु साविर । लीलेयशन्के गुत्तरवम् ॥१२२॥
व॰ रदवागिसि अतिसरलवनागिसि। गुरु गौतमरिन्द हरिसि॥ स र्॰ वान्कद् अरवत्नाल्क् अक्षरदिन्द । सरिइलोक आरु लक्षपळोळ् ॥१२३॥
लि॰ पियु कर्माटक वागलेबेकेम्ब । सुपवित्र द्वारिय तोरि ॥ मप ता॰ ळलयगूडिद् आरुसाविर सूत्र । दुपसम्हार सूत्रदलि ॥१२४॥
णो॰ आगमद्रव्य शास्त्र वागिसिदन्क । ई आगम द्रव्य व र॰ द ॥ ऊ आगमद दिव्याक्षर स्वरदोळु श्री आगमद भूवलय ॥१२५॥
ता आगतद सिद्धान्त ॥१२६॥ को आगमवेनलेके ॥१२७॥ णो आगम भाव काल ॥१२८॥ णो आगमद (अनन्त) अन्तरवु ॥१२९॥
णो आगमतद्व्यतिरिक्त ॥१३०॥ श्री आगमक्षेत्र स्पर्श ॥१३१॥ णोआगमाल्प वहुत्व ॥१३२॥ श्रीआगतद सिद्धांत ॥१३३॥
णो आगम बंध द्रव्य ॥१३४॥ आ आगमद अबंध ॥१३५॥ श्री आगम सम्ब्यदन्क ॥१३६॥ श्री आगतवि वन्दिरुव ॥१३७॥
ई आगमद भूवलय ॥१३८॥
अ॰ ष्टमहाप्रातिहार्य वय्भववे । अष्टमहा पाडिहेरा ॥ उस ह॰ जिनेन्द्रादिगळिगे केवलज्ञान । वेसेद अशोकव्रुक्षगळ ॥१३९॥
व॰ रद नामगळोळु न्यग्रोधवु ओमदु । वर सप्तपर्णान्क ग॰ ळु ॥ एरडागेशालसरलप्रियन्गु प्रियन्गुम । बरलु मूर्नाळ्कल्वारु ॥१४०॥
ल॰ क्षणवा शिरीषवु एळु श्रीनाग । व्रुक्ष अक्षवु धूलियव ण॰ ॥ व्रुक्ष पलाश एन्टोम्बत्तु हत्अंक । लक्षिसे हन्नोम्दरम्क ॥१४१॥
म॰ रळि पाटलवु नेरिल दधिपर्णवु । वर नन्दिहन्एरड्अ ध॰ र ॥ सरणि हदिमूर्हदिनाल्कूहदिनय्दु । बरलु तिलक हदिनारु ॥१४२॥
बि॰ ळिमावु कनकेलि सम्पगे बकुल । वळिहन्एल्हदिनेन्दु ॥ सळ र॰ स विहत्तोम्बत्इप्पत्तु मेषश्रुन्ग । आळिमलेयोळग् इप्पत्ओम्दु ॥१४३॥
य॰ श धूलियुधव शालविन्तिवुगळ । वशइप्पत् एरडदु वर दे॰ रसद् इप्पत्मूरिप्पत्नाल्कू एनुवन्क । रस सिद्धिगावि अशोक ॥१४४॥
यशद मालेगळ तोरणदि ॥१४५॥ असमान घटेय सरदिम् ॥१४६॥ वश मन मोहक वेनिप ॥१४७॥
असमान रमणीयवेनिसि ॥१४८॥ यशदन्ना राग पल्लवदि ॥१४९॥ यशवे पुष्प सम्कुलदि ॥१५०॥
वशवप्प रससिद्ध हूवु ॥१५१॥ रसमणि गाविय हूवु ॥१५२॥ यशस्वति वेविय मुडिपु ॥१५३॥
कुसुम कोदन्डनम्बेच्चु ॥१५४॥ असदृश कामित फलद ॥१५५॥ यशद् बळ्ळिगळ हुट्टंग ॥१५६॥
विषहरवाद अमृतवु ॥१५७॥ कुसुमाजि मुडिदलन्कार॥१५८॥ रस घट्टिगादिय भन्ग ॥१५९॥
यशद कोम्बेगळ भूवलय ॥१६०॥
स्॰ वणत्वसिद्धिय शोकवादिय दिव्य । नवव्रुक्ष जातीयव् वा॰ द ॥ अवुगळु तमगिन्त हन्एरडष्टुद्द । नव रत्न वर्णशोभेगळ् ॥१६१॥
व्॰ र्णनवेके देवेन्दरनुद्यानदि । निर्वाहवागद् अगिडदे ॥ ह॰ र्षवनीवुदेनदेनलेके साकदु । निर्मल तीर्थमन्गलव ॥१६२॥
व॰ रद हस्तद तेरनाद छत्र त्रय । अरहंत शिरदलिर् प॰ आग॥ हरुषवचन्द्रमण्डल मुक्ताफलज्योति। वेरसि निंविहुदु शोभेयलि।१६३

ज* यव सिम्हासन नालमोर्गविदिह् । नयद निर्मलमार्गंदि र* विम्। जयरत्न स्फटिकगळ् केसिरुवंकदे । नयप्रमाणगळु श्रोम्द् श्रागि ॥१६४॥
गो* पुरदा हिन्दे इरुव सिम्हासन । रूपळिदिह् ई गणित ॥ श्रीप ति* यडियु सोन्किद दिव्य मंगल । श्री पाहुडव शोभेयलि ॥१६५॥

कोपवळिव सिम्हे मुखगळ् ॥१६६॥ तापप्रतापद् अहिम्से ॥१६७॥ रूपदोळ् शौर्य प्रसिद्धि ॥१६८॥
व्यापित भव्याम्जहृदय ॥१६९॥ भूपरनेरगिप शक्ति ॥१७०॥ श्री पद्धतिय पाहुडवु ॥१७१॥
आ पाहुडवे प्राम्रुतवु ॥१७२॥ रूपस्थ वीररासनवु ॥१७३॥ दीपद ज्योतियादि भंग ॥१७४॥
रूपनेल्लरिगे तोरुवुदु ॥१७५॥ श्री पवदंग तोरुवुद ॥१७६॥ श्री पद्धतियावयंक ॥१७७॥
यापनीयर दिव्य योग ॥१७८॥ कापाडुवुदु शान्तियनु ॥१७९॥ रूपागिबहुदु भारतिगे ॥१८०॥
श्री पदवलय भूवलय ॥१८१॥ रूप्य के बहुदु भारतदि ॥१८२॥

ह्* रुषद स्फटिक सिम्हासन प्रतिहार्य । सरि मुन्दे देवर ग* णवु॥ निरुतवु कयमुगिदिहप्रपुल्लितमुख । सरसिजदिन्द सुत्तिहुद ॥१८३॥
श्रो* डुत बन्निारि दर्शनक् एन्नुवश्र । हाडो इदेम्ब दुन्दुभि ण* ॥ पाडिन गम्भीर नादविहुदु मुन्दे । नाडिन हूगळ मळेयु ॥१८४॥
दि* वदिन्द बीळ्वुदु वर सूर्य शोभेय । सविय भामण्डल बन् ध* नव पूर्णचन्दर अथवा शन्खदन्तिह् । सविय् अरवत्नाल् चामरवु ॥१८५॥

नवस्वर ह्स्व दीर्घ प्लुत ॥१८६॥ अवर वर्णगळ् इप्पत् ऐदु ॥१८७॥ सवियह वेन्दु व्यन्जनवु ॥१८८॥
सव्अम् अहक्ह यह योगवाह ॥१८९॥ विवरवदेन्तेम्ब शन्के ॥१९०॥ अवतार दुत्तर विन्तु ॥१९१॥
नव स्वरवर्णव्यन्जनद ॥१९२॥ विवरद् योगवाहगळिम् ॥१९३॥ सविय्ओम्दु अक्षचामरवुम् ॥१९४॥
अवुगळु अरवत्त नाल्कु ॥१९५॥ अवनेल्ल कूडलु ओम्दु ॥१९६॥ इवु अष्ट महाप्रातिहार्य ॥१९७॥
नवम बन्धद मंगलद ॥१९८॥ विवर मंगलद प्राभृतवु ॥१९९॥ कविगे मंगलद् आदि वस्तु ॥२००॥
शिव चन्द्रप्रभ जिनरन्क ॥२०१॥ नवमांक सिद्ध सिद्धांक ॥२०२॥ अवतार कामद वहुदु ॥२०३॥
शिव सव्व्य रससिद्ध काव्य॥२०४॥ सवणार्ग अरवत्तनाल्कु ॥२०५॥ नवकार मंगल ग्रन्थ ॥२०६॥
भवहर सिद्ध भूवलय ॥२०७॥ नव मन्मथरादियन्क ॥२०८॥ नवब्राम्हिलिपिय भूवलय ॥२०९॥

त* स लोकनालियोळडगिह भव्यर । वशगोन्ड सम्यक्तवद र* स ॥ यशकाय कल्पद रससिद्धि हूगळो । कुसुम मंगलद पर्याय ॥२१०॥
स* मतेयोळक्षरदकव तोरुव । गमकद शुभ भद्रअ वर दे* क्रमव सक्रमगेय्द चन्द्रप्रभ जिन । नमिसुव भक्तर पोरेवो ॥२११॥
ण* शवागदलिह् अक्षरांक वनित्तु । आ सिद्ध पदविगेरिसु वा* ॥ राशियन्कवदनु भाषामृवत्तरोळ् कट्टि । दाशेय पाहुड ग्रन्थ ॥२१२॥
ली* लाक ओम्बत्उ ओम्दु सोन्ने एनूटागे । मालेयल् अन्तर ह* रुष॥ दोलेयोळ्ओम्दुमूरोम्दुमूरोम्दुम्। बाळ्'उ'काव्य मू(सिरव)वलय२१३

उ ८०१९+अन्तर १३१३१=२११६०=९, अथवा अ–उ १०,५५,८८+२११५०=१,२६,७३८ ।

पहले श्लोक की श्रेणी से नीचे तक पढते जाय तो प्राकृत निकलती है ।

❖ उववाद मारणंतिय परिणदथसलोय पूरणेणगदो ।
केवलिणो अवलंबिय सव्वजगो होदित्तसणाली ॥

❖ बीच मे से पढने से सम्कृत भाषा निकलती है–

कर्तारह् श्री सर्वज्ञदेव स्तदुत्तर ग्रन्थकर्तारह् अपरार देवाहः ।
प्रति गणधर देवाह्...........।

सातवा अध्याय

सम्यक्त्व प्राप्त होने के बाद जीव स्वर्ग मे उपपाद शय्या पर जन्म लेने से पहले मारणांतिक रूप में त्रस नाली मे गमन करते हैं। केवली भगवान के लोकपूरण समुद्घात का अवलम्बन करके इस त्रसनाली को नाप सकते हैं ॥१॥

जिस समय केवली भगवान समुद्घात मे स्थित होते हैं तब एक जीव के परमोत्कृष्ट विस्तृत प्रदेशो में आत्मरूप दिखाई देता है। एक जीव की अपेक्षा इससे अधिक विस्तृत जीव प्रदेश नही होते इसी को विराट् रूप पुकारते है। "अ इ उ ऋ ल् ए ऐ ओ औ" इन स्वरो के उच्चारण समय मे सम्पूर्ण भूवलय का ज्ञान हो जाता है। इस बात का "उ" अध्याय मे उल्लेख न आने पर भी यहां लिखा है ॥२॥

अभी तक आत्मा सिद्ध करने के लिए वाक् चातुर्य का प्रयोग करना पडता था, पर अब वह वाक् चातुर्य बन्द हो गया है। अब स्याद्वाद सेआत्मा को सिद्ध किया जाता है। यह आत्मा आदि भी है और अनादि भी है ॥३॥

दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनो की सम्मिलित शक्ति को रत्नत्रय शक्ति या आत्म-शक्ति कहते हैं। इन तीनो से उत्पन्न हुए शब्द को लोकपूर्ण समुद्घात के समय में नही लिखा जाता । कदाचित् लिखा भी जाय तो पढ नहीं सकते। ऐसे सम्पत्ति शाली सिद्धत्व की प्रथम सिद्धि यह भूवलय है ॥४॥

ऐसे परिशुद्ध आत्मा के लिए यह भूवलय ग्रन्थ है ॥५॥

अब तक सिद्ध होने मे पहले तीर्थंकर अवस्था थी अब वह नष्ट हो गई ॥६॥

अरहन्त थे तब तक सबके गुरु थे अब सद्गुरु बन गये ॥७॥

हरि और विरंचि शरीरवो के द्वारा भी आराधना करने योग्य सद्वलय हैं ॥८॥

इस तरह से निरुपमहोकर भी उपमा के योग्य है क्योकि यह त्रसनाली के भीतर है और सिद्ध परमात्मा रूप होने वाला है ॥९-१०॥

अरहन्त भगवान जिस अवस्था को प्राप्त करने के सम्मुख थे उस अवस्था रूप यह भूवलय है ॥११॥

परमामृत रूप सिद्ध भगवान का यह आदि स्थान है ॥१२॥

सबसे पहले आदिनाथ भगवान ने इस निलय को अपनाया था ॥१३॥
यह हर तथा शिव का भी मङ्गल वलय है ॥१४॥
यह चित्र लिखने में नहीं आ सकता फिर भी सरल है ॥१५॥
यह निलय दया धर्म का फल सिद्धि रूप है ॥१६॥
परिपूर्ण सुख को देनेवाला आदि वलय है ॥१७॥
गुरु परम्परा का आशा वलय है ॥१८॥
धरसेन गुरु का भी ज्ञान निलय है ॥१९॥
परमात्म स्वरूप का निलय है ॥२०॥
आनेवाले काल का शान्ति निलय है ॥२१॥
सम्पूर्ण वस्तुओ को देखने वाला होने से बुद्ध कहलाने योग्य है ॥२२॥
यह मरण को न प्राप्त होने वाला शुद्ध जीव है ॥२३॥
इस परमात्मा से सिद्ध किया गया हुआ यह भूवलय है ॥२४॥

विवेचन—लोक पूर्ण समुद्घात गत केवली भगवान के स्वरूप का वर्णन यहा तक हुआ। अब आगे अरहन्त भगवान से लेकर सिद्ध भगवान तक का वर्णन करेगे ॥२४॥

क्रोध मान माया और लोभ इस तरह चार कषायें अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और स ज्वलन रूप में परिणत होती हैं अत कषाय के सोलह भेद हो जाते हैं। इन सबके नष्ट होजाने के बाद यह आत्मा अपने आत्म स्वरूप में लीन होकर आनन्द मय बन जाता है ॥२५॥

वह आनन्द रत्नत्रय का सम्मिलित रूप है। जोकि सर्व श्रेष्ठ, नूतनान्तरङ्ग श्री निलय रूप है। आत्मा अपने प्रयत्न पूर्वक सद्धर्म रूप साम्राज्य का आश्रय करते हुए इस रूप को प्राप्त कर पाता है। जब इस रूप को प्राप्त कर लेता है और अपने प्रदेशों के प्रसारण की पराकाष्ठा को यह आत्मा प्राप्त होता है उसी आकार में नित्य रहनेवाला यह लोक भी है ॥२६॥

यह पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ लोक का जो स्वरूप है वह अरहन्त वाणी से निकले हुए नवमांक के समान परिपूर्णतावाला है। जब अरहन्त दशा में यह परिपूर्ण अवस्था प्राप्त हो जाती है उसके अनन्तर यह आत्मा सिद्ध

बन जाती है । अरहन्त अवस्था से जो सिद्ध दशा को प्राप्त होना है उसी का नाम अवतार है । इस प्रकार से आत्मा जब सिद्धावस्था के अवतार को प्राप्त कर लेता है तो नवमाक के जो दो टुकडे हैं वे स्वय आपस में मिलकर शून्य बन गये हो तादृश हो जाता है । जिस शून्य मे सम्पूर्ण लोक समाविष्ट है ।२७।

इस उपर्युक्त दशा को प्राप्त हुआ आत्मा ही हरि, हर, जिन इत्यादि सरस नामो से पुकारने योग्य बनता है क्योंकि इससे वह लोक के अग्रभाग में मुक्ति साम्राज्य को प्राप्त कर लेता है ॥२८॥

जब जीव ने लोक पूरण समुद्घात किया था एव लोक का सर्व स्वरूपबना था तो तेरहवे गुण स्थान मे मिथ्या स्थान मे होनेवाला लब्ध्यपर्याप्त कर निगोदिया जीव जो क्षुद्रभव धारण करता है वह जीव लोक का सर्व जघन्य रूप है और लोक पूरण समुद्घात दशा उसी का अन्तिम (उत्कृष्ट) रूप है जोकि तेरहवे गुण स्थान मय है । अब तक नवपद का जघन्य रूप तीन था जोकि साधु उपाध्याय और आचार्य मय है वह नवमाक आद्य श है ॥२९॥

यह जीव सिद्धावस्था मे न तो क्षुद्र भव ग्रहणकार रूप मे रहता है और न लोक पूरणाकार रूप मे किन्तु किञ्चिदून चरम शरीर के आकार मे रहता है वही जिन विम्ब का रूप है और वह जहा पर जाकर विराजमान होता है वह सिद्ध स्थान ही वस्तुत जिनालय है । उसी सिद्धालय का प्रतीक यह हमारा आजकल का जिनमन्दिर है और उस मन्दिर मे विराजमान जो जिन विम्ब है वह सिद्ध स्वरूप है तथा वैसा ही वस्तुत हमारा आत्मा भी है ॥३०॥

अर्हन्त सिद्ध आदि नवपद की प्राप्ति एक जिनेश्वर भगवान विम्ब से ही होती है । अथवा समस्त सद्धर्म भी प्रसिद्ध होता है और सम्पूर्ण लोक का परिज्ञान होता है ॥३१॥

एक जिनेश्वर बिम्ब के दर्शन से सम्पूर्ण दिव्य ध्वनि का अर्थ प्राप्त होता है ॥३२॥

इस ससार में रस सिद्धि ही सम्पूर्ण सिद्ध रूप है और वही नवकार मन्त्र का अर्थ है तो भी परमार्थ दृष्टि से देखा जाय तो नवकार मन्त्र का अर्थ आत्मसिद्धि है और वह जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के दर्शन से होती है ॥३३॥

यही विषय रूप विष का नाश करके सुख उत्पन्न करनेवाला नवमाक है । अर्थात् जिन विम्ब का दर्शन करने से सब तरह का सुख होता है ॥३४॥

उपर्युक्त सिद्धाक यानी सिद्ध दशा जो है वह अनुपम है इसकी बराबरी करने वाली चीज दुनिया मे कोई नहीं है ॥३५॥

काम देव को भी जिसने जीत लिया है ऐसा यह अंक है ॥३६॥

विवेचन—अब आगे जिस-जिस नाम पर जिन बिम्ब होता है उस बात को बतलावेंगे—

यशस्वती देवी के पति और सुनन्दा देवी के पति श्री ऋषभदेव का यश गाने वाला १ अङ्क है जो ऋषभदेव महर्षि हैं जिन्होंने सम्पूर्ण प्रजा को सञ्जीवित रहने का उपाय बतलाया था श्री ऋषभनाथ के बिम्ब दर्शन से अमृत यानी मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

अजित नाथ भगवान का जो दूसरा अक है वह भी असदृश्य है । सम्भव नाथ भगवान का तीसरा अक है जोकि दिव्याक है । चौथा अंक अभिनन्दन का, पाचवा सुमतिनाथ का, छठा पद्म प्रभ का, सातवां सुपार्श्वनाथ का, आठवा चन्द्र प्रभ का, नववा पुष्पदन्त का, दसवा शीतलनाथ का, ग्यारहवा श्रेयासनाथ का, बारहवा वासुपूज्य का, तेरहवा विमलनाथ का, चौदहवा अनन्त नाथ का, पद्रहवा धर्मनाथ का सोलहवा शान्ति नाथ का, सत्रहवा कुन्थुनाथ का, अठारह वा अरनाथ का, उन्नीसवा मल्लिनाथ का, बीसवा मुनि सुव्रतका, इक्कीसवा नमिनाथ का, बाईसवा नेमिनाथ का, तेईसवा पार्श्वनाथ का और चौबीसवा अक श्री वर्द्धमान भगवान का है । ये ऋषभादि वर्द्धमानांत अंक है सो सब वर्तमान काल के अक है जोकि चौबीस है । और भी चौबीस अक इस विष हर काव्य मे आने वाले है ।३७ से ५५ तक ॥

अब भूतकाल के चौबीस तीर्थंकरो का नाम बतलाते समय प्रतिलोम क्रम मे कहने पर चौबीसवा भगवान शान्ति है. तेइसवा अतिक्रान्त बाइसवां श्रीभद्र इक्कीसवा श्रीशुद्धमती, बीसवा ज्ञानमति, उन्नीसवां कृष्णमति, अठारहवा यशोधर, सत्रहवा विमल वाहन, सोलहवा परमेश्वर, पन्द्रहवां उत्साह, तेरहवा शिवगण, बारहवां कुसुमाञ्जलि, ग्यारहवा सिन्धु, दसवां सन्मति, नौवा आगर, आठवा उद्धर, सातवा अमलप्रभ, छठवां सुदत्त, पांचवां श्रीधर, चौथा विमलप्रभ, तीसरा साधु, दूसरा सागर और पहिला निर्वाण इस

रीति से चौबीस तीर्थंकर इस भरत क्षेत्र में हुए हैं तथा होते रहेंगे। अबतक भूत तथा वर्तमान भगवानों का कथन हुआ ऐसा कहने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है। ५६-७१ तक।

अब तक मन्मथ को जीतकर अशरीरी होने वाले भूतकालीन भगवान तथा वर्तमान कालीन भगवानों का कथन हुआ। अब मन्मथ को जीतकर अशरीरी बननेवाले आगामी कालीन चौबोस तीर्थंकरो का कथन कर देने से नवमांक पूर्ण हो जाता है ॥७२॥

पहिला महापद्म, दूसरा सूरदेव, नीसरा सुपार्श्व, चौथा स्वयप्रभ, पांचवां सर्वात्मभूत, छठा देव पुत्र, सातवा उदङ्क, आठवा श्रीकद, नवमा प्रोष्ठिल, दशवा जयकीर्ति, ग्यारहवा मुनि सुव्रत, बारहवा अर, तेरहवा पुष्पदत, चौदहवां निष्कषाय, पन्द्रहवा विपुल, सोलहवा निर्मल, सतरहवा चित्रगुप्त, अठारहवां समाधिगुप्त, उन्नीसवा स्वयम्भू, बीसवा अनिवृत, इक्कीसवा विजय बाईसवा विमल, तेईसवा देवपाल, चौबीसवा अनन्त बीर्य, ये भविष्यत काल में होने वाले चौबीस तीर्थंकर हैं। ७३ से ८९ तक।

ये सब तीर्थङ्कर कुसुम बाण कामदेव का नाश करनेवाले होते हैं।७९।

उपर्युक्त तीन काल के तोर्थंकरो को मिलाकर बहत्तर सख्या होनी है जिसको कि जोडने पर (७+२=९) नव बन जाना है ॥९०॥

जिस काल मे तोर्थंकर विद्यमान रहते हैं उमको महापबित्र काल समझना चाहिए। उन तीर्थङ्करो का यशोगान करनेवाला यह भूवलय काव्य है।

नवमाक गणित पद्धति से उपलब्ध होने के कारण इस काव्य को भी नवमाक कहते हैं।

नव का अक विषमाक है जो कि तीन को परस्पर गुणा करने पर आता है। तीन का अक भी विषमाक है जो कि तीनो कालो का द्योतक है एव विषमाक से उत्पन्न होने के कारण इस भूवलय काव्य को विषमाक काव्य भी कहते हैं ॥९१-९५॥

प्रत्येक प्राणी को अपने पूर्वोपार्जित कर्मों का ज्ञान कराने के लिए भूतकाल चौबीसी बतलाई गई है तथा उन कर्मो को किस उद्योग से नष्ट करना है, यह बतलाने के लिए वर्तमान तीर्थंकरो का नाम निर्देश किया गया है। और आगामी काल में समस्त कर्मों को नष्ट करके आप भी उन तीर्थंकरों के समान निरञ्जन बन जावें, इस बात को बताने के लिए भावी तीर्थंकरों का निर्देश किया हुआ है।

३×३ = ९

२४×३ = ७२

ये तीन चौबीसी के मिलकर बहत्तर तीर्थंकर हुये जो कि एक माला के मणियो के समान हैं। इनको यदि चौदह गुण स्थानों के अंकों से गुणा कर दिया जाय तो एक हजार आठ हो जाते हैं, यही एक हजार आठ श्री भगवान के चरणों के नीचे आने वाले कमल के दल, होते हैं। इस १००८ को भी जोड़ दें तो नव हो जाता है। भगवान जब बिहार करते हैं और डग भरते हैं तो हरेक डग के नीचे २२५ कमल होते हैं उन दो सौ पच्चीस कमलों के पत्तों को मिलाकर कुल २२५×१००८=२२६८०० पत्ते हो जाते हैं। ९६ से १०० तक।

उपर्युक्त दो लाख छब्बीस हजार आठ सौ दल भगवान के प्रत्येक ही चरण के नीचे होते हैं जो कि दूसरा चरण रखने के क्षण तक सब चूम जाते हैं। जब भगवान दूसरा रखते हैं उसके नीचे भी इतने ही कमल और इतने पत्ते होते हैं अत- उन दोनो को परस्पर गुणा करने पर लब्धांक ५१४३८२४०००० आये इन सब को परस्पर जोड़ देने पर भी नब हो आता है। इस प्रकार गुणाकार करते चले जावें उतना ही अतिशय भगवान का उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है तथा उनके भक्त भव्य पुरुषो का पुण्य भी बढता जाता है। इसलिए हे भव्य जीवो! इस भूवलय की पद्धति के अनुसार भगवान के चरण कमलों को गुणा करते हुये तुम लोग गणित शास्त्र में प्रवीण हो जावो।

जिस प्रकार रसमणि के सम्पर्क से हरेक चीज पवित्र बन जाती है उसी प्रकार इस गणित पद्धति का ज्ञान हो जाने से यह जीव भी परमपावन सिद्ध रूप हो जाता है ॥१०१॥

यह गणित शास्त्र जीवो की सम्पूर्ण आशाओं को पूर्ण करने वाला है ॥१०२॥

यह गणित शास्त्र दुष्ट कर्मों की महाराशि को नष्ट करने वाला है ॥१०३॥

अन्तरात्मा को परमात्मा बनाने जाने वाला है ॥१०४॥

उत्तमार्थ को साधन करने वाला है ॥१०५॥

ज्ञान की राशि को बढाने वाला है ॥१०६॥

श्री सिद्ध पद का कारण भूत है ॥१०७॥

पुण्य पुञ्ज का बटोर कर इकट्ठा करने वाला है ॥१०८॥

ईशत्व प्राप्त करा देने वाला है ॥१०९॥

ईष आभार नाम की आठवी भूमि जो सिद्ध शिला है वहा पर पहुचा देने वाला है। क्योंकि आठवे चन्द्रप्रभ भगवान के चरण कमलों को स्मरण करके प्रारम्भ किया हुआ यह भूवलय है ॥११०॥

यह महा शास्त्र गणित की महाराशि को सूक्ष्म से सूक्ष्मतर तथा सूक्ष्मतम बना देने वाला है ॥१११॥

इस शास्त्र के द्वारा महाराशि को अल्पाति स्वल्प रूप मे लाने पर भी उसमें कोई वाधा नहीं आती ॥११२॥

यह नाश को जीतने वाला है इसलिए अविनश्वर रूप है ॥११३॥

यही औषध रूप मे परिणमन करने वाला है ॥११४॥

यह शास्त्र औषध के समान प्रारम्भ काल मे कुछ कटु प्रतीत होने पर भी अन्त में अमृतमय है ॥११५॥

सिद्ध की आत्मा मे जिस प्रकार अवगाहन शक्ति है जिस से कि एक सिद्धात्मा में अनन्त सिद्धात्माये विराजमान हो रहती हैं उसी प्रकार इस भूवलय शास्त्र में भी अनेक भाषाओ मे होकर आने वाले अनेक विषयो को समाविष्ट करने की अवगाहन शक्ति है ॥११६॥

सिद्ध भगवान के समान यह शास्त्र भी अगुरुलघु गुण वाला है ॥११७॥

अत: यह शास्त्र सब जीवो को अच्छी से अच्छी दशा पर पहुचा देने वाला है ॥११८॥

उस महान् अपूर्व शक्ति का अनुभव करा देने वाला यह काव्य है ॥११९॥

यह श्री शक्ति को बढाने वाला है अर्थात् अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग लक्ष्मी को प्राप्त करा देने वाला यह आद्याकरलय है ॥१२०॥

इत्यादि विशेषण वाक्यो से विभूषित यह महा काव्य है ॥१२१॥

भगवान की वाणी को सुनने वाले भव्य जीवों ने तात्कालिक परिस्थिति को लेकर जो साठ हजार प्रश्न किये थे। जिनमें कि प्राय. सभी विषयों की बात थी, उन प्रश्नो का उत्तर जो अत्यन्त मृदुल और मधुर भाषा में श्री गौतम् गणधर ने दिया था। वह चौंसठ अकाक्षरो के बानवें वर्ग स्थानान्तर्गत जिन वाणी में था। उसी को श्री गौतम गणधर के बाद में कुमुदेन्दु आचार्य तक होने वाले प्रत्येक बुद्ध महर्षियो ने छ हजार सूत्रों में उपसंहृत करके रखा था जोकि गहन था उसी विषय को सरल करते हुये श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने कन्नड भाषात्मक छह् लाख सांगत्य छन्दो में वर्णित किया है। जो कि मृदुता ललयात्मक होने से श्रोताओ के लिये हृदयग्राही बन गया है, वही भूवलय है। जो पूर्व महर्षियो के द्वारा छ हसूत्रो में बद्ध हुआ था वह नौ आगम द्रव्य शास्त्र था। उसका अध्ययन करते हुए तत्पर्याय रूप से परिणत होकर कुमुदेन्दु आचार्य ने उसी के भाव छ लाख सागत्य छन्दो में वद्ध किया। इसलिए इस भूवलय ग्रन्थ का नाम श्री आगम है जिसका कि यह सातवा "उ" नाम का अध्याय है ॥१२५॥

आगामी काल में यह भूवलय ग्रन्थ सदा बना रहेगा ॥१२६॥

इस भूवलय की रीति से बाहर का बना हुआ जो शास्त्र है वह आगम नही होगा ॥१२७॥

यह द्रव्यागम शास्त्र भाव, काल, अन्तर (अनन्त), तद्व्यतिरिक्त, क्षेत्र स्पर्शन, और अल्पबहुत्व इन अनुयोग द्वारा मे बटा हुआ है। १२७-१३४ तक।

बन्द पाहुड के आगम अबन्ध पाहुड का विषय लिखा हुआ है ॥१३५॥

अबन्ध पाहुड को श्री आगम सख्याङ्क कहते हैं ॥१३६॥

भगवान के श्री मुख से निष्पन्न हुआ यह भूवलय नामक श्री आगम है ॥१३७॥

इसीलिए इस भुवलय को आगम ग्रन्थ कहते हैं ॥१३८॥

अष्टमहाप्रातिहार्य अर्थात .–

अशोकवृक्षः सरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासनञ्च ।
भाभंडलं दुन्दुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणि ॥

अशोकवृक्ष देवताओ के द्वारा भगवान के ऊपर पुष्प की वर्षा होना, दिव्य

वृक्षोंके १८००० जाति के पुष्पो की वर्षा होती है और इससे सकल रोग निवारण रूप दिव्यौषधि बनती है, इससे खेचरत्व सिद्धि, जल गमन, दुलेहि सुवर्ण सिद्धि इत्यादि क्रियाओं को बतलाने वाले भूवलय के चतुर्खंड रूपी प्राणवाय नामक विभाग में वर्णित है। इसे पुष्पायुर्वेद भी कहते हैं ७१८ भाषात्मक दिव्यध्वनि, ६४ अक्षर रूपी चामर, एक मुख होने पर भी चतुर्मुख दीख पडने वाला सिंहासन, ज्ञानज्योति को फैलानेवाला भामंडल, प्रचार करनेवाली दुन्दुभि, भगवान के ऊपर रहकर तीनो लोको के स्वामित्व को दिखाने वाला छत्रत्रय ये आठ प्रकार की भगवान की सपदाये समस्त जीवो को हित करने वाली है।

प्रश्न—यह कैसे ?

उत्तर—कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि प्राकृत में अष्टमहाप्राप्ति हार्यो को पाडिहेर कहते हैं उनमें सर्व प्रथम अशोक वृक्ष प्रातिहार्य है जोकि जनता के शोक का अपहरण करनेवाला है। उस वृक्ष का विवरण यो है —

ऋषभादि तीर्थंकरो को जिन जिन वृक्षो के मूल भाग मे केवल ज्ञान प्राप्त हुआ उसको अशोक वृक्ष समझना चाहिए ॥१३९॥

न्यग्रोध १, सप्तपर्ण २, शाल ३, सरल ४, प्रियङ्गु (श्वेता) ५, प्रियङ्गु (रक्त) ६। ॥१४०॥

शिरीस ७, श्रीनाग ८, अक्ष ९, धूलि १०, पलाश ११। ।१४१।

पाटल १२, जामून १३, दधिपर्ण १४, नन्दो १५, तिलक १६। ॥१४२॥

श्वेताम्र १७, कङ्केलि १८, चम्पा १९. वकुल २०, मेषशृंग, २१ ॥१४३॥

धूलि (लाल) २२, शाल २३, धव २४, ये चौबीस क्रमशः अशोक वृक्ष हैं। इन वृक्षो के फूलो कीभावना देकर अग्नि पुट करने पर पारा सिद्ध रसायन रूप मणि बन जाती है ॥१४४॥

ये सब वृक्ष रसमणि के लिए उपयोगी होने के कारण माङ्गलिक होने से इन्हीं वृक्षो के पत्तो की बन्दन वार बनाई जाती है ॥१४५॥

उस वन्दन वार के बीच बीच में उस रस मणि का बना हुआ घण्टा लगा रहता है ॥१४६॥

यह वन्दनमाला देखने मे अत्यन्त सुन्दर मन मोहक हुआ करती है।१४७।

इस बन्दन माला की छटा एक अनुपम रमणीय हुआ करती है जिसके प्रत्येक पक्ष में से राग की परम्परा प्रगट होती रहती है।१४८-१४९।

यह अशोक वृक्ष अधिक मात्रा में फल और पुष्पों से व्याप्त हुआ करता है।१५०।

अगर रससिद्ध करना हो तो इन वृक्षों के क्षुद्र पुष्प न लेकर विशाल प्रफुल्लित पुष्प लेना चाहिए ।१५१।

और उसी को फिर यदि रस मणि बनाना हो तो इन्हीं वृक्षों के क्षुद्र (मञ्जरी रूप) फूल लेना चाहिए ।१५२।

सबसे पहलान्यग्रोध नाम का अशोक वृक्ष है। उसके फूल को यशस्वतीदेवी अपनी चोटी मे धारण करती रहती थीं ।१५३।

इसी प्रकार प्रथम कामदेव बाहुबलि भी कुसुमबाण प्रयोग के समय इसी फूल को काम में लेते थे ।१५४।

इसीलिए सभी महात्माओ ने इस फूल को कामितफल देने वाला मानकर अपनाया है ॥१५५॥

इस फूल के उपयोग से भव्यो को जो सम्पदा प्राप्त होती है वह वृक्ष की बेल के समान उत्तरोत्तर बढती रहती है।१५६।

जिस किसी पुरुष ने विष पान किया हो तो उसकी बाधा को दूर करने के लिए इस फूल को औषधि रूप में देना ।१५७।

श्री भरत चक्रवर्ती की पत्नी कुसुमाजी देवी अपने सब अलंकार इसी पुष्प द्वारा बनाती थी ।१५८।

पारा को घनरूप बनाना हो तो इस पुष्प को काम में लेना ।१५९।

जिस प्रकार भगवान का अशोक वृक्ष अनेक शाखा प्रति शाखाओं को लिए हुए होता है उसी प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ भी अनेक भाषा तथा उपभाषाओ को लिए हुए है।१६०।

भगवान के जो अशोक वृक्ष बतलाये गये हैं वे सब अपने प्रत्येक भाग मे नवरङ्ग मय होते हैं जोकि नवरस के उत्पादक माने गये हुए हैं। इस प्रकार के महत्व को रखने वाला अशोक वृक्ष श्रवण सिद्धि के लिए भी परम सहायक

होता है। और अपने अपने तीर्थंकर के शरीर से बारह गुणा समुन्नत होता है।१६१।

निर्मल तीर्थ तथा मङ्गल स्वरूप रहने वाले इन अशोक वृक्षों का वर्णन करें तो कहा तक करें।

जो अशोक वृक्ष सौ धर्मेन्द्र के उद्यान मे गुप्त रूप से विद्यमान है और जो समवशरण रचना के समय में भगवान के पीछे में हुआ करता है उस वृक्ष की बात यहा पर नही है परन्तु भगवान ने जिस वृक्ष के नीचे केवल ज्ञान पाया उसकी बात यहा पर की गई है। १६२ यहा तक अशोक वृक्ष का वर्णन समाप्त हुआ

वरदहस्त के समानभगवान अरहन्त के मस्तक पर जो छत्रत्रय होता है वह मोतियों की लूम से युक्त होता है अत ऐसा प्रतीत होता है कि मानो ताराओ से मण्डित पूर्ण चन्द्र मण्डल ही हो। १६३।

भगवान के सिहासन प्रातिहार्य मे जो सिह होता है वह यद्यपि एक मुख वाला होता है फिर भी चार मुख वाला दीख पडता है, क्योकि वह स्फटिकमणि निर्मित होता है। एव वह सिहासन भगवान के नय और प्रमाणमय सन्मार्ग का प्रतीक रूप से प्रतीत होता है।

उस सिह के ऊपर एक हजार आठ दलका कमल होता है जिसकी लाल परछाई उस स्फटिकमणिमय सिह मे झलकती रहती है। इसीलिए दर्शको को उसके रत्नमय होने मे सन्देह नही रहता जहा पर कमल की परछाई नही रहती वहा पर सिह सफेद रहता है।१६४।

बारह सभाके बहिर्भाग की ओर जो प्राकार है उसमें जो गोपुर द्वार होते हैं वहाँ से लेकर सिहासन प्रातिहार्य तक एक रेखा कल्पित करके उस रेखा को अर्द्धच्छेद शलाका रूप से उतनी बार काटना जितने कि इस मङ्गल प्राभृत मे अंकाक्षर हैं। मङ्गल प्राभृत मे २०७३६०० इतने अक्षर हैं।१६५।

यद्यपि सिह का मुख देखने में क्रूर भयावना हुआ करता है किन्तु भगवान के आसन रूप जो सिह होता है वह लोगो को भय उत्पन्न नही करता प्रत्युत शौर्यप्रदर्शित करता है हिंसा को रोककर बल पूर्वक अहिंसा को अस्पृष्ट करने वाला होता है। अव्रती लोग जब क्रूरता धारण कर लेते हैं तथा समवशरण में आते हैं तो उस सिह का दर्शन करते ही उनका हृदय रूपी कमल प्रफुल्लित हो उठता है। और अपनी शक्ति की प्रबलता पर गर्व रखने वाले राजा महाराजा लोग जब इस सिह के दर्शन करते हैं तो सरल होकर नतमस्तक ही रहते हैं।१६६ से १७० तक।

उपर्युक्त सिह शरीर की शौर्यवृत्ति के धारक तथा अहिंसादि महाव्रतों के अक्षुण्णपालक श्री दिगम्बर जैन परमर्षि लोग ही इस मङ्गल प्राभृत की नवमाक पद्धति को पूरी तौर से जान सकते हैं। प्राभृत का ही प्राकृत भाषा मे पाहुड हो जाता है। दिगम्बर महर्षि लोग जिस आसन से बैठकर इस मङ्गल प्राभृत को लिखते है या इसका उपदेश करते हैं उस आसन को ही वीरासन समझना चाहिए। इसी वीरासन का दूसरा नाम श्री पद्धति है। इस आसन के द्वारा ही मङ्गल प्राभृत की झाकी होती है। तथा यह आसन ही भगवान के रूप को स्पष्ट कर दिखलाने वाला है। इस आसन से मुनि लोग जब उपदेश करते हैं तो वह उपदेश दीपक के प्रकाश की भाति अपने आपको फैलाता है। दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में ही यापनीय सघ नाम का एक मुनि संघ था। जो द्राविड देश में विचरण करता था उस सघ मे इस वीरासन को बडी महिमा थी। उन लोगो की मान्यता थी कि इस वीरासन मे अशान्ति मिटकर शान्ति होती है। तथा यह आसन भारत वर्ष की कीर्ति को बढाने वाला है। यह भूवलय ग्रन्थ भी श्री पद अर्थात् भगवान के चरण कमल की गणित पद्धति से बना हुआ है। जिस गणित पद्धति को जान लेने पर श्वेत लोह से चान्दी बनाने की विधि भी भारतियो को प्राप्त हो जाती है।१७१ से १८२ तक।

भगवान के दिव्य स्फटिक मय सिहासन से कुछ-दूरी पर हाथ जोडे हुए प्रफुल्लित मुख होकर वलयाकार रूप से देव लोग खडे रहते हैं जोकि गम्भीर दुन्दुभिनाद करते रहते हैं सो सब आम जनता को मानो ऐसा कहते हैं कि दौड़कर आओ भगवान के दर्शन करो। भगवान के पीछे में जो अशोक वृक्ष होता है उसके फूलो की बरसा होती रहती है एक बार में अठारह हजार फूल बरसते हैं एवं बार-बार बरसते रहते हैं। भगवान के परमौदारिक शरीर मे से जो कुण्डलाकार दिव्य अखण्ड ज्योति निकलती रहती है उसको भामण्डल कहते हैं। उसके आगे करोडो सूर्यो की ज्योति भी मात खा जाती है। अत उस

भामण्डल को भानुमण्डल भी कहा जा सकता है। इस भामण्डल का तेज सूर्य के तेज के समान आंखों को अखरने वाला न होकर चन्द्रमा की ज्योति के समान प्रसन्नता देनेवाला होता है। उपर्युक्त अशोक वृक्ष के फूलों की जो वृष्टि होती है वह इस भामण्डल के दिव्य तेज में होकर आती है। अतएव दर्शकों को ऐसा प्रतीत होता है मानो ये फूल देवलोक से ही बरस रहे हों। भगवान के दोनों बगलों में चमर ढुरते रहते हैं जोकि दोनों बगलों को मिला कर चौंसठ होते हैं और पूर्ण चन्द्रमा की कान्ति वाले या शंख के समान धवल कान्ति वाले होते हैं। भगवान के चमर भी चौंसठ होते हैं तो अक्षरों का रङ्ग भी श्वेत ❖ माना हुआ है। अक्षर चौसठ इस प्रकार हैं कि अ इ उ ऋ ॡ ए ऐ ओ औ ये नौ स्वर हैं। जो कि ह्रस्व दीर्घ और प्लुत के भेद से सत्ताईस हो जाते हैं। कवर्गादि पांच के पच्चीस अक्षर हैं य र ल व श ष स ह ये आठ हैं (अं अः क ⌣ प ⌣ ०, ००, ००० प ००००) ये चार योग वाह अक्षर हैं १८६ से १८९ तक।

इन चौंसठ अक्षरो का लिपि रूप कैसा है ? यह प्रश्न हुआ ।१९०।

इसका उत्तर ऊपर पहले आ चुका है ।१९१।

अ कार से लेकर योग वार पर्यन्त चौंसठ अक्षरो का एक अक्षर (समूह) बन गया वही चामर का रूप है। इस प्रकार आठ प्रातिहार्यो का वर्णन हुआ। यह सब नवमांक बन्धन से बद्ध हुआ मङ्गल वस्तु रूप है। जिसका कि यहाँ वर्णन है इसलिए इस भूवलय के पहले विभाग का नाम मङ्गल प्राभृत है। मङ्गल काव्य बनाने के लिए कवि लोगो को यहा सब प्रकार की सामग्री प्राप्त हो जावेगी। १९२ से २०० तक।

शिव पद को प्राप्त किये हुये श्रीचन्द्र प्रभ जिन भगवान का यह अङ्क है ।२०१।

नवमांक से सिद्ध किया हुआ यह सिद्धांक है ।२०२।

यह सिद्ध परमेष्ठी का अङ्क होने से इच्छित वस्तु को देने वाला है ।२०३।

इस ग्रन्थ के अध्ययन करने से गणित पद्धति के द्वारा गुणाकार करने से रस सिद्धि होकर सासारिक तृप्ति तथा आत्म योग प्राप्त होकर पारलौकिक सुख सिद्धि प्राप्त होती है ।२०४।

जैनियो के लिए तो भगवान का चौंसठ चामरों का दर्शन होने के साथ-साथ ही चौंसठ अक्षरों का ज्ञान हो जाता है।

विशेष विवेचन—

आचाराङ्गादि द्वादश अङ्ग और उत्पादादि चौदह पूर्व तथा धर सेनाचार्य तक कम होते हुए आया हुआ कर्म प्रकृति प्राभृत शास्त्र एवं गुणधरादि द्वारा बनाया हुआ कषाय पाहुड आदि महा ग्रन्थ, कुन्दुकुन्दु के द्वारा बनाये हुए समय सारादि चौरासी पाहुड ग्रन्थ और तत्वार्थ सूत्रादि सभी शास्त्रों का अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त करना एक असम्भव-सी बात है परन्तु कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि चौंसठ अक्षरों को जानकर उनके असयोगी द्विसंयोगी इत्यादि चतुष्टि संयोगी पर्यन्त करले तो परिपूर्ण द्वादशांग वाणी को जानकर सहज में हो सकता है जिसमे कि समस्त विश्वभर के शास्त्र समाविष्ट हो रहे हैं। तथा ससार मे अनेक भाषायें प्रचलित हैं उनकी लिपियां भी भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं एक भाषा के जानकार को दूसरी भाषा तथा उसकी लिपि का बोध भी नही होता है परन्तु इस भूवलय की पद्धति के अनुसार अङ्क लिपि से लिखने पर हर भाषा के जानकार के लिए वह एक ही लेख पर्याप्त हो जाता है भिन्न-भिन्न लिखने की जरूरत नही पडती। मतलब यह है कि दुनिया भर में जितनी पाठशालायें है उनमे यदि भूवलय की अङ्क लिपि पढाना शुरू कर दी जावे तो

❖ १ प्रसिद्ध कर्णाटक भाषा के व्याकरण के आदि रचियता श्री नागवर्म दिगम्बर जैनाचार्य ने अपने छन्दोऽम्बुधि नामक ग्रन्थ मे ऐसा लिखा हैं कि जब मानव को बोलने की इच्छा होती है तो नाभि मण्डल पर मे शब उत्पन्न होकर प्राण वायु के सयोग से तुरई की आवाज के समान प्रवाह रूप होकर निकलता है उसका वर्ण श्वेत होता हैं। देखो— अनुकूल पवन निम् जीवनिंष्टरिम् कहते पागिन ओल नाभि पोगेदु पट्टु शब्द अदखण्ण श्वेत।

फिर उनको भिन्न-भिन्न लिपिया पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती ।२०५।

यह भूवलय ग्रन्थ नवकार मन्त्र रूप मङ्गल पर्याय से बनाया हुआ है ।२०६।

इस भूवलय के अध्ययन करने से ससार का नाश होकर सिद्धता प्राप्त हो जाती है ।२०७।

इस भूवलय ग्रन्थ के जो अक हैं वे सब नवमन्मथ यानी आदि कामदेव श्री बाहुबली स्वामी के द्वारा प्रकट किये हुए हैं ।२०८।

तथा उन्हीं अङ्काक्षरो को भरत चक्रवर्ती ने सर्व प्रथम लिपि रूप में अवतरित किया था वह लिपि ब्राह्मी लिपि थी, जोकि कर्माष्टक भाषा रूप थी ।२०९।

वृद्ध से नौजवान बनने रूप काया कल्प करने वाली महौषधि उपर्युक्त चौबीस तीर्थंकरों के दीक्षा कल्याणक के वृक्षो के रस से बनती है (जिसकी विधि भूवलय के चौथे खण्ड प्राणावाय पूर्व में बतलाई गई है) परन्तु इस त्रसनाली में होने वाले समस्त समारी भव्य जीवो का काया कल्प करने वाला एक सम्यक्त्व रूप महौषधि रस है। मङ्गल पर्याय रूप से उस सम्यक्त्व रूप महौषधि रस को प्रदान करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ हैं ।२१०।

श्रीचन्द्रप्रभ भगवान ने समाक तथा विषमाक को एक कर दिखलाने कतिथा अङ्क और अक्षर को भी एक कर दिखलाने की पद्धति बतलाई जोकि पद्धति विश्वभरके लिए शुभ श्रेष्ठ और वरप्रद है तथा सर्व कलामय है ऐसा परमोत्तम उपदेश करनेवाले उन चन्द्रप्रभ भगवान को नमस्कार करते हुए कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि हे भगवान हम सबकी आप रक्षा करे ।२११।

अब कुमुदेन्दु आचार्य उसी चन्द्रप्रभ भगवान की हो जयध्वनि रूप इस भूवलय श्रुतज्ञान को नमस्कार करते हुए कहते हैं कि जिन वाणी माता हमें नाश न होने वाले अक्षराक को दिया जिसको कि साधन स्वरूप लकर हम यह सिद्ध प्राप्त कर सकेगे। सिद्धावस्था में जिस प्रकार अनन्त गुण एक साथ रहते हैं उसी प्रकार तुम्हारी कृपा से बने हुए इस भूवलय ग्रन्थ में भी नवमाक पद्धति के द्वारा तीन काल और तीन लोक के समस्त विषय समाविष्ट हैं इसीलिए यह पाहुड ग्रन्थ है ।२१२।

इस अध्याय मे श्रेणि बद्ध काव्य में ८०१९ आठ हजार उन्नीस अक्षरांक हैं। अब इसी माला के अन्तर काव्य के पत्रो में १३१३१ तेरह हजार एक सौ इकतीस अक्षर हैं। इन सब अक्षरो से निर्मित किया हुआ यह भूवलय काव्य चिरस्थायी हो ।२१३।

उ ८०१९+अन्तर १३१३१=२११५० = ९

अथवा

अ—उ १०, ५५, ८८+२११५० = १,२६,७३८

इस अध्याय के प्रथम श्लोक के आद्यक्षर से प्रारम्भ करके क्रमशः ऊपर से नीचे तक पढते आवें तो जो प्राकृत श्लोक निकलता है उसका अर्थ कहते हैं—(उपपाद मारणान्तिक इत्यादि)।

उपपाद और मारणान्तिक समुद्घात मे परिणत त्रस तथा लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त केवली का आश्रय करके सारा लोक ही त्रसनाली है। विशेषार्थ-विवक्षित भव के प्रथम समय मे होनेवाली पर्याय की प्राप्ति को उपपाद कहते हैं। वर्तमान पर्याय सम्बन्धी आयु के अन्तर्मुहूर्त मे जीव के प्रदेशों के आगामी पर्याय के उत्पत्ति स्थान तक फैल जाने को मारणान्तिक समुद्घात कहते है। (ति० द्वि० अ ८) इसी अध्याय के श्लोको के अट्ठाईसवें अक्षर को क्रमश ऊपर से नीचे तक लेकर लिखे तो इसी ग्रन्थ के अध्याय के अन्त तक आकर जो सस्कृत गद्य अधूरा रह गया था वहा से चालू होता है सो—'ग्रन्थ—कर्ता श्री सर्वज्ञदेवास्ततुत्तर ग्रन्थ कर्तारह गणधर देवाह प्रति गणधर देवाह' अर्थात् इस भूवलय नाम के ग्रन्थ के सर्व प्रथम मूल भूत कर्ता, श्री सर्वज्ञ भगवान है उसके बाद मे इसको गणधर देव गौतमादि ने फिर उनको शिष्य प्रति गणधरो ने प्राप्त किया था।

इति सप्तमो 'उ' नामक अध्याय समाप्त हुआ।

आठवां अध्याय

ऊ* नविल्लदे सिद्धवाद सिम्हासन । तानदु जिननेरिर्दागल् । ते* नम वेमूबाग मूरने प्रतिहार्य । दानम्म बळ्केयक्कमळम् ॥१॥
ए* वबु अष्टम सप्त षष्टम पन्चम । दवनु चतुर्थ त्रये षा* म् ॥ सवरण द्वितीयवु एकांक शून्यव । नवकार सिम्हासनव ॥२॥
प* द सिद्धियागलु वरुवष्टु शन्केगे । ओदगे उत्तर काव्य म्* गळलि ॥ मुदवीव ओमृदने शन्केय पेळुव । पद पूर्वपक्ष सिद्धांत ॥३॥
मा* टद सिम्हासन शब्द ओमृद् अरोळ् । कूटद सिम्ह आसवम् व* कूटव बिट्आग ओमृदने सिम्हद । कूट सिद्धान्तव शन्के ॥४॥
ए* रडु बेन्चुव जीव सहितद सिम्हवो । गुरु वर्धमान वाहन च* आ ॥ मरद सिम्हवो जीव रहितद सिम्हवो । अरहंत नेरिद सिम्ह ॥५॥
म्* नुजरेरुव सिम्हासनदि बन्दिह सिम्ह । घन जाति सिम्हवो ना* न॥ वनदोळु चलिप सिम्हवो अल्लवो एम्ब। घनशन्केयागे भूवलय ॥६॥
मुनिगळ शन्के गुत्तरवु ॥७॥ तनगे बन्द आरु शन्केगळ ॥८॥ घनवादुत्तर सिद्धाविन्तु ॥९॥ तनि शन्केगे जीव रहित ॥१०॥
एनुव शब्ददे काण्व दृष्टि ॥११॥ घन प्रातिहार्य मूरन्क ॥१२॥ घन मिम्हवदु शुद्ध स्फटिक ॥१३॥ मणियिन्द रचितवागिहुदु ॥१४॥
चिनुमयनेरिद सिम्ह ॥१५॥ कोनेय कर्माटक सिम्ह ॥१६॥ जिन मुनियन्ते सुशात ॥१७॥ घन मुनिगळ शूर वृत्ति ॥१८॥
अनुभवदाटद सिम्ह ॥१९॥ कोनेय भवान्तर सिम्ह ॥२०॥ घनद पुराकृत सिम्ह ॥२१॥ जिन वर्धमानर सिमूह ॥२२॥
घनद सिम्हासन वलय ॥२३॥

द* वनिय निज सिम्ह नाल्मोगवागिह । नव सिम्हमुख उद्दव नु* अवभरिसलु आदिनाथ जिनेन्द्रर । नव दोहदष्टिह अळते ॥२४॥
नृ* व पादपद्मद केळगिह सिम्हद । विविधदुत्सेधवदनुम् सा* अवरवरेने आदिनाथरिग् एनूरु । नवधनुवष्टिह अळत ॥२५॥
डु* णडणरेन्नुव जयघंटे नादद । घन शब्ददनुभववस र* जिननन्ग अजितनाना रिगेनाल्करे नूरु । एनुव घनुविनष्टु सिम्ह ॥२६॥
आ* दआमेले शम्भवरिगे नाल्नूऊरु । मोदद अभिनन्दनर ॥ आद मा* टदसिम्ह मूरुनूर य्वत्तु । नाथ सुमुतिगे मूनूरु ॥२७॥
ऐदने जिनग्इन्नूररेयु ॥२८॥ मोद सुपार्श्व इन्नूर ॥२९॥ मोददेन्टके नूरय्वत्अम् ॥३०॥ आद ओम्भत्त के नूरु ॥३१॥
मोद शीतलर्गे तोम्बत्तु ॥३२॥ आदि अनन्त ऐवत्तु ॥३३॥ श्रीद हन्एरडे इप्पत्तु ॥३४॥ मोद विमल अरवत्तु ॥३५॥
आदि अनन्त ऐवत्तु ॥३६॥ आदि धर्मवुनलवत् ऐदु ॥३७॥ श्री दिव्य शाति नल्वत्तु ॥३८॥ आद कुन्थुवु मूवत्ऐदु ॥३९॥
आदाग अरवु मूवत्तु ॥४०॥ श्रीद मल्लियु इप्पत्ऐदु ॥४१॥ आदि इप्पत्तु इप्अत्तु ॥४२॥ मोवद नमि हदिनैदु ॥४३॥
आदि नेमिय अक हत्तु ॥४४॥ ओधव पार्श्वव ओन्बत्तु ॥४५॥ आद्यन्त वीरांक एळु ॥४६॥ आदि इप्पत्एरळ् धनुष ॥४७॥
नेद अंक इगळेल्ल इनितु ॥४८॥ मोददन्तिमंगळु मोळवु ॥४९॥ साधित सिम्ह भूवलय ॥५०॥
को* ष्टक बन्धांकदोळु कूडिदक्षर । दाशमिक क्रम गणित ॥ सा* ष्टम निर्मल स्फटिकद बण्णद । भोष्टद सिम्ह वर्णगळ ॥५१॥
डि* गद्अ गणितदे तेगेयालादी एन्दु । भगवन्त पुष्पदन्ता द्* य ॥ सोगसिन कुन्दपुष्पद बण्ण एरडके । मिगिलाद सिम्हशरीर ॥५२॥
ति* रेयेल्लि हरितवर्णपार्श्वव सुपार्शव । हरवर्ण नील य्* सुव्रत । बरुवुदिदे नेमि पद्मप्रभ मत्तु । वरवासु पूज्यर्गे केम्पु ॥५३॥
य* शदेन्दु सिम्ह बण्ण बिळिदु हळदि । वशनीलकेम्पु इन्त् आ* गे । ऋषि हदिनारर सिम्हगळ् चिन्नद । रसद स्फटिकद वर्णगळ् ॥५४॥
म्* हवीर देवन सिम्हासन चिन्न । महद्आदि वृषभ जिनम् चा* ॥ मिह सिम्हत्रदनोडे चिन्नद नाडाद । इहके नन्दियु लोक पूज्य ॥५५॥

महदादि गान्गेय पूज्य ।।५६।। महावीर नन्दपुदकुलवु ।।५७।। महति महावीर नन्दि ।।५८।। इहलोकदादिय गिरिय ।।५९।।
सुहुमांक गणितदबेट्ट ।।६०।। महसीदु महाव्रत भरत ।।६१।। वहिसिदणुव्रत नन्दि ।।६२।। सहनेय गुरुगळ बेट्ट ।।६३।।
सहचर मूरारु मूरु ।।६४।। महनीय गुरुगण भरत ।।६५।। महिय गन्गरसरगणित ।।६६।। गहन विद्ययेगळाळ गिरियु।।६७।।
गहगहिसुव नगु भरित ।।६८।। अहमीन्द्र स्वर्गवी भरत ।।६९।। इह कल्पवृक्षद भरत ।।७०।। महिय कल्वप्पु कोवळला ।।७१।।
महवीर तलेकाच गंग ।।७२।। महदादि शिवभद्र भरत ।।७३।। महिमेय मंग भूवलय ।।७४।।
ए* ळु कमल मुन्देळु कमल हिन्दे । सालु मूवत्एरड् अन्क ।। पाल र्* कूडिसल् कालून्नरु । श्‌री लालित्यव कवल ।।७५।।
क्* रुणोयुग्र धवलवर्णद्ग्र पादगळिह । परमात्म पादद्व य* दे ।। सिरविहनाल्कंकवेरसिसिम्हद मुख । भरतखंडव शुभ चिन्हे ७६
क* विदिह मृगपक्षि मानव वर्गव । अवधरिसुत शान्तद श्* री।। अवतारवो इदु वीरश्री एन्देम्ब। सुविवेकि भरत चक्रांक।।७७।।
वी* र जिनेन्दरन वाहनवी सिम्ह । मूरने पडिहारवदु ।। सार श् री* वीरश्‌री सारस्वत धोर । रारय्केवदनद सिम्ह ।।७८।।
स* मचतुरस्र सम्स्थान सम्हननद । विमल वय्भवविह कु* न्द।। अमहरवरणद धवल मंगल भद्र । गमकदशिव मुद्रे सिम्ह ।।७९।।
क्रमदन्क वेरडन्क सिम्ह ।।८०।। अमलात्म हर शम्भु सिम्ह ।।८१।। नमि से सौभाग्यद सिम्ह ।।८२।। समवसरणदग्र सिम्ह ।।८३।।
क्रम नाल्कुचरण एन्टक ।।८४।। गमक केसर सिम्ह नाल्कु ।।८५।। विमल सिम्हद प्रनिहार्यं ।।८६।। सम विषमान्कदे शून्य ।।८७।।
गमक लक्षणद अहिम्से ।।८८।। श्‌रम हर पाहुड ग्रन्थ ।।८९।। समद नाल्मोगदादि सिम्ह ।।९०।। क्रमद महाव्रत सिम्ह ।।९१।।
क्रम सिम्हक्रीडित तपन ।।९२।। श्रमहर गजदग्र क्रीडे ।।९३।। नमिसिदरगणुव्रत शुद्धि ।।९४।। श्‌रमद महाव्रत शुद्धि ।।९५।।
विमलान्क काव्य भूवलय ।।९६।।
ल* क्षण जारदे सिम्हगळ् बाळुव । तक्षणवेने आगाग ।। लक्षा न्* क मीरिद वरुषगळेष्टन्क वीक्षितियोळगे बाळुवुवु ।।९७।।
क्* डिमेयायुविन श्‌री महावीर देव । नडिय सिम्हासनदल्लि ।। ओ द* गिद सिम्हदायुपु हत्तु वरुषवु । विडदे समवसरणदलि ।।९८।।
खा* ति के यग्र पार्श्व जिनेन्द्र । ख्यातिय सिम्हद अयु ।। पूत कु* शल वर्षगळ् अरवत् ओम्बत्तु । नूतन मासगळ् एन्टु ।।९९।।
ण* भदिह नेमि स्वामिय सिम्हदायुवु । शुभवर्ष एळ्नूरक्के न* दे। शुभदऐवत्आरुदिनगळ् कडिमेयु । विभुविन सिम्ह बाळुवुदु।।१००
मृ* रळिश्‌री नमि देवर सिम्हदायुवु । एरडूवरे साविरके ।। बर द* ओम्बत्तु वर्षगळन्क कडिमेयु । सिरि सुव्रतर सिम्हदायु ।।१०१।।
परिदेळूवरे साविरवु ।।१०२।। सिरि मल्लि जिन सिम्हदायु ।।१०३।। बरे ऐद्नाल्केन्ट्सोन्ने सोन्ने ।।१०४।। अरद्विसोन्ने नवेन्टु नाल्कु ।।१०५।।
सिरि कुन्थरळमूरेळ् मूर्नाल्कु ।।१०६।। वरशान्तेरळ्नाल्नवेन्ट् नाल्कु ।।१०७।। धर्म नवन्नाल्कु नाल्केरडु ।।१०८।। धर्ममरंकवु बिडियाद ।।१०९।।
सिरि अनन्तवेन्टोम्बत्तु ।।११०।। वरुष मुन्दे नव नाल्केळु ।।१११।। गुरु विमल वेळोम्बत्तुगलु ।।११२।। बरे नाल्कन् कवु नाल्कु ओम्दु ।।११३।।
वर वासुपूज्यरय्दु नव ।।११४।। वरे मूरु ऐदन्क वरुष ।।११५।। सिरि श्‌रेयान्सेन्दु नवगळ् ।।११६।। बरे नाल्कन्कवु सोन्ने एरडु ।।११७।।
सिरि शीतल पूर्व अंग ।।११८।। बरलोम्बत्तुगळय्द् मूरेन्दु ।।११९।। वर वेलु नववु नाल्कुगळु ।।१२०।। बरे मुन्दे मूरेन्दु वरुष ।।१२१।।
गुरु पुष्पदन्तरु पूर्‌व ।।१२२।। वरुष ओम्बत्तुगळ् ऐदु ।।१२३।। गुरु ववरन्क पूर्वान्ग ।।१२४।। अरुह् ओम्देळ्नव पूर् मूरेन्दु ।।१२५।।
वय्यवार्नवनाळ् मूरेंदु ।।१२६।। वर चन्द्रप्रभ रोम्बत्तुगळु ।।१२७।। सरि पूर्वेगळु मन्दन्ग ।।१२८।। सरि एळु बिडियन्कय्दाद ।।१२९।।

बरे मूर् ओम्बत्तु मूरेन्दु ॥१३०॥ व्रुषव् अय्दोम्बत्तुगळ ॥१३१॥ बरेवुदु मूरु मत्तेन्टम् ॥१३२॥ सरि मास मुक्कालु वरुष ॥१३३॥
बिरुवुदु आ सिम्हवायु ॥१३४॥ वरदु सुपार्शव पूर्वेगळ ॥१३५॥ बरुवुदु नवदन्क ऐदु ॥१३६॥ अरि मुन्दे पूर्वान्ग एळम् ॥१३७॥
बरे नव एळु मूरोम्बत् ॥१३८॥ सरि मूरु एन्टुगळन्क ॥१३९॥ बरि अन्गविन्इतागे गरुव ॥१४०॥ बरे ओम्दु नाल्नव मूरेन्दु ॥१४१॥
वरुषगळन्कवष्टिहुदु ॥१४२। गुरु पद्म प्रभर पूर्वेगळ ॥१४३॥ बरे ओम्बत्तुगळ नय्दु सल ॥१४४॥ इरे इन्तु पूर्वान्ग दंक ॥१४५॥
मुरेन्दु मूरोम्बत् मूरेन्दु ॥१४६॥ बरेवुदेम्भत् नाल्कु लक्ष ॥१४७॥ दिरविनोळोम्दून वरुष ॥१४८॥ वर सुमति नव वय्वपूर्व ॥१४९॥
अरि पूर्वांगदबिडिएळ ॥१५०॥ बरे आद्यन्त वेम्भत्तुमूर ॥१५१॥ सरिम ध्य नव नवम ॥१५२॥ अरि वर्ष विडियन्क एळ ॥१५३॥
गुरु सोन्ने एन्टोम्बत् नवव ॥१५४॥ अरि मत्ते नव मूरु एन्टम् ॥१५५॥ सर अभिनन्दन पूर्वे ॥१५६॥ बरुव पूर्वेगळ् ओमबत् ऐदु ॥१५७॥
अरि अंग नाल्नव मूरु एंदु ॥१५८॥ वरुषादि एरडेन्ट् ओम्बत्तु ॥१५९॥ बरे तोम्बत् ओम्बत् मूरेन्दु ॥१६०॥ वर शम्भवरु नववय्वु ॥१६१॥
वर पूर्वगळ मुन्दे अंक ॥१६२॥ बरलादु देम्भत्नाल्लक्ष ॥१६३॥ दिरविनोळ् ऐदन्क ऊन ॥१६४॥ वरुषवे म्भत्नाल्कु लक्ष ॥१६५॥
बिरविगे हदिनाल्कु ऊन ॥१६६॥ एरडने अजितर पूर्वे ॥१६७॥ सरियाद् ओम्बत्तुगळ् ऐदु ॥१६८॥ वर अंगवेम्भत्नाल्लक्ष ॥१६९॥
दरविनोळेरडन्क ऊन ॥१७०॥ वरुषगळेम्भत्नाल् लक्ष ॥१७१॥ दिरविनोळून हन्नेरडु ॥१७२॥ पुरुदेव पूर्व लक्षगळ्गे ॥१७३॥
सिरियोम्दु ऊनवादन्क ॥१७४॥ वरुषवेम्भत्नाल्कु लक्ष ॥१७५॥ दिरविनोळ् साविर खन ॥१७६॥ इरुव सिम्हगळ् आयुविनितु॥१७७॥
भरत खण्डद सिम्हदायु ॥१७८॥ भरतद सिम्हगळायु ॥१७९॥ सिरियु पश्चादानु पूर्वी ॥१८०॥ इरु वष्ट महाप्रातिहार्य ॥१८१॥
बिरविनोळ् पडिहार मूरु ॥१८२॥ बरुवन्क सिम्हलांछनवु ॥१८३॥ गुरु वीरनाथ भूवलय ॥१८४॥ गुरु मुनि सुव्रत नमिय ॥१८५॥
वर सिम्हदुपदेश वेरडु ॥१८६॥ परम्परे सिम्ह भूवलय ॥१८७॥

(पश्चादानु पूर्विय महावीर भगवान वाहन का सिम्ह और सिम्हासन के तीसरे प्रातिहार्यके सिम्हको जिन्दे वरुष (१०) वश,)

(पार्श्व नाथके ३ ने प्रातिहार्य को सिम्हव आयु वरुष ६९ ८, इसी तरह आगे भी गिनती कर लेनी चाहिए)

वा* सव निर्मित समवसरण बाळ्व । लेसिन कालदन्कगळम् ॥ आ* सरेयष्टिह भरत खण्डद सिम्ह । वाशेय प्रातिहार्यांक ॥१८८॥
स* म नाल्कु पादगळादरु एन्टिह । कर्म सिम्हव कायवकव चा* विमल ज्ञानदवृषभादितीर्थंकयक्ष । रमल यक्षियर रक्षितवु ॥१८९॥
ट्* णटणवाद्य गोवदन चक्रेश्वरि । घन महायक्ष रोहिणी र्* आ । मणित्रिमुखनुप्रज्ञाप्तियक्षेश्वर । जिनयक्षिवज्रभृंखलेयु॥१९०॥
टि* तुम्बुर वज्रांकुश राग । मुद मातंग यक्षांक ॥ सद य्* अनातन पत्नि अप्रति चक्रेशि । ठिद विजय पुरुषदत्ते ॥१९१॥
न्* व अजित मनोवेगे व्रह्मनु काळि । सवण ब्रह्मेश्वरर् आ* द॥ नव ज्वालामालिनि देविवु हत्तक । छविकुमार महाकाळि ॥१९२॥
च* रितेय षण्मुखम् गर्उरि हन्नेरडक । नव पातालरवर द्* यक्ष॥ अवन गान्धारियु किन्नर वइरोटि। नवकिम्पुरुष सोलसेयु ॥१९३॥
स* व गारुड मानसि देवि हदिनारु । नव गन्धर्व यक्षेश ॥ नव या* महा मानसि देविहदिनेळु । सवण कुबेर देवि जया ॥१९४॥
ह्* रुषद वरुणनु विजया देवी । सिरि भृकुटि अपराजितेयु ॥ वर म्* हा गोमेध बहुरूपिणि देवि । सिरि पार्शव कुष्माण्डिनियु ॥१९५॥
स* रण मातग पद्मावति देवियु । वर गुह्यक सिद्धायिनियु ॥ ना* रक तिरियु गतिगे सल्लद इव्र । सार भव्यर जीव देवर ॥१९६॥
सा* विरदेन्दु दलगळ तावरेयनु । कावुत तलेयोळु हात्त ॥ तावु ई* नाल्मोग सिम्हरूपव काव्य । पावन यक्ष यक्षियरु ॥१९७॥

दवन यक्ष यक्षियरु ॥१९८॥ बेविन हूवनित्तवरु ॥१९९॥ तावरे हूविन रसदे ॥२००॥ ई विश्व रसव कायुववरु ॥२०१॥
जीवकोटिगळ कायववरु॥२०२॥ कावरु अणुव्रत गळनु ॥२०३॥ तावु बेट्टगळ तावरेय ॥२०४॥ ईवरु नेलद तावरेय ॥२०५॥
श्रीवीर जलद तावरेय ॥२०६॥ ई विध मूरु तावरेय ॥२०७॥ काविनोळ् रसमणिसिद्धि॥२०८॥ गोवरु हूविन धरव ॥२०९॥
कावरु हूवेप्पत्तेरडम ॥२१०॥ तावु सिम्हगळ लेक्कदलि ॥२११॥ कावरु भरतार्य भुविय ॥२१२॥ कावरु महाव्रतिगळनु ॥२१३॥
श्री वीर विक्रम बलरु ॥२१४॥ जीव हिम्सेयनु निल्लिपरु ॥२१५॥ कावरहिम्हिसेय बर्लाद ॥२१६॥ तावु दर्शनिकरागिरुत ॥२१७॥
कावरु व्रतिकादि नेलेय॥२१८॥ श्री वीरवाणि सेवकरु ॥२१९॥ तावरे दलगळोळिहरु ॥२२०॥ देव वैक्रियकधि धररु ॥२२१॥
कावरु औदारिकर ॥२२२॥ देव देवियर तिद्दुवरु ॥२२३॥ पावन धर्म होत्तवरु ॥२२४॥ नोवुगळळलनिल्लिपरु ॥२२५॥
श्री वीर देव पूजकरु ॥२२६॥ तावु सिद्धरनु सेविर्सलि ॥२२७॥ श्री वीरगणितव कायुद॥२२८॥ दव देवियर भूवलय ॥२२९॥
श्री वीर सिद्ध भूवलय ॥२३०॥

इ* रुव श्री समवसरण नाल्मोग सिम्ह । अरुहन पाद कमल श्* री॥ सरद नालियहोत्तुतिरुगुत बरुतिर्प । सिरिय देवागम पुष्प॥२३१॥
गि* डवु अशोकवु पोडविय भव्यर। सडगरवनु वर्धिसिरे श् री* जडद देहद रोग आतक वार्धिक्य। गडिय सावुगळनु केडिसि ॥२३२॥
दा* नगळन्नेल ज्ञानदाळडगि । आनन्दवनेल्ल तर्रिस ॥ शाने पु* ण्यवनीव पुष्पवृष्टियनोडु । वा नम्र प्रातिहार्यांक ॥२३३॥
ल* क्षणवाव चामर अरवत्नाल्कु । अक्षर अरवत्नाल्कु ॥ ष्* इक्षेयक्षरदक नवम दिव्य ध्वनि । रक्षिपुद् ओम् ओमबत्तुगळ ॥२३४॥
तक्षण कर्म विनाश ॥२३५॥ सिक्षिप हन्नेरडंग ॥२३६॥ हक्देळु मूवत् एरडम् ॥२३७॥ प्रकटवादेरडु काल्नूरु ॥२३८॥
ईक्षिप भामन्डलाक ॥२३९॥ लक्षद दुन्दुभिनाद ॥२४०॥ रक्षेयद्वादश गणवे ॥२४१॥ अक्षरदंक हन्नेरडु ॥२४२॥
अक्षर वेद हन्नेरडु ॥२४३॥ लक्षिप प्रातिहार्याष्ट ॥२४४॥ अक्षरदष्टु मगलवु ॥२४५॥ शिक्षण काव्यांक बलय ॥२४६॥
श्रीक्षण मन्त्र प्राभृतवु ॥२४७॥ अक्षरदन्क सान्गत्य ॥२४८॥ कुक्षि मोक्षद सिद्ध बध ॥२४९॥ अक्षय पद प्रातिहार्य ॥२५०॥
शिक्षण लब्धान्क शून्य ॥२५१॥ अक्करदन्क भूवलय ॥२५२॥ शिक्षण ग्रन्थ भूवलय ॥२५३॥
वु* रितव हरिसुव अष्ट मन्गल द्रव्य । वेरसि प्राभृत प* दवदनु ॥ परमात्म पादद्वयद एन्टक्षर बरेदिह पाहुड ग्रन्थ ॥२५४॥
ति* रेय जमबू द्वीपद् एरडु चन्द्रादित्य । रिहवष्ट रूप द* अमल। सरमिजाक्षरकाव्यगुरुगळ्ऐवर दिव्य। करयुगदामांक ग्रन्थ॥२५५॥
भा* रत देशदमोघ वर्षधनराज्य । सारस्वतवेम्बन्ग ॥ सारा न्* क गणित दोळक्षर सक्कद । नूरु साविर लक्ष कोटि ॥२५६॥
या* र्हांतिगाप्नसहाम्सिएन्दु[अष्टम]मुवकाल्। सारविकेरडेऊन॥म् त* र अनन्तर हदिनेळु साविरगळगे। सार[नेर] नालवत्नाल्कुम्कनम् ॥२५७॥

८ ने ऊ ८७४८+ अन्तर १६९५६=२५७०४=१८=९ अथवा अ से 'ऊ' तक १,२६,७३८+ऊ २५७०४=१,५२,४४२।

ऊपर से नीचे तक प्रथमाक्षर पढते आने से प्राकृत गाथा बन जाती है वह इस प्रकार है

ऊणपमाणंदड कोडितियं एक बोसलक्खाणं । बासट्ठ चेसहस्साइगिदालदुति भाया ॥७॥

अगर बीच में से लेकर पढे तो—क्रमश ऊपर से नीचे तक पढने पर इस प्रकार संस्कृत निकलती है—

इनकी रचनानुसार लेकर, आचार्य श्री कुमुद कुमुद आचार्यादि आम्नाय से श्री पुष्पदंत...

आठवां अध्याय

अब इस अध्याय में सिंहासन 'नाम के प्रातिहार्य का 'विशेष' व्याख्यान के उपयोग में आनेवाले अङ्को का वर्णन किया जा रहा है। नवम अङ्क जिस प्रकार परिपूर्णाङ्क है उसी प्रकार भगवान का सिंहासन भी परिपूर्ण महिमा वाला होता है। उस पर जबकि भगवान विराजमान हैं। अतएव भव्य जन तेनम' कहते हैं जो कि तीसरा प्रातिहार्य है।

-श्री जिनभगवानसिंहासन पर विराजमान रहते हैं अतएव वह सिंहासन भी भव्य जीवों का कल्याण करने वाला होता है। जिनेन्द्र भगवान का होना तो बहुत मोटी बात है बल्कि जिन भगवान की प्रतिमा भी जिस सिंहासन पर विराजमान हो जाती है तो उस सिंहासन की महिमा अपूर्व बन जाती है। यदि स्वयं श्री जिन भगवान या उनकी प्रतिमा ये दोनो भी न हो तो अपने अन्तरङ्ग में ही भाव रुपी सिंहासन पर भगवान को विराजमान करके गणित से गुणा करते हुये उस काल की महिमा को प्राप्त कर लेना। १।

नवम, अष्टम, सप्तम, षष्ठ, पञ्चम, चतुर्थ, तृतीय, द्विनीत, प्रथम और शून्य इस रीति से नवकार सिंहासन❖ है। २।

इस प्रकार नवकार सिंहासन की सिद्धि के विषय मे अनेक तरह की शकाये उत्पन्न होती हैं। उन सब में पहली जो शङ्का है उसको हम यहा पर पूर्व पक्ष रूप में लिखते हैं। और उसका सिद्धान्त मार्ग से उत्तर देते हैं जो कि भव्य जीवों के लिये सन्तोष जनक है। ३।

सिंहासन यह समासान्त 'शब्द है जो कि सिंह और आसन इन दो शब्दो से बना हुआ है। उनमें से अगर आसन शब्द को हटा दिया जाय तो सिर्फ सिंह रह जाता है यही वाद विवाद का विषय है। ४।

सिंह जो कि वन में विचरण करता है जिसके कन्धे पर सटा की छटा रहती है जिसे देखते ही मानव भयभीत हो जाता है क्या यहां पर वही सिंह है ? अथवा वर्द्धमान जिनेन्द्र का जो लाञ्छन (चिन्ह) रूप है वह सिंह है ! या लेप्य कर्मात्मक (चित्र) सिंह है ! अथवा अरहन्त भगवान् जिस पर विराजमान थे वह सिंह है ? अथवा सर्व साधारण जिस पर बैठते हैं वह सिंह है ? अथवा सजातीय विजातीय एक वर्णात्मक अनेक वर्णात्मक विभिन्न वनों में नाना प्रकार से निवास करते हैं वह सिंह हैं क्या ? या इन सभी से एक निराले प्रकार का सिंह है ? कौन सा सिंह ! इन सब शङ्काओ का उत्तर नीचे दिया जाता है। ४-६-७।

ऊपर छह तरह की शंका है। ८।

उसके उत्तर में आचार्य महाराज कहते हैं कि यह निर्जीव सिंह है। फिर भी दर्शक लोगो के अन्तरङ्ग मे जिस जिस प्रकार का कषायावेश होता है उसी रूप मे उसका दर्शन होता है। ९-१०-११।

वह सिंह शुद्ध स्फटिक 'मणिका' बना हुआ है।

उस पर भगवान विराजमान होते हैं। १३ से १४ तक

जिस सिंहासन पर भगवान विराजमान होते हैं वह सिंह भी कर्माटक है कर्मों का नष्ट करने वाला है और जब भगवान उस सिंहासन पर से उठ कर चौदहवें गुण स्थान में पहुच जाते हैं तब भगवान की कर्माटक (सर्वजीवों के कर्माष्टक को नष्ट कर देने वालो) भाषा रूपी दिव्यध्वनि भी बन्द हो जाती है। यह भगवान के आसन रूप मे आया हुआ सिंह मुनि के समान शान्त दीख पड़ता है। १५ से १७।

यहा पर सिंह को आसन रूप में क्यो लिया ? इसका उत्तर यह कि दिगम्वर जैन मुनि लोगसिंह के समान शूर वीरता पूर्वक क्षुधातृषादि बाईस परीषहो का सामना करते हैं और उन पर विजय पाते हैं। १८।

योगी लोग अपने आत्मानुभव के समय में इस सिंह के द्वारा क्रीड़ा किया करते हैं। १९।

ससार का अन्त करनेवाले चरम जन्म में इस सिंह को प्राप्ति होती है। २०।

अनादिकाल से आज तक के भव्यो को यह सिंह अन्तिम भव में ही मिलता आया है और आगे अनन्त काल तक होने वाले भव्य जीवों को भी अन्तिम

❖शून्य सिंहासन, दन्त सिंहासन, रत्न सिंहसन, शारदासिंहासन इत्यादि नामो से गुरु पीठ या राज पीठ आज भी दक्षिण में महिसूर (मैसूर) में क्रमशः चित्र दुर्ग, दिल्ली, मार्ई-खूर नरसिंह राज पुर, श्रवणबेल गोल और शृंगेरी आदि स्थानों में मौजूद है।

जन्म में ही इसकी उपलब्धि होगी । २१ ।

वर्द्धमान जिन भगवान भी एक प्रकार से सिंह हैं । २२ ।

इस सिंहासन प्रातिहार्य से वेष्ठित हुआ यह भूवलय ग्रन्थ है । २३ ।

अब इस सिंह की ऊंचाई आदि के बारे में बतलाते हैं ।

भगवान समवशरण में एक मुख होकर भी चार मुख वाले दीख पड़ते हैं उसी प्रकार यह आसन रूप सिंह भी एक होकर भी चार चार मुंह दीखा करता है । इस सिंह की ऊँचाई भगवान के शरीर प्रमाण होती है । २४ ।

आदिनाथ भगवान के चरण कमलो के नीचे रहने वाले सिंह की ऊँचाई पाँच सौ धनुष की थी । २५ ।

घण्टा के बजाने से जो टन टन नाद होता है उसको परस्पर मे गुणाकार करते जाने से जो गुणनफल आता है वही श्री अजितनाथ भगवान के साढे चार सौ (४५०) धनुष सिंह का प्रमाण है । २६ ।

तत्पश्चात् श्री सभवनाथ भगवान का ४०० धनुष श्री अभिनन्दन का साढ़े तीन सौ (३५०) धनुष तथा श्री सुमतिनाथ भगवान् का ३०० धनुष सिंह का प्रमाण है । २७ ।

श्री पद्मप्रभ भगवान् का २५० धनुषप्रमाण सिंह की ऊँचाई है । २८ ।

श्री सुपार्श्वनाथ भगवान का दो सौ (२००) धनुष ऊँचा सिंह का प्रमाण है । २९ ।

आठवे श्री चन्द्र प्रभु भगवान के सिंह की ऊँचाई १५० धनुष प्रमाण है ।३०।

नौवे श्री पुष्पदन्त भगवान के सिंह की ऊँचाई १०० धनुष प्रमाण है ।३१।

श्री शीतलनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ९० धनुष प्रमाण है । ३२।

श्री श्रेयांस नाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ८० धनुष प्रमाण है । ३३।

श्री वासुपूज्य भगवान के सिंह की ऊँचाई ७० धनुष प्रमाण है । ३४।

श्री विमलनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ६० धनुष प्रमाण है ।३५।

श्री अनन्त नाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ५० धनुष प्रमाण है ।३६।

श्री धर्मनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ४५ धनुष प्रमाण है । ३७ ।

श्री दिव्य शांतिनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ४० धनुष प्रमाण है । ३८ ।

श्री कुंथुनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ३५ धनुष प्रमाण है । ३९ ।

श्री अर्हनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ३० धनुष प्रमाण है । ४० ।

श्री मल्लिनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई २५ धनुष प्रमाण है । ४१ ।

श्री मुनिसुव्रत तीर्थंकर के सिंह की ऊँचाई २० धनुष प्रमाण है । ४२।

श्री नमिनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई १५ धनुष प्रमाण है । ४३।

श्री नेमिनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई १० धनुष प्रमाण है । ४४।

श्री पार्श्वनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ९ हाथ प्रमाण है । ४५।

अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान के सिंह की ऊँचाई ७ हाथ प्रमाण है । ४६ ।

उपर्युक्त २४ तीर्थंकरो मे से प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ भगवान से लेकर २२ वे तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान पर्यन्त धनुष की ऊंचाई है । ४७ ।

उपर्युक्त सभी अङ्क गुणाकार से प्राप्त हुये हैं । ४८ ।

श्री पार्श्वनाथ भगवान तथा महावीर भगवान के सिंह की ऊंचाई का प्रमाण धनुष न होकर केवल हाथ ही है । ४९ ।

इस अंक को साधन करने वाला भूवलय ग्रन्थ है । ५० ।

आगे भूवलय के कोष्ठक बधाक मे मिलने वाले अक्षर को दाशमिक (दशम) क्रम से यदि गणित द्वारा निकालें तो आठवें तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभु पर्यन्त जो सिंह का वर्णन किया गया है वह निर्मल शुभ्र स्फटिक मणि के समान है । इस प्रकार इस स्फटिक मणिमय वर्ण के सिंह का ध्यान करने से ध्याता को अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है । ५१ ।

इसी गणित को आगे बढ़ाते जाने से भगवान पुष्पदन्तादि दो तीर्थंकर के सिंह लांछन का वर्ण कुन्द पुष्प के समान है ५२ ।

श्री सुपार्श्वनाथ तथा पार्श्वनाथ भगवान के सिंह का वर्ण हरित है, श्री

सुव्रत तीर्थंकर के सिंह का वर्ण नील है तथा श्री नेमिनाथ, पद्मप्रभु और वासुपूज्य इन तीनों तीर्थंकरो के सिंह का वर्ण रक्त है । ५३ ।

आठ तीर्थंकरों के सिंहो का वर्ण श्वेत, पीत, नील तथा रक्त वर्ण का है किन्तु शेष सोलह तीर्थंकरो के सिंहो का वर्ण स्वर्ण रस तथा स्फटिक मणि के समान है ।५४।

महावीर भगवान का सिंहासन स्वर्ण मय तथा आदि तीर्थंकर श्री आदिनाथ भगवान का नन्दी पर्वत पर स्थित सिंहासन स्वर्ण मय है । क्योंकि यह स्वाभाविक ही है, कारण यह स्वर्ण उत्पत्ति का ही देश है । यह नन्दी पर्वत अनादि काल से लोक पूज्य है ।५५ ।

गंग वंशीय राजा इस अनादि कालीन पर्वत को पूज्य मानते थे ।५६।

महावीर भगवान के निकट नाथ वशीय कुछ राजा दक्षिण देश में आकर नन्दी पर्वत के निकट निवास करते थे । वे ' नन्द पुर'' कुलवाले कहलाते थे ।५७।

महावीर भगवान के कुल से सेव्य होने के कारण इस नन्दीगिरि को महति महावीर नन्दी कहते हैं ।५८।

अनेक जैन मुनियों का निवास स्थान होने से इस पर्वत को इह लोक का आदि गिरि भी कहते हैं । ५९।

अनेक सूक्ष्म गणित शास्त्रज्ञ दिगम्बर जैन मुनि यहा निवास करते थे इसलिये इस गिरि का 'सुहुमाक गणित का गिरि' भी नाम है ।६०।

इस पर्वत पर निवास करने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय महर्षि लोग उग्र-उग्र तपस्या करने वाले हो गये हैं जिनको घोराति घोर उपसर्ग आये हैं फिर भी क्षत्रियत्व के तेज को रखने वाले उन महर्षियो ने उन उपद्रवो का सहर्ष सामना किया था और उन पर विजय पाई थी । इसलिए इसको महाव्रत भरतगिरि भी कहते हैं यहाँ पर भरत के माने शिरोमणि के हैं । ६२।

इन महर्षियो की सिंहनि क्रीडितादिसरीखी तपस्या को देखकर आश्चर्य चकित होकर अनेक अव्रती लोग भी अणुव्रतादि स्वीकार करते थे इसलिये इस पर्वत को अणुव्रतनन्दी भी कहते हैं ।

इस पर्वत पर रहने वाले मुनि लोग अनुपम क्षमाशील हो गये हैं इसलिये इस पर्वत को 'सहन करने वाले गुरुओ का गिरि' भी कहते हैं ।६३।

इस पर्वत पर रहने वाले जैन मुनियों के पास सभी धर्मवाले आकर धर्म के विषय में पूछताछ करते थे और समाधान से सन्तुष्ट हो जाते थे इसलिए इसको तीन सौ त्रेसठ धर्मो का सहचरगिरि भी कहते हैं ।६४।

मुनियों के नाना गण गच्छो की उत्पत्ति भी इसी पर्वत पर हुई थी इस लिये इस गिरि का नाम गुरु गण भरत गिरि भी है ।६५।

जिन गङ्ग वशी राजाओं का वर्णन ऋग्वेद में आता है वे सब राजा जैन धर्म के पालने वाले थे तथा गणित शास्त्र के विशेषज्ञ थे । उन सब राजाओं की राजधानी भी इस पर्वत के प्रदेश में ही परम्परा से होती रही थी इसलिए इस को गग राजाओ के गणित का गिरि भी कहते हैं ।६६।

विद्याधरो की भाति इस पर्वत पर अनेक मान्त्रिको ने विद्यायें सिद्ध की थी इसलिए इसको गहन विद्याओ का गिरि भी कहते हैं ।६७।

इस पर्वत के आठ शिखर बहुत ऊंचे ऊचे हैं । इसलिए इसको अष्टापद भी कहते हैं । इस पर्वत पर से नदी भी निकल कर बहती है तथा इस पर्वत पर अनेक प्रकार की जडी बूटी भी हैं जिनको देखकर लोगो का मन प्रसन्न हो जाता है और हसी आने लगती है । इसलिए इस पर्वत का नाम 'हँसी पर्वत' भी है ।६८।

जिस प्रकार सभी अहमिन्द्र एक सरीखे सुखी होते हैं उसी प्रकार इस पर्वत पर रहने वाले लोग भी सुखी होते हैं । इसलिए इसको भूलोक का अहमिन्द्र स्वर्ग भी कहते हैं ।६९।

कल्प वृक्ष कहा हैं ऐसा प्रश्न होने पर लोग कहा करते थे कि इस नन्दी गिरि पर है इसलिए इसका नाम 'कल्पवृक्षाचल' भी है ।७०।

कल्वप्पूतीर्थ, कावलाला और तालेकाया यह सब नदी गिरि पर राज्य करने वाले गग राजाओ की राजधानी भी थी ।७१-७२।

विशेष विवेचन—जहा पर जगदाश्चर्यकारी श्री बाहुबली की प्रसिद्ध मूर्ति है जिसको आज श्रवण बेलगोल कहा जा रहा है उस क्षेत्र को पहले कल्वप्पुतीर्थ कहते थे वह प्रदेश भी गग राजाओ की अधीनता में था जो कि नन्दी गिरि से एक सौ तीस मील पर है और नन्दी गिरि से तीस मील की दूरी पर एक कोवलाला नाम तीर्थ था जिस को आज 'कोलार' कहते हैं जिस पर सोने

की खानि है तथा नन्दी गिरि से डेढ सौ मील दूर पर तालेकाडू नाम का गाव है जो कि पूर्व में इन गग राजाओ की राजधानी था। इसके तालेकाडू के आस-पास में मलपूर नाम का एक पहाड़ है जिस पर पूज्यपादाचार्य के आदेश से इन्हीं गग राजाओ के द्वारा बनाया हुआ विशाल जिन मन्दिर है तथा पद्मावती की मूर्ति भी है जिस मूर्ति की बडो महिमा है। जैन हो नही अजैन लोग अपना इच्छित पदार्थ पाने की इच्छा से उसकी उपासना किया करते हैं और यथोचित फल पाकर सतुष्ट होते हैं। इसी नन्दी गिरि से पाच मील दूर पर यलव नामक एक गाव है जो कि पूर्व जमाने मे एक प्रसिद्ध नगर के रूप मे था। वही पर कुमुदेन्दु आचार्य रहते थे। यलव के आगे भू लगाकर उमे प्रतिलोम रूप पढने से भूवलय हो जाता है।

यह नान्दी गिरि प्राचीन काल मे श्री वृषभनाथ के समय से बहुत बडा पुण्य क्षेत्र माना गया है।७३।

महावीर भगवान का मिहासन सोने का बना हुआ था और महद आदि ऋषभ जिनेन्द्र की प्रतिमा के नीचे रहने वाले सिहासन का सिह भी सोने का ही है। क्योंकि इस पर्वत के नीचे मोने की खान पाई जाने से मगल रूप बतलाने वाला सोने की वस्तु बनाने में क्या आश्चर्य है। इम पर्वत में ही भूवलय ग्रन्थ को आचार्य कुमुदेन्दु ने लिखा है।७४।

भगवान के चरणों के नोचे रहने वाले सिह के ऊपर के कमलो की बत्तीस लाइनें हैं जिनमे एक-एक लाइन में सात-सात कमल हैं। (३२×७=२२४) कमल हुए। भगवान के नीचे रहने वाले एक कमल को मिलाकर २२५ कमल हो जाते हैं। उन कमलों का आकार स्वर्ण से बनाकर नन्दी पर्वत के अग्रभाग में बनाये हुए विशाल मंदिर मे गग राजा शिवमार ने रक्खा था।७५।

दया धर्म रूपी धवल वर्ण भगवान का पादद्वय कमल के ऊपर विराजमान था। वहाँ सिह का मुख एक होते हुए भी चारो तरफ चार मुख दीखते थे, क्योंकि यह चतुर्मुखी सिह के मुख का चिन्ह गग राजा का राज्य चिन्ह अर्थात् भरत खण्ड का शुभ चिन्ह था।७६।

विवेचन—आज के भारत का जो राज्य-चिन्ह चौमुखी सिह है वह अशोक चक्रवर्ती का राज्य चिन्ह था, ऐसी मान्यता प्रचलित है। अशोक से भी पूर्व गग वंश के राज्य काल में भी यह चतुर्मुखी सिह भारत का राज्य चिन्ह रहा है। यह सिह ध्वज का लांछन चिन्ह चौबीसों तीर्थंकरों के समवशरण में रहने वाला होने के कारण अथवा प्रत्येक तीर्थंकर के समय में होनेवाले सिह की आयु, मुख, प्रमाण, देह प्रमाण आदि का विवरण इस भूवलय ग्रन्थ के इमी अध्याय में आने वाला है। अत प्रमाणित होता है कि यह चतुर्मुखी सिह का चिन्ह बहुत प्राचोन समय से चला आ रहा है।

इम मन्दिर के ऊपरी भाग में मृग, पक्षी, मानव आदि के सुन्दर चित्र बनाए हुए थे। उन सब मे वीर श्री का द्योतक यह सिहासन था। यह सब भरत चक्रवर्ती का चलाया हुआ चक्रांक क्रम था।७७

यह सिह वीर जिनेन्द्र का वाहन (पगचिन्ह) था और प्रातिहार्य भी था। जैन धर्म, क्षत्रिय धर्म, शौर्य श्री, सारस्वत श्री इन सब विद्याओं का प्रतीक यह सिह था।७८।

यह सिह समचतुरस्र सस्थान और उत्तम संहनन से युक्त रचना से बना हुआ था, एव मगलरूप था, विमल था, वैभव से युक्त था, भद्रस्वरूप था तथा भगवान के चरणो मे रहने से इस सिह को शिव मुद्रा भी कहते हैं।७९।

ऋषभ आदि तीर्थकरो मे क्रमागत सिह की आयु और ऊंचाई, चौड़ाई सब घटती गई है। अन्यत्र ईश्वर इत्यादि का वाहन भी सिह प्रतीक दीख पडता है।८०-८१।

भगवान के इन सिहो को नमस्कार करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है।८२।

सब सिहो में समवशरण के अग्र भाग में रहने वाले सिह को ही लेना।८३।

एक सिह के चार पैर होते हैं। अब यहां चारो तरफ आठ चरण दीख पडते है।८४।

प्रत्येक सिह के मुख पर केश विशालता से दीख पडते हैं।८५।

इस सिह को इतना प्राधान्य क्यों दिया गया ? इसका उत्तर यह है कि भगवान के ८ प्रातिहार्यो मे एक प्रातिहार्य होने से इसका महत्व इतना हुआ।८६।

एक सिह होते हुए भी चार दीख पडने से गणित शास्त्र के क्रमानुसार

समांक को विषमांक से भाग देने से शून्य आ जाता है ।८७।

नाट्य शास्त्र के अभिनय के लक्षण में इस सिंह का भाव प्रकट करे तो अहिंसा का भाव पैदा होता है ।८८।

पाहुड ग्रन्थों में इस सिंह प्रातिहार्य को श्रमहारक लाछन माना गया है ।८९।

चारों ओर रहने वाले सिंह के मुख समान होते है ।९०।

सिंह के समीप महाव्रतियों के बैठने के कारण इस सिंह का भी महाव्रती सिंह नाम आया है ।९१।

समवशरण में सिंहासन के पास महाव्रती बैठकर जो सिंह निष्क्रीडित तप करते हैं उसी के कारण इस को सिंह निष्क्रीडित कहते हैं ।९२।

इसका नाम गज अग्रकीडे अथवा गजेन्द्र-निष्क्रीडत तप भी है ।९३।

इस सिंह प्रातिहार्य को यदि नमस्कार करें तो अणुव्रत की सिद्धि हो जाती है ।९४।

इस गजेन्द्रनिष्क्रीड़ित❖ महातप को करने वाले महात्माओं के महाव्रतों में अपूर्व शुद्धि भी प्राप्त हो जाती है ।९५।

ऐसा कहने वाला यह निर्मलांक महाकाव्य भूवलय है ।९६।

मध्य सिंहनिष्क्रीडित एक से आठ अंक तक का प्रस्तार बनाना चाहिये। उसके शिखर पर अन्त में (मध्य में) नौ का अंक आ जाना चाहिये और जघन्य निष्क्रीडित के समान यहा भी दो दो अकार की अपेक्षा से एक एक उपवास का अक घटाना बढाना चाहिये । इस रीति से इस मध्य सिंहनिष्क्रीडित में जितनी अको की सख्या हो उतने तो उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जाननी चाहिये अर्थात्

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
१ २ १ ३ २ ४ ३ ५ ४ ६ ५ ७ ६ ८ ७ ८ ९
१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
८ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ५ ३ ४ २ ३ १ २ १

❖सिंहनिष्क्रीडित व्रत जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट भेद से तीन प्रकार का है । उनमे जघन्य सिंहनिष्क्रीडित इस प्रकार है । एक ऐसा प्रस्तार बनावे कि अन्त में (मध्य में) उसमें पाच का अक आ जाय और पहिले के अको में दो दो अको की सहायता से एक एक अंक बढता जाय और घटता जाय इस रीति से जितने इस जघन्य सिंहनिष्क्रीडित में अको के जोड़ने पर सख्या सिद्ध हो उतने तो उपवास समझना चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जाननी चाहिए अर्थात् इस प्रस्तार का

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
१ २ १ ३ २ ४ ३ ५ ४ ५ ५ ४ ५ ३ ४ २ ३ १ २ १

यह आकार है । यहा पर पहिले एक उपवास एक पारणा और दो उपवास एक पारणा करनी चाहिये । पश्चात् दो में से एक उपवास का अक घट जाने से एक उपवास एक पारणा, दो में एक उपवास का अंक बढ जाने से तीन उपवास एक पारणा, तीन में से एक उपवास का अक घट जाने से दो उपवास एक पारणा, तीन में एक उपवास का अक बढ जाने से चार उपवास एक पारणा, चार में से एक उपवास का अङ्क घट जाने से तीन उपवास एक पारणा, चार में एक उपवास का अङ्क बढ जाने से पांच उपवास एक पारणा, पांच में से एक उपवास का अंक घटा देने पर चार उपवास एक पारणा, चार में एक उपवास का अक बढा देने पर पांच उपवास एक पारणा होती है । यहां पर अन्त में पांच का अंक आ जाने से पूर्वार्द्ध समाप्त हुआ । आगे उल्टी सख्या से पहिले पाच उपवास एक पारणा करनी चाहिए । पश्चात् पांच में से एक उपवास का अंक घटा देने पर चार उपवास एक पारणा, चार में एक उपवास का अक बढा देने पर पांच उपवास एक पारणा, चार में से एक उपवास का अंक घटा देने पर तीन उपवास एक पारणा, तीन में से एक उपवास का अक घटा देने पर दो उपवास एक पारणा, दो में से एक उपवास का अंक बढा देने से तीन उपवास एक पारणा, दो में से एक उपवास का अंक घटा देने पर एक उपवास एक पारणा, पश्चात् दो उपवास एक पारणा, एक उपवास एक पारणा करनी चाहिये । इस जघन्य सिंहनिष्क्रीडित मे अको की सख्या साठ है । इसलिए साठ उपवास होते हैं और स्थान बीस हैं, इसलिये पारणा बीस होती है । यह विधि अस्सी ८० दिन में जाकर समाप्त होती है ।

इसके प्रस्तार का आकार इस प्रकार है । यहा पर भी पहिले एक उपवास एक पारणा और दो उपवास एक पारणा करनी चाहिए । पश्चात् दो में से एक उपवास का अक घटा देने पर एक उपवास एक पारणा, दो मे एक उपवास का अंक जोड देने पर तीन उपवास एक पारणा, तीन में से एक का अक घटा देने पर दो उपवास एक पारणा, तीन में से एक उपवास का अंक बढा देने पर चार उपवास एक पारणा होती है । इसी प्रकार जघन्य सिंहनिष्क्रीडित के समान आगे भी समझ लेना चाहिये । इसमे अंकों की संख्या एक सौ तिरपन हैं । इसलिए एक सौ तिरपन तो उपवास होते हैं और स्थान तैंतीस हैं । इसलिये तैंतीस पारणा होनी है । इसलिये यह मध्य सिंहनिष्क्रीडित व्रत एक सौ छियासी दिन मे समाप्त होता है ।

उत्तम सिंहनिष्क्रीडित—एक से पन्द्रह अक तक का प्रस्तार बनाना चाहिये । उसके शिखर पर अन्त में (मध्य में) सोलह का अक आ जाना चाहिये और उपर्युक्त सिंहनिष्क्रीडितो के समान यहा पर भी दो दो अक्षरो की अपेक्षा से एक एक उपवास का अक घटा बढा लेना चाहिये । इस रीति से जोडने पर जितनी इसमें अकों की संख्या सिद्ध हो उतने तो उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हो उतनी पारणा जाननी चाहिये । इसके प्रस्तार का आकार

१ २ १ ३ २ ४ ३ ५ ४ ६ ५ ७ ६ ८ ७ ९ ८ १० ९ ११ १० १२ ११
१३ १२ १४ १३ १५ १४ १५ १६ १५ १४ १५ १३ १४ १२ १३
११ १२ १० ११ ९ १० ८ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ५ ३ ४ २ ३ १ २ १

इस प्रकार है । यहा पर भी पहिले एक उपवास एक पारणा और दो उपवास एक पारणा करनी चाहिये । पश्चात् दो मे से एक उपवास का अङ्क घटा देने पर एक उपवास एक पारणा, दो में एक उपवास का अक बढा देने पर तीन उपवास एक पारणा, तीन मे से एक उपवास का अंक घटा देने पर दो उपवास एक पारणा, तीन में एक उपवास का अंक मिला देने से चार उपवास एक पारणा, चार में से एक उपवास का अंक घटा देने पर तीन उपवास एक पारणा, चार में एक उपवास का अंक बढा देने से पाच उपवास एक पारणा,

पांच में से एक उपवास का अंक घटा देने से चार उपवास एक पारणा, पांच में एक उपवास का अक जोड़ देने से छै उपवास एक पारणा, छै मे से एक उपवास का अक घटा देने पर पांच उपवास एक पारणा, छै में एक उपवास का अंक बढा देने पर सात उपवास एक पारणा, सातमें से एक उपवास का अक घटा देने पर छै उपवास एक पारणा, सात में एक उपवास का अंक मिला देने से आठ उपवास एक पारणा, आठ में से एक उपवास का अंक घटा देने पर सात उपवास एक पारणा, आठ में एक उपवास का अंक मिला देने पर नौ उपवास एक पारणा, नौ में से एक उपवास का अक घटा देने पर आठ उपवास एक पारणा, नौ में एक उपवास का अक जोड देने पर दश उपवास एक पारणा, दश मे से एक उपवास का अक घटा देने पर नौ उपवास एक पारणा, दश में एक उपवास का अक बढा देने पर ग्यारह उपवास एक पारणा, ग्यारह मे से एक उपवास का अक घटा देने पर दश उपवास एक पारणा, ग्यारह मे एक उपवास का अक बढा देने पर बारह उपवास एक पारणा, बारह में एक उपवास का अक मिला देने पर तेरह उपवास एक पारणा, तेरह में एक उपवास का अक बढा देने पर चौदह उपवास एक पारणा, चौदह में से एक उपवास का अक घटा देने पर तेरह उपवास एक पारणा, चौदह में एक उपवास का अक बढा देने पर पन्द्रह उपवास एक पारणा, पन्द्रह में से एक उपवास का अक घटा देने पर चौदह उपवास एक पारणा, पुन पन्द्रह उपवास एक पारणा और सोलह उपवास एक पारणा, सोलह मे से एक उपवास का अंक घटा देने से पन्द्रह उपवास एक पारणा, पन्द्रह मे मे एक उपवास का अक घटा देने पर चौदह उपवास एक पारणा, चौदह मे एक उपवास का अंक बढा देने पर पन्द्रह उपवास एक पारणा, चौदह मे से एक उपवास का अंक घटा देने से तेरह उपवास एक पारणा, इत्यादि रीति से आगे भी समझना चाहिये । इस रीति से इस उत्तम सिंहनिष्क्रीडित व्रत मे अंको की मिलकर संख्या चारसौ छियानबे है । इसलिए इतने तो इसमे उपवास होते है और स्थान इकसठ हैं इसलिये इकसठ पारणा होती है । यह व्रत पाच सौ सत्तावन दिन में समाप्त होता है ।

ग्रन्थकार ने तीनो प्रकार के सिंहनिष्क्रीडित व्रतो की संख्या और पारणा गिनकर बतलाने की यह सरल रीति बतलाई है । जघन्यसिंहनिष्क्रीडित व्रत में साठ उपवास और पारणा बतलाई है एवं उसका प्रस्तार पांच अंक तक

रखकर उनका आपस में जोड दें और जोडने पर जो सख्या आवे उसका चार से गुणा करदे, इस रीति से गुणा करने पर जो सख्या सिद्ध हो उतने तो उपवास और जितने स्थान हो उतनी पारणा समझनी चाहिए अर्थात् इम जघन्य सिंहनिष्क्रीडित व्रत में एक से पाच तक की सख्या जोडने पर १५ होते हैं और पंद्रह का चार से गुणा करने पर साठ होते हैं। इसलिए इतने तो उपवास हैं और स्थान बीस होते हैं इसलिए पारणा बीस है। मध्य सिहनिष्क्रीडित मे तिरेपन उपवास और तेतीस पारणा बतला आये हैं और नौ के अक को शिखर पर रखकर आठ अक तक का प्रस्तार बतला आये हैं। वहा पर एक से लेकर आठ तक संख्या रखकर आपस में जोड दे और जोडने पर जितनी सख्या आवे उसका चार से गुणा करें तत्पश्चात् गुणित सख्या में जो नौ का अक शिखर पर बतला आये हैं उसे जोड़ दें इस रीति से जितनी सख्या सिद्ध हो उतने इस मध्यसिहनिष्क्रीडित में उपवास हैं और जितने स्थान हैं उतनी पारणा है अर्थात् एक से आठ तक की संख्या का जोड देने पर छत्तीस होते हैं। छत्तीस का चार से गुणा करने पर एकसौ चौवालिस होते है और उसमे नौ जोड देने पर एकसौ तिरपन हो जाते हैं। इसलिए इस व्रत मे एकसौ तिरेपन तो उपवास होते हैं और स्थान तेतीस हैं इसलिए तेतीस पारणा होती हैं। उत्तम सिहनिष्क्रीडित मे चारसौ छियानबे उपवास और पारणा इकसठ कही हैं। इसका प्रस्तार सोलह के अंक को अधिक रखकर पंद्रह तक बतला आये हैं। वहां पर भी एक से लेकर पंद्रह तक की सख्या का आपस में जोड देने पर जितनी सख्या आवे उसका चार से गुणा करे और गुणित सख्या मे जो सोलह का अक अधिक बतला आये हैं उसे जोड़ दे और जोड गुणा करने पर जितनी संख्या निकले उतने इस व्रत में उपवास समझने चाहिए और जितने स्थान हो उतनी पारणा जाननी चाहिए अर्थात् एक से पद्रह तक जोडने पर एकसौबीस होते हैं। एकसौबीस का चार से गुणा करने पर (१२० × ४ = ४८०) चारसौ अस्सी होते हैं और इनमें जो सोलह अधिक बतला आये हैं उन्हे मिला देने से चारसौ छियानबे हो जाते हैं। सो चारसौ छियानबे तो इस व्रत में उपवास होते हैं और स्थान इकसठ हैं इसलिये पारणा इकसठ होती हैं। इस क्रम से जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट सिंहनिष्क्रीडित की उपवास और पारणाओ की सख्या जाननी चाहिए। जो मनुष्य इस परम-पावन सिहनिष्क्रीडित व्रत का आचरण करता है उसे वज्रवृषभ नाराचसंहनन की प्राप्ति होती है, अनन्त पराक्रम का धारक हो, सिंह के समान वह निर्भय हो जाता है और शीघ्र ही उसे अणिमा महिमा आदि ऋद्धियों की भी प्राप्ति हो जाती है।

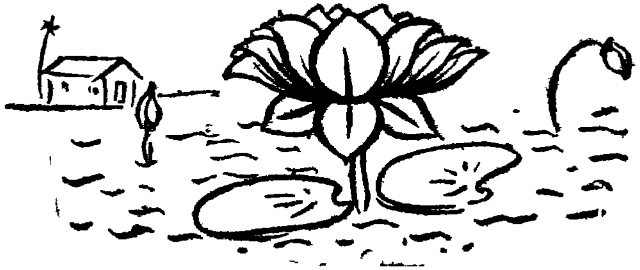

नौ अध्याय

ऊ* काव्यवतिशय ज्ञान साम्राज्य । श्रीकर वय्भव भद्र ।। भू* करवाद भूवलय सिद्धान्तके । ऊ काव्यवादियोळ् नमिपे ।।१।।
व* शवा लोक अलोक भूवलयद । त्रस नाळियोळहोरगिरुव ।। यश त* नियाद ज्ञानव घनववनाळ्व । रसवे मङ्गळद प्राभृतवे ।।२।।
ए* नदि प्रकाशवागुव सूर्यनो एसव । जिनदेवननन्तरदन व* वनुभव तावरेयग्र सिम्हव अग्र । वनुमेट्टविरुव नाल्वेरळ ।।३।।
व* तियोळु निन्विह अथवा कुळितिर्प । स्थितिय द्रव्यवरिय लि* कुके।। अतिशय मूवत्नाल्कर काव्यद। हितवक्षरदङ्क ई‘ऊ’ ।।४।।
र* सिकद बेवरिल्ल निजदेह निर्मल। होसवेहरक्त बिळिया गु* तसमानवज्र वृषभ नाराचद । यशदादि समहननान्ग ।।५।।
वश सम चतुरस्रवेनिप ।।६।। असमान देह सम्स्थान ।।७।। यशवृअनुपमरूप कान्ति ।।८।। रसग्रन्थ समपगेयन्द ।।९।।
यशद साविरदेन्दु चिन्ह ।।१०।। यश बल वीर्य अनन्त ।।११।। हस मित मधुर भाषणवु ।।१२।। दशभेदवु स्वाभाविकवु ।।१३।।
यशविवु जननातिशयवु ।।१४।। रसद हत्त्व अन्कद चिन्हे ।।१५।। विषहरदमृत शरीर ।।१६।। कुसुमदग्रद जिन-देह ।।१७।।
ऋषिगळाराधिप देह ।।१८।। जसवे महोन्नत देह ।।१९।। रससिद्धि गादिय देह ।।२०।। बिशमसमान् कद देह ।।२१।।
कुशवग्र बुद्धिर्धिदेह ।।२२।। रसरत्न मूरात्म देह ।।२३।। उसहादि महावीर देह ।।२४।। यशविह काव्य भूवलय ।।२५।।
भू* वलयवनेल्ल नाल्कु दिशेगळलि । कावुत नूरु योजनद । ठाव ण* मुभिक्षतेयन्उन्दु माडुत । ताउ आकाशदे गमन ।।२६।।
व* रे हिम्सेय् अभाव उप्पाद लिरुवन्थ । परिपरियुपसर्ग ध* रिस।। दिरुवनाल्दिशेमुखनेरळुबीळदलिह। परियन्तवरेप्पेयनोट ।।२७।।
ल* क्षण विद्येगळेल्लर ईशत्व । रक्षिप उगुर कोळदिह ।। र* क्षिसि कूदलु समनागिर्पुवु । रक्षेय हदिनेन्दु भाषे ।।२८।।
य* शव लिपियन्क क्षुद्र एळ्न् अन्क । वश समज्ञरिजीव आ* वाव।। यशदन्काक्षर अक्ष भाषामय । वशभव्यर्गुपदेशावीव।।२९।।
सु* नव असखलित स्वभावद अनुपम । वनधिघोषद दिव्य त र* आद । जिनरदिव्यध्वनिमूरुसन्जेगेबर्प । घनद्ओम्बत्मुहूर्तगळु।।३०।।
जनिसवु तुटियळाटदलि ।।३१।। जनिसे सल्लुगळाट रहित ।।३२।। घन तालु ओष्ट बेकिल्ल ।।३३।। जनकेल्ल ओम्दे समयदि ।।३४।।
जिननुपदेशवागुवुदु ।।३५।। घन ओम्दु योजन हरिदुम् ।।३६।। गणधर परश्नेगुत्तरदे ।।३७।। जिनवाणि बेकागे बहुदु ।।३८।।
मनुज चक्रियप्रश्नेयन्ते ।।३९।। जिनवाणि युत्तर बहुदु ।।४०।। कोनेमोदलन्नु तुळुवुदु ।।४१।। घनद्रव्य आरम् पेळुवुदु ।।४२।।
घन तत्व एळर कथन ।।४३।। दनुभव नववस्तु कथन ।।४४।। तनि ऐद् अस्थिकायगळम् ।।४५।। घन हेतुगळिम् पेळुवुदु ।।४६।।
जिन दिव्यध्वनि सार ।।४७।। कोनेय प्रमाण भूवलय ।।४८।।
ति* रेयोळाश्चर्यद हत्ओमद् अरतिशय वेरसिद जिन देव य* शद।। परियुकेवलज्ञानवागलुबरुवुदु । अरुहगे घातिय क्षयदि ।।४९।।
य* वेय काळिन अष्टकर्मवु निलद्दिरे । सवेयदलिह अनुभव म* । अवतारदनिशयहन्ओम्दर् अन्कके । सवि घातिक्षयजातिशय ।।५०।।
र* सवात्मनेनुवरहन्त पप प्राप्त । यशदिव्यात् मनन न* त।। वश गुणसम्रुद्धनाद तेजोनिधि । रससिद्धिगादिय वस्तु ।।५१।।
ल* वकार मन्तरद मूरुमूरलोम्बत्त । रवरलि गुणाकार च क्* षु।। विवरदद्रुष्टिभेदगळनुतिळिदिह । नवकारदतिशय वस्तु ।।५२।।
३ × ३ = ९ जवननोडिप दिव्य चक्षु ।।५३।। नवकारकादिय वस्तु ।।५४।। सुविशाल जगद साम्राज्य ।।५५।।
नवनवोदित दिव्य ज्योति ।।५६।। कविगे सिक्कद दिव्य रूप ।।५७।। अवयव सुपवित्र पूतम् ।।५८।।

जवमृजव हरणव रूपु ॥५९॥ सुविशाल दिव्यवय् भववु ॥६०॥ गवसरिणगेयळिव वेह ॥६१॥
सविवचनाम् रुत शरधि ॥६२॥ नवपद भक्तिय शुद्धि ॥६३॥ नवपद भक्तिय सिद्धि ॥६४॥
नवपद ज्ञानद शक्ति ॥६५॥ नवदमृक सिद्धि चारित्र्य ॥६६॥ अवसर्पिरिणयावि रूपु ॥६७॥
अवसर्पिरिणय भव्यान्क ॥६८॥ नवदेरडने भागदन्क ॥६९॥ भवहर सिद्ध भूवलय ॥७०॥
सु॰ रक्रुतर्हविमूर् अतिशय काव्यदे । सिरि जिन महिमेगळर पु॰ तिरुवल्लिमोदलिगेसन्ख्यातयोजन । दिरुववनगळ वृरुक्षदोळु ॥७१॥
वृ॰ शशिसलुमल्लि एलेयु हूवु हरणगळउ । बरुवुवसमयदोळा ना॰ परियतिशय ओमृदु मरळुमुळ्ळिल्लव । धरेयोळु चलिसुव पवन ॥७२॥
वे॰ नुवुहोंक्कन्ते सुखदायकवु । एनेमृबे एरडनेय महा ॥ ताना ग॰ तवायु परिवुदु मूरने । तानुवय्रव बिट्टु जीवर् ॥७३॥
रण॰ व नवोदित दिव्य प्रेमदिन्दिरुवरु नवरत्न केत्तिद ह॰ सेय ॥ सुविशाल दर्पणदन्ते होळेवनेल । दवनियु नाल्कनेयन्क ॥७४॥
दवनिय समवसरणवु ॥७५॥ कविगे नाल्कनेयतिशयवु ॥७६॥ नवरन्करणनेलेकट्टु ॥७७॥ दवनमोल्लेय चित्रदच्चु ॥७८॥
सवि गन्ध माधव हूवु ॥७९॥ नवगन्ध माधव बळ्ळि ॥८०॥ सुविशाल चित्रवल्लियदु ॥८१॥ नव सम्पगे पडियच्चु ॥८२॥
नव गन्धराज बळ्ळिगळ ॥८३॥ अवयव कमल जातिगळ् ॥८४॥ गवसरिणगेय चित्रदच्चु ॥८५॥ नवे कामकत्तुरि झल्लि ॥८६॥
विविध चेन्गरणजिल वेला ॥८७॥ नवमालती मुडिवाळ ॥८८॥ नव पगडेय बन्धूक ॥८९॥ छवि ताळेयवतार चित्र ॥९०॥
भूविय पावरिय नामद हू ॥९१॥ दवनिय रेखेयन्तिहुदु ॥९२॥ दवनिय काव्य भूवलय ॥९३॥
रण॰ व सुगन्धद पन्नीरिन मळेयनु । अवनिगे सुरिसुत सवन ॥ स॰ विजलवृरुष्टिय देवेन्द्र नाग्नेयिम् । भुविगे सुरिव मेघकुवर ॥९४॥
म॰ ळेयु ऐदागे देवरु विक्रियेयिन्द । फल भारअनम्रद शालि ॥ ति॰ ळियाद पयरनु हरडुवुद् आरअन्क । विविधजेवरनित्य सवख्य ॥९५॥
सृ॰ रेयबारद एळु देवर्विक्रियेयिन्द । सर तरणपिन् वृआयु य॰ शव॥ आरनिगेबीसुवुद्एनट्अन्ककेरेभावि। सिरिशुद्धजलपूर्णनवम ९६
सि॰ डिलु कार्मोडउल्कापातविल्ल । विडियाद आकाशदशम ॥ वड ति॰ यागिरे सर्व जीवर्गे रोगादि । भिडेयिल्लदिहुदु हन्ओमृदु ॥९७॥
गडिय वाटिहरु हरषदलि ॥९८॥ जडतेयनळिदिहरल्लि ॥९९॥ फडेगळिळ्लद निरामयरु ॥१००॥ गडिगळळिदु बाळुवरु ॥१०१॥
मृत्यु बाधेयळिदिहरेल्ल ॥१०२॥ एडरुगळळिवरु एल्ल ॥१०३॥ ओडवेगळळिवरु जनरु ॥१०४॥ कडवनु कळेदु कोळ्ळुवरु ॥१०५॥
जडतेयनळिवु बाळुवरु ॥१०६॥ झडतिय नळियदिहरेलूल ॥१०७॥ तोडरुगळळिदरु जनरु ॥१०८॥ तडेगळिल्लदे सुखविहरु ॥१०९॥
सडगरवेनिल्लवल्लि ॥११०॥ कुडुकेगळळिदिहरळ्लि ॥१११॥ नडे मुडियलिदु बाळुवरु ॥११२॥ पडिगळ बाधेयल्लिळ्ल ॥११३॥
बडतनवेनिळ्ळवळ्लि ॥११४॥ मडिगळिळ्लदे बालुवरु ॥११५॥ यडरळिविहरु नोडळ्लि ॥११६॥ षडक्षरवलिव भूवलय ॥११७॥
ऊ॰ नवळिद तेजदतिशय रत्न । कारणुव बेळकिनुज्वलद ॥ तारण व॰ अमृधरिसिद धर्म चक्रवुनाल्कु ॥ आनन्दादिम् यक्षेन्द्ररुगळ् ॥११८॥
रणा॰ रणाविधदलन्कारव धरिसिह । जानपदद तेरदिन्द ॥ आनव रु॰ चियवुहन्एरड् अन्कवु तानु मूवत्एरळ् विशेयोळ् ॥११९॥
ह॰ रडिव एळेळु पन्वतिये हदिमूरु । बरे स्वर्ण कमलद ष॰ रधि ॥ विरचितपादपोठवुहदिनाल्कदु । सरिपूजेवस्तुहुण्णनेयु ॥१२०॥
यृ॰ न पादपीठ पूजाद्रव्य एरळ् पोगे । जिमर मूवत्नाल्कु शु भ॰ द ॥ घनवादतिशयगळनेल्ल पेळुव । विनयावतारि यावनिहु ॥१२१॥
जनरु भूतलदोळगिल्ल ॥१२२॥ जनरु भूतलदोळेल्लिहरु ॥१२३॥ सनुनय बाबियारिहनु ॥१२४॥ जिन मार्गलक्षण धर्म ॥१२५॥

अनर कन्दक हरणान्क ॥१२६॥ घन भद्र मन्गल रूप ॥१२७॥ जिन शिव भद्र कय्लास ॥१२८॥ जिन विष्णु भवन वय्कुन्ठ ॥१२९॥
विनय सत्यव बरम्हलोक ॥१३०॥ जनतेय सर्वार्थ सिद्धि ॥१३१॥ जनरिगे सर्वान्क सिद्धि ॥१३२॥ इन चन्द्र कोटिय किरण ॥१३३॥
कनक रत्नगळ मेल्कट्टु ॥१३४॥ घन रस सिद्धिय मणियु ॥१३५॥ कुनय विनाशक मणियु ॥१३६॥ केनेवालन्तिह शुद्ध स्वर्ण ॥१३७॥
कोनेयात्म सिद्धिय नेलनु ॥१३८॥ तनय तनुजेयर त्याग ॥१३९॥ दनुज किन्नर शिल्प काव्य ॥१४०॥ घनपुण्यभवन भूवलय॥१४१॥
भ* वनामर व्यन्तरद ज्योतिष्कर। नव नव कल्पद सिरि वी* रवन भक्तह जयध्वनियिन्द पाडुव सुविशाल कलरवकतिय ॥१४२॥
वृ* रवमन्यालव प्राम्हतद महा काव्य। सरणियोळ् सिरि वी र* सेन॥ गुरुगळमतिज्ञानदरिविगे सिलुकिह। अरहंतकेवलज्ञान ॥१४३॥
व* शवागे मूवत्नाल्वउगळतिशय। ऋषि मार्ग धर्मव धरि से* असद्रुशवाद त्रय्लोकाग्र सिद्धियु वशवागलेमगेम्ब ज्ञान ॥१४४॥
ज* निसलु सिरि वीरसेनर शिष्यन। घनबादकाव्यद कथेय ॥ जि न* असेन गुरुगळ तनुविन जन्मद। घनपुण्यवर्धन वस्तु ॥१४५॥
णा* रणा जनपदवेल्लदरोळु धर्म। तानु वर्षोणिसि मर्पाग ॥ तान् आ* ल्लि मान्यखेटद दोरे जिन भक्त। तानु अमोघवर्षांक ॥१४६॥
ण* व पद भक्तियिम् जन पदवेल्लवु। तव निधियागिसिर्दाग मृ* अवर भव्यत्वद आसन्नतेयिन्द। नवदन्क मूर्तियादन्ते ॥१४७॥
सविवर मतिज्ञान धरनु ॥१४८॥ अवनिय ज्ञान सम्प्राप्ति ॥१४९॥ भुवियतिशयद सत्भाग्य ॥१५०॥
नवविध ब्रह्मवनरिव ॥१५१॥ अवर पालिसुव सद्गुरुवु ॥१५२॥ सुविशाल कीर्तिय देह ॥१५३॥
नवनवोदित शुद्ध जयद ॥१५४॥ अवतारदाशा वसविय ॥१५५॥ भुवि कीर्तियह सेनगणदि ॥१५६॥
अवतरिसिदज्ञातवम्शि ॥१५७॥ अवन गोत्रवदु सद्धर्म ॥१५८॥ अवन सूत्रवु श्री वृषभ ॥१५९॥
अवन शाखेयु द्रव्यान्ग ॥१६०॥ अवन वम्शवदु इक्ष्वाकु ॥१६१॥ अवनेल्ल त्यजसिद सेन ॥१६२॥
नव गण गच्छव सारि ॥१६३॥ नव भारतदोळु हरिसि ॥१६४॥ सविय कर्माटक दोरेगे ॥१६५॥
विवरदोळ् कर्मव पेळ्द ॥१६६॥ अवनन्क काव्य भूवलय ॥१६७॥ भुवन विख्यात भूवलय ॥१६८॥
प* दविगळ् ऐदु सन्जनिसिद राजगे। सधवलद् आदिम् वृध् या* स्पदवागे एरडने जयधवलान्कद। वदिगे मूरने महा धवल ॥१६९॥
डी* नत्ववळिसुत जनतेय पालिप। भूनुत वर्धमानान्क ॥ आन मृ* अजनतेय जयशील धवलद। शाने पर्वयिदु नाल्कु ॥१७०॥
ब* शवादतिशय धवल भूवलयद। यशवागे ऐदने अंक ॥ रस वि* स्मयवाद विजयधवलविन्तु। यशद भूवलयद भरत ॥१७१॥
वृ* हिय गेल्दन्कव वशगेय्द राजनु। वहिसिद दक्षिणद् भ र* त ॥ सिंहिय खण्डदकर्माटकचक्रिय। महिये मण्डलवेसरान्तु ॥१७२॥
कहिय हिम्सेयनोडि सिद ॥१७३॥ गहनद् अहिम्सेय मेरेसि ॥१७४॥ वहिसिदणुव्रत ख्याति ॥१७५॥
इह सौख्य करवाद ख्याति ॥१७६॥ छह खण्ड वशशास्त्र ख्याति ॥१७७॥ महियतिशय स्वर्गवेसरिम् ॥१७८॥
इहवे स्वर्गवो एम्ब तेरदिम् ॥१७९॥ वहिसि अमोघवर्षन्रुप ॥१८०॥ नहि नहि नृपनेनुवन्ते ॥१८१॥
वहिसुत कर्माष्टकव ॥१८२॥ मह विश्व कर्माटकव ॥१८३॥ विहरिसुतिरुव सद्धर्म ॥१८४॥
सिंहिय अहिम् सेय राज ॥१८५॥ इह पर सुखद सर्वस्व ॥१८६॥ सहकार धर्म साम्राज्य ॥१८७॥
इहवेल्ल सौभाग्य रूप ॥१८८॥ महावीर धर्म मान्गल्य ॥१८९॥ गुहेय तपश्चर्य सिद्ध ॥१९०॥

कुहक विनाशक राज्य ।।१९१।। सुह शिव भद्र वय्भाळ ।।१९२।। महा सिद्ध काव्य भूवलय ।।१९३।।
महावीर नडियिट्ट राज्य ।।१९४।।
बो✻ विनोळन्तर्मुहूर्तदि सिद्धान्त । र्वादि ग्रन्त्यवनेल चि✻ त्त।। साधिपराज ग्रमोघवर्षन गुरु । साधितदरम सिद्ध काव्य ।।१९५।।
च्✻ रितेय सान्गत्यवेने मुनि नाथर । गुरुपरम्परेय विरचि त✻ सिरि वीरसेन सम्पादित सद्ग्रन्थ । विरचितवाचक काव्य ।।१९६।।
छा✻ येयोळ् ग्राचार्यनुसुरिद वाणिय । दायवनरियुत नानु।। ग्राय म्✻ न्गल पाहुडव क्रमान्कद । दायदि कुमुदेन्दु मुनि ।।१९७।।
मि✻ गिलादतिशयदेळ्नूर हदिनेन्टु । ग्रगणितदक्षर भाषे ।। श्✻ गणादि पद्धति सोगसिनिम् रचिसिहे मिगुव भाषेयु होरगिल्ल ।।१९८।।
सोगसाथ कर्माटदादि ।।१९९।। सुगुण सम्पूर्णान्ग भाषे ।।२००।। बगेयतिशय शुद्ध काव्य ।।२०१।।
जगवोळिन्निल्लद भाषे ।।२०२।। ग्रगणित जीवर भाषे ।।२०३।। बिगिदिह सव्दरियन्क ।।२०४।।
सोगवीव श्री चक्रबन्ध ।।२०५।। बगे बगेयतिशय बन्ध ।।२०६।। मृग पक्षि भाषेय भन्ग ।।२०७।।
विगिलळिदिह स्वर्ग बन्ध ।।२०८।। ग्रगणित गणित ग्रनन्त ।।२०९।। जगवेल्ल बिगिदिह भन्ग ।।२१०।।
मिगवु मानवनप्प भंग ।।२११।। खगवु स्वर्गके पोप भंग ।।२१२।। जगवेल्ल सिद्ध भूवलय ।।२१३।।
युग परिवर्तनदन्ग ।।२१४।।
ति✻ रेय जीवरनेल्ल पालिप जिन धर्म । नर पालिसुवुदए न री✻ दे ।। गुरु धर्मदाचारवनु भोरदिह राज । धरेय पाळिवुवेनरिवे ।।२१५।।
लो✻ कद त्रस नालियोळगिह जीवर । साकुव जैन धर्म विइवु ।। शो✻ करवेने सर्व लक्षण परिपूर्ण । नाक मोक्षव नीयुवुदु ।।२१६।।
य✻ श कर्मवुदयव तन्दीव जिन धर्म । रसेगे सौभाग्यवनित् ता✻ यशकाय जीवर शोकव हरिसुत । रससिद्धियन्तागिपुवु ।।२१७।।
विषहर गारुड मणिय ।।२१८।। ग्रसदृश ज्ञान साम्राज्य ।।२१९।। दिशेयन्तवदनु काणिपुवु ।।२२०।।
उसह सेनरनु तोरुवुदु ।।२२१।। ग्रसमान सान्गत्य वहुवु ।।२२२।। कुसुमायुध तापहरवु ।।२२३।।
कसद कर्मद तोलगिपुवु ।।२२४।। विसमान्कवनु भागिपुवु ।।२२५।। सुषम कालवनु तोरुवुदु ।।२२६।।
वशदात्म सिद्धि भूवलय ।।२२७।।
भू✻ तबल्याचार्य नवन भूवलयद् । ग्रख्यातिय वैभव भव् र✻ नूतन प्राक्तन वेरडर सन्धिय। ख्यातिय सारुव सूत्र ।।२२८।।
ब✻ र भूतबलि नामवदनतिशेयवेन् । दोरेवाग ग्रतिशयवेनु ।। ह✻ रुष वर्धनवाद भारत देशद । गुरु परम्परेयाद राज्य ।।२२९।।
ल✻ वण वारिधियदु बळसुत बन्दिरे । सविय श्वर्धमान पुर ।। सा✻ विर पुरद नाडाद सौराष्ट्रद । ई विश्व कर्माट देश ।।२३०।।
ग्रवरोळु मागधदन्ते ।।२३१।। सवि त्रिसिनीरिन बुग्गे ।।२३२।। ग्रवितिहुवदरोळु रसवु ।।२३३।। ग्रवरुपयोगवु मुन्दे ।।२३४।।
य✻ शवदु भारत त्रिकलिन्गवेनिसिद । रसेयेल्ल कन्नाडद व✻ वशगेय्दन्तर हदिनय्दु साविर । दिशेगे नूररवसेन्दूम ।।२३५।।
म्✻ नव 'ग्र' काव्यवोळेन्दु नाल्कोळिन् । टेनुवाग बन्दन्कव बा✻ जिनरुपिनाशेय कोनेगे ग्रोम्बत्तन्क । एनुवष्टु (जिनर भूवलय)
महाप्रातिहार्य ।।२३६।।

ऊ ८, ७४८+ग्रन्तर १४, ८३२=२३, ५८० । ग्रथवा ग्र—उ ग, ५२, ४४२+२३,५८०=१, ७६, ०२२ ।

नौवां अध्याय

'ऊ' तो नवम् अंक है। इसमें अतिशय ज्ञान भरा होने से ज्ञान साम्राज्य-काव्य भी कहते हैं। अनेक वैभवों को मङ्गलरूप से प्राप्त करने वाला पृथ्वी रूप पर्याय धारण करनेवाला और आत्मा का स्वरूप दिखाने वाले इस भूवलय के सिद्धान्त काव्य को आदि मै नमस्कार करता हू ॥१॥

'भूवलय' के दो अर्थ है एक समस्त पृथ्वी और दूसरा आत्मा। समस्त पृथ्वी को भूलोक कहते हैं। लोक के बाहर अलोक को भी पृथ्वी ही कहते है। यह लोक त्रसनाली के अन्दर और बाहर रहता है। उन सबको जाननेवाला ज्ञान ही हैं। आत्मा ज्ञान घनस्वरूप है। ज्ञान का रस ही मगल प्राभृत रूपी इस भूवलय का प्रथम खण्ड है ॥२॥

सूर्य तो बाहर प्रकाश करता है और मन के अन्दर जो प्रकाश होता है वह ज्ञान-सूर्य है। उस ज्ञान-सूर्य मे जिनेन्द्र देव की स्थापना करनी चाहिए। जैसे जिनेन्द्र देव समवशरण में सिहासन के ऊपर रहने वाले १००८ दल वाले कमल के ऊपर चार अँगुल अधर मे स्पर्श नही करते हुए कायोत्सर्ग मे खडा हुआ अथवा पल्यकासन मे बैठा हुआ ऐसे जिनेन्द्र देव की मन मे स्थापना करनी चाहिए। जब जिनेन्द्र देव जी की स्थापना मन मे होती है उस समय उनका पवित्र ज्ञान भी हमारे अज्ञान-तिमिर को नष्ट करता रहता है। उस जिनेन्द्र भगवान मे ३४ अतिशय रहते हैं। अष्टमहाप्रातिहार्य के स्वरूप को पहले कह चुके हैं। अब ३४ अतिशय का वर्णन करने वाला यह "ऊ" अध्याय है।३-४।

कर्मोदय से दुर्गन्धरूपी पसीना शरीर मे निकलता है। घातिया कर्मक्षय में यह पसीना आना भगवान का बन्द हो गया। इसलिए भगवान का परमोदारिक दिव्य शरीर निर्मल है। उस परमोदारिक शरीर मे बहने वाला रक्त हमारे शरीर की भांति लाल नही है बल्कि उस रक्त का रङ्ग सफेद है। यह शुक्ल ध्यान की अन्तिम दिशा का द्योतक है। हड्डी को रचना मे अनेक नमूने हैं। सबसे पहले को उत्तम हड्डी की रचना को वज्रवृषभ नाराचसहनन कहते हैं। जोड़, आदि वज्र से बने रहने के कारण इसको वज्रवृषभनाराच सहनन कहते हैं। यह वज्रवृषभ नाराच संहनन उसी भव में मोक्ष को जाने वाले प्राणी को होता है अन्य को नहीं। किसी तीक्ष्ण तलवार से आघात करने पर भी यह वज्रवृषभ नाराच सहनन से बना शरीर नष्ट नहीं होता है। दृष्टांत के लिए भगवान बाहुबली देव का शरीर लीजिए। जब भरत चक्रवर्ती ने अद्भुत शक्ति मान चक्र रत्न को रणभूमि मे भगवान बाहुबलि पर छोड़ा तो वह चक्र कुछ नही कर सका, क्योंकि बाहुबलि जी का शरीर वज्रवृषभ नाराच सहनन से बनाया हुआ था। यहा अतिशय जन्म से ही था ॥५॥

सस्थान अर्थात् शरीर को रचना को कहते हैं। सस्थान भी विभिन्न हैं। इनमे प्रथम समचतुरस्र सस्थान है। शिल्प शास्त्रानुसार समस्त लक्षण से परिपूर्ण अङ्ग रचना को समचतुरस्र सस्थान कहते हैं, अर्थात् प्रत्येक अङ्ग की लम्बाई चौडाई की समानता होने को समचतुरस्र सस्थान कहते हैं। इसके दृष्टान्त के लिएदक्षिण मे श्रवण बेलगोल मे रहने वाली बाहुबलि स्वामी की विशालकाय मूर्ति ही है। ऐसा शिल्पशास्त्र से बना हुआ होने से भगवान का रूप वर्णनातीत है और अतिशय कान्ति वाला है। उनकी नाक चम्पे के पुष्प के समान है। श्रीमद् स्वस्तिका नन्द्यावर्त आदि १००८ शुभ चिन्ह भगवान के शरीर में दीख पडते हैं। और भगवान मे अनन्त बल तथा वीर्य रहता है। अनन्त बल अर्थात् चौदह रज्जु परिमित जगत को आगे पीछे हिलाने की शक्ति रहती है। लेकिन हिलाते नही। हिलाते रहे तो भगवान बच्चे के खेल खेलते हैं ऐसा कहने लगे ।६ से ११ तक।

भगवान हमारी तरह मुँह खोलकर जीभ हिलाते हुए दांतो का सहारा लिए वचन प्रयोग नही करते हैं। अपने सर्वांग से ही ये भाषण करते हैं। वह वचन बहुत सुन्दर होते हैं। जितनी बात करनी चाहिए उतनी ही करते हैं अधिक नही। वह भाषा मधुर होता है। यह दस भेद–(१) पसीना नहीं रहना [२] रक्त सफेद होना (३) वज्रवृषभ नाराच सहनन [४] समचतुरस्र सस्थान, [५] अनुपम रूप [६] चम्पा पुष्प के समान नासिका [७] १००८ शुभ चिन्ह, (८) अनन्त बल [९] अनन्त वीर्य [१०] मधुर भाषण भगवान मे जन्म सिद्ध हैं तथा स्वाभाविक हैं। इसको जननातिशय कहते हैं।

इन दस अतिश्यो को ध्यान मे रखते हुए भगवान के दर्शनकरना भगवान के जन्मातिशय का दर्शन करना है। भाव शुद्धि से यदि दर्शन करे तो शरीर में रहने वाले रोग नष्ट हो जाते है। १००८ पखुडियो के अग्रभाग मे रहने वाले जिनेन्द्र देव के दर्शन करने से अपने शरीर मे भी वह स्थिति प्राप्त होती है। महर्षि इस प्रकार दस अतिशयो से युक्त जिनेन्द्र भगवान की उपासना करते हैं। शरीर की ऊचाई की अपेक्षा न रखते हुए महिमा की अपेक्षा से महोन्नत शरीर वाले भगवान की पूजा करते हैं। जब इस रीति से जिनेन्द्र भगवान को अपने मन मे धारण करके प्रसन्नता से व्यावहारिक कार्य करें तो कार्य की सिद्धि होती है। इतना ही नही बल्कि पारा [एक धातु] की सिद्धि भी हो जाती है। भगवान के शरीर की इस दस विधि अतिशय को गुणन क्रम से सम और विषमाक को लेकर गिनती करते जाय तो परमोत्कृष्ट (**Higher Mathe matics**) गणित शास्त्र का ज्ञान भी हो जाता है उपरोक्त रीति से भगवान की आराधना करे तो बुद्धि ऋद्धि की कुशाग्रता भी प्राप्त होती है। । ६ से २२ तक ।

अध्यात्म रस परिपूर्ण रत्नत्रयात्मक यह देह है।२३।

यही वृषभादि महावीर पर्यन्त तीर्थंकरो की देह है।२४।

ऐसा विशालकाय यह भूवलय ग्रन्थ है।२५।

एकसो योजन तक सुभिक्ष होकर उतने हो क्षेत्र मे होनेवाले जीवो की रक्षा होती है। भगवान का समवशरण आकाश मे अधर गमन करता है। ।२६।

हिंसा का अभाव, भोजन नही करना, उपसर्ग नही होना, एक मुख होकर भी चार मुख दीखना, आखो की पलक नही लगना।२७।

समस्त विद्या के अधिपति, नाखून नहीं बढना, बाल जैसा का वैसा ही रहना अर्थात् बढना नहीं तथा अठारह महाभाषा ये भगवान के होती हैं।२८।

इसके अतिरिक्त सातसो छोटी भाषाये और सइनी जीवों के अंकों से मिश्रित अक्ष भाषाये और भव्यजनो सम्पूर्ण जीवो को उन्ही के हितार्थ विविध भाषाओ में एक साथ उपदेश देने की शक्ति भगवान मे विद्यमान रहती है।२९।

ससारी जीवो के मन को आकर्षित करने की शक्ति तथा, समुद्र की लहरो मे उठने वाले शब्द के समान भगवान की निकलने वाली दिव्य ध्वनि है। यह दिव्यध्वनि प्रात, मध्यान, शाम को इस प्रकार तीन संध्या समय में निकलती है। और यह दिव्यध्वनि ९ महूर्त प्रमाण तक रहती है। इसके अतिरिक्त यदि कोई भव्य पुण्यात्मा जीव प्रश्न पूछता है तो उनके प्रश्न के अनुकूल ध्वनि निकलती है।३०।

ससारी जीवो की जब ध्वनि निकलती है तब तो होठ के सहारे निकलती है। परन्तु भगवान को दिव्य ध्वनि इन्द्रियादि होंठ से रहित निकलती है।३१।

भगवान की दिव्यध्वनि दात से रहित होकर निकलती है।३२।

भगवान की दिव्य ध्वनि तालू से रहित होकर निकलती है।३३।

अनेक भव्य जीवो को एक समय मे ही जिनेन्द्र देव सभी को एक साथ उपदेशपान कराते हैं।३४-३५।

एक योजन की दूरी पर बैठे हुए समस्त जीवो को भगवान की दिव्य वाणी सुनाई देती है।३६।

शेष समय मे गणधर देव के प्रश्न के अनुसार उत्तर रूप दिव्य ध्वनि निकलती है।३७।

इस प्रकार से भगवान की अमृतमय वाणी जब चाहें तब भव्य जीवों को सुनाई देती है।३८।

मानव में जो इन्द्र के समान चक्रवर्ती हैं उन चक्रवर्ती के प्रश्न के अनुसार उत्तर मिल जाता है।३९-४०।

आदि से लेकर अन्त तक समस्त विषयों को कहनेवाली यह दिव्य ध्वनि है।४१।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये ६ द्रव्य हैं। ये ६ द्रव्य जिस जगह रहते हैं उसको लोक कहते हैं। दिव्य ध्वनि इन सम्पूर्ण ६ द्रव्यों के स्वरूप का विस्तार पूर्वक वर्णन करती है।४२।

जीव, अजीव, आश्रव, बध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं।

भगवान की दिव्य वाणी इन सात तत्वों का वर्णन करती है ।४३।

सात तत्वों में पुण्य और पाप को मिलाने से ९ तत्त्व होते हैं । भगवान की दिव्य वाणी उन ९ तत्त्वों का वर्णन करती है ।४४।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश ये पाच पंचास्त काय का भी वर्णन करती है ।४५।

इन सबको प्रमाण रूप से बतलाने के समय सुन्दर २ मार्मिक तत्व का वर्णन करती है ।४६।

जिनेन्द्र भगवान की दिव्य ध्वनि से ही यह दिव्य वाणी निकलती है अन्य के सहारे से नहीं ।४७।

यह दिव्य वाणी भगवान जिनेन्द्र देव की वाणी द्वारा निकलने के कारण अन्तिम प्रमाण रूप भूवलय शास्त्र है ।४८।

उपर्युक्त समस्त दस अविराम दुनिया को आश्चर्य चकित करने वाली हैं । अरहत भगवान को घाति कर्मके (ज्ञानावर्णीय, दर्शनावर्णीय, मोहनी, अन्तराय) नाश होने से केवल ज्ञान की उत्पत्ति होती है और केवल ज्ञानके साथ ही इन दस अतिशयो के उत्पन्न होने से इसका नाम घाति क्षय और जाति क्षय भी है ।४९।।

जो क्षेत्र मे भी कर्म रह गये तो यह अतिशय आत्मा को नही मिलता। ये आठ कर्म निर्मूल करने के मार्ग हैं और इसलिए इसका नाम घाति क्षय, और जाति क्षय पड़ा ।५०।

जीव को जब अरहत पद प्राप्त होता है तब अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख इत्यादि अनन्त गुण प्राप्त हो जाते हैं। उन अनन्त गुणो से, आत्मा करोडो चन्द्र सूर्य प्रकाश जैसा तेजोनिधि हो जाता है। ऐसे अरहत भगवान की पूजा करते हुये पारा की सिद्धि करने का प्रयत्न करना श्रेयस्कर है ।५१।

नवकार मत्र के आदिमें तीन अक हैं, तीन को तीन मे गुणा कर दिये तो विश्व का समस्त अङ्क नौ आ जाता है। नौ का परिज्ञान ही दिव्य चक्षु है, और नौ अङ्क का विवरण करने से ही विश्व का समस्त दृष्टि भेद अर्थात् तीन सौ त्रेषठ धर्म का और उनमें रहने वाले भेद और अभेद का ज्ञान हो जाता है। अर्थात् अरहंत सिद्धादि नव पद का अतिशय वस्तु रूप यह भूवलय ग्रन्थ है ।५२।

३×३ = ९ यह अतिशय से युक्त दिव्य चक्षु का प्रभा से यम धर्मराज (मृत्यु) भाग जाता है ।५३।

यह वस्तु नामक ज्ञान चक्षु अरहत सिद्धादि नवकार मन्त्र का आदि मन्त्र है ।५४।

ज्ञानियो के अन्तर्गत ज्ञानरूपी विश्व का साम्राज्य यह भूवलय है ।५५

ज्ञानियो के ज्ञान मे झलकने वाली नव नवोदित दिव्य ज्योति रूप यह महा काव्य है ।५६।

कवियो की कल्पना मे न आनेवाला दिव्य रूप यह काव्य है ।५७।

इस ग्रन्थ का सर्वावयव अर्थात् सभी भाषाओं का ग्रन्थ परम पवित्र है ।५८।

यह सभी भाषाओ का ग्रन्थ ससारापहरण का मुख्य मार्ग है ।५९।

समवशरणादि महावैभव को दिखलाने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।६०।

यह भूवलय ग्रन्थ दिगम्बर मुनियो के समान निरावरण है ।६१।

यह काव्य मिष्ट वचन रूपी जल बिन्दु से भरा हुआ ज्ञान का सागर है ।६२।

यह काव्य नव पद भक्ति को शुद्ध करनेवाला है ।६३।

यह भूवलय ग्रन्थ नव पद भक्ति द्वारा प्राप्त होने वाले फल को देने वाला हैं ।६४

नव पद के ज्ञान से समस्त भूवलय का ज्ञान आ जाता है ।६५।

नव अक की सम्पूर्ण सिद्धि ही चारित्र की सिद्धि है ।६६।

यह भूवलय ग्रन्थ अवसर्पिणी काल के समस्त विषयो को दिखाता है ।६७।

यह काव्य अवसर्पिणी काल का सर्वोत्कृष्ट भव्याक रूपी है ।६८।

इस काव्य के अध्ययन मे गणित शास्त्र का मर्म मालूम होकर ९ अङ्क २ अङ्क से विभाजित हो जाता है ।६९।

इस रीति से समस्त विद्याओ को प्रदान करके अन्त में भव विनाश करके सिद्धि पद को देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।७०।

देव गण भगवान् के १३ अतिशयों को करते हैं। उसमें पहले के अतिशय संख्यात योजन तक रहने वाले सभी जंगली वृक्षों में पत्ते, पुष्प, फल आदि एक ही समय में लग जाते हैं और उतनी दूर तक एक भी कांटा तथा कण मात्र रेत का संचार न हो, ऐसी हवा चलने लगती है।

कामधेनु के द्वारा अपने घर के आंगन में अनेक सामान को प्राप्ति तथा पवन कुमार द्वारा चलने वाली अत्यन्त सुखकारक और आनन्ददायक हवा का चलना दूसरा अतिशय है।

समवसरण में सिंह, हाथी, गाय, पक्षी, सर्प इत्यादि ने अपने परस्पर वैर को छोड़कर जैसे एक ही जगह में रहते हैं वैसे अपने कुटुम्ब इत्यादिक जन वैर-रहित आपस में प्रेम से अपने-अपने स्थान में रहना तीसरा अतिशय है।

जैसे विवाह मंडप के बीच वर वधू को बिठाने के लिए नव रत्न से निर्मित वेदिका तैयार की जाती है उसी तरह स्फटिक मणि के प्रकाश के समान चमकने वालो यह भूमि चौथा अतिशय है। समवशरण मे रहने वाला यह चौथा अतिशय कवि लोगो के द्वारा भी अवर्णनीय है।७१-७६।

उस भूमि के अतिशय को पाच पाच हाथ के नौ पार्ट के विभाग तक किया गया है।

अन्तर श्लोक का विवेचन---उपर्युक्त ९ भागो का विवेचन शिल्पशास्त्र और ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्ध रखता है। शिल्प शास्त्र के विद्वानो का कथन है कि ऊपर के नियम से ही मठ, मन्दिर तथा महल मकान आदि बनाना चाहिये; क्योंकि यदि ऐसा न होकर कदाचित् अग्नि कोड में मकान एक इंच भी शास्त्रोक्त नियम से अधिक हो जाय तो गृह एव गृह स्वामी दोनो के लिए अनिष्ट होता है। इसी प्रकार ज्योतिष शास्त्रानुसार भली भांति शोधकर भवन निर्माण किया जाय तब तो ठीक है किन्तु यदि ऐसा न करके सूर्य चन्द्रादि नव-ग्रहो के विपरीत स्थान मे बनाया जाय तो वह भी महान कष्टदायक होता है।७७।

वन वाटिका में दवन, जुही, मालती (मोल्ले) आदि सुगंधित पुष्पो के समूह रहते है।७८।

इसी प्रकार गन्ध माधव (गन्ध मादन) पुष्प भी उस पुष्प वाटिका मे रहता है।७९।

इसी भांति नव जात गंध माधव लता भी वहां रहती है।८०।

वहां पर सुविशाल रूप से फैली हुई चित्रवल्ली नामक बेला भी रहती है।८१।

विवेचन —श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस चित्रवल्ली नामक लता का वर्णन श्री भूवलयान्तर्गत चतुर्थ खण्ड में विस्तृत रूप से किया है और उसके संस्कृत विभाग में आया है कि—

नम श्री वर्धमानाय विश्व विद्याऽवभासिने।
चित्रवल्ली कथाख्यानं पूज्यपादेन भासितम ॥

विश्व विद्या के प्रकाशक श्री वर्धमाम भगवान् को नमस्कार करके श्री पूज्य पाद स्वामी ने चित्रवल्ली का व्याख्यान किया है। श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने सूचित किया है कि इसी प्रकार मंगल प्राभृत के समस्त विषयों को सभी जगह जानना चाहिये।

समवशरण के अन्तर्गत पुष्प वाटिका भित्ती के ऊपर चम्पा पुष्प का भी वर्णन किया गया है।

नोट—इस चम्पक पुष्प के विषय मे श्री समन्तभद्राचार्य ने बड़े सुन्दर ढग मे वर्णन किया है।८२।

इसी प्रकार गन्धराज [सुगन्ध राज] का मेला भी वहा चित्रित है।८३।

कमल पुष्प के जल कमल, थल कमल आदि अनेक भेद हैं। उन सबका चित्र समवशरण में चित्रित है।८४।

वहां पर समस्त पुष्पों की कली चित्रित रहती है।८५।

कामकस्तूरी की टोकरी भी वहा बनो रहती है।८६।

उस वाटिका में कर्नेल के श्वेत और रक्त वर्ण के पुष्प बने रहते हैं।८७।

वहा पर नव मालती और मुड़िवाल् भी भित्तिका में चित्रित हैं।८८।

पाशा खेल में प्रयुक्त बन्धूक, ताड़ वृक्ष के चित्र तथा केतकी पुष्प,

सूपादरी आदि पुष्पों का समूह पृथ्वी के ऊपर अक्ष रेखा के समान प्रतीत होता है। इस समवशरण का वर्णन करने वाला यह भूवलय है।८६-९३।

विवेचन—भूवलय के चतुर्थ खण्ड में श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने श्री समन्त भद्राचार्य के श्लोको द्वारा केवडा पुष्प का विशेष महत्व दिखलाया है। उन श्लोकों का वर्णन निम्न प्रकार से है—

"कुप्या तं भरिताग्र केतकिसुमं कर्षोन्मुखे कुंजरम ।
चक्रं हस्तपुटे समन्त विधिना सिघूर चन्द्रामये ।।

इत्यादि रूप से रहने पर विज्ञान सिद्धि के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। अत. इन श्लोकों का विशेष लक्ष्य से अध्ययन करना चाहिए। नित्य नये-नये सुगंधित गुलाब जल की जो वृष्टि श्री जिनेन्द्रदेव के ऊपर अभिषेक रूप से होती है वह सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से मेघकुमार देवो द्वारा होती है। ९४।

यह जलवृष्टि पाचवा अतिशय है। इसे देव अपनी वैक्रियिक शक्ति द्वारा बनाते हैं, फल भार से नम्रीभूत शाली [जडहन] की पतली तथा हरे रग की जड़ पृथ्वी पर उगना छठवां अतिशय है। विविध जीवो को सदा सौख्य देना सातवा अतिशय है।९५।

देवगण अपनी विक्रिया शक्ति से चारो ओर ठण्डी वायु फैला देते हैं। यह आठवां अतिशय है। तालाब तथा कुये में शुद्ध जल पूर्ण होना नौवा अतिशय है।९६।

आकाश प्रदेश में बिजली [सिडलु] काले बादल उल्कापात आदि न पड़ना १०वां अतिशय है। सभी जीव रोग रहित रहे, यह ११वा अतिशय है।९७।

समवशरण के चलने के समय मे सभी जीव हर्षित रहते हैं।९८।

समवशरण के विहार के समय में सभी जीव अपनी आलस्य को त्याग कर प्रसन्न चित्त से रहते हैं।९९।

रोगादि बाधाओ से रहित होकर सभी जीव सुखपूर्वक रहते हैं।१००।

समवशरण में आते ही सभी जीव माया मोह इत्यादि सांसारिक ममता से विरक्त हो जाते हैं और उनको समवशरण के प्रति आस्था हो जाती है।१०१

समवशरण में सभी जीव मृत्यु की बाधा से रहित रहते हैं।१०२।

सासारिक जीवों को चलते, फिरते उठते बैठते आदि प्रकार के कारणों से कष्ट मालूम पडता है परन्तु समवशरण के अन्दर आने से सभी कष्टों से जीव रहित हो जाता है।१०३।

बहुत से व्यक्तियो में समवशरण को देखते ही वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और वैराग्य पैदा होते ही वे लोग दीक्षा लें लेते हैं।१०४।

ससार में रहते हुए कई जीव अनादि काल के कर्म रूपी धन को अपना समझ करके उसी मे रत रहते हैं परन्तु वे जीव समवशरण के अन्दर आते ही उस कर्म रूपी धन से विरक्त हो गये।१०५।

समवशरण में रहनेवाले जीवो को आलस्य नही रहता है।१०६।

समवशरण में रहनेवाले जीव राग द्वेष से रहित रहते हैं।१०७।

समवशरण मे रहनेवाले जीवो के मार्ग मे किसी भी प्रकार की अडचनें नही पडती है।१०८।

वहा रहनेवाले जीवो को सर्वदा सुख ही मालूम पडता है।१०९।

वहा रहनेवाले जीवो को किसी भी कार्य में आतुरता इत्यादि नही रहती ।११०।

वहा रहनेवाले जीवो को सताना दुःख इत्यादि किसी भी प्रकार की बाधाये नही रहती है।१११

समवशरण मे रहनेवाले जीवो को धर्मानुराग के अतिरिक्त अन्य आलोचना नही रहती है।११२।

हम बहुत ऊपर आगये है नीचे किस प्रकार से उतरे इस प्रकार की आलोचना भी जीवो को नही रहती।११३।

वहा रहने वाले जीवो को दरिद्रता का भय नही रहता है।११४।

हम स्नानादि से पवित्र है। और वह स्नानादि से रहित है इस प्रकार की शकाये मन के अन्दर नही पैदा होती हैं।११५।

बहुत वर्णन करने की आवश्यकता नही वहा पर सभी जीव सुख पूर्वक रहते है।११६।

६ अक्षर अर्थात् ६ प्रकार के द्रव्यो का वर्णन इस भूवलय में है।११७

कान्ति कम न होनेवाला अतिशय प्रकाशमान रत्न रचित चार धर्म चक्र को यक्षदेव आनन्द से धारण किये रहते हैं ।११८।

नाना प्रकार के आभूषणो से सुसज्जित सागत्य नामक छन्द जिस प्रकार सुशोभित होता है उसी प्रकार धर्म चक्र बारहवा अतिशय है और ३२ दिशाओं में अर्थात् एक एक दिशा में सात-सात पंक्ति रूप रहनेवाला स्वर्ण कमल तेरहवां अतिशय है। और भगवान के बाद पीठ मे रक्खी हुई पूजन की सामग्री पूर्णिमा के समान सफेद वर्ण वाला चौदहवा अतिशय है ।११९-१२०।

पाद पीठ में रहनेवाली पूजन की सामग्री और उपकरण इन दोनो को घटा देने से चौंतीस शुभ अतिशय हो जाता है। इन सब अतिशयो का वर्णन करनेवाला विनयावतारी अर्थात् विद्वान् कौन है ।१२१।

इस प्रकार का वर्णन करनेवाले कवि लोग इस पृथ्वी पर कही भी नहीं हैं ।१२२।

इस प्रकार का व्यक्ति पृथ्वी पर कहां है बताओ ।१२३।

यदि नये मार्ग का ज्ञाता हो तो उनसे भी पूरा वर्णन नही हो सकता है।१२४।

जिनेन्द्र भगवान का बताया हुआ मार्ग धर्म को लक्षण देनेवाला है ।१२५।

यह भूवलय का जो अंक है वह अंक प्राणी के कष्ट को दूर करने वाला है ।१२६।

यह अंक भद्र स्वरूप है और मगल रूप है ।१२७।

जिनेन्द्र भगवान को शिव शब्द से भी कहने से यह समवशरण कैलाश भी है।१२८।

जिनेन्द्र भगवान को बिष्णु कहते हैं इसलिए समवशरण बैंकुंठ भी है ।१२९।

इसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान को ब्रह्मा भी कहते हैं इसलिए यह समवशरण सत्य लोक भी है ।१३०।

यह समवशरण जनता का सर्वाथ सिद्धि साधक होने से सर्वाथ स्वर्ग भी यही है ।१३१।

जनता को सब अंक के दिखलानेवाला होने के कारण यह समवशरण सर्वाङ्क सिद्धि भी है ।१३२।

समवशरण मे कोटि चन्द्र और कोटि सूर्य का प्रकाश भी रहता है। ।१३३।

स्वर्ण मे रत्न मन्डित होकर तोरण मे विराजमान रहता है ।१३४।

उन तोरणो में पारा को सिद्ध करके बनाया हुआ मणि भी लटका हुआ रहता है ।१३५।

जिस प्रकार समस्त दुर्गुणो को विनाश करनेवाला रत्नत्रय है इसी प्रकार रसमणि भी जनता के दरिद्रता को नाश कर देती है ।१३६।

स्वर्ण तो हल्दी के रग के समान रहता है उस वर्ण को दूध के समान सफेद बनानेवाला यह पारा का मणि है ।१३७।

विवेचन —इसी भूवलय में आने वाले श्री समतभद्र आचार्य के वचनों को देखिये।

स्वर्णश्वेतसुधामृतार्थं लिखिति नानार्थरत्ना कर्मं। अर्थात् सफेद स्वर्ण बनाने की विधि अनादि काल से जैनाचार्य को मालूम थी। आज कल इसको पलाटिनम् कहते हैं और वह पल्टी पलाटिनम् बहुमूल्य है।

अन्तिम मे आत्मसिद्धि को प्राप्त करनेवाला यह समवशरण भूमि है ॥१३८॥

लडके लडकियो को अर्थात् समस्त बन्धु बान्धवो को त्याग करानेवाला यह काव्य है ॥१३९॥

राक्षस और किन्नर इत्यादि देव लोगो ने इस समवशरण को बनाने की विद्या को सीखा है। उस विद्या को बतलाने वाला यह भूवलय काव्य है ॥१४०॥

इस प्रकार भव्य जीवों के पुण्य से बनाया हुआ महल रूपी यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१४१॥

भवनवासी, व्यन्तरवासी, भवनामर, व्यन्तरामर, ज्योतिषक और स्वर्ग

लोक के सभी देव अर्थात् श्री महावीर भगवान के भक्त जन कलकलाहट के साथ जै जै शब्द का गाना गाते हैं ॥१४२॥

सम्पत्ति युक्त मंगलप्राभृत्त महाकाव्य के रास्ते से श्री गुरु वीरसेन आचार्य के मतिज्ञान में मिले हुए अरहत भगवान का केवल-ज्ञान ही यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१४३॥

ऊपर कहे हुये ३४ अतिशय यदि अपने वश में हो जायें तो ऋषियो के मार्ग से धर्म धारण हो जाता है। तत्पश्चात् असदृश ज्ञान विकसित हाकर आत्मा को मोक्ष सिद्धि हो जाने के समान भाव बढ़ जाता है ॥१४४॥

ऐसा ज्ञान बढ जाने के बाद हमे (कुमुदेन्दु मुनि को) अर्थात् श्री वीरसेनाचार्य के शिष्य को भूवलय जैसे महान् अद्भुत काव्य की कथा बिरचित्त करने की शक्ति उत्पन्न हो गई और श्री जिन सेनाचार्य का ज्ञान सहायक हुआ। इसीलिए इस भूवलय काव्य की रचना मे हमारा अपूर्व पुण्य वर्धन हुआ। इसका नाम वस्तु है ॥१४५॥

इस भारत के कोने २ मे धर्म की अवनति दशा मे श्री जिनेन्द्रदेव का भक्त मान्यखेट का राजा श्री जिनदेव का भक्त अमोघवर्ष नामक राजा ने ॥१४६॥

नव पद भक्ति प्रदान करके समस्त जनता को धर्म मे श्रद्धा उत्पन्न कराके धर्म की स्थापना की। उन समस्त धार्मिक प्रजाओं में भव्य जोव और भव्यों में आसन्न भव्य अपने भव्यत्व लक्षण को प्रकट करते हुये नवमाक सिद्धि हमें प्राप्त हो गई, ऐसा जानकर बडे आनन्द के साथ रहने लगे ॥१४७॥

विवेचन—कन्नड भाषा में प्रकट हुये भूवलय ग्रन्थ के उपोद्घात में राष्ट्रकूट राजा नृपतुङ्ग को अमोघवर्ष मानकर उपोद्घात कर्त्ता ने श्री कुमुदेन्दु आचार्य के समय की ८ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग अर्थात् कृस्ताब्द ७८३ माना है। अब उन्हीं महाशय ने इस नवम अध्याय का अथवा ४० अध्याय से ऊपर के विषयो का अध्ययन करते हुए कुमुदेन्दु आचार्य नृपतुङ्ग के गुरु नहीं, बल्कि गंग वंश के राजा प्रथम शिवमार गुरु थे। उस शिवमार ने हैदराबाद के मड्खेड़ नहीं, मैसूर प्रात के बेंगलोर से ३० मील दूरी पर मण्णे नामक ग्राम में राज्य किया। उनका समय कृस्ताब्द लगभग ६८० वर्ष था। इसलिये श्री कुमुदेन्दु आचार्य का समय ७८३ वर्ष नहीं बल्कि ६८० वर्ष है।

दूसरे शिवमार के पास अमोघ वर्ष नामक पदवी थी। इसे राष्ट्रकूट नृपतुङ्ग ने युद्ध में पराजित करके कारागार में डाल दिया था। चाहे वे वहीं पर ही मर गये हो पर ऐसी विकट परिस्थिति में भूवलय जैसे महान् ग्रन्थ का उपदेश वे कैसे दे सकते थे ? कदापि नही। किन्तु प्रथम शिवमार ने सम्पूर्ण भरत खण्ड को अपने स्वाधीन करके हिमवान पर्वत के ऊपर अपना विजय-ध्वज फहराया था इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रथम शिवमार ही श्री कुमुदेन्दु आचार्य के शिष्य थे।

अभिप्राय यह निकला कि कुमुदेन्दु आचार्य का समय प्रथम शिवमार का था, न कि द्वितीय का। इस विषय में इतिहास वेत्ताओ की मंत्रणा से मैसूर विश्व विद्यालय के अन्तर्गत की गई वार्तालाप का विवरण संक्षेप से यहां दिया गया है।

आचार्य कुमुदेन्दु द्वारा विरचित श्री भूवलय—

ऐतिहासज्ञो का कथन है कि १८-७-५७ को एक बातचीत में वाइस चासलर डा० के० वी० पुटप्पा ने उनसे यह भाव प्रकट किया कि यदि कुमुदेन्दु विरचित श्री भूवलय का सक्षिप्त विवरण ३६ देशो के विद्वान और विद्यार्थियों की विश्व विद्यालय सेवा समाज में, जो कि २५-७-५६ को मैसूर मे होने वाली थी, प्रस्तुत किया जाय तो अधिक उचित हो।

जब श्री भूवलय के कुछ हस्तलेख और छपे हुए लेख भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी को दिखाए गए तो उन्होने अचानक इसे विश्व का आठवां आश्चर्य बताया और एक वाद-विवाद के समय डा० पुटप्पा ने कहा कि श्री भूवलय ग्रन्थ को विश्व का प्रथम आश्चर्य भो कह सकते हैं।

लेकिन दुर्भाग्य का विषय है कि इतना आश्चर्य जनक ग्रन्थ मैसूर रियासत तथा इसके बाहर के बहुत कम विद्वान तथा अन्वेषणकारी ही जानते हैं जो कि अभी भी इसके आश्चर्य से पूर्ण परिचित न होते हुए अपना मार्ग खोजने की कोशिश में हैं।

आज विश्व के अनेको विद्वान महत्वपूर्ण प्रयत्नों द्वारा विभिन्न नवीनताओ की खोज मे लगे हुए हैं। अत यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि

भाषाओं के जन्म और विकास पर भी ध्यान दिया जाय। हमारा प्राचीन साहित्य, विज्ञान, आयुर्वेद, दर्शनशास्त्र, धर्म, इतिहास, गणित आदि यदि पुनः प्रकाश में लाए जाएँ तो मानव जाति की अधिक उन्नति और उद्धार हो।

ऐसा कहा जाता है कि श्री कुमुदेन्दु जी बेंगलोर से ३८ मील दूर नन्दी पर्वत के समीप 'येलेवाली' के निवासी थे और भूवलय ग्रन्थ में यह स्पष्ट रूप से अंकित है कि श्री कुमुदेन्दु आचार्य राष्ट्रकूट के राजा अमोघ वर्ष और शिवमार गंग राजा के धर्म प्रचारकों के गुरु थे।

श्री भूवलय ८ — १२६, ६ — १४६
८ — ६६, और ७२

और यह भी वर्णित है कि प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ "धवल" के लेखक श्री वीरसेन जी भूवलय के रचयिता श्री कुमुदेन्दु जी के गुरु थे। ध्यानपूर्वक गणना के पश्चात् इस बात की जांच की गई है कि वीरसेन के धवल ग्रन्थ की समाप्ति के ४४ वर्ष पश्चात् उनके शिष्य कुमुदेन्दु जी ने अपना स्मरणीय ग्रन्थ श्री भूवलय को लिखकर समाप्त किया था।

लेकिन विद्वानों मे धवल ग्रन्थ की समाप्ति और कुमुदेन्दु जी के जीवन काल तथा भूवलय की समाप्ति के समय के विषय में पर्याप्त अन्तर है। अत समय को ध्यान में रखते हुए उनके विचारो मे काफी विवाद है।

प्रो० हीरालाल जैन और डा० एस० श्री कन्था का विचार है कि धवल ग्रन्थ ई० सन् ८१६ के लगभग समाप्त हो गया होगा, जबकि जे० पी० जैन कहते हैं कि धवल ग्रन्थ ई० सन् ७८० के लगभग समाप्त हुआ था तथा अन्य विद्वानों का कथन है कि धवल ६३६ ई० में समाप्त हुआ था।

समंगद (Samangada) शिलालेख से यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रकूट राजवंश ई० सन् ७५३ में राज्य कर रहा था।

तृतीय राष्ट्रकूट राजा गोविन्दा जो कि सर्वख्या अमोघवर्ष का पिता था ई० सन् ८१२ के अपने एक शिलालेख में लिखता है। डेन्टीदुर्गा भी अमोघ नाम से पुकारा जाता था और इस शिलालेख के समय सर्वख्या अमोघवर्ष एक बालक ही था इसलिए विद्वान निश्चित रूप से इस विषय का ज्ञान नहीं कर सके हैं कि वह कौनसा अमोघवर्ष था जिसे गोबिन्दा राजा का पुत्र मानकर 'भूवलय ग्रन्थ' पढाया गया था।

यह एक मान्य ऐतिहासिक सत्य है कि प्रथम शिविमार जोकि सत्यप्रिय भी पुकारा जाता था और नवकामा ने ई० सन् ६७६ से ई० सन् ७२६ तक राज्य किया था।

वीरसेन ने अपने धवल ग्रन्थ को विक्रमी राज्य (अट्टाठीसाम्मी शिष्य विक्रम राय) के ३८ वे साल में समाप्त किया और यह विक्रम राय वही है जो कि गग राजा विक्रम था। और सभी इतिहासज्ञों ने इसको भी सत्य-रूप ही मान लिया है कि विक्रम राजा ६०८ ई० में गद्दी पर बैठा था।

कनाड़ी भाषा का शब्द "अट्टावीसाम्मी" कुछ विद्वानो द्वारा "अट्टाटीसाम्मी" भी पढा गया है।

श्री विक्रम राजा ई० सन् ६०८ में राजगद्दी पर बैठा था और यदि ई० सन् ६०८ में २८ साल जोड दिए तो "धवल ग्रन्थ" की पूर्ति का समय सन् ६३६ पडता है। नक्षत्र स्थिति जो कि "धवल" की पूर्ति के दिन वर्णित की गई थी वह कार्तिक सुदी त्रैयोदशी एक सम्बत् ५५८ को सिद्ध करने से ठीक ई० सन् ६३६ ठहरता है।

कुछ विद्वान सोचते हैं कि "श्री भूवलय" का समय ७ वीं शताब्दी के अंतिम चौथाई में होगा जबकि दूसरे विद्वान कहते हैं कि इसका समय दसवी अर्ध शताब्दी होगा, कुछ अन्य विद्वानो का कथन है कि 'श्री भूवलय ग्रन्थ' का समय सगध्या पीरियड में अर्थात् १२ वी या १३ वीं शताब्दी रहा होगा। क्योंकि कुमुदेन्दु द्वारा रचित "श्री भूवलय ग्रन्थ" सगत्या छद में ही लिखा हुआ है। और कुछ यहा तक भी कहते हैं कि यह ग्रन्थ अभी थोडे ही समय का पुराना है अधिक नही क्योकि श्री भूवलय की भाषा आधुनिक कन्नड भाषा से मिलती जुलती है।

समय की कमी के कारण अधिक विस्तार में न जाकर मैं इसी बात पर जोर देना चाहता हू कि सगध्या छंद बारहवीं और इसकी बाद की शताब्दी का नही है जैसा कि कुछ व्यक्ति गलती से सोचते हैं।

जिनसेन (Jinasene) अपने महापुराण में कहते हैं—

यमि··समय् तलम् रारासु सौगत्य एव समतिहि ॥

वह यह भी कहते हैं कि सगथ्या एक बहुत पुराना छंद था जिसका प्रयोग उससे पहले होने वाले भी बहुत से बडे बड़े कवियो ने किया था। स्वीकृत समय जिनसेन के महापुराण का नवीं शताब्दी का प्रथम चौथाई भाग है।

और आधुनिक कन्नड़ भाषा का प्रयोग इस ग्रन्थ को अपनी प्राचीनता से नहीं हटा सकता क्योंकि आधुनिक कन्नड भाषा की तरह की ही भाषा निम्नलिखित शिलालेखो में मिलती है—

(१) भूविक्रम का बीडारपुर शिलालेख।

(२) नीति मार्ग का नरसापुर ग्रन्थ। अत पाठको को इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता पर विश्वास करना ही पडेगा।

इस ग्रन्थ और ग्रन्थकर्ता के समय के विषय मे जो विवाद है उसका प्रधान कारण चार अमोघवर्षों का होना है। डैन्टीदुर्गा भी अमोघवर्ष ही पुकारा जाता था। और शिवमार जोकि कुमुदेन्दु जी से सम्बन्धित था वह पहला शिवमार ही है द्वितीय नही।

अब ग्रन्थ को ही लीजिए। कुमुदेन्दु जी ने कन्नड भाषा के ६४ वर्ण बताए हैं जिनमें ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत भी मिले हुए हैं और अपना गणित विभाग तथा पूर्ण ग्रन्थ कन्नड, प्राकृत, सस्कृत, मागधी, पेशाची, तामिल, तेलगू आदि भाषाओं में लिखा।

डा० एस० श्रीकान्त जी कहते हैं कि यदि भूवलय के प्रकाशित भाग (चैप्टर १-२३) का संतोषजनक अध्ययन किया जाए तो निम्नलिखित बाते इस ग्रन्थ से पता लगती हैं—

(१) कन्नडी भाषा और उसके साहित्य का ज्ञान कराने के लिये यह ग्रन्थ प्राचीन ग्रन्थो में से एक है तथा अन्य अनेको विद्वानो के ग्रन्थो के विषय में भी, जो कि क्रिश्चियन शताब्दी के प्रारम्भ मे ही लिखे गये थे, ज्ञान प्राप्त होता है। उदाहरण के लिये यदि यह ग्रन्थ पूर्ण प्रकाशित हो जाये तो चूडामणि जैसे प्राचीन विद्वानों के ग्रन्थों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

(२) संस्कृत, प्राकृत, तामिल और तैलगू भाषा के इतिहास के लिये यह हमारी आंखें खोलने वाला ग्रन्थ है।

(३) हमारे भारतोय दर्शन और धर्म तथा विशेष तौर से जैन धर्म को ज्ञान प्राप्त कराने के लिए यह अपूर्व ग्रन्थ है, इसमे प्राप्त सिद्धान्त आज भी हमारे विचारो को विशुद्ध कर हमें सद्मार्ग पर ला सकते हैं।

(४) कर्नाटक और भारत के राजनैतिक इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह ग्रन्थ एक नवीन सामग्री प्रदान करता है। क्योंकि इसमें राष्ट्रकूट के राजा अमोघवर्ष और गग राजा सैगोत शिवमार के विषय में वर्णन है।

(५) भारतीय गणित शास्त्र के इतिहास के लिए यह ग्रन्थ विशेष महत्व रखता है। वीरसेन जी की 'धवल ग्रन्थ' की टीका के आधार पर जो आजकल जैन गणित शास्त्र और ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया गया है उससे पता लगता है कि अधिक पहले नही तो नवी शताब्दी में ही भारतीयों ने गणित के अनेको तरीके—स्थानाक मूल्य (Place value) जोड के तरीके, समयोग भग, विभाजन के विशेष तरीके, परिवर्तन के नियम, ज्यामिति और रेखा गणित के नियम (Geometrical and mensuration formulas) अनंतांक गणित विधि—(Theouries of Infinily) प्रथम समयोग, द्वितीय समयोग आदि (The value of Permutation and combination) को भी जानते थे। कुमुदेन्दु जी का ग्रन्थ 'भूवलय' वीरसेन जी के ग्रन्थ से भी कही अधिक महत्वपूर्ण और आगे है। इस ग्रन्थ के लिए गम्भीर अध्ययन को आवश्यकता है।

(६) हिन्दुओ के स्पष्ट विज्ञान के लिए भी यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण सहायता देता है क्योंकि इसमे अणु विज्ञान (Physics), रसायन शास्त्र (Chemistry), जीव-विद्या (Biology), औषध शास्त्र (प्राणाव्य और आयुर्वेद), भूगर्भ शास्त्र (Geology), ज्योतिष शास्त्र (Astronomy) इत्यादि का वर्णन है।

(७) भारतोय कला का इतिहास भी यह ग्रन्थ बतलाता है क्योंकि यह भारतोय मूर्तिकला, चित्र कला तथा (Ioonography) के लिए एक अपूर्व साधन है।

(८) रामायण, महाभारत और भगवद्गोता के दोहों की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, जोकि इस प्रकार से गुंथे हुए हैं कि यह पहचानना कठिन हो जाता है कि इसमें आधुनिक व्यक्तियो ने कितने नए क्षेपक

(झूठे पद अपनी तरफ से मिलावा) मिलाए हैं। कुमुदेन्दु जी के मतानुसार इस ग्रन्थ में लगभग एक से ८ या १० गीता के पद हैं जिनको पाच भाषाओ में समझ सकते हैं। नेमो तीर्थंकर के गोमट्ट को अनादि गीता, कृष्ण की गीता, व्यास की गीता जोकि अपने मौलिक रूप में व्याख्यान के नाम से महाभारत में पाई जाती है और कन्नड़ भाषा में कुमुदेन्दु जी की गीता है। इस ग्रन्थ में गीता की पैशाची भाषा में भी आलोचना मिलती है और बाल्मीकी रामायण के मौलिक पद भी इसमे पाए जाते हैं। आगे ऋगवेद के तीन पद (एक गायत्री मन्त्र से प्रारम्भ, तथा दो अन्य) भी इस ग्रन्थ के अध्यायो मे पाये जाते हैं। भारतीय सभ्यता को पढने और पहचाने के लिए ये तीन पद ही ऋगवेद के प्रमुख हैं।

(९) भारतीय सभ्यता के अध्ययन के लिए इस मनोरजक ज्ञान के अतिरिक्त भूवलय में कुछ निम्नलिखित जैन ग्रन्थो के शुद्ध पद मिलते हैं—भूतबली का सूत्र, उमास्वामी, समन्त भद्र का गदहस्थी महाभाष्य, देवगामा स्तोत्र, रत्नकरंड श्रावकाचार, भरत स्वयभू स्तोत्र, चूडामणी, ममयसार, कुन्दकुन्द का प्रवचन सार, सर्वार्थ सिद्धि, पूज्यपाद का हितोपदेश, उर्गदित्या का कल्याणकारिका, प्राकेश्री स्तोत्र, मत्रवम्भर स्तोत्र, ऋषिमडल, कुछ तॉत्रिक अंग और अंग बाहिरा कानून, कुछ पारिभाषिक ग्रन्थ जैसे सूर्य प्राग्नेपति, त्रिलोक प्राग्नेपति, जम्बू द्वीप प्राग्नेपति आदि।

(१०) यह ग्रन्थ १८ बडी भाषाएँ और ७०० छोटी-छोटी भाषाओं को निहित किये हुये है। इस ग्रन्थ में जो भाषाएँ हैं उनमे कुछ प्राकृत, सस्कृत, द्रविड़, आंध्र, महाराष्ट्र, मलाया, गुजराती, हम्मीरा, तिब्बती, यवन, बोलिंदी, ब्राह्मी, खरोष्टी, अपभ्रंश, पैशाची, अरिस्ता, अर्धमागधी टर्की, सैंधव, देवनागरी, पारसी आदि हैं। जितना यह ग्रन्थ छपा है उसमें से संस्कृत, विभिन्न प्राकृत, कन्नड, तामिल, तैलगू को बडी आसानी से पहचाना जा सकता है। यदि इस विषय पर अनेकों विद्वान गंभीर अध्ययन करे तो इससे और भी अनेको भाषाएं और उनके शब्द प्राप्त हो सकते हैं। इसलिए भाषा विज्ञान के विषय में भी यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

सौभाग्य से इस सम्पूर्ण ग्रन्थ को माइक्रो फिल्म (Micro Filmed) कर लिया है और यह नई दिल्ली के राष्ट्रीय ग्रन्थ रक्षा गृह में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी के अधिकार में रखा हुआ है। और इसकी कुछ हस्तलिखित प्रतियाँ भी राष्ट्रकूट राजकुमार मल्लिकाब्बे के नेतृत्व और सहायता से की गई थीं अब वे छानबीन द्वारा सिद्ध की जाएगी। बडे-बडे विद्वान और मुनि इस हस्तलिखित प्रतियो की ओर विशेष ध्यान दे रहे हैं।

इस ग्रन्थ में कुछ इस प्रकार की विद्या भी है जिससे कुछ ऐसे नम्बरों का पता लगता है जिनको कि यदि अक्षरो मे लिखा जाए तो वह प्रश्न ही उस का उत्तर बन जाता है। किसी प्रश्न का उसके उत्तर में बदल जाना गणित शास्त्र का ही नियम है जोकि अभी पूर्ण रूप से विदित नहीं हुआ है। एक बार ओटी (Ooty) के कोफीप्लेंटर के किए गए प्रश्न के उत्तरमें ३०० ब्राह्मी षटपदी कविता बन गई थी।

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जोकि अपने भूत और भविष्य के विषय में सोचता ही रहता है। अपने हृदय मे यदि वह कोई इच्छा न रखे तो उसका जीवन शून्य ही माना जाता है। लेकिन व्यक्ति जो कुछ भी अच्छा या बुरा सोचता है। वह उन सभी को कार्य रूप में परिणित नहीं कर सकता। और न ही वह इतना पराधीन भी है कि वह अपने विषय में सोच भी न सके। जिनका कुछ ऐसे नियम कर्म, ईश्वर के नाम पर बने हैं मनुष्य पालन करता है।

यदि 'श्री भूवलय' को व्यक्ति ठीक समझले और कुछ पाना चाहे तो मनुष्य की कल्पना, ज्ञान बढना जरूरी है। 'भूवलय' ज्ञान का भंडार है।

कुछ समय पहले मैंने यह ग्रन्थ शिक्षामंत्री श्री ए० जो० रामचन्द्र राव को दिखाया व बताया था। उन्होने कुछ आर्थिक सहायता और सरकारी कार्य की सहायता शीघ्रातिशीघ्र देने का वचन दिया था।

अन्त में, यदि मैसूर के रायल हाउस की पूर्ण सहायता भी मिलती रहे तो यह कन्नड ग्रन्थ (कुमुदेन्दु जी का भूवलय) राष्ट्र के लाभ के लिए छप सकेगा।

ओम सत संत

इस शिवमार का सैगोट्ट शिवमार नाम भी था। कानडी भाषा में सैंगोट्ट शब्द का अर्थ कथा के श्रवण में केवल हाँ हाँ की स्वीकृति देना है। किन्तु कुमुदेन्दु आचार्य अपने शिष्य शिवमार सैगोट्टा को जब भूवलय की कथा सुनाते रहे और शिवमार आदि से लेकर अन्त तक भक्ति भाव से कथा सुनते रहे, तब उन्हें मतिज्ञान की सिद्धि हुई ॥१४८॥

मति ज्ञान प्राप्त हो जाने से पृथ्वी के सम्पूर्ण ज्ञान शिवमार को प्राप्त हो गये ॥१४९॥

ऐसे ज्ञान की प्राप्ति तत्कालीन भारतीयो के सौभाग्य का प्रतीक था ॥१५०॥

नवविध अंह अर्थात् पचपरमेष्ठी अक्षर और अङ्क रेखा वर्ण का सपूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया, ऐसे शिवमार की रक्षा करके सद्गुरु अर्थात् कुमुदेन्दु आचार्य की कीर्ति बढ गई ॥१५१-१५२॥

कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि यह कीर्ति ही हमारा शरीर है ॥१५३॥

इस कीर्ति से शिवमार को जो विशुद्ध प्राप्त हुआ वह नव नवोदित था ॥१५४॥

वह कीर्ति दसो दिशाओ में वस्त्र के समान फैल गई, अर्थात् कु० दिगम्बराचार्य आशावसनी थे ॥१५५॥

भूवलय विख्यात कीर्ति वाले सेडगण नामक गुरुपीठि के आचार्य थे ॥१५६॥

कुमुदेन्दु आचार्य का जन्म ज्ञातवश में अर्थात् महावीर भगवान का वश था ॥१५७॥

कुमुदेन्दु आचार्य का गोत्र सद्धमप्रकीर्णक था ॥१५८॥

उनका सूत्र श्री वृषभ सूत्र था ।१५९।

आचार्य की शाखा द्रव्यांग वेद की थी ॥१६०॥

उनका वंश इक्ष्वाकु वशान्तर्गत ज्ञात वश था ।१६१।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य जब दिगम्बर मुद्रा धारण करके सेनगण के आचार्य बन गये तब उन्होंने वंश, गोत्रसूत्र, शाखा आदि सभी को त्याग दिया। ।१६२।

अर्हद्वल्याचार्य के समय में जैसे गणगच्छ का विभाग हुआ तो इसी रीति से श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भी गणगच्छ की स्थापना की थी ।१६३।

इस गणगच्छ को ९ भाग में विभाजित हुए भारतवर्ष में सेनगण के ९ गुरु पीठ को स्थापित करके अखिल भारत में सर्वधर्म समन्वय ने दिगम्बर जैन धर्म को स्थिर रक्खा।

विवेचन—आचार्य कुमुदेन्दु के समय में हमारा भारतवर्ष नौ भागों में विभक्त था। जिस प्रकार राज्य नौ भागों मे विभाजित था उसी प्रकार धर्म राज्य अर्थात् गुरुपीठ भी नौ भागो में स्थापित हुआ था। अब इन गुरु पीठो मे कोल्हापुर काचीवर पेनावड ये ही तीन गद्दियां चल रही हैं। रत्नगिरि दिल्ली इत्यादि का गुरुपीठ नामवशेष हो गया है।

कुमुदेन्दु आचार्य और उनके शिष्य शिवमार के राज्य काल में सारे भारत खण्ड में कर्नाटक भाषा राज्य थी। कर्नाटक भाषा में ही भूवलय ग्रन्थ लिखा गया है। उस कर्नाटक राजा का कर्म बिस्तार पूर्वक कर्म सिद्धांत का कुमदेन्दु आचार्य ने दिया ।१६५-१६६।

उनको पठाया हुआ यह भूवलय नामक ग्रन्थ है ।१६७।

इस प्रकार से यह भूवलय ग्रन्थ विश्व मे बिख्यात हो गया ।१६८।

उस कर्माटक चक्रवर्ती सैगोट्ट शिवमार को पाच पदवी प्राप्त हुई थीं। पहले का पद धवल, दूसरा पद जयधवल, तीसरा महाधवल इसी रीति से बढ़ते हुए ॥१६९॥

जनता की दीनवृत्ति को नाश करके कीर्ति लक्ष्मी और शील को धवल रूप में बढाते हुए आनेवाला अतिशय धवलापर नामधेय भूवलय रूपी चौथा और विविध भांति विस्मय कारक शब्दों से परिपूर्ण पांचवां विजय धवल है।

ये पाचो धवल भी भूवलय रूपी भरतखण्ड सागर को वृद्धिङ्गत करनेवाले पांच पद हैं। अर्थात् सैगोट्ट शिवमार नृप को राज्याभ्युदय काल में १-

धवल, २—जयधवल, ३—महाधवल, ४—अतिशय धवल (भूवलय) और पाचवां विजय धवल रूपी पांच पदवियां प्राप्त हुई थीं ॥१७०-१७१॥

इस प्रकार भरतमही को जीत करके सैगोट्ट शिवमार दक्षिण भरत खण्ड में राज्य करता था । ३ कर्नाटक चक्री उनका नाम पडा अर्थात् उस समय सारे भरत खण्ड में कानड़ी भाषा ही राज्य भाषा थी । उनके राज्य का दूसरा नाम मण्डल भी था ॥१७२॥

हिंसामयी धर्म सब को दु:ख देनेवाला है इसलिए वह अप्रिय है । इस प्रकार का उपदेश देते हुए उस चक्री ने राज्य दण्ड और धर्म दण्ड से हिंसा को भगा दिया ।१७३।

अहिंसा धर्म अत्यन्त गहन है । इस प्रकार के गहन धर्म को चक्री ने सबको सिखा दिया था ।१७४।

जब अहिंसा धर्म की ख्याति बढ़ गई तब अणुव्रत का पालन करनेवाले भी बढ गये ।१७५।

यह ख्याति सबको सुख कर है ।१७६।

भरत खण्ड की ख्याति ही यह ६ खण्ड शास्त्र रूपी भूवलय की ख्याति है ।१७७।

जब इस भूवलय शास्त्र की ख्याति बढ गई तब यह भरत खण्ड इस लोक का स्वर्ग कहलाया । और यह प्रथम अमोघवर्ष राजा इस भूलोक स्वर्ग का अधिपति कहलाया । इस प्रकार से राज्य करनेवाला अभी तक नहीं हुआ और न आगे ही होगा इस प्रकार से सभी जनता कहने लगी । १७८ से १८१ तक ।

❖नोट:—एक समय में सैगोट्ट शिवमार चक्री अपने राजसी वैभवों के साथ हाथी के ऊपर बैठकर जा रहे थे । उस समय वृष्टि होने के कारण सारी पृथ्वी पंकमयी थी । दूर से देखने पर श्री आचार्य कुमुदेन्दु अपने गुरु और शिष्यों के साथ अपनी ओर विहार करते हुए देखकर अपनी सारी सेना रोक दिये तथा स्वय हाथी से उतरकर पादमार्ग से श्री गुरु के सन्मुख जाकर गुरुओ की बन्दना की । तत्पश्चात् शिवमार सैगोट्ट चक्री ने जो अपने मस्तक में अमूल्य जवाहरात से जडित किरीट बांध रक्खा था, वह गुरु देव के चरण कमलों में गिर पडा । किरीट के गिरते ही उसमें से अमूल्य नायक मणि (तत्कालीन विख्यात मणि) गुरु के चरण समीप कीचड में सन गई और उसकी देदीप्यमान कान्ति मलिन हो गई । गुरुदेव ने अपने शिष्य को शुभाशीर्वाद देकर प्रस्थान करा दिया । इधर शिवमार परम सन्तुष्ट होकर गजारूढ हो राजसभा में जाकर सिंहासन पर आसीन हो गया । इससे पहले राजसभा में बैठकर सभासदों के समक्ष वार्तालाप करते समय तथा अपने मस्तक को इधर उधर फेरते समय किरीट में जडित उपर्युक्त अमूल्य रत्न की कान्ति सभी सभासदों को चकाचौंध कर देती थी किन्तु आज उसकी चमक कीचड़ लगजाने के कारण नहीं दीख पडी । सभासदो ने मन्त्री से इङ्गित किया कि किरीट में लगे हुए कीचड़ को वस्त्र से साफ करदो । यह सुनते ही मन्त्री कीचड को वस्त्र से स्वच्छ करने के लिए राजा के निकट खडा हो गया । वार्तालाप करने में मग्न राजा की दृष्टि समीपस्थ मन्त्री के ऊपर सहसा जैसे ही पडी वैसे ही राजा ने विस्मित होकर पूछा कि तुम यहा क्यो खडे हो ? मन्त्री ने उत्तर दिया कि आपके किरीट में लगे हुए कीचड को साफ करने के लिए मैं खडा हुं । राजा ने मत्री से कहा कि गुरु की अहेतुकी कृपा से प्राप्त चरण रज को हम कदापि नहीं पोंछने देंगे । क्योंकि इसे हम सदा काल अपने मस्तक पर धारण करना चाहते हैं । राजा की अपूर्व गुरुभक्ति को देखकर सभी सभासद आश्चर्य चकित हो गये ।

जब एक साधारण शिष्य की गुरुभक्ति का माहात्म्य इतना बड़ा विलक्षण था तब उनके पूज्य गुरुदेव की महिमा कैसी होगी ?

उत्तर—राज्य शासन करते समय शिवमार राजा को जो उपर्युक्त धवल जय धवलादि पांच उपाधिया प्राप्त थी उन्हीं उपाधियों के नाम से अपने शिष्य शिवमार राजा का नाम अमर रखने के लिए गुरुदेव ने स्वविरचित पांच ग्रन्थों का नामकरण धवल जयधवलादि रूप से ही किया । इन दोनों गुरु शिष्यों की महिमा अपूर्व और अलभ्य है ।

ज्ञानवर्ण आदि आठ कर्मों को दहन करते हुए आत्म कल्याण कराने वाला यह भरत खण्ड है ।१८२।

कर्माटक अर्थात् आठ कर्म के उदय से जगत के समस्त जीव कर्म में फंसे हुए हैं । इसलिए कानड़ी भाषा ही सभी जीवो की भाषा है । उदाहरण के लिए सर्व भाषामय काव्य भूवलय ही साक्षी है ।१८३।

इस भारत वर्ष में सद्धर्म का प्रचार बहुत बढ जाने से सभी जनो मे धार्मिक चर्चा चलती थी ।१८४।

राज्य को अहिंसा धर्म से पालन करनेवाला चक्रवर्ती राजा राज्य करे तो उनके शासनकाल में स्वभाव से ही अहिंसा धर्म का प्रचार रहता है ।१८५।

अहिंसा धर्म ही इस लोक और परलोक के सुख का कारण है और सुख का सर्वस्व सार है ।१८६।

परस्पर प्रेम से यदि जीवन निर्वाह करना होतो परस्पर में सहकार ही मुख्य कारण है और वही धर्म का साम्राज्य है ।१८७।

इस लोक में सभी को शौभाग्य देनेवाला यह अहिसा धर्म हैं ।१८८।

महावीर भगवान ने इस धर्म को मङ्गल स्वरूप से दान दिया है । ।१८९।

गुफा में रहते हुए तपस्या द्वारा सिद्ध किया हुआ अहिसा धर्म है ।१९०।

हिंसा को बिनाश करके अहिसा की स्थापना करके सन्मार्ग बतलाने वाला यह राजा का राजभार कर्म है ।१९१।

सुख शिवभद्र इत्यादि सभी शब्द मङ्गल वाचक हैं । यह सब इस राज्य में फैला हुआ था ।१९२।

महानभावों को पैदा करनेवाला अर्थात् उन सभी का वर्णन करनैवाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।१९३।

महावीर जिनेन्द्र जी इस राज्य में बिहार किये थे ।१९४।

सिद्धान्त को पढते हुए अन्तर्मुहूर्त में सिद्धान्त के आदि अन्त को साध्य करनैवाले राजा अमोघव केर्ष गुरु (आचार्य कुमुदेन्दु) के परिश्रम से सिद्ध किया हुआ यह भूवलय काव्य है ।१९५।

कानड़ी भाषा मे चरित नामक छन्द को सांगत्य कहते हैं । सांगत्य अर्थात् दिगम्बर मुनि राजों का समूह ऐसा अर्थ होता है उन गुरु परम्परा से आये हुए अर्थात् श्री बीरसेनाचार्य द्वारा सम्पादन किये हुए सद्ग्रन्थ को लेकर रचना किये हुए इस भूवलय काव्य को वाचक काव्य भी कहा जाता है ।१९६।

हमारे (कुमदेन्दु आचार्य के) गुरु श्री बीरसेन स्वामी ने छाया रूप से हमें उपदेश दिया उस गुरु का अमृत रूपी वाणी को गणित शास्त्र के साँचे में ढाल कर प्राचीन काल से आये हुए पद्धति के अनुसार मङ्गल प्राभृत के कर्मानुसार गुणाके साचा में ढालकर हम (कुमदेन्दु आचार्य) ने अत्यन्त उन्नत दशा को पहुंचे हुए सात सौ अट्ठारह असख्यात अक्षरात्मक भाषा युक्त रीति से इस ग्रन्थ को बनाया । इस ग्रन्थ की पद्धति बहुत सुन्दर शब्द गंगा से लिखा है, अक्षर गंगा से नही । इसलिए सभी भाषायें इसके अन्दर आगई हैं । इस ग्रंथ के बाहर कोई भी भाषा नही है ।१९७-१९८।

अत्यन्त सुन्दर रचना से युक्त कर्नाटक भाषा यह आदि काव्य है ।१९९।

यह काव्य अग ज्ञान द्वारा निकलने के कारण समस्त भाषा से भरा हुआ है । अंक लिपि सौंदरी देवी का है । उस अक लिपि द्वारा हम बांधकर इस ग्रन्थ की रचना किये हैं । यह हृदय का अतिशय आनन्द दायक काव्य है । इस काव्य के बाहर कोई भी भाषा नही है । अगणित जीव राशि आदि की सभी भाषा इसके अन्दर विद्यमान है । अक अधि-देवता के गणित द्वारा यह काव्य बाधा हुआ है ।२०० से २०४।

यह काव्य अनेक चक्र बन्धो से बधित है ।२०५।

अनेक प्रकार का जो भी चक्र बन्ध है वह सब इस भूवलय में उपलब्ध हो जाता है ।२०६।

गणित में अनेक भङ्ग (गणित का नियम) होते हैं उनमें यदि मृग, पक्षी की भाषा निकालनी हो तो इसी गणित भङ्ग से निकालनी चाहिए ।२०७।

उस भङ्ग का नाम स्वर्ग बन्ध चक्रबन्ध भी है ।२०८।

गणित में [१] अगणित (२) गणित (३) अनन्त इस प्रकार से अनेक भेद होते हैं ।२०९।

इन तीनों बिधि और बिधान द्वारा सारे विश्व को इस ग्रन्थ मे बांध दिया है ।२१०।

मृग अर्थात् तिर्यंच जीव किस प्रकार से मालूम होते हैं उस विधि को बतलाया गया है ।२११।

पक्षी जाति किस प्रकार से स्वर्ग में जाती है इस विधि को भी इस ग्रन्थ में बतलाया गया है ।२१२।

इस भूवलय में विश्व का सारा विषय उसके अन्दर भरा हुआ है ।२१३।

इस भूवलय काव्य मे यदि काल के दृष्टिकोण से देखा जाय तो युग परिवर्तन की विधि भी इसके अन्दर विद्यमान है ।२१४।

सम्पूर्ण जीवों की रक्षा करनेवाला यह जैन धर्म क्या मानव की रक्षा नहीं कर सकता है अर्थात् अवश्य कर सकता है। इसी प्रकार गुरु के कहे हुए धर्म का आचरण करने से राजा शिवमार द्वारा पृथ्वी की रक्षा करने में क्या आश्चर्य है ।२१५।

इस तृणादि में सम्पूर्ण जोव भरे हुए हैं। इन सब जीवो की रक्षा करनेवाला यह जैन धर्म शुभकर है सर्व लक्षणो से परिपूर्ण है और स्वर्ग या मोक्ष की इच्छा करनेवाले की इच्छा पूर्ण करता है ।२१६।

सम्पूर्ण जीवों को यश कर्म उदय को लाकर देनेवाला यह जैन धर्म जीव निर्वाह करनेवाले मनुष्य को सौभाग्य किस तरह देता है इसका समाधान करते हुए आचार्य जी कहते हैं कि यशकायी जीवों के दु ख को दूर करने के लिए पारा सिद्धि के उपाय को बताया है ।२१७।

यह जैन धर्म विष से व्याप्त मानव को मारणमणि के समान विष से रहित करनेवाला है ।२१८।

जैन धर्म के अन्दर अपरिमित ज्ञान साम्राज्य भरा हुआ है ।२१९।

दश दिशाओं का अंत नहीं दिखाई पडता इस भूवलय रूपी ज्ञान के अध्ययन से अपना ज्ञान दिशा के अत तक पहुंचाता है ।२२०।

यह धर्म हुडांवसर्पिणीकाल का आदि ऋषभसेन आचार्य के ज्ञान को दिखाता है ।२२१।

ऋषभसेन आचार्य से लेकर वर्तमान काल तक तीन कम नौ करोड़ मुनियो के सब ज्ञान का सागत्य (अर्थात् भूवलय का छन्द है) से युक्त है ।२२२।

यह धर्म अनादि काल से आये हुए मदनोन्माद का नाश करनेवाला है।
।२२३।

इस काव्य रूपी ज्ञान के हो जाने पर दुर्मल रूपी कर्म को नष्ट कर देता है ।२२४।

तीन, पाच, सात और नौ यह बिषय अक हैं। सामान्य से २ अंक से अर्थात् समान अङ्क से भाग नही होता है इस भूवलय ग्रन्थ के ज्ञान से विषम अङ्क सम अङ्क से भाग होते हुए अन्त मे शून्य आता है ।२२५।

इस अक के ज्ञान से सूक्ष्म काल अर्थात् भोग भोगी काल की सम्पदा को दिखाता है ।२२६।

इस प्रकार समस्त ज्ञान को दिखाते हुए अन्त में आत्म सिद्धि को प्रदान करनेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।२२७।

श्री धरसेनाचार्य के शिष्य भूतवल्य आचार्य ने द्रव्य प्रमाण अनुवाम शास्त्र से अक लिपि को लेकर भूवलय ग्रन्थ की रचना की थी। यह भूवलय ग्रन्थ उस काल मे विशेष विख्यात और वैभव से परिपूर्ण था। नूतन प्राक्तन इन दोनो कालो के समस्त ज्ञान को संक्षेप करके सूत्र रूप से भूवलय ग्रन्थ की रचना की थी। इस भूवलय ग्रन्थ के अन्तर्गत समस्त ज्ञान भण्डार विद्यमान है ।२२८।

श्री भूतवली आचार्य का अतिशय क्या है ? तो हर्षवर्द्धन उत्पन्न करने वाला इस भारत देश का जो गुरु परम्परा से राज्य की स्थापना हुई है यही इसका अतिशय है ।२२९।

यह भारत लवण देश से घिरा हुआ है और इसी भारत देश के अंतर्गत एक वर्द्धमान नामक नगर था। उस वर्द्धमान नगर के अन्तर्गत एक हजार नगर थे। उस देश को सौराष्ट्र कहते थे और सौराष्ट्र देश को कर्माटक (कर्नाटक) देश कहते थे ।२३०।

उस देश में मागध देश के समान कई जगह उष्ण जल का झरना निकलता था। उसके समीप कहीं कहीं पर रसकूप (पारा कुआं) भी निकलते थे। उसके उपयोग को आगे करेंगे। २३१ से ।२३४।

सौराष्ट्र देश का पहले का नाम निर्कलिंग था। भारत का त्रिर्तलि नाम इसलिए पडा क्योकि भारत के तीन ओर समुद्र है यह भूमि सकनड़ देश थी इस अध्याय के अन्तर्काव्य में १५६ हजार में १६८ अक्षर कम थे ।२३५।

इस भूवलय के प्लुत नामक नववें अध्याय के श्रेणी काव्य में आठ हजार सात सौ अडतालिस (८७४८) अकाक्षर हैं। इसका स्वाध्याय करनेवाले भव्य जीव श्री जिनेन्द्र देव के स्वरूप को प्राप्त करने की कामना करते हैं। उस कामना को पूर्ण करने वाला ६ अक है। अर्थात् श्रेणी काव्य के ८७४८ अंक आडा जोड देने से ६ आ जाता है। यह ६ वा अक श्री जिनेन्द्र देव के द्वारा प्रतिपादित भूवलय की गणित पद्धति है। और यही अष्टम महाप्रातिहार्य वैभव भी है ।२३६।

इति नवमोऽध्याय

ऊ ८७४८+अन्तर १४८३२=२३५८०

अथवा

अ से लेकर ऊ पर्यंन्त

१, ५२, ४४२+२३, ५८०=१, ७६, ०२२

इस अध्याय को उपर्युक्त, कथनानुसार यदि ऊपर से नीचे तक पढ़ते जाएँ तो जो प्राकृत काव्य निकलकर आ जाता है उसका अर्थ इस प्रकार है:—

इस परम पावन भूवलय ग्रन्थ को हम त्रिकरण शुद्धि पूर्वक नमस्कार करते हैं। यह भूवलय ग्रन्थ भव्य जीवो के अज्ञानान्धकार को नाश करने के लिए दीपक के समान है। इस दीपक रूपी ज्योति का आश्रय लेकर चलनेवाले भव्य जीवो के कल्याणार्थ हम त्रिलोक सार रूप भूवलय ग्रन्थ को कहते हैं।

इस अध्याय का स्वाध्याय यदि मध्य भाग से किया जाय तो संस्कृत भाषा इस प्रकार निकलकर आ जाती है—

भूतवलि, गुणधर, आर्यमक्षु, नागहस्तो, यतिवृषभ, वीरसेनाभ्याम् विरचितम् श्री श्रोतार सावधा। इन आचार्यों द्वारा विरचित ग्रन्थ को आप लोग सावधान पूर्वक श्रवण करे।

दसवां अध्याय

ऋ* वृधि सिद्धिगळनु होन्दिसि कोडुवंक । सिद्धिय सर्वज्ञ न* वन ॥ शुद्ध केवलज्ञानदतिशय धवलदे । सिद्धवागिरुव भूवलय ॥१॥
सि* रि वीरसेन भट्टारकरुपदेश । गुरु वर्धमान श्री मुखदे । त* रतर वागि बन्दिरुवुदनेल्लव । विरचिसि कुमुदेन्दु गुरुवु ॥२॥
ओ* विसिवेनु कर्माटद जनरिगे। श्रो दिव्य वाणिय क्रमदे । श्री द या* धर्म समन्वय गणितद । मोदद कथेयनालिपुदु ॥३॥
आदिय कथेय नालिपुदु ॥४॥ नादिय कथेयनालिपुदु ॥५॥ वेद हन्एरडनालिपुदु ॥६॥ इ दिनवादिय काव्य ॥७॥
सादि अनन्तद ग्रन्थ ॥८॥ वेदागम पूर्व सूत्र ॥९॥ वेदव हदिनाल्कु पूर्व ॥१०॥ श्री दिव्य करण सूत्रांक ॥११॥
आदिगनादि सद्वस्तु ॥१२॥ साधिक वय्भव बंध ॥१३॥ ओदिनध्यात्मद बन्ध ॥१४॥ श्री धन घी धन रिद्धि ॥१५॥
ओदिनोळव्षध सिद्धि ॥१६॥ ओदिनोळव्षध रिद्धि ॥१७॥ कादियिम् वर्णमालान्क ॥१८॥ कादियिम् नवमान्क बंध ॥१९॥
टादियिम् नवमान्कदंग ॥२०॥ पादियिम् नवमान्क भंग ॥२१॥ याद्यष्टरळ कुल भग ॥२२॥ साद्यन्त अं अः कः पः व ॥२३॥
मोवद्इप्पत्तेळु स्वरद ॥२४॥ ओदिन अरवत्नाल्क अन्क ॥२५॥ साधित सिद्ध भूवलय ॥२६॥
सु* रनर नागेन्द्र तिरियन्च नारक । ररियुवेळ्तूर् एम्ब श* ॥ वरभाषे हदिनेन्ट बेरसिनाम् बरेदिहे । गुरु वोर सेन सम्मतदिम् ॥२७॥
ग* मनिसि अरवत्नाल्क् अक्षर सम्योग । विमल भंगांक रु* वृद्धि॥ क्रमविह अपुनरुक्तान्कद अक्षर । विमल गुणाकार मग्गि॥२८॥
गि* डिदु तुम्बिरुवनु लोमांक पद्धति । पोडवियोळतिशुद्धव ण* ण ॥ गडियोळगदनुम् प्रतिलोमदन्कदिम् । बिडिसलु बहुदेल्ल भाषे ॥२९॥
व* र भाषेगळेल्ल समयोग वागलु। सरस शब्दागम हुट्टि॥ सर व* दुमालेयादतिशय हारद । सरस्वति कोरळ आभरण ॥३०॥
परि परि वर्णद कुसुम ॥३१॥ अरहन्त वाणिय महिमा ॥३२॥ सरळवागिह् कर्माटकद ॥३३॥ परम वय्विध्यांक पूर्ण ॥३४॥
गुरु परम्परेय सूत्रान्क ॥३५॥ परमात्म नोरेद रहस्य ॥३६॥ वर कुसुमाक्षर दन्क ॥३७॥ सरळवादरु प्रउड विषय ॥३८॥
गरुडगमन रिद्धि गमन ॥३९॥ शरीर सवन्दर्यद अक्ष ॥४०॥ विरचित कुमुदेन्दु काव्य॥४१॥ अरवत् नाल्क क्षरदन्ग ॥४२॥
गुरुगळ वाक्य भूवलय ॥४३॥
ह* रुष वर्धनवा जीव राशिय काव्य । सरुवान्क सरुवाक्षर न* अम् ॥ बरेयदे बरुव रेखांक समृद्धिय । परमामृतद रचनेयिम् ॥४४॥
णु* णुपाद दुन्डाद लिपिय कर्माटक । दनुपम र ळ कुळवेरसि॥ म* अनुजर देवर जीवराशिय शब्द । दनुपम प्राकृत द्रविड ॥४५॥
मो* क्ष मार्गोपदेशकवाद् एळोम्देन्दु । साक्षर अक्षरद् तु* हिन ॥ रक्षेय जगद समस्त भाषेगळिह । शिक्षेये भव्यर वस्तु ॥४६॥
रक्षणेगादिय वस्तु ॥४७॥ अक्षयानन्त सुवस्तु ॥४८॥ आक्षरद् एरडने भग ॥४९॥ आक्षर वादि त्रिभंग ॥५०॥
शिक्षण अरवत् नाल्क् अंग ॥५१॥ सूक्ष्मांकदनुपम भग ॥५२॥ अक्षय सुखद स्रूप ॥५३॥ शिक्षेयनादिय वस्तु ॥५४॥
लक्ष कोटिगळ श्लोकांक ॥५५॥ कक्षद पिन्छद गणित ॥५६॥ कुक्षियोळ् हुगिदिरुवक ॥५७॥ कक्ष खगोळ मगलद ॥५८॥
लक्षण पाहुडदन्ग ॥५९॥ दीक्षावसनद त्याग ॥६०॥ तीक्षण वाग्बाणदे मृदुल॥६१॥ कक्षपुटदे चक्र भंध ॥६२॥
अक्षर बन्धद मनेगळ् ॥६३॥ चक्षुरुन् मीलनदन्क ॥६४॥ चक्षु अचक्षु सज्ञान ॥६५॥ यक्ष सम्रक्षण वक्ष ॥६६॥
वक्षस्थल हार पदक ॥६७॥ यक्ष प्रकर्ष भूवलय ॥६८॥

ग* मनि सलिन्तु ई सर्वविषयगळ । क्रम मार्ग गणितदेसर मं* विमल विहारदे अ चरिसुव मुनिगळ गमकदतुल कलेयन्क ॥६९॥
व* शवागदेल्लरिग् ई कालदोळगेम्ब । अस्द्रुश ज्ञानद् साम् ग* न्य ॥ विषहर 'सर्व भाषाम ई' कर्माट । दसमान दिव्य सूत्रार्थ ॥७०॥
य* वेय काळिन क्षेत्रदळतेयोळ् जोविप । सविवरानन्त जोव ल* क् ॥ सुविख्यात कर्माट देशप्रदेश । सविवर कर्माटकवु ॥७१॥
ग* णित शास्त्र वदेल्ल मुगिदरु मिक्कुव । गणितव नणुरूप म* गेय्दु । क्षणवेने समयओमद्रोळसम् ख्यातद । गुणितदकेडिसुवक्रमवु॥७२॥
व* र विश्वकाव्यदोळडगिर्प कारण । सरणियनरितवर् शु भ* द ॥ गुरुवर वोरसेनर शिष्य कुमुदेन्दु । गुरु विरचितवावि काव्य ॥७३॥
क्* र्मदक्षयवेन्तो अनन्तु बन्दक्षर । निर्न्नाहदोळनग ग* ळ ॥ सर्वव अनुलोम् प्रतिलोम हारद । सर्वांक मगल विषय ॥७४॥
खो* डिकर्मवगेलव हाडनुम् हा डद । रूढियम् हळेय कम्नड वा* ॥ गाढ प्रगाढ सम्रूढियज्ञानद । कूडणेयतिशय बन्त्र ॥७५॥
हाडलु सुलभवादन्ग ॥७६॥ नोडलु मेच्चुव गणित ॥७७॥ जोडियन्कद कूटदन्ग ॥७८॥ कुडुव पुण्यान्ग भंग ॥७९॥
कूडुवागले बंद लब्ध ॥८०॥ गूढ रहस्यद अग ॥८१॥ मूढ प्रउदरिग् ओमदे भग ॥८२॥ गाढ रहस्य कर्मांग॥८३॥
ओडि बरलु पुण्यदग ॥८४॥ श्रे ढिय कळेव भागाग ॥८५॥ गाढ श्रे गुणकार भंग ॥८६॥ माडिद पूजान्ग भंग ॥८७॥
रूढियिम् बंद पुण्यान्ग ॥८८॥ ओडिनोल् हाडुव अनग ॥८९॥ काडिन तपदे बन्दन्ग ॥९०॥ तौडिनोळ् गणिपन्तरन्ग॥९१॥
ताडनवळिव दिव्यान्ग ॥९२॥ माडिद पुण्यान्ग गणित ॥९३॥ रूढियागमद सूक्ष्मान्ग ॥९४॥ याडिल्लदणु महा भंग ॥९५॥
गाढ भक्तिय भव्यरन्ग ॥९६॥ कूडिद भव्य भूवलय ॥९७॥
य* शकीर्ति नाम कर्मोदयवळिदस । द्यशद दिव्यात्म निम्ब न्* द ॥ असमान द्रव्यागमद पाहुडदन्ग । कुसुम वर्णाक्षर माले ॥९८॥
णी* लमहानीलनामद ऋषिगळ। सालिनिम्बन्दिहगणित॥ दोलेय वो* र जिनेन्द्रन वाणिय । सालिनिम् बदिह गणित ॥९९॥
ल* क्ष्मणनर्ध चक्रेश्वर नवनग । लक्मान्कदक्ष रो* चनव॥ लक्षमवभावदिगुणिसुतगणिसिह। लक्षयांक दनुबंधकाव्य ॥१००॥
म्* नुमथनुपमदेह सम्स्थानद । घन बन्ध सम्हननव म* त्रनवकारद सिद्धरतिशय सम्पद । देणकेय सौन्दर काव्य ॥१०१॥
जिन चन्द्रप्रभरन्ग धवल ॥१०२॥ मुनिसुव्रतरन्क कमल ॥१०३॥ जिन मुनिमालेय कमल ॥१०४॥ घनरत्नत्रय दिव्य धवल ॥१०५॥
जिन माले मुनिमालेयन्क ॥१०६॥ गणित दोळक्षर ब्रह्म ॥१०७॥ अनुभव गोचर गणित ॥१०८॥ जिनमतवर्धन धवल ॥१०९॥
तनगे आत्मध्यान धवल ॥११०॥ कुनय विधूर साम्राज्य ॥१११॥ कनकव धवलगेय्वन्क ॥११२॥ तनुमन वचन शुद्ध धन ॥११३॥
विनुतद लौकिक गणित ॥११४॥ जिनर केवल ज्ञान गणित॥११५॥ थणथणवेने श्वेतस्वर्ण ॥११६॥ चणक प्रमाणवे मेरु ॥११७॥
जण जण होळेव दिव्यांक ॥११८॥ पण वळिदिह सद्गणित ॥११९॥ गुण स्थानदनुभव गणित ॥१२०॥ जिनर अयोगद गणित॥१२१।
सनुमत काव्य भूवलय ॥१२२॥
म* रळि मार्गणस्थानदनुभव योगद । मर जीवरसमास दरि ग* ॥ वरुषव समयव कल्पव समयव । वह समयदोळनन्तान्क ॥१२३॥
ह* रडुत तनुगुत बेरेयुत हरियुत । सरुव पुद्गल होन्दि सर लं* बरुत होगुत निळव जोवराशिगळन्क । करगदे तोरुवनन्त ॥१२४॥
णी* चातिनीच जीवनद जीवरनेल्ल। आचेगे सागिप दिव्य॥ राचमं भ* द्र् मन्गलद पाहुड काव्य । ईचेगाचेगे अनन्तरदिम् ॥१२५॥
लो* कवोळगे भव्रवागिसि पिडिदिर्दु । लोकदग्रके बन्धिसि ग* ॥ श्री करवागिरिसिर्प कल्याणव । शोकापहरणद अनक ॥१२६॥

नाकाग्र् श्री सिद्ध काव्य ।।१२७।। व्याकुल हरि सिद्ध काव्य ।।१२८।। आकाररहित दिव्यान्ग ।।१२९।। एकाग्र ध्यान सम्प्राप्त ।।१३०।।
ओकार वर्जित शब्द ।।१३१।। ओम्कार गोचर वस्तु ।।१३२।। ह्रोम् कार दाराध्य वस्तु ।।१३३।। ह्रूम्कार दतिशय वस्तु ।।१३४।।
ह्लूम्कार राराध्य सम्ज्ञा।।१३५।। हरीमकार गोचर वस्तु।।१३६।। ह्रोम्कार पूजित गर्भ ।।१३७।। ह्र्औम्कार दतिशय वस्तु।।१३८।।
ह्रम्कार राराध्य सञ्ज्ञ ।।१३९।। ह्रह्कार गोचर वस्तु ।।१४०।। शम्का विरहित भूवलय ।।१४१।।
ण* वकारमन्त्रदोळादिय अरहन्त । शिव पद कय्लास गिरि वा* सवे श्री समवसरण भूमियतिशय । जवम्जव सम्हार भूमी ।।१४२।।
व* र भद्र कारणवदनु मंगलवेन्दु । गुरु परम्परेय अ न्* गवदु।। परमात्म सिद्धिय कारणागमन व। सिरिवर्धमान वाक्यांक।।१४३।।
ण* र सुर तिरियन्च नारकि जीवर्गे । परि परि सम्यक्त्वद गौ* चरियद चारित्र्य लब्धि कारणवागे । अरहन्त भाषित वाक्य ।।१४४।।
ऊ* सह तीर्थन् करवाति इप्पत्नाल्कु । यश धर्ध तीर्थर त* त्व ।। वशवाद भव्यर सम्सारदन्त्यवु । जसवन्ते वन्दोवगेवुवु ।।१४५।।
दी* व सागर गिरिगुहे कन्दरवा। ठाविनोळिरुव निर्वाण।। भूवि मो* क्षदनेलेवनेयद तोरुव । पावन मंगल काव्य ।।१४६।।
श्री वीरवाणि ओम्कार ।।१४७।। कावन सम्हार नेलवु ।।१४८।। आ विश्व काव्यांग धर्म ।।१४९।। ई विद्य अरवत् नाल्क् अंक ।।१५०।।
वय्विध्य कर्म निर्जरेय ।।१५१।। श्री विद्य पुण्य बन्धकर ।।१५२।। पावन शिव भद्र विश्व ।।१५३।। ई विश्व वय्भवद् अंक ।।१५४।।
काव पुण्यान्कुर वृक्ष ।।१५५।। देवर देवन क्षेत्र ।।१५६।। ई विश्वदर्शन ज्ञान ।।१५७।। एवेळ्वेनतिशय विदरोळ् ।।१५८।।
श्री वीरनुपदेशवन्क ।।१५९।। आ विश्वदन्चिन चित्र ।।१६०।। कावनेरिद दिव्य भूमी ।।१६१।। श्री विश्व काव्य भूवलय ।।१६२।।
को* टा कोटि सागरगळनळेयुवा । पाटिय कर्म सिद्धात ।। दाटव ग* णिसुव विधिय द्रव्यागम भाटान्क वय्भववमल ।।१६३।।
ड* मरुगविन्द शम्दवु हुट्टे जडवदु । क्रमवल्लवदर ए णी* केयु।। विमलजीवद्रवदिम्बदद्रव्यवे। अमलशब्दागमवरियय् ।।१६४।।
ई* गणहिन्दण नादिय मुन्दण । तागुवनन्त कालवनु ।। श्री गुरु मं* गल पाहुडदिम् पेळ्द । रागविराग सद्ग्रन्थम् ।।१६५।।
ओ* कारदोळु विन्दुववनु कूडिसलन्त । ताकिदक्षर ओम् अन् ग* श्रीकर सुखकर लोक मंगल कर । दाकार शब्द साम्राज्य ।।१६६।।
वयाकुल हरदन्क भग ।।१६७।। साकारदतिशयदन्ग ।।१६८।। आकार रहित दाकार ।।१६९।।
आकारवदे निराकार ।।१७०।। एक द्वि त्रि चतुह् भंग ।।१७१।। आकडे ऐदारु भंग ।।१७२।।
ज्योकेयोळ् एळेन्दु भंग ।।१७३।। साकु भाषे एळ्नूर् हदिनेन्दु ।।१७४।। 'ओ' कार'अ'क्षर कळेय ।।१७५।।
लोकद भाषेगळ् बबुदु ।।१७६।। श्री कारवदु द्वि संयोग ।।१७७।। नूकलु मूरु अक्षरवम् ।।१७८।।
आकारद् आरु भन्गविदे ।।१७९।। हाकलु नाल्कु भन्गदोळु ।।१८०।। जोकेयोळ् हदिनारु भन्ग ।।१८१।।
बेकागे ऐदु अक्षरवम् ।।१८२।। आकार इप्पत्ऐद् अन्ग ।।१८३।। एक मालेयोलारक्षरद ।।१८४।।
आ कारद एप्पत् एरडु ।।१८५।। हाकलु एलु अक्षरव ।।१८६।। साकार नूरिप्पत् अन्ग ।।१८७।।
बेकागे एन्टु अक्षरव ।।१८८।। साकलु एळ्नूरिप्पत्तु ।।१८९।। ताकुव भाषे भूवलय ।।१९०।।
तु* ळियुवुदादि अन्त्यदेरळ् अक्षरगळ । बळि सार्वु लं* भाषे।। बळिमार्दक्षुल्लकद्एळ्नूररभाषे। बळेसिरिमहाहदिनेन्टम्१९१
न्* वदन्कवनेरडन्कवन् आमिसे । सवियादि देव मानवरु ।। तव्ए क* दद महाभाषेगळ् पुट्टलु । भुविय समस्त मातुगळु ।।१९२।।
सि* र्वाग्वाणि सरस्वति रूपिन । सर्वज्ञ वाणियोम्दागि।। सार् द* द्रव्यागम् श्री जिनवाणिय । निर्वाहदतिशय पाठ ।।१९३।।

गि॰ रि गुहे कन्दरदोळगे होकगे निन्दु । अरहन्त वाणिय बळि कु॰ सर मालेयोळगेल्ल भावेय बलेसुव । गुरु परम्परे यादि भंग ॥१९४॥
रि॰ वि वर्धमानर मुखदन्गवेन्देने । होसेदेल्ल मेयदनद् दा॰ होरटु॥ रस वस्तु पाहुड मंगल रूपद । असद्रुश वय्भवभावे ॥१९५॥
वशवाद दिव्याक्षरान्क ॥१९६॥ रिषिवम्श वादिय भावे ॥१९७॥ कसिय व्रव्यागम भावे ॥१९८॥
विष वाक्य सम्हार भावे ॥१९९॥ वशवागलात्म सम्सिद्धि ॥२००॥ विषयाशा हरण दिव्यांग॥२०१॥
रसद् अरवत् नाल्कु भक ॥२०२॥ यशवेरळ् अन्गय् बरेह ॥२०३॥ रस वस्तु त्याग धर्व्योग॥२०४॥
यशवंक भन्ग भूवलय ॥२०५॥ रस सिद्धियादिय भन्ग ॥२०६॥ यशस्वति पुत्रियरन्गम् ॥२०७॥
रस रेखेयतिशय काव्य ॥२०८॥
णि॰ अ तत्व एळर भाजितदिम् बन्द । अजनादि देवन वाणि॥ बिज द्॰ वय विजय धवलदन्क राशिय। स्रुजसिद अतिशय धवल ॥२०९॥
व्॰ रदवाद एळन्नूर हदिनेन्दु भाषेय । सरमालेयागलुम् विद् या॰ सरणियोळ् मूरुन्नूररवत्मूर् अंकदे । परितरलागिवेमतवम् ॥२१०॥
बु॰ ळिद धवलवु महा धवलाकद । बळिसार लेरडे भाषे ॥ कळे जो॰ व धर्मोस्तु मन्गलम् काव्यवु । बळिक श्री जय धवलांग ॥२११॥
दे॰ वागम स्तोत्रवादि महोन्नत । पावन पाहुड ग्रन्थ ॥ तीवे व॰ र्पागम वेल्लवु तुम्बिह । श्री विजयद भूवलय ॥२१२॥
पावन महासिद्ध काव्य ॥२१३॥ देवन वचन सिद्धान्त ॥२१४॥ श्री वीर वचन साम्राज्य ॥२१५॥
श्री वनवासिय काव्य ॥२१६॥ देव जिनेन्द्रर वचन ॥२१७॥ देवरष्टम जिन काव्य ॥२१८॥
देव शान्तोशन मार्ग ॥२१९॥ देव आदीशन चरण ॥२२०॥ काव दोर्वलिय सौन्दर्य ॥२२१॥
श्री विश्व सिद्धांत वचन॥२२२॥ देववाणिय दिव्य भाव॥२२३॥ भाव प्रमाणद काव्य ॥२२४॥
देवन भाव प्रमाण ॥२२५॥ पावन तीर्थद गणित ॥२२६॥ ई वनवासद तीर्थ ॥२२७॥
भावद भल्लातकाद्रि ॥२२८॥ श्री विश्व भयषज्य ग्रन्थ ॥२२९॥ पाव कर्मोदय नाश ॥२३०॥
साविर रोग विनाश ॥२३१॥ श्री वर सौभाग्य मग ॥२३२॥ देवन वचन भूवलय ॥२३३॥
व॰ शवहुद् इल्लि श्री स्वसमय सारद । रसिकात्म द्रव्य ध॰ र्मोस्तु ॥ वशवाद ध्यातमद सारसर्वस्ववे। रसद मगल पाहुडवु ।२३४।
न्॰ वदन्कदिम् बन्द कर्मांक गणितदे । अवतरिसिरुव ध र्॰ मोक्ष ॥ रव अकद ध्यान स्वसमय काव्यद। सविियिह भद्र मगलवु।२३५।
दे॰ व जिनेन्द्रन वाणिय प्राभृत। दाविश्व काव्य दर्शन मो॰ क्षावनि गोय्युव नेराद मार्गद । ई विश्व वतिशय धवल ॥२३६॥
प॰ डिहार दतिशय वेन्टन्क वागलु । गुडियतिशय काव्य सद स्॰ त् वडगुडिदागिल्लि बरुवंक वय्भव। म्रुडनन्ग धवल शुभांक ॥२३७॥
व्॰ त्रएसदतिशय महनीय वाणिय । सविय लाञ्छनदुदयव्र तु॰ विवरदजगोसान्ग मिदु मधुरतेयिह् । सविवर दिव्य मन्गलवु ॥२३८॥
द्॰ रुशिसे 'ऋ' अक्षर हत्तन्तर । दिरुवन्कवदरलि बरुव ॥ म॰ रकतवय्दोम्बत् एळु ऐद्ओम्दु । सरि गूडिसल् 'ऋ' भूवलय ॥२३९॥
ए॰ रिसि बरुवन्कदा मूलदक्षर । दारय्केयतिशय्अद् अनन्त ग॰ सेरलेनट् नाल्केळु एन्टाद काव्यदु । दारते यरसुव (दारतेये बरुप)
भन्ग ॥२४०॥

ऋ+८७४८+अन्तर १५,७९५=२४,५४३ अथवा अ—ऋ ग, १७६,०२२+२४,५४३=२,००,५६५ ।

दसवां अध्याय

धवल, जयधवल, विजय धवल, महाधवल इन चारो धवलो में रहने वाले अतिशय को अपने अन्दर समावेश करने वाला यह भूवलय सर्वज्ञ देव के शुद्ध केवल ज्ञान रूपी अतिशय के द्वारा निकलकर आया हुआ है। केवल ज्ञान में जगत के सम्पूर्ण ऋद्धि और सिद्धि इन दोनो को अपने अन्दर जैसे वह समावेश कर लिया है उसी प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ भी अपने अन्दर विश्व के सम्पूर्ण पदार्थ को अन्दर कर लिया है ।१।

जैसे श्री भगवान महावीर के श्री मुख कमल से अर्थात् सर्वांग से तरह तरह की आई हुई सर्व भाषाओ को श्री वीरसेन आचार्य ने सक्षेप मे उपदेश किया था उन सबको मैं श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने सुनकर इन सब विषयो को भूवलय ग्रन्थ के नाम से रचना की ।२।

श्री दिव्य ध्वनि के क्रम से आये हुए विषय को दया धर्म के साथ समन्वय करके समस्त कर्माटक देशीय जनता को एक प्रकार की विचित्र गणित कथा श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने जो बतलाया है उसे हे भव्य जीवात्मन् ! तुम सावधान होकर श्रवण करो ।३।

आदि तीर्थंकर श्री वृषभ देव से लेकर आज तक चलाये गये समस्त कथाओं को हे भव्य जीव ! तुम सुनो ।४।

इतना ही नही बल्कि इससे बहुत पहले यानी अनादि काल से प्रचलित की गई कथा को हे भव्य जीव तुम ! सुनो ।५।

हे भव्य जीव ! तुम आचारागादि द्वादशाँग वाणी को सावधानतया सुनो ।६।

यह भूवलय काव्य अनादि कालीन है, किन्तु ऐसा होने पर भी गणित के द्वारा गुणाकार करके इसकी रचना वर्तमान काल मे भी कर सकते हैं, अत. यह आधुनिक भी है ।७।

अनन्त के अनाद्यनन्त, साद्यनन्त, सादिसान्त, साद्यनन्त इत्यादिक भेद हैं। उन भेदों में से यह भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ साद्यनन्त है ।८।

भगवान् जिनेन्द्र देव की वाणी, वेद, आगम, पूर्व तथा सूत्र इत्यादिक विविध भेदों से युक्त है और वह सब इस भूवलय में गर्भित है ।९।

भगवान् की उपर्युक्त वाणी अग्रेयणीयादि चौदह पूर्व भी है ।१०।

नौ अक को घुमाकर सकलागम निकालने की विधि को श्री दिव्य कर्णांक सूत्र कहते हैं ।११।

चौदह पूर्व में अनेक वस्तुये हैं और वे सभी आदि व अनादि दोनों प्रकार की हैं। अत यह भूवलय वस्तु भी है ।१२।

द्वादशाग वाणी का बन्धपाहुड भी एक भेद है। और बन्ध में सादि-बन्ध, अनादि बन्ध, ध्रुव बन्ध, अध्रुव बन्ध, क्षुल्लक बन्ध, महा बन्ध, इत्यादि विविध भाति के भेद हैं। उपर्युक्त सभी बन्ध इस भूवलय में विद्यमान हैं ।१३।

जो महात्मा योग मे मग्न हो जाते हैं उसे आध्यात्मिक बन्ध कहते है। ।१४।

श्री धन अर्थात् समवशरण रूपी बहिरङ्ग लक्ष्मी और धन अर्थात् केवलज्ञान ये दोनो ऋद्धियाँ सर्वोत्कृष्ट हैं ।१५।

औषधिऋद्धि के अतर्गत मल्लौषधि जल्लौषधि इत्यादि आठ प्रकार की ऋद्धियाँ होती हैं। वे सभी ऋद्धिया इस भूवलय के अध्ययन से सिद्ध हो जाती हैं। इन सबको पढने के लिये क अक्षर की वर्णमाला से प्रारम्भ करना चाहिये ।१६-१७ १८।

कादिसे नवमाङ्क बन्ध, टादि से नवमाङ्कदग, पादि से नवमाङ्क भग, याद्यष्टग्लकुल भग, साद्यन्त से ०, ·, , : और २७ स्वर से भङ्गाङ्क, वर्णमालाङ्क, तथा बन्धाङ्क इत्यादि अनेक गणित कला से सभी वेद को ग्रहण करना चाहिये। अथवा ६४ अक्षराङ्क के गुणाकार से भी वेद को ले सकते हैं। ऐसे गणित से सिद्ध किया हुआ यह भूवलय ग्रन्थ है।

।१९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६।

देव, मानव, नागेन्द्र, पशु, पक्षी, इत्यादि तिर्यञ्च समस्त नारकी जीवो की भाषा ७०० और महाभाषा १८ हैं। इन दोनो को परस्पर में मिला कर इस भूवलय ग्रन्थ की रचना हमने (कुमुदेन्दु मुनि ने) की है। इस रचना की शुभ सम्मति हमें पूज्य पाद श्री वीरसेनाचार्य गुरुदेव से उपलब्ध हुई है ।२७।

हमने ६४ अक्षरों के सयोग से वृद्धि करते हुये अपुनरुक्ताक्षराङ्क रीति से गुणाकार करके इस भूवलय ग्रन्थ की रचना की है ।२८।

जिस प्रकार षड् द्रव्य इस ससार में एक के ऊपर दूसरा कूट कूटकर भरा हुआ है उसी प्रकार ६४ अक्षरो के अन्तर्गत अनुलोम क्रम से समस्त भाषाये भरी हुई हैं। ससार मे यह पद्धति अद्भुत तथा परम विशुद्ध है। इस भरे हुए अनुलोम क्रम को प्रति लोम क्रम से विभाजित करने पर ससार की समस्त भाषाये स्वयमेव आकार प्रकट हो जाती है ।२९।

इसी प्रकार समस्त भाषाओ का परस्पर मे सयोग होने से सरस शब्दागम की उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् समस्त भाषाये परस्पर मे गुथी हुई सुन्दर माला के समान सुशोभित हो जाती है और वह माला सरस्वती देवी का कंठाभरण रूप हो जाती है ।३०।

उस माला मे विविध भाँति के पुष्प गुथे रहते हैं। उसी प्रकार इस भूवलय ग्रन्थ में भी ६४ अक्षरांक रूपी सुन्दर २ कुसुम हैं ।३१।

यह भूवलय रूपी माला अर्हत भगवान् की वाणी की अद्भुत महिमा है ।३२।

यह भूवलय समस्त कर्मबद्ध जीवो की भाषा होने पर भी अर्थात् कर्नाटक भाषा की रचना सहित होते हुए भी बहुत सरल है ।३३।

यह भूवलय परमोत्कृष्ट विविधांक से परिपूर्ण है ।३४।

यह वृषभ सेनादि सेन गण की गुरुपरम्पराओ का सूत्रांक है।३५।

अर्हन्त भगवान् की अवस्था मे जो आभ्यन्तरिक योग था वह रहस्यमय था, किन्तु उसका भी स्पष्टी करण इस भूवलय शास्त्र ने कर दिया ।३६।

जिस प्रकार पुष्प गोलाकार व सुन्दर वर्ण का रहता है उसी प्रकार ६४ अक्षरांक सहित यह कर्नाटक भाषा गोलाकार तथा परम सुन्दर है ।३७।

इस भूवलय का सागत्य नामक छन्द अत्यन्त सरल होने पर भी प्रौढ विषय गर्भित है ।३८।

आकाश में गरुड पक्षी के समान गमन (उड्डान) करना एक प्रकार की ऋद्धि है किन्तु वह भी इस भूवलय में गर्भित है ।३९।

कामदेव के शरीर मे जितना अनुपम सौंदर्य रहता है उतना ही सौदर्य ६४ अक्षरांकमय इस भूवलय मे है ।४०।

इस प्रकार विविध भांति के सौंदर्य से सुशोभित श्री कुमुदेन्दु आचार्य विरचित यह भूवलय काव्य है ।४१।

अनादिकाल से दिगम्बर जैन साधुओ ने इन्हीं ६४ अक्षरों के द्वारा ही द्वादशाङ्ग वाणी को निकाला था ।४२।

इस प्रकार समस्त गुरुओ का वाक्य रूप यह भूवलय है ।४३।

किन्तु उन सबको दुखो से छुड़ाकर सुखमय बनाने के लिए सर्वांक अर्थात् ९ तथा सर्वाक्षर अर्थात् ६४ अक्षर हैं। क्षर का अर्थ नाशवान् है, किन्तु जो नाश न हो उसे अक्षर कहते हैं। और एक एक अक्षरों की महिमा अनन्त गुण सहित है। इन ६४ अक्षरो का उपदेश देकर कल्याण का मार्ग दिखलाना महत्व पूर्ण विषय है। इतना महत्वपूर्ण अक्षर अंक के साथ सम्मिलित होकर जब परम सूक्ष्म ९ बन जाता है तो उसकी महिमा और भी अधिक बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त ९ अंक सूक्ष्म होने पर भी गणित द्वारा गुणाकार करने से जब अत्यन्त विशाल बन जाता है तब उसकी महानता जानने के लिए रेखागम का आश्रय लेना पडता है। अंकों को रेखा द्वारा जब काटा जाता है तब यह भूवलय परमामृत नाम से सम्बोधित किया जाता है ।४४।

र ल कू ल ये कर्णाटक भाषा मे प्रसिद्ध विषय हैं। यह लिपि अत्यन्त गोल व मृदुल है। अत: मानव, देव तथा समस्त जीवराशियो का शब्द संग्रह करने मे समर्थ है। वह अनुपम भाषा प्राकृत और द्रविड है ।४५।

भाषात्मक तथा अक्षरात्मक भगवान् की दिव्य वाणी रूपी ७१८ भाषाये संसार के समस्त जीवो को मोक्ष मार्ग का उपदेश देनेवाली हैं। और अखिल विश्व की रक्षा करती हुई भव्य जीवो को शिक्षा देनेवाली हैं ।४६।

यह भगवद् वाणी समस्त जीवो की रक्षा के लिए आदि वस्तु है। ।४७।

यह अक्षयानन्तात्मक वस्तु है ।४८।

यह आ अक्षर का द्वितीय भंग है ।४९।

यह आ ३ (प्लुत) अक्षर का तृतीय भंग है ।५०।

इस रीति से भग करते हुए ६४ अक्षर तक शिक्षण देनेवाला यह गणित का अंग ज्ञान है अर्थात् द्रव्य प्रमाणानुगम द्वार है ।५१।

यह सूक्ष्माकरूपी अनुपम भग है ।५२।

यह अक्षय सुख को प्रदान करनेवाला गणित का रूप है ।५३।

इसी प्रकार यह अनादि काल से शिक्षा देनवाला गणिन शास्त्र है ।५४।

यह लाख लाख तथा करोड करोड सख्या को सूक्ष्म मे दिखानेवाला अंक है ।५५।

दिगम्बर जैन मुनि अहिंसा का साधन भूत अपने बगल मे जो पीछी रखते हैं उसके अत्यन्त सूक्ष्म रोम की गणना करने से द्वादशाग वाणी मालूम हो जाती है ।५६।

विवेचन—श्री भूवलय के प्रथम अध्याय के ४८ वे श्लोक मे नागार्जुन सिद्ध का विषय आया है। उन्होने अपने गुरु देव श्री पूज्यपाद आचार्य जी से कक्षपुट नामक रसायन शास्त्र का अध्ययन करके रसमणि सिद्ध किया था। उस मणि से उन्होंने गगनगामिनी, जलगामिनी तथा स्वर्णवाद इत्यादि ८८ महाविद्या का प्रयोग बतलाकर ससार को आश्चर्य चकित कर दिया था। और इसी ८८ महाविद्या के नाम से ८८ कक्षपुट नामक ग्रन्थ की रचना की थी। यह समस्त ग्रन्थ "हक' पाहुड से सम्बन्धित होने के कारण भूवलय के चतुर्थ-खण्ड प्राणावायपूर्व विभाग में मिल जायगा।

ये समस्त विद्याये दिगम्बर जैन मुनियो के हृदयङ्गत हैं ।५७।

यह समस्त कक्षपुट मगल प्राभृत से प्रकट होने के कारण खगोल विज्ञान सहित है ।५८।

वह पाहुड ग्रन्थ अङ्ग ज्ञान से सम्बन्ध रखता है ।५९।

जो व्यक्ति दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् जब अपने समस्त वस्त्रो को त्याग देता है तब उसे इस कक्षपुट का ज्ञान प्राप्त हो जाता है ।६०।

इस कक्षपुट की यदि व्याख्या करने बैठे तो वाक्य तीक्ष्ण रूप से निकलता है, पर ऐसा होने पर भी वह मृदुल रहता है ६१।

भूवलय को यदि अक्षर रूप मे बना लिया जाय तो चतुर्थ खण्ड में कक्षपुट निकलता है। उसी कक्षपुट को चक्रबन्ध करने से एक दूसरा कक्षपुट तैयार हो जाता है। इसी प्रकार बारम्बार करते जाने से अनेक कक्षपुट निकलते रहते हैं ।६२।

इन्ही कक्षो में जगत् के रक्षक अक्षर बन्धो मे समस्त भाषायें निकलकर आ जाती है। ६३।

यह कक्ष पुटाङ्कन पढनेवालो के चक्षु को उन्मीलन करके केवल अक मात्र से ही समस्त शास्त्रो का ज्ञान करा देता है ।६४।

शास्त्रो मे दर्शन और ज्ञान दोनो समान माने गये हैं। दर्शन में चक्षु दर्शन व अचक्षु दर्शन दो भेद है। इन दोनो दर्शनो का ज्ञान इस कक्षपुट से हो जाता है ।६५।

यह कक्षपुट विविध विद्याओ से पूरित होने के कारण यक्षो द्वारा संरक्षित है ।६६।

यह कक्षपुट भूवलय ग्रन्थ के अध्येता के वक्ष. स्थल का हारपदक है अथवा भूवलय रूपी माला के मध्य एक प्रधान मणि है ।६७।

यह भूवलय ग्रन्थ जिस पक्ष मे व्याख्यान होता है उसे पराकाष्ठा पर पहुचाने वाला होता है ।६८।

उपर्युक्त समस्त विषयो को ध्यान में रखते हुए क्रमागत गणित मार्ग से दिगम्बर जैन मुनि अपने विहार काल में भी शिष्यो को सिखा सकते हैं ।६९।

इस समय यह अद्भुत् विषय सामान्य जनों के ज्ञान में नहीं आ सकता। यह सागत्य नामक छन्द असदृश ज्ञान को अपने अन्दर समा लेने की क्षमता रखता है। और सर्वभाषामयी कर्माटभाषात्मक है। इसलिए यह दिव्य सूत्रार्थ भी कहलाता है ।७०।

यव (जौ) के खेत में रहकर अनन्तानन्त सूक्ष्म कायिक जीव अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इस रीति से सुविख्यात कर्माट देश एक प्रदेश होता हुआ भी समस्त कर्माष्टक अर्थात् समस्त विश्व की कर्माष्टक भाषा को अपने अन्दर समाविष्ट करता है ।७१।

गणित शास्त्र का अन्त नही है। किन्तु उन सबको अणुरूप में बनाकर एक समय मे असख्यात गुणित क्रम से कर्म को नाश करनेवाली विधि को वह बतलाता है ।७२।

यह गणित शास्त्र इस विश्व व्यापक भूवलय काव्य के अन्तर्गत है। अतः गुरु श्रेष्ठ श्री वीरसेनाचार्य का शिष्य मैं (कुमुदेन्दु मुनि) इस गणित शास्त्रमय भूवलय काव्य की रचना करता हू।७३।

जिस प्रकार कर्मो का क्षय होता है उसी प्रकार अक्षरो की वृद्धि होती रहती है। वृद्धिगत उन समस्त अक्षरो को गणित शास्त्र में बद्ध करके अनुलोम प्रतिलोम भागाहार द्वारा मगल प्राभृत नामक एक खण्ड बना दिया।७४।

दुष्कर्मो का कथनाक प्राचीन कन्नडभाषा में रूढि के अनुसार वर्णन किया गया था। वह गाढ प्रगाढ शब्द समूहो से रचित होने के कारण कठिन था। किन्तु भगवान् जिनेन्द्र देव की दिव्य वाणी समस्त जीवो को समान रूप से कल्याणकारी उपदेश प्रदान करती है। इस उद्देश्य से इसे अतिशय बन्ध रूप में बाधकर अत्यन्त सरल बना दिया।७५।

ऐसा सुगम हो जाने के कारण सर्व साधारण जन इस समय इस भूवलय का स्तुति पाठ सुमधुर शब्दो मे प्रसन्नता पूर्वक गान करते रहते हैं।७६।

भूवलयान्तर्गत इस अद्भुत् गणित शास्त्र को देखकर विद्वज्जन आश्चर्य चकित हो जाते हैं।७७।

यह गणित शास्त्र युगल जोड़ियो के समूह से बनाया गया है।७८।

इन युगलों को जब परस्पर मे जोडते जाते हैं तब अपने पुण्याङ्क का भंग भी निकलकर आ जाता है।७९।

जोडने के समय में ही लब्धाक आ जाता है।८०।

यह गणित शास्त्र द्वादशाग वाणी को निकालने के लिए गूढ रहस्यमय है।८१।

सांगत्य नामक सुलभ छन्द होने के कारण यह भूवलय मूढ और प्रौढ दोनों के लिए सुगम है।८२।

यह भूवलय प्रगाढ रहस्यो से समन्वित होने पर भी अत्यन्त सरल है।८३।

सुन्दर शब्दों में गान किये जाते हुए इस भूवलय ग्रन्थ को अत्यन्त उत्कण्ठा से श्रवण करने के लिए दौडकर आये हुए श्रोतागण पुण्यबन्ध कर लेते हैं।८४।

महांक राशि को श्रेणी कहते हैं। उन श्रेणियों को छोटे अंक से घटाकर भाग देने की विधि भी इस भूवलय में बतलाई गई है।८५।

इसके साथ साथ इसमें महान् अंको को महान् अंकों द्वारा गुणाकार करने का भग भी है।८६।

बहुत दिनो से श्री जिनेन्द्र देव की, की हुई पूजा का फल कितना है? वह सब गणित द्वारा मालूम किया जा सकता है।८७।

ऐसी गणना करते हुए वर्तमान काल में भी पूजा करने का पुण्यबन्ध हो जाता है।८८।

सगीत शास्त्र के घटावाद्य नामक नाद मे भी इस भूवलय कागान कर सकते हैं।८९।

दिगम्बर जैन मुनि, जगलो में तपस्या करते समय इन समस्त विद्याओ को सिद्ध किये हैं।९०।

धान के ऊपर का मोटा छिलका निकाल देने के बाद चावल के ऊपर एक हल्का बारीक छिलका रहता है। उस बारीक छिलके को कूटने से जो सूक्ष्म कण तैयार होते हैं उन कणो की गणना करके दिगम्बर जैन मुनि अपने कर्म कणो को भी जान लेते हैं।९१।

यह भूवलयान्तर्गत गणित शास्त्र अन्य गणितो से अकाट्य है।९२।

इस गणित से किये हुए पुण्य कर्मो की गणना भी कर सकते हैं।९३।

यह परम्परागत रूढि के आगम से आया हुआ सूक्ष्माक गणित है।९४।

यह परमाणु भग भी है और वृहद् ब्रह्मान्ड भग भी। इसलिए इसकी समानता अन्य कोई गणित नही कर सकता।९५।

परम प्रगाढ भक्ति से अध्ययन करनेवाले भव्य भक्तो के अंतरंग में झलकने वाला यह गणित शास्त्र है।९६।

पुण्योपार्जनार्थ एकत्रित होकर परस्पर मे चर्चा करनेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है।९७।

नामकर्म मे अनेक उत्तर प्रकृतियां हैं। उनमें एक यश कीर्ति नामक प्रकृति भी है। उस प्रकृति का उदय यदि जीव में हो जाय तो सर्वत्र प्रशंसा हो जाती है। सामान्य जीव प्रशंसा प्राप्त हो जाने से गर्वित हो जाते हैं; किन्तु

जो महापुरुष समुद्र के समान गम्भीर रहते हैं उन्ही महात्माओ की कृपा से असमान द्रव्यागम पाहुड ग्रन्थ कुसुम- वर्णाक्षर माला से विरचित है।९८।

इस गणित शास्त्र से १२ अग शास्त्र को निकालकर रामचन्द्र के काल से नील और महानील नामक ऋषि ने इस भूवलय नामक ग्रन्थ की रचना की थी। उसी पद्धति के अनुसार श्री महावीर भगवान् की वाणी के प्रवाह से इस भूवलय शास्त्र का गणित उपलब्ध हुआ।९९।

लक्ष्मण अर्द्धचक्री थे। उनके द्वारा छोडा गया वाण बडे वेग से जाता था। उस वेग की तीव्रतर गति को भाव से गुणा करके आये हुए गुणनफल के साथ मिला हुआ यह भूवलय काव्य का गणित है। इसलिए इसकानाम अनुबन्ध काव्य भी है।१००।

मन्मथ का शरीर अनुपम था। संस्थान और संहननबन्ध भी उत्तम था तथा नवकार मन्त्र के समान वह पूर्णता को प्राप्त कर लिया था। इन सबका और सिद्ध परमेष्ठी के आठ मुख्य गुण रूप अतिशय सम्पदा की गणना करते हुए लिखित काव्य होने से इसे सुन्दर काव्य भी कहते हैं।१०१।

श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र देव का शरीर धवल वर्ण होने से यह भूवलय ग्रन्थ भी धवल है। अथवा इस भूवलय ग्रन्थ से धवल ग्रन्थ भी निकलना है इस अपेक्षा से भी यह धवल है।१०२।

मुनि सुव्रत जिनेन्द्र के समय मे पद्मपुराण प्रचलित हुआ इसलिये यह भूवलय ग्रन्थ पद्मपुराण कहलाता है।१०३।

तीनो काल मे ७२ जिनेन्द्र देव, अनेक केवली भगवान् तथा तीन कम ९ करोड आचार्य होते हैं। उन सबका माला रूप कथन इस प्रथमानुयोग में है और वह प्रथमानुयोग इसी भूवलय मे गर्भित है।१०४।

रत्नत्रयात्मक धर्म शुद्ध धवल है। गणित शास्त्र से ही जिन माला और मुनिमाला दोनो को ग्रहण कर सकते हैं। गणित से ही अक्षर ब्रह्म का स्वरूप निकलता है और यह गणित कठिन न होकर अनुभव गोचर है। यह धवल रूप जिन धर्म वृद्धिगत वस्तु है। इस ग्रन्थ के अध्ययन से आत्मध्यान की सिद्धि प्राप्त होती है। एकान्त हठको दुर्नय कहते हैं। उस दुर्नयको दूर करके अनेकान्त साम्राज्य को लाने वाला यह ग्रन्थ है।१०५ से १११ तक।

इस ससार में काले लोहे को विज्ञान अथवा विद्या के बल से सोना बनाया जा सकता है, पर इस भूवलय में उस स्वर्ण को धवल वर्ण बना सकते हैं।११२।

यह तन, मन वचन शुद्ध धन है।११३।

यह समस्त संसार के द्वारा पूजनीय लौकिक गणित है।११४।

यह भगवान जिनेश्वर के केवल ज्ञान से निकला हुआ भूवलय है।११५।

यह सतप्त स्वर्ण के समान चमकनेवाला है।११६।

चने के बराबर सुमेरु पर्वत है।११७।

अत्यन्त तेजस्वी किरणो से दीप्तिमान यह दिव्याङ्क है।११८।

मलिनता से रहित परम निर्मल यह गणित शास्त्र है।११९।

यह गुण स्थान के अनुभव द्वारा आया हुआ गणित है।१२०।

यह भगवान् जिनेन्द्र देव का अयोगरूप गणित है।१२१।

यह भूवलय शास्त्र समस्त जीवो के लिए सन्मति रूप है।१२२।

गति, जाति आदि १४ मार्गणा स्थान अनुभव करने के योग में एकेन्द्रियादि १४ जीव समासो का ज्ञान पैदा होता है और ज्ञान के पैदा होने के समय मे काल गणना रूप ज्ञान आवश्यक है। वह इस प्रकार है कि जैसे एक वर्ष में १२ माह होते हैं, १ माह में ३० दिन होते हैं, १ दिन में २४ घंटे होते हैं, १ घंटे मे ६० मिनट होते हैं और १ मिनट में ६० सैकण्ड होते हैं उसी प्रकार सर्वज्ञ देव ने जैसा देखा है वैसे ही काल के सर्व जघन्य अश तक अभिन्न रूप से चले जाने पर सबसे छोटा काल मिल जाता है। ऐसे काल को एक समय कहते हैं। जिस प्रकार १ वर्ष का काल ऊपर बतलाया गया है उसी प्रकार उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनो को समय रूप से बना लेना चाहिये। इतने महान् अंक में सबसे छोटे एक समये को यदि मिला लिया जाय तो उसमे अनन्ताङ्क मिल जाता है।१२३।

छिपे हुए अक को प्रकट करते समय, स्थापित करते समय, परस्पर में मिलाते समय तथा प्रवाहित होते समय पुद्गल द्रव्य सहज में आकर काल द्रव्य को पकड लेता है। उस प्रदेश में आते जाते और खडे होते हुये अनन्त जीव राशि का अंक मिल जाता है।१२४।

एक प्रदेश मे काल, जीव और पुद्गल द्रव्य जब आकर मिल जाते हैं तब अनन्ताङ्क मिल जाते हैं। उन नीचातिनीच योनि मे जीनेवाले जीवो को बाहर लाकर भव्य जीवों को मगल पाहुड काव्य के अन्दर लाकर, स्थित करके।१२५।

लोक मे भद्र पूर्वक रक्षा करके गुण स्थान मार्ग से बद्ध करके पाचो कल्याणो की महिमा दिलाकर ऊपर चढाने हुये लोकाग्र अर्थात् सिद्ध लोक मे स्थिर करते हुये शोकापहरण करने वाला यह अंक है।१२६।

नाकाग्र अर्थात् लोक के अग्रभाग का सिद्ध रूपी काव्य है।१२७।

समस्त व्याकुलता को नाश करनेवाला यह काव्य है।१२८।

यह आकार रहित दिव्याक काव्य है।१२९।

यह एकाग्र ध्यान को प्राप्त कर देने वाला काव्य है।१३०।

यह ओकार वर्जित शब्द है।१३१।

यह ओकार गोचर वस्तु है।१३२।

यह ह्लीकार के द्वारा आराध्य वस्तु है।१३३।

यह ह्लीकार के द्वारा पूजित गर्भ है।१३४।

यह ह्लु कार के द्वारा आराध्य सज्ञा है।१३५।

ह्लेकार गोचर वस्तु है।१३६।

ह्लीकार पूजित गर्भ है।१३७।

यह ह्लीकार अतिशय वस्तु है।१३८।

यह ह्लंकार आराध्य सर्वज्ञ है।१३९।

यह ह्ल.कार गोचर वस्तु है।१४०।

इस प्रकार मत्राक्षरांक युक्त होने से यह भूवलय शका रहित है।१४१।

नवकार मंत्र के आदि में अरहन्त शिवपद कैलाश गिरि है, उनका निवास स्थान अतिशय श्री समवशरण भूमि है तथा जन्म और मरण का नाशक संहार भूमि है।१४२।

यह श्रेष्ठ भद्रकारण होने से मगल मय है, गुरु परम्परागत अङ्ग ज्ञान है, परमात्म सिद्धि के गमन में कारण भूत होने से यह भूवलय श्री वर्धमान भगवान का वाक्याङ्क है।१४३।

नर, सुर तिर्यञ्च तथा नारकी जीवों को विविध भांति से सम्यक्त्व प्राप्त होता है। और उस सम्यक्त्व के प्रभाव से गोचरी वृत्ति द्वारा आहार ग्रहण करने वाले दिगम्बर मुनियो को चारित्रलब्धि प्राप्त होने का कारण हो जाता है, ऐसा श्री जिनेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित वचन है।१४४।

यह वाक्य श्री ऋषभ तीर्थंकरादि २४ तीर्थंकरो के धर्म तीर्थ में प्रवाहित होना हुआ आया तत्व है और यह तत्व जिन भव्य जीवो के वश में हो जाता है उनके संसार का शीघ्र ही अन्त हो जाता है।१४५।

द्वीप, सागर, गिरि, गुफा तथा जल गिरने के झरने आदि स्थानों में जो निर्वाण भुमि है, वह मोक्ष गृह की नीव है, उस नीव को बतलाने वाला यह परम मगल भूवलय काव्य है।१४६।

वीर वाणी ओकार स्वरूप है। उस ओकार से आया हुआ यह भूवलय काव्य है।१४७।

दिगम्बर योगिराजो ने उपर्युक्त तपोभूमियों में ही काम राज का संहार किया है।१४८।

उपर्युक्त तपोभूमियो तथा दिगम्बर महामुनियो के कथन करने का धर्म ही विश्व काव्याग रचना का धर्म है।१४९।

उस काव्य रचना की विद्या ६४ अक्षरों को घुमाना ही है।१५०।

इस क्रिया के द्वारा कर्मो की निर्जरा भी होती है।१५१।

यह श्री विद्या पुण्यबन्ध की इच्छा करनेवालो को पुण्यबन्ध करा सकती है।१५२।

इस परम पावनी विद्या के साधको को अखिल विश्व भंगलमय दृष्टि-गोचर होता है।१५३।

यह मगलमय ६४ अक विश्व का वैभव है।१५४।

जिस प्रकार एक छोटे से बीज का अकुर कालान्तर में महान् वृक्ष बन जाता है उसी प्रकार यह पुण्याकुर वृद्धिगत होकर बहुत बड़ा वृक्ष बन जाता है।१५५।

यह मगलमय क्षेत्र श्री जिनेन्द्रदेव भगवान का है।१५६।

इस क्षेत्र का ज्ञान अर्थात् विश्व दर्शन से समस्त ज्ञान प्राप्त हो जाता है।१५७।

इस भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ मे रहनेवाले अतिशयो का कथन वर्णनातीत है ।१५८।

यह श्री जिनेन्द्रदेव के उपदेश का अक है ।१५९।

यह अक विश्व के किनारे लिखित चित्र रूप है अर्थात् सिद्ध भगवान का स्वरूप दिखलाने वाला है ।१६०।

यह श्री बाहुबली भगवान के द्वारा विहार किया गया अक क्षेत्र है ।१६१।

इसलिए यह भूवलय काव्य विश्व काव्य है ।१६२।

ऊपर द्वितीय अध्याय मे जो अक लिखे गये हैं उन अको से समस्त कर्मों की गणना नही हो सकती । उन समस्त कर्मो की यदि गणना करनी हो तो १०००००००००००००० सागरोपम गणित से गिनती करनी होगी या इससे भी बढ़कर होगी । इन कर्मो की गणना करनेवाले शास्त्र को कर्म सिद्धात कहते हैं । वह सिद्धात भूवलय के द्रव्य प्रमाणानुग में विस्तृत रूप से मिलता है । वहा पर महाक की गणना करनेवाली विधि को देख लेना ।१६३।

अन्य ग्रन्थो मे जो डमरू बजाने मात्र से शब्द ब्रह्म की उत्पत्ति बतलाई गई है, वह गलत है, क्योकि डमरू जड है और जड से उत्पन्न हुआ शब्द ब्रह्म नही हो सकता । इतना ही नही उसमे गणित भी नही है और जब गणित नही है तब गिनती प्रामाणिक नही हो सकती यहा पर प्रमाण शब्द का अर्थ प्रकर्षमाण लिया गया है । शुद्ध जीव द्रव्य से आया हुआ शब्द ही निर्मल शब्दागम बन जाता है । और वही भूवलय है ।१६४।

वर्तमान काल, व्यतीत अनादिकाल तथा आनेवाले अनन्त काल इन तीनो को सद्गुरुओ ने मगल प्राभृत नामक भूवलय मे कहा है। इसलिए यह भूवलय काव्य राग और विराग दोनो को बतलानेवाला सद्ग्रन्थ है ।१६५।

ओ एक अक्षर है और बिन्दी एक अङ्क है । इन दोनो को परस्पर मे मिला देने से समस्त भूवलय 'ओ' के अन्दर आ जाता है । इसका आकार शब्द साम्राज्य है । इसलिए यह क्षेमकर, सुखकर तथा समस्त ससार के लिए मगल कारी है ।१६६।

इस अङ्क को भंग करते आने से सारी व्याकुलता नष्ट हो जाती है ।१६७।

साकार रूपी अतिशय अङ्ग ज्ञान है ।१६८ ।

यह अग ज्ञान अथवा शब्दागम आकार रहित होने पर भी साकार है ।१६९।

जो साकार है वही निराकार है ।१७०।

इन अकों को लाने के लिए एक, द्वि, त्रि चतुर भंगकरना चाहिए ।१७१।

इसी प्रकार पाच व छ का भी भग करना चाहिए ।१७२।

प्रयत्नो द्वारा सात व आठ भङ्ग करना चाहिए ।१७३।

इसी प्रकार उपर्युक्त भंगों में से यदि अन्तिम का दो निकाल दिया जाय तो ७१८ भाषाये आ जाती है ।१७४।

"ओ" और "अ" इन दो अक्षरो को निकाल देना चाहिए ।१७५।

ससार की समस्त भाषाये आ जाती हैं ।१७६।

श्री कार द्विसयोग में गर्भित है ।१७७।

यहा से यदि आगे बढे तो ३ अक्षरो का भग आता है ।१७८।

आकार का ६ भग है । उन भगो को ४ भग में मिलाना चाहिए । १७९-१८०।

आगे १६ भग लेना ।१८१।

और ५ अक्षरो का भंग आता है ।१८२।

पुन. २५ अग आ जाता है ।१८३।

उपर्युक्त समस्त अक्षरो को माला रूप में बनाना ।१८४।

तत्पश्चात् ७२ आ जाता है ।१८५।

और ५ अक्षरो का भङ्ग निकलकर आ जाता है ।१८६।

तदनन्तर १२० अग आ जाता है ।१८७।

और ८ अक्षरो का भग बन जाता है ।१८८।

तब ७२० अङ्क आ जाता है ।१८९।

इसमें से यदि २ निकाल दें तो ७१८ भाषाओ का भूवलय ग्रन्थ प्रकट हो जाता है ।१९०।

वह इस प्रकार है.—

१×२×३×४×५×६=७२०—२=७१८ ।

उपर्युक्त ७२० सख्या मे से यदि आदि और अन्त की २ सख्या निकाल दी जाय तो सर्व भाषा निकलकर आ जाती है। उसमें ७०० क्षुद्र भाषा तथा १८ महाभाषा है ।१९१।

प्रतिलोम क्रम से आये ९ अक मे अनुलोम क्रम से आये हुये ९ अक का भाग देने सें मृदु तथा मधुर रूपी देव-मानवो की भाषा उत्पन्न हो जाती है। इसका नाम महाभाषा है। जब महाभाषा उत्पन्न हो जाती है तब संसार की समस्त भाषायें स्वयमेव बन जातो हैं ।१९२।

ये सभी भाषाये सर्वज्ञ वाणी सें निकली हुई हैं। सर्वज्ञ वाणी अनादि कालीन होने से गीर्वाग्वाणी कहलाती हैं। यही साक्षात् सरस्वती का स्वरूप है तथा सभी एक रूप होने से ओंकार रूप है। अपने आत्मा की ज्ञान ज्योति प्रकट होने के कारण जिनवाणी द्वारा पढाया गया यही पाठ है ।१९३।

गिरि, गुफा तथा कन्दराओ मे बाह्याभ्यन्तर कायोत्सर्ग खडे होते हुये योग मे मग्न योगियो को यह अर्हन्त वाणी सुनाई पडती है। और ऐसा हो जाने पर योगी जन अपने दिव्य ज्ञान द्वारा सभी भाषाओ को गणित से निकाल लेते हैं। इसलिये इस भूवलय को गुरु परम्परागत काव्य कहते हैं ।१९४।

श्री वर्धमान जिनेन्द्र देव के मुख कमल अर्थात् सर्वांग मे प्रकटित मगल-प्राभृत रूप तथा असदृश वैभव भाषा सहित है ।१९५।

इस काव्य को पढने से दिव्य वाणी के अक्षराङ्क का ज्ञान हो जाता है ।१९६।

यह भाषा ऋद्धि वश की आदि भाषा है ।१९७।

यह भाष, द्रव्यागम की भाषा है ।१९८।

यह भाषा विष वाक्य अर्थात् दुर्वाक्य का सहार करने वाली है ।१९९।

इस भाषा को वशीभूत करने से आत्म समिद्धि प्राप्त हो जाती है ।२००।

इस भाषा को सीखने से विषयो की आशा विनष्ट हो जाती है ।२०१।

६४ अक्षरो के भंग मे ही ये समस्त भाषाये आ जाती हैं ।२०२।

यह भाषा ब्राह्मी और सौन्दरी देवी की हथेली में लिखित लिपि रूप मे है ।२०३।

यह रस त्यागियों का धर्म स्वरूप है ।२०४।

यह भूवलय ग्रन्थ अक भंग से बनाया गया है ।२०५।

पारा सिद्धि के लिए यह आदिभंग है ।२०६।

यह यशस्वती देवी की पुत्री का हस्त स्वरूप है ।२०७।

उस यशस्वती देवी की हथेली कीरेखा से रेखागम शास्त्र की रचना हुई और वह शास्त्र भो इसी भूवलय मे है ।२०८।

सात तत्व के भागा हार से आये हुये आदि ब्रह्म वृषभ देव भगवान् के द्वारा प्राप्त यह भूवलय नाम की वाणी है। समस्त अकाक्षर को अपने अन्दर समावेश कर लेने के कारण इसमे बिजय धवल के अन्तर्गत अंक राशि ढेर ढेर रूप मे छिपी हुई है। इसलिये इस भूवलय को अतिशय धवल कहा गया है ।२०९।

इसमे ७१८ भाषाये माला के रूप में देखने में आती हैं। वे सभी अतिशय विद्या के श्रेणी मे मिली हुई हैं। ३६३ मतो का अक के रूप से वर्णन किया गया है ।२१०।

इस भूवलय मे आने वाले धवल और महाधवल को यदि इसमें से निकाल दिया जाय तो इसमे दो ही भाषा देखने मे आयेगी। तो भी उसमे ७१८ भाषायें सम्मिलित हैं। मगल पाहुड ऐसे इस भूवलय मे जीव के समस्त गुण धर्म का विवेचन किया गया है। इसलिये यहा इसमे से जय धवल ग्रन्थ को भी निकाल सकते है ।२११।

द्वादशाग वाणी मे अनेक पाहुड ग्रन्थ हैं। और अनेक आगम ग्रन्थ हैं। उन सब को विजय धवल भूवलय ग्रन्थ से निकाल सकते हैं। और उसी विजय धवल ग्रन्थ के विभाग मे अत्यन्त मनोहर देवागम स्तोत्र निकल आता है ।२१२।

इसलिये यह भूवलय काव्य महासिद्ध काव्य है ।२१३।

भगवान का वचन ही सिद्धान्त रूप होकर यहा आया है ।२१४।

श्री वीर जिनेन्द्र भगवान का वचन ही साम्राज्य रूप है ।२१५।

यह वनवासी देश मे तप करने वाले दिगम्बर मुनियो का भूवलय नामक काव्य है ।२१६।

विवेचन.—आदि पुराण में दडक सभा का वर्णन आया है। उन्हीं के

नाम से दंडकारण्य प्रचलित हुआ। वह राज्य कर्णाटक के दक्षिण भाग मे है। आचार्य कुमुदेन्दु के समय में इसे वनवासी देश कहते थे। उस समय में चत्ताण (चतु· स्थान) तथा बे दडे (द्विपाद) इन दो नमूने का काव्य प्रचलित था। बेदंडे काव्य का नमूना श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने १२ वें अध्याय के ३१ वें श्लोक में निर्दिष्ट किया है और "चत्ताण" काव्य भी समस्त भूवलय का सांगत्य नामक छन्द है।

यह भूवलय श्री जिनेन्द्र देव का वचन है।२१७।

यदि गणित की पद्धति से देखा जाय तो यह भूवलय अष्टम जिनेन्द्र श्री चन्द्रप्रभ भगवान के द्वारा प्रतिपादित किया गया है।२१८।

इसी प्रकार यह भूवलय श्री शान्तिनाथ भगवान् का मार्ग भी है।२१९।

विवेचन—श्री शान्तिनाथ भगवान् अगणित पुण्यशाली हैं। श्री ऋषभ नाथ तीर्थंकर भगवान भरत जी चक्रवर्ती तथा बाहुबली स्वामी कामदेव पद के धारी थे। किन्तु श्री शान्तिनाथ भगवान् अकेले तीर्थंकर, चक्रवर्ती तथा कामदेव तीनों प्रकार के वैभवो से सयुक्त थे। अत वे बहुत बडे पुण्यात्मा कहलाते हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित प्रशस्त मार्ग भी इस भूवलय के अन्तर्गत है।

यह "बेदडे" काव्य श्री ऋषभनाथ भगवान् के समय से आया हुआ है।२२०।

श्री बाहुबली स्वामी अत्यन्त सुन्दर थे। उसी प्रकार यह भूवलय काव्य भी परम सुन्दर है।२२१।

इस भूवलय मे विश्व का समस्त सिद्धान्त गर्भित है २२२।

यह काव्य श्री जिनेन्द्रदेव की वाणी मे विद्यमान समस्त भावो को प्रदान करने वाला है।२२३।

यह भूवलय भाव प्रमाण रूप काव्य है।२२४।

यह श्री जिनेन्द्र देव का भाव प्रमाण है।२२५।

समस्त विश्व के अन्दर जितने भी तीर्थ है उन सबका वर्णन इस काव्य में दिया गया है।२२५।

यह भूवलय काव्य वनवासी देश के तीर्थ नन्दी पर्वत पर लिखा गया।२२७।

इसमें जो प्राणावाय (आयुर्वेद) विभाग है वह भल्लातकाद्रि अर्थात् "गुरु सुप्पे" (भिलावाद्रि) पर्वत पर जैन मुनियो द्वारा लिखा गया है।२२८।

इस विभाग मे ससार की कल्याणकारी समस्त औषधियाँ निकल कर आ गई हैं।२२९।

इस ग्रन्थ के अध्ययन मात्र से पाप कर्मों द्वारा उत्पन्न सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं।२३०।

इस ग्रन्थ के स्वाध्याय से आगन्तुक सहस्रो व्याधिया विनष्ट हो जाती हैं। इस लिये यह महा सौभाग्यशाली ग्रन्थ है।२३२।

यह भूवलय भगवान् का वचन रूपी महान् ग्रन्थ है।२३३।

भूवलय की व्याख्या में ३ क्रम हैं १ ला स्वसयम वक्तव्यता, २ रा पर-समय वक्तव्यता तथा ३ रा तदुभय वक्तव्यता है। इन तीनो वक्तव्यों में प्रधान स्व-ममय है। सद्धर्म सागर मे गोता लगाने वाले रसिक जनो के लिये यह परमानन्द दायक है। इम अध्याय में अध्यात्म सर्वस्व सार ओत-प्रोत भरा हुआ है। इसलिये यह मगल प्राभृत नामक भूवलय का प्रथम भाग प्रसिद्ध है।२३४।

विवेचन—आत्म-तत्त्व का विवेचन करना स्वसमय वक्तव्यता है, इसके अतिरिक्त बाह्य शरीरादि का विवेचन करना पर-समय वक्तव्यता है तथा दोनों का साथ २ विवेचन करना तदुभय वक्तव्यता है।

नौ अक से आया हुआ अर्थात् कर्म सिद्धान्त गणित से अवतार लिया हुआ धर्माक्षर रूपी यह अक ध्यान है। इसयिये यह भूवलय काव्य स्व समय रूप, भद्ररूप तथा मगल स्वरूप है।२३५।

यह भूवलय ग्रन्थ श्री जिनेन्द्र देव की वाणी से निपन्न होने से प्राभृत तथा विश्व काव्य है। इमका स्वाध्याय करने से मोक्ष पद प्राप्त हो जाता है और मोक्ष के लिए सरल मार्ग होने से यह अतिशय धवलरूप है।२३६।

जिस प्रकार श्री जिनेन्द्र देव के ८ प्रातिहार्य होते हैं उसी प्रकार नन्दी पर्वत भी ८ विभागो से विभक्त होने से अष्टापद पर्वत कहलाता है। अष्टम जिनेन्द्र देव श्री चन्द्रप्रभ का वैभव होने से यह अतिशय-धवल नामक शुभांग है।२३७।

श्री जिनेन्द्र देव के आराधक भक्त जन अर्थात् दिगम्बर जैन मुनि अपनी बुद्धि की विशेषता से विविधि भाति की युक्तियो से श्री भूवलय का व्याख्यान बडे सुन्दर ढग से किया है। इसलिये समस्त भाषाओ से समन्वित भूवलय मृदु एव मधुर है और मगलकारी है।२३८।

यह दशवाँ ऋ अक्षर का अध्याय है। जिस प्रकार मरकत मणि अत्यन्त शुभ्र व दीप्तवान् होती है उसी प्रकार इस अध्याय के अन्तर काव्य मे पाँच, नौ, सात, पाच और एक अर्थात् १, ५, ७, ६, ५, अक्षर रहने वाला ऋ भूवलय है।२३६।

श्रेणीबद्ध काव्य में मूलाक्षर का अक आठ, चार, सात और आठ अक प्रमाण है। यही श्रेणीबद्ध काव्य का भंगाक है।२४०।

ऋ ८, ७,४,८+अन्तर १५७६५=२४ ५४३

अथवा

अ—ऋ १, ७६, ०२२+२४, ५४३=२,००,५६५ ।

सम्पूर्ण

ऊपर से नीचे तक यदि प्रथमाक्षर पढते जायें तो प्राकृत भाषा निकलती है। उसका अर्थ इस प्रकार है—

ऋषिजनो में सुग्रीव, हनुमान, गवय, गवाक्ष, नील, महानील, इत्यादि ६६ कोटि जनो ने तुगीगिरि पर्वत पर निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया। उन सबको हम नमस्कार करेंगे।

इसी प्रकार ऊपर से यदि नीचे तक २७ वां अक्षर पढते जायें तो संस्कृत गद्य निकल आता है। वह इस प्रकार है.—

नतया शृण्वन्तु— मंगलं भगवान् वीरो मंगल भगवान् गौतमोगणी।
मगल कुन्दकुन्दाद्या जीव धर्मोऽस्तु मंग ॥

दसवां अध्याय

ऋ* पि अरूपियागिरुव द्रव्यागम । दापद्धतियोळगंक ।। ताप लं* नक्षर दोळगे कूडिसुवन्क । श्री पद वृवयवु भूवलय ।।१।।
आ* दिय अतिशय मंगल पर्याय । दादियन्काक्षर कूट ।। नाद म* अदे जीवनरि वेन्नुतिह ज्ञान । साधने यध्यात्म योग ।।२।।
म* नदर्थियिन्द मगल पर्यायवनोदे । जिन धर्म तत्व ञ* लेल्ल ।। तनगे ताने तन्न निजवनु तोरिप । घनविश्वासाधने योग ।।३।।
सु* न्नर किन्नर ज्योतिष्क लोकद । घनव श्री जिन देवालयद् ।। ल* णधव्य श्री जिन बिम्ब क्रुत्रिमा कृत्रि । मेनेसान्क गणनेयोळविवु ।।४।।
वो* षविनाशन श्रीश श्री मन्दर । देशन दरुशन माडि ।। राशिय म्* पुण्यव रूपिनिम् गळिसुव । ईशर भजिसे मनुगलवु ।।५।।

श्री शन पुण्य सद्ग्रन्थ ।।६।। राशिय पाप विनाश ।।७।। ईशनु पेळिद ग्रन्थ ।।८।। राशिय पुण्यद गणित ।।९।।
ईशन भक्तिय गणित ।।१०।। दोष अष्टादश गणित ।।११।। श्री शन सद्धर्म गणित ।।१२।। राशिय पुण्यद गणित।।१३।।
ईशन ज्ञानद गणित ।।१४।। दोष अष्टादश गुणित ।।१५।। श्रीशन सद्धर्म गुणित।।१६।। राशिय पुण्यद ज्ञान ।।१७।।
ईशन चारित्र गणित ।।१८।। दोष अष्टादशदरित ।।१९।। श्रीशन सद्धर्म ज्ञान ।।२०।। कोशद ज्ञान विज्ञान ।।२१।।
ईशन चारित्र सार ।।२२।। दोष अष्टादश रहित ।।२३।। श्रीशन सद्धरम गुणित।।२४।। आशेय भव्यर भक्ति ।।२५।।
ईशरिप्पत् नाल्वरन्क।।२६।। कोषद काव्य भूवलय ।।२७।।

दो* षगळलियबेकेम् बाशेयिहरेल्ल । राशेयम् गुरुतिस्इ हरु स* ।। देश ज्ञानव सम्पूर्णं वागिसि कोन्ड । देसिय भाषांक काव्य ।।२८।।
ण्* वदत्क वेन्देने अरहन्त रादियिम् । नव तीर्थंगळन द र्* शनदि ।। अवनिय पूजेगे विनयोगवेन्नुद । शिव पददन्तवेदरिया ।।२९।।
णि* जवहत् अन्कवे साधित भव्य । विजयांक वेन्दरि अ व* नु ।। भजिसुत बरुवाग नवपद सिद्धियु । विजय मावुवुदेन् अरिवे ।।३०।।
ज* य सिद्धियाद हत्न्क महाव्रत । दयतदे बंद सन् मा* र्ग ।। दये दानवेल्लव निरदित्तु भजकर्गे । नय प्रमाणवनु तोरुवुदु।।३१।।
णा* णद सामान्य प्रस्थारदन्कव । ज्ञान साम्राज्य ध्वज न्* व ।। श्री नेमिनाथांक वेन्दरि परमात्म । अनन्द कल्याण करण ।।३२।।

ज्ञान वव्भवकर काव्य ।।३३।। श्रीनिवासद दिव्य काव्य ।।३४।। आनन्ददायक काव्य ।।३५।। ऊनवळिद दिव्य काव्य ।।३६।।
काणिय भद्र मन्गलवु।।३७।। तानल्लि काणिप मन्त्र ।।३८।। ताने शुद्धोपयोगांक ।।३९।। आनन्द साम्राज्य गणित ।।४०।।
काणिप शिव सव्व्यभद्र ।।४१।। तानल्लि काणिप तन्त्र।।४२।। जोणि पाहुडदानि ग्रन्थ ।।४३।। आनन्द साम्राज्य गुणित।।४४।।
काणिप सूक्ष्म विन्यास ।।४५।। तान्ल्लि काणिप मूर्ति।।४६।। क्षोणियनलेव सत्कीर्ति ।।४७।। आनन्द साम्राज्य ज्ञान ।।४८।।
दान दयामय ग्रनथ ।।४९।। मानवरेल्लर कीर्ति ।।५०।। जैनागमद दर्शनवु ।।५१।। क्षोणि जणान्द रूप ।।५२।।
ताने तानाद भूवलय ।।५३।।

ला* वण्य लिपियन्द वेन्तेम्ब ब्राह्मिगे । देवनु नन्नय म ग ळे ।। नाविल्लि अक्षर ब्राह्मियोळ् पेळ्ळवु । देवाधिदेव वाणियपु ।।५४।।
ड* ण ठण वेन्नुत येळलागुव मात। जिनवाणि श्रोभ्दरिम्परिय ल्* ।। घनवाद अक्षरवादिय 'अ' क्षर । कोनेगे 'पः' अक्षर बरलु ।।५५।।
ण* वदंक गणनेय नवपद भक्तियिम् । सवियक्षरद् अव य* ववम्।। सवणर्गेअरवत् नाल्कन्कविम्पेळुव। नवम बंधांक वंदरिया।।५६।।
रि* षिगळ भावदि बरुवात्म योगदोळ् । वशवप्प सिरि सम्पद व स्* ।।वशगोन्डु आम्हिये अरवत् नाल्क् अंकद । यशव होन्दुत सुखियागु।।५७।।

न्* वदक बरुवन्दवेन्येन्दु केळुव । युवति सवनुदरिगे स* मस्त॥ सवियंक श्रोम्देरळ्मूरनाल्कय्दारेलु। नवसुदष्टिएन्द् श्रोम्बत्तुगळु॥५८॥
दा* न माडिद देव तन् एडगय्यिन । श्रनन्ददमुरुतान्गुलिय र्* ताणवनाकेय एडगय्य श्रमृतद । ताणदनुगुलिय मूलबलि ॥५९॥
ण* मोकार मन्त्रद क्षरगळनाकेयु । गर्मनिसिरन्श्र च्चोत्तिह व* विमलांक रेखेय श्रादिमदन्त्यद । सम विषम स्थानगळनु ॥६०॥

श्रमलद् श्रनन्तरद रूपवनु ॥६१॥ क्रम बद्धगोळिप योगवनु ॥६२॥ सम विषमादि सर्ववनु ॥६३॥
श्रमलद् श्रनन्तरद रेखेयनु ॥६४॥ क्रम बद्धगोळिप भाववनु ॥६५॥ सम विषमांक भागवनु ॥६६॥
विमलद् श्रनन्तरद सत्ववनु॥६७॥ क्रम बद्धगोळिप भागवनु ॥६८॥ सम विषमांक लेक्कवनु ॥६९॥
कमलद् श्रनन्तरद सत्ववनु ॥७०॥ क्रम बद्धगोळिप द्रव्यवनु॥७१॥ मम विषमांक गणितव ॥७२॥
गमकद् श्रनन्तरद सत्ववनु ॥७३॥ क्रम बद्धगोळिप गमकवम् ॥७४॥ सम विषमांक कूटवनु ॥७५॥
यमकद् श्रनन्तरद सत्ववनु॥७६॥ क्रम बद्धगोळिप शून्यवनुम्॥७७॥ रस विषमांक लब्दबनु ॥७८॥
श्रम हरद् श्रतिशयाकवनु॥७९॥ क्रम बद्धगोळिप विद्येयनुम् ॥८०॥ सम शून्य काव्य भूवलय ॥८१॥

प* ददक्षरांकद भागव तरुवनक । विधवनु तिळियम्म स क* ल॥ विधद द्रव्यागम श्रुतविदयेयन्कद । पदवे मंगलव पाहुडवु ॥८२॥
न्* वपद बद्धदक्षर विद्ये बेकेम्ब । निवगोग श्रतिशय क ल्* या ॥ णव पेळ्व श्रागम कर्म सिद्धातद । श्रवयव विदरोळ् पेळ्वेवु॥८३॥
च* रितेयोळ् बरेदिह सरस्वतियम्मन । परियनरितु साकल् या* श्ररहन्त विद्यद केवलज्ञानद । परियतिश यव केळम्म ॥८४॥

करुणेयक्षरव केळम्म ॥८५॥ श्ररिय गेल्लुवद केळम्म ॥८६॥ परमन श्रतिशय वम्म ॥८७॥
धरेय मगल काव्यवम्म ॥८८॥ करुणेय क्षरदनकवम्म ॥८९॥ श्ररिय गेल्लुवुदे सिद्धांत ॥९०॥
परमन श्रतिशय धवल ॥९१॥ धरेय मंगलद पाहुडवु ॥९२॥ करुणेय साम्राराज्यवम्म॥९३॥
श्ररिय गेल्लुवुदे मंगलवु ॥९४॥ परमन भूवलयाक ॥९५॥ धरेय जीवर काव्यानग ॥९६॥
गुरुगळ साम्राज्य वम्म ॥९७॥ श्ररि गेल्दवरंक वम्म ॥९८॥ परमन गम्भीरदनक ॥९९॥
धरेय जीवर सौभाग्य ॥१००॥ श्ररहन्त साम्राज्यवम्म ॥१०१॥ श्ररिय गेल्दवर क्षरांक ॥१०२॥
परमन गम्भीर वचन ॥१०३॥ धरेय जीवर चारित्र ॥१०४॥ सरस्वती साम्राज्य वम्म॥१०५॥
श्ररिद गेल्दवर सिद्धांत ॥१०६॥ परमन गम्भीर दान ॥१०७॥ परमात्म सिद्ध भूवलय ॥१०८॥
नरसुरबन्द्य भूवलय ॥१०९॥ परमाप्तश्र सिद्ध भूललय॥११०॥ गुरुगळनगय्य भूवलय ॥१११॥

को* टि कोटाकोटि सागरदळतेय। गूट शलाके सूचिगळ॥ मेटियपद ण* वकार मन्त्रदे बह । पाटियक्षरद लेक्कगळम् ॥११२॥
ङ्* क्कामृदनगादि सर्व शब्दागम । दक्कदक्षरद श्रन् का* दि॥ तक्करेग्वागमवर्णदागमकाव्य। सिक्कदुक्रनबद्धदागमदि॥११३॥
ङि* न्डोरदोळु बंद सर्व शब्दागम । श्र॰डदक्षरद् वश र* ववु ॥ खन्डित वागु वुदरि काल क्षेत्रद । पिण्डवु नित्य बाळुवुदु॥११४॥
श्रो* म्कारदिम् बंद सर्व शब्दागम । दन्कदक्षरद् श्रन् क* नित्य॥ शम्केगलेळ्ळव परिहर माडुव। सम्कर दोष विरहित ॥११५॥

श्रोम्कार भद्र स्वरूप ॥११६॥ श्रोम्दनक श्रोम्दे श्रक्षरवु ॥११७॥ श्रोम्दनु बिडिसुव क्षरवु ॥११८॥

ओम्दक स्वर नव पदवु ॥११९॥ ओम्कार भद्र मंगलवु ॥१२०॥ ओम्दंक भन्ग अक्षरवु ॥१२१॥
ओम्दनु बिडिसुव अन्क ॥१२२॥ ओम्दन्क वदुवे वर्णगळु ॥१२३॥ ओम्कार सर्व मंगलवु ॥१२४॥
ओम्दन्क वदु शुद्धाक्षरवु ॥१२५॥ ओम्दनु बिडिसलु सर्व ॥१२६॥ ओम्दन्क वदयोग वाह ॥१२७॥
ओम्कार दिव्यनिनाद ॥१२८॥ ओम्दन्क परमात्म वाणि॥१२९॥ ओम्दनु भजिपनु योगि ॥१३०॥
ओम्दन्क अर्वत्नाल्क्आगि॥१३१॥ ओमकार ताने तानागि ॥१३२॥ ओम्दन्क सिद्ध स्वरूप ॥१३३॥
ओम्दनु सर्ववेन्दरिया ॥१३४॥ ओम्दन्कव् इप्पत्तु बिडिय॥१३५॥ ओम्कारदन् एरड्अन्ग ॥१३६॥
ओम्दन्क भन्गव माडे ॥१३७॥ ओम्ददु तोम्बत् एरडन्क ॥१३८॥ ओम्दन्क भन्ग भूवलय ॥१३९॥
पा* पविनाशक पुण्य प्रकाशक । लोपविल्लद शुद्धरूप ॥ ताप म* लिसि मोक्षव तोर्प ओम्कार । श्रो पद ओम्बत्तरन्क ॥१४०॥
व* शवागलके ओम्कारव कूडलु । यशदादि हत्अन्कवदनु ॥ प्र* शमादि गुणठाणदतिशयदन्कवु । ओसरुत ज्ञानाक्षरांकम् ॥१४१॥
आ* शेय अक अइउऋऌए ऐ ओ औ । राशियोम् बत्त स्वर धा* ॥ आशेयिम ह्रस्व दीरघ प्लुत मूरिम । राशिय गुणव् इप्पत्एळु॥१४२॥
गि* रियन्रदन्दद आआआईईई। सर ऊऊऊ ॠॡ ॡ ॥ वर एएएऐऐऐ नं* ओ ओ औ औ । सवरगळे दीर्घ प्लुतगळु ॥१४३॥
रि* द्धिय ओम्बत्उ स्वरगलु मूररिम् । शुद्धियिम् गुउणइ स* लु बरुव॥ मुद्दिन्इप्पत् एळुक् खगघ्ज् ऐदु। शुद्ध च्छ्ज्झ्ञ् ऐदु॥१४४॥
होद्दिसि ट् ठ् ड् ढ् ण् गळ ॥१४५॥ सिद्धसि त् थ् द् ध् न् वनु ॥१४६॥ शुद्धद प् फ् ब् भ् म् ऐदु ॥१४७॥
रिद्धियोळ् गुणिस् इप्पत्ऐदु॥१४८॥ बद्धय्र् ल् व् श् ष् स् ह् व ॥१४९॥ सिद्धअंअ क फ नाल्क्अम॥१५०॥
शुद्धव्यन्जन मूवत्मूरम् ॥१५१॥ इव्द नाल्क्अ योगवाहगळ ॥१५२॥ होद्दलु मूवत्एळ अक ॥१५३॥
बद्धवाद अरवत्नाल्कु ॥१५४॥ शुद्धदक्षरदंक गळनु ॥१५५॥ उद्दव कूडलु हत्तु ॥१५६॥
होद्दिसला हत्ते ओम्दु ॥१५७॥ शुद्ध १ दे ओम्दु अंक ॥१५८॥ शुद्धांक ओम्दे अक्षरवु ॥१५९॥
रिद्धियोळ् आदिम् भंग ॥१६०॥ बुद्धिगे सिलुकिहुद् अंग ॥१६१॥ सिद्धान्त सागरदंग ॥१६२॥
सिद्धर तोरुव भन्ग ॥१६३॥ शुद्धांक गुणकारद् अंग ॥१६४॥ रिद्धिय तोरुव भन्ग ॥१६५॥
सिद्ध सम्सिद्धद भन्ग ॥१६६॥ बुद्धि प्रकर्षाणु भंग ॥१६७॥ रिद्धि प्रकाशदणु भंग ॥१६८॥
सिद्धत्व दर्वादि भंग ॥१६९॥ सद्दलिदरे सिद्धरन्ग ॥१७०॥ शुद्ध साहित्य भूवलय ॥१७१॥
व* शवाद कर्माटक देन्दु भागद । रस भंगद् दक्षरद स र* व॥ रस भावगळनेल्लव । कूडलु बनदु । वशव एळ्नूरह विनेन्दुभाषे॥१७२॥
र* मणीयवादादिम भन्ग समयोग । दमलांकद् ओन्दु अक्षर व* ।क्रमदोळगओम्दरिम गुणिम् अरवत्नाल्कु। विमलांक हुट्दवुदअरिया॥१७३॥
सि* रिसिद्धम ई ओम्दम् बरेदुकोन्डदरोलु । अरहन्त शुद् ध* रोठ्'अ'वनु॥ सिरिअशरीररसिद्धर'अ'आदि। सिरिआइरियदोळ्'आ'वि१७४
ह* रडिव ई मूरु'आआआ' अक्षव।बरेवुकूडलु 'आ'बहुदु॥ वरध र्मा* चरणोगादिय 'आ' बरे मुन्दे। बरेवुदु उवज्झयदादि ॥१७५॥
रे* खेयोळ् अनन्तदे साधुगळ् मउनिगळ। ओकरवाविम'म' श्रम णां* ॥ साकल्यव कूडे ओमकारवप्पुदु । सौख्य सर्वद मंत्र बहुदु ॥१७६॥
आ कलनकद जीव शब्द ॥१७७॥ साकल्य भंगद मूल ॥१७८॥ साकल्यव कूडे ओमदु ॥१७९॥

पगाकट परब्रह्म दनुग ॥१८०॥ आकलन् कद जीव तत्व ॥१८१॥ साकल्य भगद अंत ॥१८२॥
साकल्यव कूडे सर्व ॥१८३॥ प्राकट परब्रह्म भग ॥१८४॥ आकर द्रव्यागमवु ॥१८५॥
साकल्य भंगद मध्य ॥१८६॥ साकल्यव कूडे मध्य ॥१८७॥ प्राकट परब्रह्म भद्र ॥१८८॥
आकरवा द्रव्य भावा ॥१८९॥ साकल्य अरवत्नाल्कु ॥१९०॥ साकल्य शब्दागमद १९१॥
प्राकट परब्रह्म तत्व ॥१९२॥ साकल्यान्कद कक्र मोत्त ॥१९३॥ शाफट कर्म सम्हारि ॥१९४॥
साकलागम द्रव्य रूप ॥१९५॥ एकान्क सिद्ध भूवलय ॥१९६॥

रिण* ज शब्ददादिय ओम्कार ओम्दनु । विजय धवलवन्आगिसि जो* ॥विजयव होन्दिद परब्रह्म विन्तागे भजिय योगिगळन्व बेरे ॥१९७॥
व्* शवाद् इप्पत् एळु स्वरदोलु 'ओ' बरे । हुसिय ऐदक्षर व* शद॥ रसकूटवेतके ओ ओम्दु एन्नदे। ऋषिगळन्कवेओ ओम्दंक ॥१९८॥
वा* दिगळेल्लर आदवदिन्तागे । ओ दिव्यवाणिय मर्म॥ दादिय म्* भेदिसि तिळिव सम्यग्ज्ञान साधनेय् अरवत्नाल्क् अन्क ॥१९९॥
ण* वदन्कववनु ओम्बत्एन्दु पेळुव । नव पद भक्तिय वि ज* य ॥ दवनिय हत्अलु अरवत्नाल्क्अन्क। दव नयल्लवु ओम्दंक ॥२००॥
ग* मनिसि नोडलन्द अक्षर ओम्दु । समदन्क बिडियागे ज य* दे॥ क्रमद् ओम्दु कर्माटकद समन्वय। अमम विस्मयव सामान्य॥२०१॥
या* वाग कर्म सामान्यव नोडेवेवो। आवाग एनदु रूप्गि॥ तावदु तु* ळियलु सम्ख्यात । दा विश्वानन्तान्क बहुवु ॥२०२॥

दाविश्व व्यापियागुवुद् ॥२०३॥ जीवर नन्तान्क गणित ॥२०४॥ सावु हुट्उगळ अनन्त ॥२०५॥
देवन अरिकेयनन्त ॥२०६॥ श्री वीरनरिकेय अन्क ॥२०७॥ जीवरनलेसुव कर्म ॥२०८॥
जीवराशिय कर्माटकवु॥२०९॥ दा विश्व कर्मदनन्त ॥२१०॥ काववरारिल्लद अन्क ॥२११॥
जोवर नलेसुव अन्क ॥२१२॥ जीव राशिय गणितांक ॥२१३॥ पावन जीव घातांक ॥२१४॥
भावद कर्मांक गणित ॥२१५॥ जीवर नलेसुव गणित ॥२१६॥ जीव जीवर गणितांक ॥२१७॥
पावन जीव ज्ञानांक ॥२१८॥ तोवलक्षरव् अर्त्रत्नाल्कु ॥२१९॥ तावल्लि ओम्दे आदन्क ॥२२०॥
श्री वीरवाणि ओम्बत्तु ॥२२१॥ ई विश्व काव्य भूवलय ॥२२२॥

श* वपद भक्तिये अणुव्रतकादियु । अवरु श्री जिनदीक्षे वहि श्* ए ॥ नवदक एंटरिम् एळरिम् । सव भाग 'सोन्ने काणुवरु ॥२२३॥
मो* हवंकवदेष्टु रागदन्कवदेष्टु । साहसि द्वेषांकद् आ* ळा ॥ मोहद्वेषवळिदाग आत्मन । रूहिद ज्ञान्क्वेष्टु ॥२२४॥
ते* रस गुणठाणदेरिद आतमन । सारॉक दर्शनदक ॥ भार स* गुठाण सार चतुर्दश । वेरिनन्तांक (सन्ख्यात) वेष्टु ॥२२५॥
सि* ववागलात्मनेरिद सिद्धलोकद । अवतारदादिम जीव ॥ अव न* ष्ट गुणगळ (अवनष्टु ज्ञानद) व्याप्ति एण्टेम् बन्क ववनु (अतिशय धवल) सिद्ध भूवलय ॥२२६॥
म्* नसिज हणनवु हदिनाल्कु साविर मुत्तुए। तनि मूर्तरहत् ओ म्* वन् अंत ॥ (एदु साविरद्हत् ओम्) ओन्बत् ओमदु सोम्नेयु एंदु॥
तनुवेल्ल ओमद् 'ऋ' भूवलय ॥२२७॥

ऋ ८,०१९—अन्तर १,४३१९=२२,३३९ अथवा अ-ऋ २,००,५६५+ऋ २२,३३८=२,२२,९०३ [illegible]

ग्यारहवां अध्याय

यह भूवलय सिद्धान्त रूपी द्रव्यागम भी है और अरूपी द्रव्यागम भी। इसलिए इसकी रचना अंक पद्धति रूप से की गई है ऐसा होने से अक्षर में अंक मिलाने की शक्ति उत्पन्न हुई। अंक और अक्षर दोनो भगवान के दो चरण स्वरूप हैं और वही यह भूवलय है।१।

श्री ऋषभनाथ भगवान के समय मे सर्व प्रथम अतिशय मगल पर्याप्ति रूप से अंक और अक्षर का सम्मेलन हुआ। तत्पश्चात् दोनो के सघर्षण मे जो नादब्रह्म (शब्द ब्रह्म) प्रकट हुआ वही जीव द्रव्य का ज्ञान है और सभी जीवो को इसी ज्ञान की साधना करनी चाहिए, क्योंकि यह अध्यात्म योग है।२।

उस अंकाक्षरी विद्या को योगी जन प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं, किन्तु सामान्य जन भूवलय रूप उस ज्ञान निधि का स्वाध्याय करते हैं। तदनन्तर जैन धर्म का समस्त तत्त्व अपने अपने स्वरूप से प्रत्यक्ष हो जाता है। इस प्रकार घन विद्या साधन रूप महायोग है।३।

सुर, नर, किन्नर तथा ज्योतिष्क लोक के घन स्वरूप को, उस लोक मे रहनेवाले कृत्रिम-अकृत्रिम श्री जिनेन्द्र देव के देवालय तथा जिनविम्ब इन सबको अङ्क गणना से योगी जन यथावत देखकर ठीक ठीक जान सकते हैं।४।

समस्त दोषों के नाशक विदेह क्षेत्र में रहनेवाले श्री सीमन्धर स्वामी का दर्शन करके, अतिशय पुण्य कर्मराशि का सचय करके तथा निरन्तर श्री जिनेन्द्र देव का भजन करके योगी जन मगल पर्याय रूप बन जाते हैं।५।

यह भूवलय ग्रन्थ भगवान के अतिशय पुण्य का गान करने वाला है।६।

इस सिद्धान्त ग्रन्थ के स्वाध्याय से शनै शनै· समस्त पापो का नाश हो जाता है।७।

इस सद्ग्रन्थ का उपदेश श्री जिनेन्द्र भगवान ने स्वय अपने मुख कमल से किया है।८।

भगवद्भक्ति से उपार्जित हुई पुण्य राशि की गणना विधि को सिखलाने वाला यह गणित शास्त्र है।९।

भगवान की भक्ति का जितना अंक है वह भी सिखानेवाला यह गणित है।१०।

समस्त संसारी जीवों में क्षुधा-तृषा आदि अठारह दोष हैं। इन सबकी गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।११।

श्री जिनेन्द्र देव ने धर्म के साथ सद्धर्म को जोड़कर उपदेश दिया है। उस सद्धर्म के स्वरूप की गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।१२।

अगणित पुण्यराशि की भी गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।१३।

भगवान का केवल ज्ञान अनन्तानन्त है अर्थात् भगवान में अनन्तानन्त जीवादि पदार्थों को देखने तथा जानने की अद्‌भुत शक्ति होती है। उन सबको अलौकिक गणित से गिनने वाला यह गणित शास्त्र है।१४।

अठारह प्रकार के दोषो की गणना को गुणा करके सिखानेवाला यह गणित शास्त्र है।१५।

इसी प्रकार श्री जिनेन्द्र देव द्वारा कहे गये सद्धर्म को भी गुणा करके सिखलानेवाला यह गणित है।१६।

यह गणित शास्त्र स्वयमेव उपार्जन किये हुए पुण्य की गणना सिखाने वाला है।१७।

भगवान जिनेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित चारित्र की गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।१८।

अठारह प्रकार के दोषों के विनाश होने से जो गुण उत्पन्न होता है उन सबकी गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।१९।

सद्धर्म पालने से जितने आत्मिक गुणो की वृद्धि होती है उन सबका ज्ञान करानेवाला यह गणित शास्त्र है।२०।

यह गणित शास्त्र समस्त ज्ञान-विज्ञान-मय शब्द कोष से परिपूर्ण है।२१।

यह गणित शास्त्र अंतरग चारित्र को बतलानेवाला है।२२।

यह चारित्र में आनेवाले दोषों को हटा देने वाला है।२३।

यह भगवान के द्वारा प्रतिपादित सद्धर्म मार्ग में सभी को लगानेवाला है।२४।

भक्ति की आशा रखकर भव्य जन गणित शास्त्र के ज्ञान को बढा लेते हैं। २५।

चौबीस तीर्थंकरो के गुणगान करने से ही समस्त गणित शास्त्रों का ज्ञान हो जाता है ।२६।

समस्त भाषाओ के समस्त शब्द कोष इस भूवलय ग्रन्थ मे उपलब्ध हो जाते हैं ।२७।

समस्त दोषो को नाश करने की आशा रखनेवाले भव्य जनो की वाछा को योगी जन इस गणित शास्त्र द्वारा जान लेते हैं। और एक देश ज्ञान को सम्पूर्ण बनाने का जो उपदेश देते हैं वह देशी भाषा मे रहता है तथा वही यह भूवलय ग्रन्थ है ।२८।

अर्हन्त भगवान से लेकर ९ अक पर्यन्त का अक ९ तीर्थ स्वरूप है। उनके दर्शन करने से भव्य जीवो को गणित शास्त्र का विनियोग करने की विधि मालूम हो जाती है। उसके मालूम हो जाने पर मोक्ष पद प्राप्त करने का सरल मार्ग भी मिल जाता है ।१९।

उत्तम क्षमादि दस धर्म को भव्य जनो का साधन करने का सत्य धर्म है, वही आत्मा का विजयाकुर है। उन्ही दस धर्मो को ध्यान करते समय स्वयं अर्हंतादि नौ पदो की सिद्धि प्राप्त करने मे क्या आश्चर्य है ।३०।

ऐसी विजय को प्राप्त करादेने वाला दस क्षमादि धर्म महाव्रत से प्राप्त होता है। दया, दान इत्यादि सब आत्मिक गुणो को प्राप्त कराकर नय और प्रमाण इन दोनो मार्ग को बतलाता है ।३१।

सामान्य दृष्टि से देखा जाये तो ज्ञान एक है, विशेष रूप से देखा जाये तो पांच प्रकार का है, संख्यात स्वरूप तथा असंख्यात स्वरूप भी है। इस रीति से ज्ञान को गणित विधि से प्रसारित कर अ क रूप से बना ले तो ज्ञान साम्राज्य रूपी ध्वज हो जाता है। इस ध्वज को नमिनाथ जिनेन्द्र देव ने फहराया। इसलिए कल्याणकारी हुआ। इसका नाम आनन्ददायक करण सूत्र है। इस करण सूत्र को जिनेन्द्र भगवान ने सिखाया ।३२।

यह भूवलय के ज्ञान के वैभव को बतानेवाला है ।३३।

समवशरण में भगवान को दिव्य ध्वनि से निकला हुआ यह भूवलय काव्य श्री निवास काव्य है ।३४।

यह काव्य सम्पूर्ण जगत् के लिए आनन्ददायक है ।३५।

इस दिव्य काव्य में किस विषय की कमी है ? अर्थात् किसी की नहीं ।३६।

समस्त मङ्गलरूप भद्रस्वरूप को, यह काव्य दिखाता है ।३७।

इस मंगल रूप काव्य णमो अरहताणं इत्यादि रूप समस्त मन्त्रों को दिखाता है ।३८।

इस ग्रन्थ के अध्ययन से योगियो को शुद्धोपयोग मिल जाता है ।३९।

यह भूवलय शास्त्र गणित विद्या का आनन्द साम्राज्य है ।४०।

मोक्ष लक्ष्मी से उत्पन्न मगलमय सौख्य को प्रदान करनेवाला यह भूवलय काव्य है ।४१।

अनेक युक्ति से मुक्ति लक्ष्मी से प्राप्त होनेवाले सुख का दिखानेवाला यह काव्य है ।४२।

सब शास्त्रो का आदि ग्रन्थ योनिपाहुड है अर्थात् उत्पत्ति स्थान है। उन सब उत्पत्ति स्थानो को दिखानेवाला यह ग्रन्थ है ।४३।

गणित की विधि मे सबको क्लेश होता है, यह भूवलय का गणित शास्त्र ऐसा न होकर आनन्ददायक है ।४४।

नाट्य शास्त्र मे पटविन्यास एक सूक्ष्म कला है, उस कलामय भाव को गणित शास्त्र मे बताने वाला अर्थात् परमात्मा मे बतलानेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।४५।

गणित शास्त्र और अक शास्त्र ये दोनो अलग अलग हैं, इन सबका स्वरूप दिखानेवाला यह ग्रन्थ है ।४६।

समस्त पृथ्वी अर्थात् केवली समुद्घात गत भगवान के शरीर रूपी विश्व को नापने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।४७।

इस भूवलय ग्रन्थ के अध्ययन करने से ज्ञान रूपी आनन्द साम्राज्य की प्राप्ति हो जाती है ।४८।

दया धर्म के सूक्ष्मअतिसूक्ष्म से लेकर बृहद पर्यन्त दान देने को अनन्त दान कहते हैं। उसे बतलानेवाला यह भूवलय है। ४६।

यह अनन्त दान समस्त मानवो की कीर्ति स्वरूप है।५०।

दान के स्वरूप को बतलानेवाला यह ग्रन्थ जैनागम का दर्शन शास्त्र है।५१।

इस पृथ्वी में रहनेवाली समस्त जनता को यह दान क्रमशः आनन्द प्रदान करनेवाला है।५२।

इस रीति से दानमार्ग को चलाने मे यह भूवलय ग्रन्थ अद्भुत अचिन्त्य है।५३।

विवेचनः—

भूवलय के दानमार्ग प्रवर्तन का क्रम इस प्रकार है—

१-आहार २-अभय ३-औषधि तथा ४-शास्त्र इन चारो को मुख्य बताया है। इन चार प्रकार के दानो मे ज्ञान दान की प्रधानता इस अध्याय में रहती है। और ज्ञान अक्षर रूप रहता है। वे ज्ञानात्मक अक्षर यदि लिपि रूप से बन जाय तो उपदेश देने लायक बन जाता है। इसलिए लिपि की उत्पत्ति के क्रम को आचार्य बतला रहे हैं—

ब्राह्मी देवी ने अपने पिता श्री आदिनाथ भगवान से पूछा कि हे पिता जी! लावण्यरूपी अक्षर की लिपि कैसी रहती है? ऐसा प्रश्न करने पर भगवान ने कहा कि सुनो बेटी! अब हम भगवान की दिव्य ध्वनि को तुम्हारे नाम से अक्षर ब्राह्मी मे कहते हैं।५४।

दिव्य ध्वनि जय घंटे के नाद के समान निकलती है। वह सभी ॐ के अन्तर्गत है। इस दिव्य ध्वनि का आद्यक्षर "अ" से लेकर अन्तिम तक ६४ अक्षर हैं। ५५।

९ अंक की गणना करने से ९ (नव) पद भक्ति मिल जाती है। वही अक्षर का अवयव है। श्रावको को ६४ अक से उपदेश देनेवाला नवम बन्धाङ्क जान लेना चाहिए।५६।

ऋषि गण जब ध्यान में मग्न रहते हैं तब योग की सिद्धि हो जाती और योग की सिद्धि हो जाने पर ससार की समस्त सम्पदायें उपलब्ध हो जाती हैं। उन समस्त सम्पदाओं को प्राप्त करके हे बेटी ब्राह्मी देवी! ६४ अंक को लेकर तुम सुखी हो जाओ, ऐसा श्री वृषभनाथ भगवान ने अपनी पुत्री से आशीर्वाद रूप मे कहा। स्नेह, पूर्ण पिता जी का शुभाशीर्वाद सुनकर ब्राह्मी देवी बहुत प्रसन्न हुई।५७।

उपर्युक्त ९ अंक किस प्रकार निकलकर आ जाता है, ऐसा अपने पूज्य पिता जी से कुमारी सुन्दरी देवी के प्रश्न करने पर उन्होंने उत्तर दिया कि ये समस्त एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ और नौ इन अंकों को ।५८।

दान किये हुए देव अपने दाहिने हाथ के अंगूठे के मूल से ही सुन्दरी देवी के बाये हाथ की अमृतागुली में ।५९।

लिखे हुए अंको द्वारा सुन्दरी देवी ने णमोकार मंत्र को प्राप्त किया। उस विमलांक रेखा के आदि, अन्त और मध्य में रहनेवाले सम, विषम और मध्यम स्थान को भी उसने अपनी सूक्ष्म बुद्धि द्वारा जान लिया।६०।

इसी रीति से सुन्दरी देवी ने निर्मल आभ्यन्तरिक स्वरूप को भी [illegible] लिया।६१।

इन सभी को क्रम-बद्ध करनेवाला योग है और सुन्दरी देवी ने उसे भी जान लिया।६२।

यह योग सम, विषम, उभय, तथा अनुभयादि विविध भेद से विद्यमान रहता है।६३।

इसी रीति से निर्मल अन्तर की रेखा भी विद्यमान रहती है।६४।

अन्तर मे रहनेवाली सभी रेखाओं को क्रम बद्ध करने के अनेक [illegible] रहते हैं।६५।

सम विषमाक भावो को निकालनेवाला है।६६।

अत्यन्त निर्मल अतर सत्य को बतलानेवाला है।६७।

कर्म वन्ध को नाश करने के लिए भागाक को निकालने वाला है।६८।

सम विषमाक गणित को बतलाने वाला है।६९।

हृदय कमल के अन्तर के सत्य को बतलाने वाला है।७०।

कर्मबन्ध को नाश करने के लिए यह द्वार है।७१।

सम विषमांक गणित के द्वारा निकालकर देने वाला है ।७२।

गम्भीरता के साथ अन्तर सत्य को निकालकर देनेवाला है ।७३।

कर्म नाश करने की युक्ति या तरीका बतलानेवाला है ।७४।

सम विषमांक कूट को बतलाने वाला है ।७५।

यमक के अन्तर सत्य को बतलाने वाला है ।७६।

कर्म बंध को नाश करनेवाली बिन्दी को निकालकर देनेवाला है ।७७।

सम विषमांक लब्ध को निकालने वाला है ।७८।

श्रम को नाश करनेवाला अतिशय अंकवाला है ।७९।

यह सम्पूर्ण कर्म को नाश करने वाली विद्या है ।८०।

सम शून्य काव्य नामक यह भूवलय है ।८१।

पदाक्षर अंक के भाव को लाने वाले अंको की विधि को समझानेवाले तथा समस्त प्रकार के द्रव्यागम श्रुति विद्या अंक का यह अंक नामक पद ही मंगल पाहुड है ।८२।

नौ पद बद्ध अक्षर विद्या की इच्छा करनेवाले भव्य जीव को शीघ्र ही अतिशय कल्याण मार्ग को कहनेवाले आगम सिद्धान्त के अवयव में रहनेवाले विषय को कहते हैं ।८३।

चरित्र, में लिखा हुआ सरस्वती देवी के द्वारा वाणी को भगवान ने समझकर अर्हंतदेव पर्याय उसी अक्षर को जो भगवान की केवल ध्वनि के द्वारा निकला है उसी अतिशय अक्षर को हे बेटी ! तुझे मैं समझाऊंगा' तू ! सुन । ।८४।

हे बेटी ! ये करुणामय को उत्पन्न करनेवाले अक्षर हैं ।८५।

हे बेटी ! यह अक्षर शत्रु को नाश करने वाले हैं ।८६।

हे बेटी ! यह अर्हंत भगवान का अतिशय है ।८७।

हे बेटी ! यह पृथ्वी का मंगल रूप काव्य है ।८८।

हे बेटी ! यह करुणामय अक्षर अंक है ।८९।

हे बेटी ! यह शत्रु को जीतनेवाला सिद्धान्त है ।९०।

हे बेटी ! यह परमात्मा का अतिशय धवलयश है ।९१।

हे बेटी ! यह पृथ्वी का मंगलमय पाहुड है ।९२।

हे बेटी ! यह करुणामय साम्राज्य है ।९३।

हे बेटी ! यह सम्पूर्ण शत्रु को नाश करनेवाला मंगल है ।९४।

हे बेटी ! यह परमात्मा का भूवलय अंक है ।९५।

हे बेटी ! सम्पूर्ण पृथ्वी के जीवों का काव्य है ।९६।

हे बेटी ! यह गुरु का साम्राज्य है ।९७।

हे बेटी ! यह कर्म रूप शत्रु को जीते हुए महापुरुषों का अंक है ।९८।

हे बेटी ! यह परमात्मा का महान गम्भीर अंक है ।९९।

हे बेटी ! यह सम्पूर्णपृथ्वी के ऊपर रहने वाले जीवों का सौभाग्य है ।१००।

हे बेटी ! यह अर्हंत भगवान का साम्राज्य है ।१०१।

हे बेटी ! यह शत्रु को जीतकर वश किया हुआ अंक है ।१०२।

हे बेटी ! यह भगवान के गम्भीर वचन हैं ।१०३।

हे बेटी ! यह सम्पूर्ण पृथ्वी के जीवों के चारित्र की उत्पत्ति का कारण है ।१०४।

हे बेटी ! यह सरस्वती देवी का साम्राज्य है ।१०५।

हे बेटी ! यह कर्म रूपी शत्रु को जीतेनेवाले महान पुरुषों का सिद्धान्त है ।१०६।

हे बेटी ! यह भगवान के द्वारा सम्पूर्ण जीवों को दिया हुआ गम्भीर दान है ।१०७।

हे बेटी ! यह परमात्म नामक सिद्ध भूवलय है ।१०८।

हे बेटी ! यह देव और मनुष्य के द्वारा वन्दनीय भूवलय है ।१०९।

हे बेटी ! यह परमात्म सिद्ध भूवलय है ।५१०।

हे बेटी ! यह पंच गुरुओं का भूवलय है ।१११।

हे बेटी ! यह करोडो कोडा कोडी सागर के प्रमाण शलाका, सूचि, उसकी लम्बाई, चौडाई, पद इत्यादि इस नवकार मंत्र से आनेवाले और प्रत्येक तरह के अक्षरों के गणित को तथा ढक्का, मृदंग- आदि के झंकार, अक्षराकृति अक्षरो के अंक आदि तथा योग्य रेखागम, वर्णागम काव्य इत्यादि इस द्रव्यागम से प्राप्त होते हैं ।११२-११३।

भगवान की वाणी के द्वारा पाया हुआ सर्व शब्दागम अंक से निकलकर आये हुए अक्षर खंडित न होनेवाले काल क्षेत्र के पिडात्म हमेशा रहते हैं, अर्थात् ये शब्द नित्य तथा हमेशा जीवन्त है ।११४।

ॐ कार के द्वारा आये हुए सभी शब्दागम के अक्षर अक सर्वत्र सम्पूर्ण शकाओं का परिहार करनेवाले शका दोष रहित अ क हैं ।११५।

यह ओम्का अ शब्द भद्र स्वरूप है ।११६।

ओ३म् भी एक अक्षर है ।११७।

सभी अक्षरों मे एक ही रूप में रहनेवाले अक्षर हैं ।११८।

ओ३म् एक अक्षर ही है स्वर नौ पद हैं ।११९।

यह ओ३म्कार भद्र तथा मगलमय है ।१२०।

यह ओ३म् एक अक्षर ही भग अक है ।१२१।

इसमें से एक को छुडानेवाला अंक है ।१२२।

एक अंक का अवयव ही वर्ण है ।१२३।

यह ओंकार शब्द सर्व मगलमय है ।१२४।

ओम् अक ही शुद्धाक्षर है ।१२५।

ओम् को तोड़ने से सभी आ जाते हैं ।१२६।

ओम् अंक ही योगवाह है ।१२७।

ओंकार ही दिव्यनाद है ।१२८।

ओम् अंक ही परमात्म वाणी है ।१२९।

योगी जन एक ओ को ही भजते हैं ।१३०।

एक अंक ही ६४ रूप होकर ।१३१।

अन्त में अपने आप ही ओंकार रूप हो जाता है ।१३२।

एक अंक ही सिद्ध स्वरूप है ।१३३।

एक में ही सब कुछ है, ऐसा समझो ।१३४।

एक अंक ही २० अंक है ।१३५।

यह ओंकार दूसरा अंक है ।१३६।

एक का भंग करने से ।१३७।

९२ अंक होता है ।१३८।

एक अंक ही भूवलय है ।१३९।

यह एक अक पाप का नाशक, पुण्य का प्रकाशक, समस्त मल से रहित परम विशुद्ध तथा समस्त सासारिक तापो को नाश करके अन्त में ओंकार को बतलानेवाला ओंकार रूप श्री पद नौवा अक है ।१४०।

उसमें ओंकार मिलने से आदि के १० अंक को प्रशमादि गुण [illegible] अतिशय अक उसमे से धीरे-धीरे ज्ञानाक्षर की उत्पत्ति होती है ।१४१।

आशा अक—अ इ उ ऋ ल् ए ए ऐ ओ औ इन राशियों के ९ स्वरों मे उस आशा से ह्रस्व दीर्घ तथा प्लुत इन तीनो राशियो से गुणा करने पर गुणनफल २७ होता है ।१४२।

पर्वत के अग्रभाग के समान आ, आ, ई, ईई, ऊ, ऊ, ऋ ॠ ए—ए—ऐ—ऐ, ओ—ओ, औ—औ इन उपर्युक्त स्वरों को क्रमशः दीर्घ
१ २ १ २, १ २ १ २ और प्लुत कहते हैं ।१४३।

इस वृद्धिङ्गत ९ स्वरो को ३ से गुणा करने पर आनेवाला गुणनफल २७ और क् ख् ग् घ् ङ् ये पाच तथा च् छ् ज् झ् ञ् ये पांच, ट् ठ् ड् ढ् ण् इन पाचो को सिद्ध कर त् थ् द् ध् न् प् फ् ब् भ् म् इन पाचों वर्गों को परस्पर मे गुणा करने से गुणनफल २५ आता है। पुनः बद्ध य, र्, ल्, व, स, ष, श, ह् तथा सिद्ध किये हुए अ‿, अ‿, क्‿, फ्ः ये चार अंक ।१४४ से १५० तक।

शुद्ध व्यंजन ३३ हैं ।१५१।

ये चार अक अयोगवाह हैं। इनको उपर्युक्त व्यंजनों में मिलाने से ३७ अक होता है १५२-१५३।

बद्धाक्षर ६४ हैं ।१५४।

शुद्धाक्षरांक को ।१५५।

सीधे मिलाकर ६+४=१० होते हैं ।१५६।

इस संयुक्त १० में से बिन्दो निकाल देने पर १ रह जाता है ।१५७।

यही १० शुद्धांक है ।१५८।

शुद्धांक १ ही अक्षर है ।१५९।

वृद्धि में आदि भंग है ।१६०।

यह बुद्धि के द्वारा उपलब्ध अंक है ।१६१।
यह सिद्धांत सागर का अंग है ।१६२।
यह सिद्ध भगवान को दिखानेवाला भंग है ।१६३।
यह शुद्ध गुणाकार का अंग है ।१६४।
यह ऋद्धि को दिखानेवाला भंग है ।१६५।
यह सिद्ध संसिद्ध भंग है ।१६६।
यह बुद्धि को प्रकट करनेवाला अनुभंग है ।१६७।
यह ऋद्धि को प्रकट करनेवाला अनुभंग है ।१६८।
यह सिद्धत्व प्राप्त करने के लिए आदि भंग है ।१६९।
इसको संपूर्ण मिटाने से सिद्ध भगवान का अग रूप है ।१७०।
यह शुद्ध साहित्य नामक भूवलय है ।१७१।

बंधा किये हुए कर्माटक के आठ रसभगो के सम्पूर्ण अक्षर रस भाव को मिलाने से प्राप्त यह ७१८ (सात सौ अठारह) भाषा है ।१७२।

अत्यन्त सुन्दर रमणीय आदि के भग सयोग अमल के १ अक्षर को क्रमश यदि ७ से गुणा करते जायँ तो ६४ विमलाको को उत्पत्ति होती है, ऐसा समझना चाहिए ।१७३।

श्री सिद्ध को लिखकर उसमे अरहन्त अ को श्री अशरीर सिद्ध भगवान अ और आइरिया के पहले का अ इन तीनों के आ अ, आ को पृथक् पृथक् लिखकर एक मे मिलाने से आ होता है। यह श्रेष्ठ धर्माचरण के आदि मे आ आता है। पुन आगे उवज्भाया के आदि मे उ आता है। और अन्तिम साधु मुनि के श्रीकार के आदि मे मु और मू से म् आता है। इन सभी को परस्पर में मिलाने से ओम् बन जाता है। यही ओकार समस्त प्राणी मात्र को सुख देनेवाला मन्त्र है। १७४-१७५-१७६।

यह कलक रहित जीव शब्द है ।१७७।
यह साकल्य भंग का मूल है ।१७८।
यह साकल्य का सयोग होते ही एक है ।१७९।
यह पराकाष्ठ परब्रह्म का अक है ।१८०।
यह उस अकलक जीव का तत्त्व है ।१८१।
यह साकल्य भंग का अन्त है ।१८२।
साकिल्य मिलाने से सब है ।१८३।
यह पराकष्ट का भंग है ।१८४।
अन्त में सभी मिलकर यह द्रव्यागम है ।१८५।
यह साकल्य भग का मध्य है ।१८६।
यह साकल्य मिलने पर भी भव्य है ।१८७।
यह पराकष्ट परब्रह्म मत्र है ।१८८।
यह आकार से द्रव्य भाव है ।१८९।
यह साकल्य ही ६४ है ।१९०।
यह साकल्य ही शब्दागम का ।१९१।
पराकष्ठ परब्रह्म तत्त्व है ।१९२।
यह साकल्याक चक्र का आदि है ।१९३।
यह साकल्य कर्म से हारी है ।१९४।
यह सकलागम द्रव्य रूप है ।१९५।
यह एकाक सिद्ध भूवलय है ।१९६।

आदि निज शब्द एक ओ३म्कार की विजय रूप है इस विजय को [illegible] किया परब्रह्म के समान अपने को मानकर अपने अन्दर ही आराधन करनेवाले योगीअन्य अपने को बमूआ २७ स्वरो में 'ओ' अनि से अन्य शेष पाच [illegible] के उ अन्य रसकूट को आवश्यकता क्या है क्योकि वह जो एक अक्षर है वही एक है और उसी का अक अर्थात् जो पच परमेष्ठी है वह भी उसी का रूप है और उसी का नाम ओम है जोकि एक अक्षर है। और ओम अक्षर ही [illegible] विश्व मे सम्पूर्ण प्राणियो को इष्ट को प्राप्त कराने वाला है ।१९७-१९८।

समस्तवादियो को पराजित करके भगवान की दिव्यवाणी के [illegible] मर्म जाननेवाले सम्यग्ज्ञान के साधन यह ६४ चौसठ अंक है ।१९९।

नव अक नौ रूप को कहनेवाला नवपद भक्ति की विजय पृथ्वी तलमें प्राप्त होने से ६४ अक इस सम्पूर्ण पृथ्वी में एक है ।२००।

अभेद दृष्टि से देखा जाय तो अक का अक्षर एक है सम अंक को [illegible]

किया जाय तो भी एक है। यह कर्माटक कितने आश्चर्य का है ? क्या यह सामान्य है ? अर्थात् सामान्य नहीं है।२०१।

कर्म सामान्य रूप से एक है, मूल प्रकृतियों के अनुसार ८ प्रकार का है। उत्तर भेदों के अनुसार कर्म संख्यात भेद वाला है। उन कर्मों को दबा देनेवाले आत्म-प्रयत्न भी उतने हैं। इन सबके बतलानेवाले विश्व के अंक निकल आते हैं।२०२।

वह विश्व का व्यापी होता है।२०३।

यही जीव का अनन्त गणित है।२०४।

यह जन्म और मरण का अनन्त है।२०५।

भगवान अर्हंत देव के ज्ञान में आया हुआ यह अनन्त है।२०६।

श्री वीर भगवान का जाना हुआ यह अंक है।२०७।

जीवों को ससार में हलन-चलन करानेवाले कर्म हैं।२०८-२०९।

यही जीव राशि का कर्माट है।२१०।

बिना रक्षा के यह अंक है।२११।

जीव को संसार में भ्रमण करानेवाला यह अंक है।२१२।

यह जीव राशि के गणित का अंक है।२१३।

पवित्र जीव को घात करनेवाला यह अंक है।२१४।

भाव कर्मांक रूप यह गणित है।२१५।

जीव को ससार में रुलाने वाला यह गणित है।२१६।

यह सम्पूर्ण जीवों का गणित है।२१७।

पवित्र जीव का ज्ञानांक है।२१८।

भेद की अपेक्षा से अक्षर चौंसठ है।२१९।

अभेद विवक्षा से एक अंक है।२२०।

श्री भगवान वीर की वाणी नौ अंक रूप है।२२१।

यह विश्व काव्य नामक भूवलय है।२२२।

नवपद भक्ति ही अणुव्रत की आदि है और जीव जिन-दीक्षा धारण करके नवांक को आठ से, सात से, दोसे, समभाग करने से शून्य रूप में दीखता है।२२३।

मोह के अंक कितने हैं, राग के कितने हैं, ऐसा जानकर वह मोह द्वेष को जब नष्ट कर डालता है तब निरञ्जन अमूर्तिक आत्मा का ज्ञानांक कितना है, यह मालूम होता है।२२४।

तेरहवें गुणस्थान में पहुंचा हुए आत्मा के सारे दर्शनांक, बारहवें गुण स्थान का अंक और सार भूत चौदहवें गुणस्थान को प्राप्त हुआ चौदहवां अंक कितना सख्यात है।२२५।

पुनः शिव पद को प्राप्त करके सिद्ध लोक में पहुंचा हुआ सिद्धलोक के निवासी जीव और उनके आठ गुण की व्याप्ति से आये हुए अंक कितने हैं, इस सम्पूर्ण विषय को बतलाने वाला यह अतिशय नामक धवल भूवलय है। २२६।

कामदेव का हन्ता आगे १४, ३१९ अन्तर के ८,०१९ सम्पूर्ण मिलने से एक को बतलानेवाला यह भूवलय नामक ग्रन्थ है।२२७।

ऋ, ८, ०१९+अंतर १,४३१९=२२,३३८,

अथवा अ-ऋ २,००,५६५+ऋ २२,३३८=२,२२९०३।

बारहवां अध्याय

ऋ* पिगळ् मध्यात्म योग साम्राज्यदे । वशवाद श्री भद्ररा शि* ॥ रसवस्तुत्यागद सम्_ममविस् बन्द । यशसिद्ध काव्य भूवलय ॥१॥
ए* रिव ध्यानाग्नियारय्केयोळु बन्द । शूर दिगम्बरर् मव ब* ॥ भूव कुम्बिद कोटियक्षरवन्कद । सारात्म सिद्ध भूवलय ॥२॥
ध्* रव सम्हननवु व्यवहार नयवाद । परिय निश्चय मय म* कुचे ॥ सर मागेर्दाग शुद्धत्व सिद्धिय । परमात्मनन्ग भूवलय ॥३॥
मा* विय सम्हननवु व्यवहारदासाधने निश्चय नयव ॥ साधिप त्* वसमयवद्वि मंगल काव्य । वोविनिम् बन्द भूवलय ॥४॥
ण* र जन्मदाद्यन्तवादिय शुभ कर्म । विरुवष्टु सुखवनु तु* मृबि ॥ सरुव पुण्योदय हदिनेन्दु श्रेणिगु ॥ बरबेंकेन्देनुव भूवलय ॥५॥

उरवबरन्ना रक्षरायु ॥६॥ न्रज न्मदन्त्य शरीर ॥७॥ एरडने चरम शरीर ॥८॥
व्रगळ सम्बळ काव्य ॥९॥ उरव सन्मौन्जिय बंध ॥१०॥ गुरुव श्री गुरुवर काव्य ॥११॥
अरसराळिव मन्ग बसुरा ॥१२॥ र्रसोत्तिगेय वर मन्त्र ॥१३॥ एरडूवरेय द्वीपदन्द ॥१४॥
ग्रुव गोळ्दिगरेल्लरन्द ॥१५॥ अरमनेयोळु पूर्णा ग्रुहुव् ॥१६॥ वर कुरिगळ अन्ववळिव ॥१७॥
हुरुवेगळन्तद सिहियु ॥१८॥ ज्रेयोदगलु यक्षनान्म ॥१९॥ अरसुगळाळ्द कळ्वप्पु ॥२०॥
म्रेतिह अध्यात्म राज्य ॥२१॥ अरवट्टिगेय तवरुव ॥२२॥ द्रवण्ववनुभव काव्य ॥२३॥
व्रबाणगळ तीक्ष्ण म्रुदुल ॥२४॥ अरमने गुरुमनेयोबदु ॥२५॥

इ* वु 'रिद्धि सिद्धिगे आदिनाथरु' पेळ्द । धव 'अजितर' गद्दुगे' स* वि॥ नव वाहनगळु'एतु आनेगळु 'मु'।नवकारस'द्विनिम् स्याद्वा'॥२६॥
ए* वेळ्वुदवन 'द लाञ्छनदन्तिह' । पावन 'मुव्दिय पेळ्' दव र्* उ॥ मावय सर्'व्उदिमृतहहा'[१]'सर्वार्थसा'।रावयवद'घनवाद ॥२७॥
व्* रतर 'माङ्ग गलिकद' सर्वकार्यद' । सरद 'आदियलि' सर्व' व* रु॥ अरुह'रु कुदुरेय तन्दु सेविसुवरु । 'अरहन्त सर्व मङ्गलद' ॥२८॥
ई* तेरनाद्य 'मङ्गळमय्[२] हाराडुव' ख्यातिय 'मनव्अनु' न्ते ज* य॥ नूतान् 'कर्विट्टन्तेनेरदिकपिय'।ख्यात 'लांछनवु' हारुव'द ॥२९॥
रे* णुकावेधिय' 'स्यादवादमुद्रेयिस्' ताणदि'कट्टिदर् सार'॥ दाण ग* 'सर्व स्ववागिरिसि' [३] द अंक । ओरिगय अतिशय धवल ॥३०॥

अणुवनु 'स्वस्ति श्रीम न्तुअ ॥३१॥ तनिया 'द्राय राजगुरु' ॥३२॥ वनवे 'भूमण्डला' धिपरु ॥३३॥
इमवन्सव्आ 'चार्यरु' ए ॥३४॥ न्अनगे 'एकत्वभाव' नेव ॥३५॥ इणुकुव अणु'नाभावितरुम्' ॥३६॥
द्अन् 'उभयनम्' समग्ररुम श्री ॥३७॥ अनुदिन 'त्रिगुप्ति गुप्तरुम्'॥३८॥ य्अनुवन् 'तुष्करिया रहित्' ॥३९॥
आनन्द 'रुम् पञ्च व्र'त ॥४०॥ य्अनुव 'समेतरुम् सप्त' ॥४१॥ र्ण 'तत्व सरोजिनी रा' ज ॥४२॥
अनु 'जहम् सरुम् अष्टमद' द ॥४३॥ प्निय 'भञ्जनरुम् नववि' ॥४४॥ ळनवि 'धबाल ब्रह्म चर्या' ॥४५॥
अनुव 'लन्कृतरुम् देश' वद ॥४६॥ ग्नवु 'धर्म समेतरुम द्वा' ॥४७॥ नूनेव दशान्ग श्रुत' धरर् ॥४८॥
अनुव् 'पारावाररुम' श्रो ॥४९॥ म्न 'चतुर्दश पूर्वादिगळुम्' ॥५०॥

प* व 'दीप्ति तेजव नात्म चक्रदोळ्' तानु । मिदु 'बेळगुव गुप्ति' ता* वम्॥ अदर 'अयव पालिसुतसुप्तवादात्म'।नुवित'तत्ववसुत्तुतलिह'॥५१॥
ध्* रिते 'गुप्तिय चक्र कौकवहि'[४]सिर्दाग। वर'णवराशिलेक्क' म्* द॥ लिरुव्'दकगळ तन्नोळगिट्टु'नव नमो'दिरिधिरि'वधवुदुवंध'॥५२॥

डि* ळिलेम्ब 'सुविशालवह तावरेय मे । ट्टे' ळियुत बरुत लिर्द प* अद।। वलिय्'उतवन्दवरंक वादियकमल्अ'[५]ळेवाग'मणिस्वर्णरजत'।५३।
म* र्मद 'पारद गंधकादिय क्षरा' निर्मल 'दोळु भस्म' वेंद अ* ळ ।। धर्म 'वागिसुव' नुक 'गरानेय हूविना' धर्म'युर्मद विवृयेगे,म' ।।५४।।
अ* 'शिनव जलजद पल' [६] म 'चित्तदोळेसे' वन'व सम्पूर्ण।'द र सद।। गुणद'क्षरांकद ओलुगळोडने कू । डि'नचन्दर'सुव'चित्र विवृये'।।५५।।
एनलु 'परम जिन समय' ।।५६।। गरा 'वार्धिगर्धनरवर' ।।५७।। इन 'तरापिनसुधाकरवम्' ।।५८।।
दूरा 'प्रतिक्रमरा शास्त्राद्वयर्' ।।५९।। प्रगसविरुध 'परीक्षितरु' ।।६०।। उत्तवदरा' मतिज्ञान अरवम् ।।६१।।
रुरिग से आर्मुरु मूर्उगळवु ।।६२।। सुइनसि इष्टार्थवरिदर् ।।६३।। सवद पर्याय अक्षरवम् ।।६४।।
अरगु 'पद सम घात धरवम्' ।।६५।। दुरगु 'प्रतिपत्यनाग धरवम्' ।।६६।। सनद् 'अनुयोग कृताळवर्' ।।६७।।
ओरिग 'प्राभृतक प्राभृतकर्' ।।६८।। ळ्रगरलु 'प्राकृतकांगर्' ।।६९।। ओगिज 'वस्तु हत्तन्क पूर्वर्' ।।७०।।
ळ्रग 'दश चोद्दश पूर्वर्' ।।७१।। अनुयोग 'जीव समासर्' ।।७२।। गरा 'समासवु हत्तिप्पत्तु' ।।७३।।
नुराद 'आचार सूत्रकृतर्' ।।७४।। अरिग 'स्थान समवायधररु'।।७५।। गराद 'व्याख्याप्रज्ञप्तर्' ।।७६।।
तवद 'ज्ञातृकथा रूपर्' ।।७७।। तन 'उपासकाध्ययनांगर्' ।।७८।। अरगु अन्तकृद्दशधरवम्' ।।७९।।
द्न 'अनुत्तरोपपाद दशर्' ।।८०।। वरा 'प्रश्न व्याकररांकगर्'।।८१।। अरगु महा 'विपाक सूत्रांगर्'।।८२।।
आ* म्यवसद 'य स्वस्तिक वाहनवेरि' । मोग 'वृत्तम पोरेयुवु' ह* अ।। सागलवेय्अम्[७]ण व पदवंकवु वृद्धि' । माग'ग्रमुहोदुव' सुविशा' ।।८३।।
य* शवे 'लवहतसवेळग चउतियचक्' । वेसेविव् 'ग्रनकिररावु इ* होल 'बेलळवु' प्रवहिपकाव्यवेन्न' य । जस [८] हरुषदोळेरडु' गळ ।।८४।।
सु* सुम 'प्रारिगगळोम् वागिर्प लेरवोळु' । धन करिमकरियडु' त् तु* अ ।। जनर् 'ओरेय द्विधारेय स्याद्वादद'। घनवाद'सूतरद परिय' ।।८५।।
हृ* अरिसि 'भाविसलद् भुतवल[९]मणिरत्न।वर'मालेआहारादि'य् अ* ल ।। सर 'गळनी व रु'गरिणतव हत्तु'सिरि'पृक्षगळु कथरादोळु'गे ।।८६।।
ई* वु 'कल्पविम्वय् तन्' व'बोम्बावन्से'।सवि 'जिन शासन' वव न* अ।। अवु'वृक्षकल्प'(१०)गळगळु'गोचरि'।सवि'वृत्तियोळा हाहारवनुस्' ।।८७।।
अवर 'हम्नोम्दनम् धररु' ।।८८।। दुव 'परिकर्म सूत्रवरु' ।।८९।। नव 'प्रथमानुयोग धररु' ।।९०।।
इवु 'पूर्वगत चूळिकेगळु' ।।९१।। दुवु 'दृष्टिवाददयदुगळु' ।।९२।। अवरोळु 'पूर्वगतदलि' ।।९३।।
वुवु 'उत्पाद प्रे रिगवद' ।।९४।। अवर 'वीर्यानुवाद दलि' ।।९५।। भ्व'अस्तिनास्ति(प्रवाद)पूर्ववरु' ।।९६।।
य्वेयलु 'ज्ञानप्रवादर' ।।९७।। ववरु 'सत्य प्रवादववु' ।।९८।। अविरल 'आत्म प्रवादर्' ।।९९।।
य्वरु 'कर्म प्रवाद धरर्' ।।१००।। र्नव 'प्रत्याख्यान पूरम्' ।।१०१।। आव 'विद्यानुवाद पूर्वर्' ।।१०२।।
ह्यवु'कल्यारा वादववर्'।।१०३।। तिविये प्राणावाय पूर्वे' ।।१०४।। राव 'क्रिया विशालवरु' ।।१०५।।
प्व 'लोकबिन्दुसार धवर्' ।।१०६।। आवेल्ल'हदिनाल्कु पूर्वर्' ।।१०७।। हवु 'हत्तु हदिनाल्कु एन्दु' ।।१०८।।
अवु 'हदिनेन्दु हन्नेरडु' ।।१०९।। मवु'हन्नेरड् हदिनार् इप्पत्तु' ।।११०।। अवु 'मूवत् हदिनय्दु हत्तु' ।।१११।।
द्वु 'हत्तु हत्तु हत्तुगळु' ।।११२।। सवि 'अन्न विश्व वस्तुगळ' ।।११३।। अवरङग 'वस्तु भूवलयर' ।।११४।।
सू* अवरानुत 'डु श्री चर्येयोळात्मन' । विवरद ववु आचद्न' इ* मवु'।। सवदु' व मुनिगंडभेरुन्ड'ई'। नव 'चिह्न स्याद्वादवप्प'(११)अ।११५।

इ॥ वु 'वशवल्लद मन कोणनन्तिर्दा । ग'वनु'वशगोळिसिद' व र्॥ वुक॥ सवणनु'जिनमुद्रे।होसभूवलयवि'नूद । सवि'लांछनवागलु'श्री ॥११६॥
द्॥ रुशन'वशवायतेम्मय सोम्मु'(१२)लुएन्दु ।वरे'दिर्वदिन्दव्रत् अ॥ रिसु॥ व'र'जिननाथनु, अविनु हन्दियवेष। धरिसि अर्वानगे काव्यगळ ॥११७॥
थ॥ 'र्भवनिस्त सूकर'नव वाहन' स्रभव पोरेगेम्मम्'[१३]य् अ त्॥ न ॥ गर्भद 'गणनेयिल्लद द्रव्य श्रुतदक्ष' । गर्भ'रांकव मणिगळ'नु ॥११८॥
व॥ शवव'रोमरोमदलि'हेगोडु कोन्डिर् प्'सम श्री करडिय् अ' आ॥ तुम॥ यशववु'लांछनक्षणवअर्महिमेयम्।यश'तोर्क[११]यक्षदेवर्गळ' ॥११९॥
र॥ सव 'आयुध वज्र जिन धर्म' दक्षुण्ण' दिशेयलि 'सेवेगागि' भ्॥ उवि॥ गिसि'हुदु' शिक्षेयोळ्रक्षणेयिरुव' । अ'श लांछन वज्र'यशवे ॥१२०॥
'आशेयादिय एरडरलि' ॥१२१॥ मुआशे 'अग्रेयणीय वरुम्' ॥१२२॥ 'इसेव पूर्वंय हदिनाल्कम्' ॥१२३॥
ह्सनदरलि 'पूर्वान्त' ॥१२४॥ असमान 'अपरांतध्रुवरुम्' ॥१२५॥ म्सवए' अध्रुव चवनलब्धि'॥१२६॥
-असवुश 'अध्रुव सम्प्रणधि'॥१२७॥ वृइशे 'अर्थ भौमावमाद्य' ॥१२८॥ ळ्एसेये 'सर्वार्थ कल्पनिया' ॥१२९॥
एशे 'अतीत ज्ञानधरर्' ॥१३०॥ प्सरिसिद् 'अनागत सिद्ध' ॥१३१॥ 'उसह् सिद्धम् उपाध्याय' ॥१३२॥
ल्सरिसि 'इनितेल्लवुगळम्' ॥१३३॥ ओसेयिसिदरु 'सेनगणरु' ॥१३४॥ 'दशधर्मद् अचार ग्रन्थ' ॥१३५॥
असिहर 'जिन सम्हितरु' ॥१३६॥ य्शद 'भूवलय धवलरु' ॥१३७॥ अस् 'महाधवळ प्ररूपर्' ॥१३८॥
लसहश 'जय धवलवरु' ॥१३९॥ असम 'विजय धवलवरु' ॥१४०॥ व्शद 'सिद्धांत पञ्चधरर्'॥१४१॥
'उसह् सेनर वम्श धवलर्' ॥१४२। भ्सव पूजितर भूवलय ॥१४३॥
क्॥ ववद 'रक्षणे ईउवु सहसा'(१५)कवि'तुष मष बोधविन्द'॥ नव् अ॥ 'असि आ उ सावनु वशगोळिसिद'।अवर'वेगवनु'यशदोळु' ॥१४४॥
ऊ॥ रत'तोरुव हरिण लांछन ववु' । 'सारि हेसरिसे बह पुण्य 'अ' व्॥। 'सार सकल(१६)रसयुतवा'गिरुवु'देल्ल'।वारियलि'ह'सोप्पुगळनु'॥१४५॥
ड॥ ळिसुत 'तिन्दु हसनल्लदाडुमुद्' द । 'यश'वनु' बिसुड्उव् अ॥ टगरम्'।हसदन्'तेपापहरणमाळ्प होसटगर्'।एसेयलु'हदिनेळरंक'(१७)॥१४६॥
ए॥ रिसि 'गगनवेल्लव सुत्ति बगेयोळ' । गारा' गडगिद् अगणित' नृ॥ ।'सारद 'शब्दराशियदुम् सोगसाद' । नेरद 'गमल भूवलय' ॥१४७॥
हो॥ विध्य 'नन्द्यावर्त हगलिनन्ति' । रौदिनवि 'रलेन्न' अन् तु॥ वेदित 'हृदय'(१८)दे वारणाशियोळेळ'। साध'ने बल वास्देव' ॥१४८॥
उवित 'णाणद राद्धांतर्' ॥१४९॥ दृधवश 'सकल शास्त्रगळम्' ॥१५०॥ नृवद 'सम्पन्नरम् सकल' ॥१५१॥
वेदगे 'विमल केवल णाणा'॥१५२॥ अदरम 'धीश्वररुम्' श्री ॥१५३॥ ण्धर 'त्रिलोक स्वामि वया' ॥१५४॥
अवु 'मूल धर्मदोळु' वित ॥१५५॥ र्'दरु पदिष्ट त्रिलोक' ॥१५६॥ आदर 'सार लब्धि' गळु ॥१५७॥
क्विर 'सार चारित्र सार' ॥१५८॥ एवु''रु चतुष्टयन्गळोळ' ॥१५९॥ ग्दरोळ 'गाद श्रावक र्' ॥१६०॥
इवर 'आचार मोवलाद' ॥१६१॥ ध्दरे 'सन्धानि लोकानि' ॥१६२॥ स्दवधि 'सूर्य प्रज्ञप्ति' ॥१६३॥
इदु 'युक्ति युक्ति आगमरु' ॥१६४॥ दृद 'परमागमवाद' ॥१६५॥ अदरलि 'तीर्थकराग्त' ॥१६६॥
र्व 'सन्तति मूल प्रकृति' ॥१६७॥ तृदिगे 'उत्तरोत्तर प्रकृति' ॥१६८॥ नृद 'वरनृतप्प सज्जनरु' ॥१६९॥
अवुवे 'मय् आरत सम्ज्ञ एन'॥१७०॥ मृदश 'ग्रन्थ भूवलयर्' ॥१७१॥
ब॥ रव 'सारांतम' नु 'नवमांक चक्रि'यु । बरे 'सार मंगल प्ऊ' भ्॥ अ॥वरव'र्ण कुम्भवाहननु नेरदि'। अरिवु'तुतिसे वाहन मा'[१९]॥१७२॥
वृ॥ रि'णव पववेल्लगें भद्रकवच' । वर 'वन्नु सवेयव चि'र ऊ॥ ॥वरेद क 'प्पहमेय्य' सुविशालवादआ । मे'रेव 'य लांछन'कवियें ॥१७३॥

को❋ शति'भरतेयस् कलिसु'[२०]'व राज्य'। सार'व षट्खण्डव'नु त्❋ ऐ ॥ अरव्दु'पोरेवरुहन''राज्य मुक्तिगे'। वारि 'हृन्नोन्दलेय'नेले ॥१७४॥
व❋ व 'राज्यवनाळ्द चक्रियु पूजिसि'। सवि'दन्त'राज्य वाहन_ अ❋ नी॥धव'लोत्पलकु'[२१]ळ'कोटिलेक्कदोळ्प्प'।नवकु'अन्ताविकाव्यव'सा॥१७५॥
हृ❋ दवे'मोडुव तन्तियनाद'दाटवु।ओवगि'बन्द शृरी॑शंख'॥ पद ग❋ र्भ'वाहनवेम'गाटविश्रुत'। सदव 'व नितत सर'[२२] सृति ॥१७६॥
अवरलि'तर्क व्याकरणर्' ॥१७७॥ र्वरु छन्दस्सु निघन्टु ॥१७८॥ आद्'अलंकार काव्य धरर्' ॥१७९॥ वदसिन 'नाटकाष्टांगर्'॥१८०॥
अवगणित'गणित ज्योतिष्कर्'॥१८१॥वद्गिद'सकल शास्त्रगळु'॥१८२॥ अवर'विद्यादि सम्पन्नर्'॥१८३॥ नृवियन्ते 'महाअनुभावर्'॥१८४॥
अवरलि'लोकत्रयाग्रर्' ॥१८५॥ वृदि'गारवद विरोधर'॥१८६॥ अवे'सकल महीमण्डलार्यर्' ॥१८७॥ लृधिय'तार्किक चक्रवर्ति॥१८८॥
अवे'सद्विद्या चतुर्मुखरु' ॥१८९॥ ड्व'षट्तर्क विनोदर्' ॥१९०॥ नृव'नय्यामिकव वाडिपरु' ॥१९१॥ अदरलि'वश्योषिकवस्' ॥१९२॥
सृविय 'भाष्य प्रभाकररु' ॥१९३॥ अवे 'मीमान्सक विद्याधररु'॥१९४॥ फृद् 'सामुद्रिकर भूवलयर'॥१९५॥
क❋ 'रणयोळ्ळ्वर मन्तरव' सरणिमिस् । अरुहन 'महिमेयिस्' रणा❋ रणा ॥'धरणेन्द्र पद्म यरागि'ताव्'परितम्व'वर।हृावु'वाहनगळ'लि॥१९६॥
प्❋ रिपरि'चिन्हेयु धरेगे विस्मयकर । वरिग'[२३] ने'म् अन्त्रसिम् हृ❋ पीठ॥ व'रिद'नेरिव महवीर'जिननायक'हरिव'रवाहनव'जन' ॥१९७॥
पे❋ 'रेल्ल राज्य चिन्हेगे वीररसवेन्दु'। हारि 'मनेय मेलएर्' दो❋ सार'इदहरित्व[२४]पद्ममगळेरडुनूरिप्प'।सारु'तम्बरचक्र पद्म'॥१९८॥
आ❋ 'गळ_नाल्कु'स् 'सेरिसुत' पद्मगळोम्भय्' सागे । 'नूराव्युनाल्' घा❋ क॥ ईगल्'कने'पद्मविष् ठरपाद'वि।राग'विजय[२५]'उत्पल'रु॥१९९॥
हृ❋ र'पुष् पवाहन देव' श्री 'नमिजिन'। गुरुवि'नुत्पत्ति' यग्ररु हृ❋ सिरि'कालद चिन्हे' सत्पथवनु तोरि'।गुरुवे 'नम्मस् पालिसेम्बे' ॥२००॥
उ❋ सरि'चित्पथ मार्गकयदिसला(२६) मनु'। विष'मथनय्य'न्अस् प्❋ द'नु॥वृषभ तीर्थंकर'जिनमुद्रेयोळुतप'।वश'गव्वजिनवृक्षवदन'म्॥२०१॥
ट्❋ णटण होळेव् अशोकेय रुपेन्नुव । घनवटवृक्षवद्अ' र❋ लि॥गुणदरिग[२७]म् श्री'मनसिजमर्दन'।धनद्'अजित जिनेश्वर'रे।२०२
ट❋ वणेय'लनुभारव तपकोड्डुजि । न'व'नाद एळेले बाळे'य' वन या❋ 'गिडदडि 'एन्नुवशोकेयु'। नव'ताम् स्वच्छ [२८] णरभव ॥२०३॥
य❋ श'वन्तिम वेहव शाल्मलि'वर'। वश 'वृक्षद डियोळु बइ' न् दु ॥ वशअ'ट्ट परमात्म शम्भव जिनरिगा' ।यश'वृक्षवे' सुरवन्ध' ॥२०४॥
आशायुर्वेव विषिज्ञर् ॥२०५॥ 'दृशधर्म योगसार धरर् ॥२०६॥ रसवाद वतिशय भद्रर् ॥२०७॥ आस हविनेन्दु वर्शनरु ॥२०८॥
त्स स्थावरजीवहितवर्॥२०९॥वश ब्रह्म विद्या ळषणरु॥२१०॥ अशा भूवलय दिग्भ्ररु ॥२११॥ तृसजीवगणनेय चतुरर् ॥२१२॥
रेसेवर स्वच्छाभिप्रायर्॥२१३॥यश राज्य चक्रवर्तिगळु ॥२१४॥आसे शब्दव विद्यागमरु ॥२१५॥ प्सरिप कन्नाडिनोडेयर्॥२१६॥
छशतव सूत्रांगधररु ॥२१७॥ न्सनसेयळिद सिद्धान्तर्॥२१८॥ पिसुणतेयळिद कन्नडिगं ॥२१९॥ कसवरनाडिनोळ्चलिपर्॥२२०॥
तसविद्य यतिशाय कुशलर॥२२१॥ स्सदक गणनेय कुशलर्॥२२२॥पुष्पगच्छदलि भूवलयर्॥२२३॥
को❋ टिय 'वृक्षववष्ण'(२९) ने'नरवन्द्य'। साटियळिद अभिनन् तु❋ साटिये 'अभिनन्दन मत्तु सुमतियु'। पेटेय 'सरल पूरियन्नु ॥२२४॥
ड्❋ गणित'वृक्षगळ्' वु 'मरदडियोळु'। सोग 'तपगेय्द वृक् मा❋ ग॥ अग'षगळे'धरणिगे सन्तोष।बगेहित'कारि[३०]वर्शन बोळ्'॥२२५॥
इ❋ वर् 'अगात्मनिरव कन्डिरदर'। सविवर 'दर्शनोत्पत् शं❋ सव 'तिय वृक्ष' हर्षद कुटकि शिरीष'। नव गळेरडम् 'स्पर्शव शो ॥२२६॥
ण्❋ वृकेय नरुह(३१)आत्म प्रकाशव पद्म'।नव 'प्रभ जिन,रात्म' ति❋ ळिये॥सिव'सुपाश्र्व जिनेन्द्र'स्वात्मसिद्धिनाग।सवि वृक्षवव मूलवि मास्म२२७
इ❋ रे 'चन्द्रप्रभ सुगुणि'(३२)वशगय्दात्मन'। सिरि 'पुष्पदन्त' ष❋ इक्षणव। व'र वृक्ष'होस अक्षवेनेनागभणियु'।बरे हस बेल्लवत्त वहू ॥२२८॥

अंतर श्लोक की तीन लाईन यहाँ होनी थीं परन्तु यहां चार लाईन होने से प्रथम अक्षर सर्प की गति से पढ़ने से नहीं निकल सकता है। पाठक लोग तीन तीन लाईन बनाकर पढ़ने से पहला पुन. पढ़ सकता है इस ग्रंथ मे यही एक अद्भुत कला है।

वृ❀ नव'ली वृक्षवडियलि'ह्'रसश्'ई। कम'तल जिननज्जा'३३ व ट❀ द ।। जिन'तपगेय्दु मुत्तुगवेने तुम्बुर'। वन'गिड'श्रपवर्ग दडिसिद्' ।।२२९।।
वु❀ दुरि 'पोस'म्'तपसिगळ प्रगण्यरु' । सदय 'श्रेयाम्सरु' श्र तु❀ ल।। मुददि'तपसिदशोकवदज्ज्'३४म'तपिसिद'।पितु'देहद केन्दु मुख'।२३०।
वृ❀ रिय'दि बिट्टु'व'श्रपवर्गवम् वासु' । सिरि'पूज्यर्'सुपवित्र' जि❀ नरु।।सिरिय'पाटलि जम्बूवृक्ष वितपिसिद'।वरवे'विमलनाथ नव'३५।२३१।
ए❀ ळिरि'मनसिजनम् गेद्दनन्त'रु । शील 'धर्म स्वामि' युक्त त❀ र।। पाळिय'कोनेगे श्रश्वत्थवु दधिय'श्र' । साल'वुवाव पर्ण दधि' ।।२३२।।

लुळिगि'डवडियिन्दय्दि' ।।२३३।। कोलु तात'जिमराव'सुप' ।।२३४।। यल'बित्रद महो३६ श्ररहम' ।।२३५।।
एलेयु'तराद शान्तियु' क।।२३६।। एलु'कुन्थु देवरु सुरुचि' ।।२३७।। वलवो 'रनन्दियु तिलक' ।।२३८।।
ट्ल 'सरदियवृक्ष मूल' ।।२३९।। यल'दलि तपवगेय् द'हन्' ।।२४०।। ललि'तरागिरुव असा ३७ वर्' ।।२४१।।
वलदर्'शनदोळगनरि' ।।२४२।। ऊलि'त श्री श्रर मल्लि' ।।२४३।। म्लात काद्रि भूवलय ।।२४४।।

व❀ श'दशिसिदात्म वृक्षगळु स्पर्श'। हस'मणिायतेर मावु शा❀ लि ।। वश'कम्केलिय हर्षद वृक्षय ।ळ'श'हहो ३८ घरसिघोळ मुनिसु' ।।२४५।।
श्र❀ निसु 'व्रत नमि देवरु'श्ररहन्त । गुरु 'राव वृक्षगळम्' स❀ बोरा'वरेये चम्पक वकुलगळ'म्बेर । ड' राव 'म् परमात्मर व्'र' ।।२४६।।
वृ❀ 'क्षवहह् ३९ समवसरणवनु नेमि। श्रक्षर'तोर्थंकरर्' न❀ सक्ष 'विमल मेषभृङ्ग (गिडद) बिमलरमे' रक्षे'धोळूर जनवि कप्' ।।२४७।।
दे❀ 'वल्प'होम्विदरमनश्रीमन् नेमि'। तावु'जिनरा४०सीमेय'म❀ नु ।। नोव 'ळिद श्री पार्श्व तीर्थंशनु' । पावेय 'सामरणीयकवा' ।।२४८।।

ववन्'द बाह'श्रा मरद' ।।२४९।। लवर'डिय सुवर्ण भद्रा' ।।२५०।। गवरा'वल' शोभेगे सम' ।।२५१।।
त्व'मेदवरव ४१ महवीरदेवनु'।।२५२।। मवतारे'शालोर्वीरुहद' ।।२५३।। ववएलव'ठि बहळ कर्म ।।२५४।।
न'बनेल्ल केडिसि' वहिसिद' ।।२५५।। वावे'पावा पुरवद' र ।।२५६।। वृव'शोकेयु सिहियागि' ।।२५७।।
श्रवि'हुवल्लि जस ४२ यक्षराक्ष'।।२५८।। रव 'स व्यन्तरर शोकवने'।।२५९।। ववने'ल्ल'साक्षात् श्रागि' ।।२६०।।
गेवे'निल्लिस्'व'रक्षेय म' ।।२६१।। शवेय रगळेल्लवनु श्रशो'।।२६२।। 'क् श्रवेन्दी कविसलितलि वय' ।।२६३।।
लिविध'महि'४३ यु'रसयुलवा' ।।२६४।। कवि'देल्ल वृक्षदि माले' ।२६५।। कवन'गळ'होस वम्देमळ्' ।।२६६।।
तविद'लन्कार'रसवुक्कि' ।।२६७।। ववु'बरुव फलावळि वगि' ।।२६८।। रिवि'ह्'रसमान विभव नो'।।२६९।।
गेवु'डमम ४४ सोरुव गन्ध'।।२७०।। रव'द भारव हूवनु'भूरि' ।।२७१।। ववु 'वय्भवद शाखेगळ' ।।२७२।।
श्रवु'वारिघोळेल्ल भव्य' ।।२७३।। वुवु श्रा'त्मरशोकवु हारे' ।।२७४।। तव'नोरोगिगळ'म् माडे ।।२७५।।
रव'हरम् ४५ तरगळु इप्पत्'।२७६।। ववु'नालकर हूवम् परमा' ।।३७७।।

वा❀ म श्रा'त्म वय्द्य शास्त्रदलि'बरेदिह हदि'। गम'नेन्दु सा' सु❀ विरजाति'।।सम'गेपरममंगलकन्दुन्द'४६ह'तोक्षरा।सम''वाग्मिह स्यात्पद'।।२७८।।
स❀ न'द बुद्धि य'तोक्ष्णतेयेष्टेम् बुदनु'।।घन'तीक्ष्णवाग' चि❀ रितोडे' ।। घन 'पुष्पायुर्वेदद'रक्षणे' । तन'पोदपुदुदेमन्[४७]वाग।।२७९।।
म❀ नु'लेक्कवनु नोडिदरु बरु वोम्बत्तु'। जिन'श्रीवीर जिनन' र❀ 'भूव'।। तनु'लय' साविर एरडु इंनूरम्बत्' एने 'श्रक्षर' ईवाग सरि' ।।२८०।।
ह❀ रि'यहुदरिग'४८ श्रन्तर भूरोम्बत् श्रोमृबत्। वरे ऐदश्रोन्द म❀ काव्य।। वरेऐदुमूरोम्बत् सोन्ने बोम्बे श्रंक । सिरि'भूव' वीरसेन भूवलय।।२८१।।

समस्त ऋ श्रक्षरांक १०९३५+ समस्त श्रन्तराक्षरांक १५,९९३=२६,९२८+समस्त श्रन्तराक्षर २२५०=२९,१७८

श्रथवा श्र—ऋ २,२२,९०३+ऋ २९,१७८=२५२,०८१ ।

बारहवां अध्याय

बारहवां अक्षर तीसरा 'ॠ' है, इस अध्याय का नाम 'ॠ' अध्याय है। इसमें पच्चीसवें श्लोक तक विशेष विवेचन करेगे। २६ वे श्लोक से अन्तर काव्य निकल कर आता है, उस काव्य को अलग निकाल कर लिख लिया जाय तो भी उसमें पुनः दूसरा काव्य देखने में आता है। इस गद्य मे सबसे पहले वह दिया जाता है। इस गद्य में इस तरह का विषय है कि गुजरात प्रान्त में श्री नेमिनाथ तीर्थंकर और कृष्ण जी एक जगह रहते थे। गुजरात प्रान्त मे एक समय नेमिनाथ और कृष्ण दोनो गुजराती मे बातचीत करते थे। उस समय गुजराती और संस्कृत प्राकृत दोनो मिश्र भाषा मौजूद थी, ऐसा मालूम पड़ता है। उसमें से कुछ विषय यहां नीचे उद्धृत किया जाता है –

१ रिषहादिएाम् चिण्हम्, गोवदि, गय, तुरग, वाएारा कोकम्, पउपयम्, एानदवत्तम् अद्धससी, मयर, सो ततीया।

गडम्, महिस, वरहह_हो, साही वज्जएाहिरिए भगलाय, तगर कुसुमाय, कलसा, कुम्मुप्पल, सख अहिसिसूहा॥

अर्थ—वृषभादि २४ चौवीस तीर्थंकरो के चिन्ह वृषभ हाथी, घोडा, बन्दर, कोकिल, पक्षी, पद्म, नद्यावर्त, अर्द्धचन्द्र, मगर, सो ततीय (वृक्ष) भेरुड पक्षी, भैंष, सुवर, हस, वज्र, हरिएा, मेढा, कमल पुष्प, कलश, मछली, शंख सर्प और सिंह। इन चिन्हो के विषय मे जैन ग्रन्थो में भिन्न-भिन्न मत मालूम पड़ते हैं। इसके विषय में आगे चलकर लिखेंगे और १३ वे अध्याय से बहुत प्राचीन काल के दिगम्बर जैनचार्यो की परम्परा से पट्टावली के विषय में यहां एक गद्य अन्तर पद्यो से बहते हुए १४ वें अध्याय के १३० वें पद्य तक चला जाता है। कानडी मे कर्णाटक पप कवि के पहले चत्ताना अर्थात् चतुर्थ स्थान (यह भूवलय के काव्य के सांगत्य नाम का छन्द है) और बिजड़े अर्थात् दो स्थान नामक काव्य लोक-प्रसिद्ध थे। उस बेजड़ नामक काव्य को यहां उद्धृत करते हैं।

इस अध्याय में मुनियो के संयम का वर्णन किया गया है। ऋषियों के अध्यात्म योग साम्राज्य के वशीभूत जो अनशन अवमौदर्य, व्रतपरिसख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश ये छह बहिरग तप और प्रायश्चित्त विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, उत्सर्ग और ध्यान ये छह प्रकार के अंतरंग तप हैं इन दोनों को मिलाकर बारह तप होते हैं। इन तपों की सामर्थ्य से प्राप्त हुआ यह यश-सिद्ध भूवलय काव्य है ।१।

इस अढाई द्वीप में तीन कम नौ करोड़ शूरवीर दिगम्बर महा मुनियों के अन्तरंग की ध्यानाग्नि के द्वारा उत्पन्न यह सारात्म नामक भूवलय ग्रन्थ है। इन तीन कम ९ करोड मुनियों की संख्या इस ग्रन्थ में [सत्तादी अट्ठंता छण्णव मज्झा] अर्थात् आरम्भ में सात, अंत में आठ और बीच में छै बार नौ हों, अर्थात् आठ करोड ८९९९९९९७ इस प्रकार बताई गई है ।२।

उत्तम संहनन वालों की जो व्यवहार धर्म की परिपाटी है वह व्यवहार नय है और तद्भव मोक्षगामी के चरम-शरीरी व्यक्तियों ने जो अपनी वज्र-मय हड्डियो के बल से शत्रु का नाश करके प्राप्त की हुई जो शुद्धात्म सिद्धि परमात्म अग है उस अग का नाम ही भूवलय है ।३।

पुनः इसमें यह बताया है कि आदि का सहनन व्यवहार नय तथा निश्चय नय का साधन है। निश्चय साधन से साध्य किया हुआ जो मंगल काव्य पढने मे आया है वह भूवलय ग्रन्थ है ।४।

इस उत्तम नर जन्म के आदि और अन्त के जितने, शुभकर्म हैं सभी जब तक वह पुण्य कर्म मनुष्य के साथ रहने वाला है उतने में ही उनके परिपूर्ण सुख को एकत्र कर देने वाली तथा उस सुखके साथ साथ मोक्ष पद को प्राप्त करा देने वाली ये अठारह श्रेणिया हैं। उस श्रेणी के अनुसार आत्म सिद्धि को प्राप्त करा देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।

इन अठारह श्रेणियो को अर्थात् ऊपर से नीचे तक और नीचे से ऊपर तक पढते जाना और नीचे से ऊपर पढते आने में अठारह श्रेणियों के स्थान मिलते हैं। जिस तरह भूवलय में अठारह श्रेणी पढने में प्रत्यक्ष मालूम हो जाता है इसी तरह भूवलय ग्रन्थ पढने वालो का राजाधिराज, मंडलीक इत्यादि चक्रवर्ती और तीर्थंकर की अठारह श्रेणियां प्रत्यक्ष रूप से मिल जाती हैं ।५।

इस मार्ग से चलने वाले भव्य जीवों को रक्षा करने वाला यह भूवलय सिद्धान्त है ।६।

इस संसार का अन्त करने के लिए अन्तिम मनुष्य जन्म को देने वाला भूवलय है ।७।

दूसरा जन्म ही अंतिम शरीर है ।८।

जैसे नौकर को अपने स्वामी द्वारा महीने में वेतन मिलता है उसी प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ समय समय पर मनुष्य को पुण्य बध प्राप्त कराने वाला है ।६।

गर्भाधान तथा जन्म से मरण तक सोलह सस्कार होते हैं, उसमें मौंजी-बंधन अर्थात् व्रत संस्कार विधि इत्यादि उत्तम सस्कार हैं। इन विधियो का उपदेश करने वाले गुरुग्रो के द्वारा चलाया हुग्रा यह भूवलय है ।११।

इन ग्रठारह श्रेणियो को साधन किये हुए गग वश के राजाग्रो के काव्य हैं। इस गग वश के साथी राजा लोग प्रतिदिन भूवलय का ग्रध्ययन करते थे। यह काव्य उनके लिये मत्र के समान था ।१३।

भूवलय का चक्र बध ढाई द्वीप के समान है ।१४।

यहां पराक्रमशाली 'गोट्टिग' दूसरा नाम शिवमार चक्रवर्ती थे। यह शिवमार सम्यक्त्व शिरोमणि 'जक्की लक्की ग्रब्बे' के साथ इस भूवलय को ग्राचार्य कुमुदेन्दु से हमेशा सुना करते थे ।१५।

कर्णाटक भाषा में राज महल को 'ग्ररयने ग्रसे' कहते हैं। ग्ररयने ग्रथवा ग्रथाघर ऐसा ग्रर्थ होता है, जब इस राज महलमे गुरु का मठ बन जाता है, तब पूर्ण गृह बन जाता है ।१६।

इस शव्दार्थ को ग्रज्ञानी लोग नही जानते ।१७।

भूवलय में जो ज्ञान है, वह बहुत मधुर तथा मनोहर है। मधुर ग्रर्थात् मीठे रस के लिये ग्रनेक चीटिया उमके चारो ग्रोर चाटने के लिये जुट जाती हैं। परन्तु इस ज्ञान रूपी मीठे को कोई भी खाने के लिए [समाप्त करने के लिए] नहीं जुटता।

भूवलय के ग्रध्ययन करने वाले को वृद्धावस्था ग्राने पर भी तरुण ग्रवस्था ही दिखाई देती है। गग वंश के राजा के साथ ग्राचार्य कुमुदेन्दु का सघ कल्वप्पु तीर्थ ग्रर्थात् श्रवण वेलगुल क्षेत्र में दर्शन के लिए गया था। पुरातन समय में लक्ष्मण ने गदा दंड के द्वारा ग्रपनेभाई श्री रामचन्द्र जी के दर्शन के लिये एक बडे पहाड की शिला पर एक भगवान के ग्राकार की रेखाएं खींची। वे रेखायें बाहुबली की मूर्ति के समान दिखने लगीं। तब रामचन्द्र जी ने उसी मूर्ति की ग्राकार रेखा को मूर्ति मान कर दर्शन कर भोजन किया। उस ग्राकार पर रेखा से मूर्ति बनने के कारण उसका नाम 'कल्लु वप्पु' रक्खा था ।२०।

इस ग्रध्यात्म-राज्य के नाम को कुमुदेन्दु ग्राचार्य की उपस्थिति में ग्रर्थात् उन्हीं के समय में लोग भूल गये थे ।२१।

जिस समय प्रतिवर्ष यात्रा को जाते थे, उस समय सम्पूर्ण राज्य में सम्पूर्ण जनता को रास्ते में शर्बत, पानी को पिलाने के लिए मार्ग में प्याऊ का प्रबन्ध कर दिया था ।२२।

बाण का ग्रग्र भाग बहुत तीक्ष्ण होता है। उसी प्रकार लक्ष्मण के बाण की तीक्ष्ण ग्रग्र नोक से ग्रब ग्रत्यन्त सुन्दर रूपसे दर्शन होने वाले भव्य तथा ग्रत्यन्त सुन्दर ग्रौर मनोज्ञ बाहुबली की मूर्ति बन गई ।२४।

ऐसा महत्वशाली कार्य राज महल तथा गुरु का मठ ये दोनों एक रूप होकर कार्य करे तो महत्वशाली कार्य होता है, ग्रन्यथा नही। कुमुदेन्दु ग्राचार्य के ग्रन्यत्र भी कहा है कि—

तिरेय जीवरनेल्ल पालिप जिन धर्म नरर पालिसुव वेनरिदे।
गुरु धर्मदाचार वनुमरिदिह राज्य नरर पालिसु वुदनरिवे॥

ग्रर्थ —समस्त पृथ्वी मडल के सब जीवो की रक्षा करने वाला जैन धर्म मनुष्यों की रक्षा करे उसमें क्या ग्राश्चर्य है? इसी तरह गुरु की जो ग्राज्ञा को पालन करने वाले राजा ग्रपने राज्य का पालन करने में समर्थ हों तो क्या ग्राश्चर्य है?

इस बात को ग्रपने ध्यान मे रखते हुए राजमहल ग्रौर गुरु का ग्राश्रम एक हा था ऐसा कहा।

ईहा ग्रर्थात् ऊपर कहे हुए जो विषय हैं उनकी ऋधि सिद्धि के लिए भगवान ऋषभदेव द्वारा कहा हुग्रा मुख्य सिहासन ग्रथवा वाहन बैल व हाथी यह नवकार शब्द के स्यात चिन्हित है ग्रर्थात् ।२६।

लांछन के समान रहनेवाली पवित्र शुद्धता को इस वर्तमान का कहा हुग्रा ग्रर्थात् इस लाछन का कहा हुग्रा इस भगवान की महिमा को कहां तक

वर्णन करें। सर्वार्थ सारमय पदार्थ का साध्य कर देनेवाले अर्थात् अनेक प्रकार के वैभव को प्राप्त कर देनेवाले, तथा श्रावकों को यह सारी वस्तु अत्यन्त उपयोगी तथा प्रदान कर देने वाले हैं।२७।

इस प्रकार इन दोनों श्लोको का अर्थ कहा गया। इन्ही दोनो श्लोको को पहचानने के लिए अर्ध विराम डालकर कोष्ठक मे बन्द किया है। श्लोक में जहां अंग्रेजी का अंक डाला है वहा एक श्लोक का अर्थ निकलता है। वहा से आगे दूसरा अर्थ निकलता है। इसी प्रकार प्रत्येक श्लोक का अर्थ निकालना चाहिए और आगे भी इसी प्रकार से प्रत्येक अध्याय और प्रत्येक श्लोक मे मिलेगा।

प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में उस कार्य के गौरव के अनुसार भिन्न-भिन्न मंगल वस्तु को लाने की परिपाटी है। अर्हंत देव ने समस्त मगल कार्यों को दो भागों में विभाजित किया है—१ लौकिक मंगल २ अलौकिक मगल।

अलौकिक मगल की विवेचना आगे चलकर करेंगे लौकिक मगल में श्वेत घोड़े को लाकर देखना चाहिए।२८।

श्वेत घोड़े से भी अधिक वेग से भागनेवाले उस मन को अमगल जैसा माना जाता है। उस अमगल रूप मन को मगल रूप मे परिवर्तन करने के लिए अत्यन्त वेग से दौडनेवाले को, अत्यन्त मत्त होकर कूदने वाले चंचल बन्दर को खड़ा कर देखने से अपने चचल मन को एकाग्र चित्त बनाने के निमित्त इन दोनों के मंगल में लाने का यही प्रयोजन है।२६।

रैणुकादेवी अर्थात् श्री परशुराम की माता स्या द्वाद मुद्रा से अपने मन को बांधती थी। जिस समय उनके पति उनके ऊपर क्रुद्ध हुए थे उस समय रैणुका देवी ने अपने मन को एकानु करके यह चिन्तन किया कि मेरा आत्मा ही मेरा सर्वस्व है यही मेरा सहायक है, उसी समय उनके पुत्र परशुराम के परशु के आघात से उनका प्राणान्त हुआ और उन्होंने उत्तम शुभ गति को प्राप्त किया। अर्थात् देवगति प्राप्त की।

(यह प्रसग अन्य वैदिक ग्रन्थ में नही है)

इस प्रकार अनेक विशेष विषयो को प्रतिपादन करने वाला यह अतिशय भूवलय ग्रन्थ है।३०।

(श्लोक न० ३१ से ५० तक में सेनगण गुरु-परम्परा का वर्णन आया है। इस विषय का प्रतिपादन व विवेचन ऊपर किया जा चुका है)।

अपने को जब उत्तम पद की प्राप्ति होती है। उस समय मानव के हृदय रूपी चक्र में चमकने वाले उज्ज्वल ज्योति को कोमल करके त्रिगुप्ति से अपने अन्दर ही अपने आत्मा (हृदय चक्र) को बांधना उस समय आत्मा अपने अन्तरग के समस्त गुणो में घूमता रहता है। उस समय अनेक तत्व अपने भीतर ही दीखते हैं। उस समय वह आत्मा एक तत्व को देखकर आनन्दित होते हुए दूसरे तत्व मे और इसी तरह अनेक तत्व में घूमता रहता है। इसी को स्वज्ञेय में परज्ञेय को देखना कहते हैं। [यह अत्यन्त सुन्दर अध्यात्म-विषय है]।

इस अध्यात्म का अत्यन्त मादक सुगन्ध नवनवोदित, अर्थात् "नयी-नयी उत्पन्न हुई गध" जैसे नव अंक अपने अन्दर समावेश कर लिए हैं उसी प्रकार इसके भीतर नये नयेवर्ण रूपी चौंसठ अक्षर निकलते हुए तथा न्यूनाधिक होते हुए राशि में सभी अंको में घूमने का चरित्र अर्थात् बंधन रूप है।५२।

कमल के ऊपर के सूक्ष्म भाग को स्पर्श करते हुए नीचे उतर कर आने वाले, भ्रमर के समान उसी में घूमते समय रत्न, सोना, चांदी का रंग दीखने लगता है।५३।

इस मर्म को समझकर पारा और गंधक के गणित क्रमानुसार भस्म करके धर्मार्थ रूप में इसका उपयोग करना यही पुष्पायुर्वेद का मर्म है।५४।

जलज अर्थात् जल कमल की एक-एक पखुड़ी को को स्पर्श करके कमल रूप बन गया, उसी प्रकार द्रव्य मन भी है। द्रव्य मन अनेक विषयों से भिन्न-भिन्न होने पर भी एक ही है। उसको एकत्रित करके, जैसे अक्षर को मात्रा और अंक मिलाकर जैसे काव्य रूप बना देते हैं उसी प्रकार द्रव्य मन को भी बाध दे तो चन्द्रमा के समान वह भीतर का मास पिण्ड धवल-रूप दीखता है। इसका नाम चित्र विद्या है।५५।

(श्लोक न० ५६ से श्लोक नं० ८२ तक सेनगण का वर्णन आता है)

जैसे नव अंक अपने अन्दर ही वृद्धि को प्राप्त करता है उसी पर संरक्षित भी होता है। इसी तरह होने के कारण ही नव पद भाग्य-शाली कहलाता है,

और यह स्वस्तिक रूप भी है। यदि यह सिद्ध हो जाय तो सर्वत्र अपनी रक्षा कर लेता है।८३।

व्यवहार और निश्चय यह दोनो नय मिश्रित होकर एक ही काव्य मे प्रवाह रूप होकर वृद्धि को प्राप्त होनेवाले चतुर्थी के चन्द्रमा की किरणो के समान, साथ साथ प्रवाह रूप में आगे बढता जाता है।८४।

मन और प्राण दोनो एक समान रहनेवाले को करिमकर स्वरूप कहते हैं। अर्थात् हाथी और मगर के समान रहनेवाले को कहते हैं। मन और प्राण दोनो एक रूप में होकर रहनेवाले द्विधारा शस्त्र के समान स्याद्वाद रूप में दीख पडता है। इस प्रकार यह जिनेन्द्र भगवान की वाणी मे दीख पडता है।

"करी कथचित् मकरी कथचित्, प्रख्यापयज्जैन कथचिदुक्तिम्" अर्थात् एक तरफ हाथी का मुह और दूसरी तरफ देखा जाय तो मगर का मुह, इसी का नाम 'कथचित्' है। यह "कथचित्" वाक्य जिनेन्द्र भगवान् का वाक्य है।८५।

कल्प वृक्ष एक क्षण मे जैसे दस प्रकार की वस्तु को एक साथ ही देते हैं उसी प्रकार पारा और गधक से बनी हुई रस रूपी वनोषधि अनेक फल एक ही साथ देती है। वैसे ही द्रव्य मन को बद्ध रूप कर दिया जाय तो एक क्षण मे अनेक विद्याओ को साध्य कर देने योग्य बन जाता है। इसी अक्षर से सभी विद्याओ को निकालकर ले सकते हैं। गोचर वृत्ति से आहार को लेकर अन्त मे मुनि देह च्युत होकर स्वर्ग मे अपने कठ मे निकले हुए अमृतमय से प्राप्त होकर आयु के अवसान में वहा से च्युत होकर इस भरत खड मे आर्यकुल में जन्म लिया,। उन लोगो (महात्माओ) ने इन कल्प विद्याओ को २४ भगवान के वाहन (चिन्हो) को गुण करते हुए आये हुये लब्धाक मे अक्षर बनाकर इस विद्या को प्राप्त कर स्वपर हित का साधन कर लेता है।

यहां ऊपर भूवलय के चतुर्थ खड मे आये प्राण वायु पूर्व के प्रसग को उद्धत करते हैं।

"सूतं केसरगंधकं मृगनवा सारद्रुम मर्दितम्"

अर्थात् पारा २४, तोला, गधक १६ तोला, नवसार १० तोला इस प्रकार इसका अर्थ होता है। इसका अर्थ कोई वैद्य ठीक नहीं कर सकता भूवलय से ही इसका अर्थ ठीक होता है। २४ भगवान के चिन्ह को लिया जाय तो भगवान महावीर का चिन्ह 'सिह' है इसलिए चौवीस लेना, इस श्लोक को बता दिया। शातिनाथ भगवान का चिन्ह हरिण होने से गंधक १६ है। शीतल भगवान का चिन्ह 'वृक्ष' होने से नवसार दस तोला है। इस गणित का नाम 'हरशकर गणित' है। ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने कहा है।८७।

[श्लोक न० ८८ से श्लोक न० ११४ तक ऊपर कहे अनुसार वर्णन किया जा चुका है।]

दिगम्बर जैनाचार्यों ने बहिरंग मे गोचरी वृत्ति पुद्गलमय अन्न ग्रहण करते हैं। और अनरंग मे अपनी श्रीचर्या अर्थात् अपनी ज्ञानचर्या मे ज्ञान रूपी अन्न को ग्रहण करते है। इसी तरह 'गडवेरुंड' अर्थात् दो सिखाला पक्षी भी ग्रहण करता है। [इस पक्षी का चिन्ह मैसूर राज्य का प्रचलित राज्य चिन्ह है)।११५।

गोचरी और श्री चर्य ये जिनके वश नही है उनका मन भैंस के समान सुस्त रहता है। उस सुस्त भाव को बतलाने के लिये भैंस के चित्र को लांछन रूप में बताया गया है।११६।

हमारे अतरग मे प्रगट हुई दर्शन शक्ति को लेकर और शास्त्र रूप में बनाकर लिखने का जो कार्य है, यह कार्य जिनके अन्दर जिनेन्द्र भगवान होने की शक्ति प्रगट हुई है केवल वे ही इस शास्त्र की रचना कर सकते हैं, अन्य कोई नही। इस बात को बतलाने के लिये सूअर के चिन्ह को यहां दिखाया है।११७।

जिस जिनेन्द्र देव ने शूकर चिन्ह को प्राप्त किया है, यदि उस चिन्ह की महिमा को यत्नाचार पूर्वक समझ ले तो वह हमारी रक्षा करके अनेक प्रकार की विद्याओ को प्राप्त करा देता है। द्रव्य सूत्र के अक्षर किसी कल्प-सूत्र से आये हुए नही हैं ये तो अनन्त राशियो से निकले हैं। प्रत्येक आकाश प्रदेश में अमूर्त और रत्नराशि के समान रहने वाले काल द्रव्य असंख्यात हैं। उस असख्यात राशि के प्रत्येक कालाणु में अनादि कालीन कथन है और अनन्त काल तक ऐसा हो चलता रहेगा। जब एक कालाणु में इतनी शक्ति है तो उन सब शक्तियो को दर्शन करने की शक्ति श्री जिनेन्द्र-देव हमें प्रदान करें।११८।

रीछ ने अपने शरीर में जिस प्रकार अपने शरीर में सम्पूर्ण बालों को गूंथ लिया है उसी प्रकार सम्पूर्ण द्रव्य सूत्र के अक्षरो को कालाणु ने अपने में समावेश कर लिया है। इस बात को सूचित करने के लिए रीछ के लाछन (चिन्ह) को योगी जना ने शास्त्र में अंकित किया है। उस अंकित चिन्ह की देवगण पूजा करते हैं।११६।

जगत में वज्र अत्यन्त बलशाली है। इसमें पारा मिला कर भस्म किए हुए भस्म को शस्त्र के ऊपर लेप किया जाय तो वह शस्त्र सम्पूर्ण आयुधो को जीत लेता है। उसी प्रकार जैन धर्म इन सम्पूर्ण सूक्ष्म विचारो का शिक्षण देते हुए भव्य जीवों की रक्षा करने वाला है। इस विषय को बताने के लिए वज्र लांछन अंकित किया है।१२०।

नोट:—श्लोक न० १२१ से श्लोक नं० १४३ तक अर्थ लिखा जा चुका है। मूर्ख से मूर्ख अर्थात् अक्षर शून्य को भी जिसको "अ सि आ उ सा" का उच्चारण करना नहीं आता है ऐसे मनुष्यो को भी तुष्माष इस मत्र को देकर अति वेग से उनको ज्ञान शक्ति बढाने वाला एक मात्र जैन धर्म ही है। इसी प्रकार सम्पूर्ण जीवो को इनकी शक्ति के अनुसार उपदेश देकर उनके ज्ञान को बढ़ा देता है।

तुष्माष, कहने का अभिप्राय यह है कि 'तुषा' ऊपर का छिलका है और 'माष' भीतर की उडद की दाल है। छिलका अलग है और उसके भीतर की दाल अलग है। उसी प्रकार शरीर अलग है और आत्मा अलग है। यह उपदेश अज्ञानियों के लिए एक महत्व पूर्ण उपदेश है।१४४।

संसारी जीवो के लिए अत्यन्त शील गति से पुण्य बन्ध होना अनिवार्य है। इस हेतु को बतलाने के लिए 'हरिण' लाछन (चिन्ह) अकित किया गया है। जगल के रास्ते में पेड से गिरे हुए कच्चे पत्ते के रस के द्वारा अत्यन्त वेग से दौडने वाले चंचल पारे को बांध दिया जाता है। उसी तीव्र वेग से शरीर के रोग नाश के निमित्त को बतलाने के लिए आरोग्य को शीघ्रातिशीघ्र बढाने के लिए यहां 'पादरस' का प्रयोग बतलाया गया है।१४५।

सत्रहवें भग के गणित में मेढा का दृष्टान्त दिया गया है। वह मेंढा सभी प्रकार के पत्ते को खाकर केवल बकरी के न खाने वाली वस्तु को छोड़ देता है। उसी प्रकार इस जीव को पाप को छोडकर पुण्य को ग्रहण करना चाहिए।१४६।

यह भूवलय रूपी समस्त अक्षर द्रव्यगमन की राशि लोकाकाश के संपूर्ण प्रदेश मे व्याप्त है। जिस प्रकार वह व्याप्त हुआ है उसी प्रकार यह जीवात्मा को भी ज्ञान से जो-जो अक्षर जहां-जहां है वहां वहा ज्ञान के द्वारा पहुंच कर समझ लेना चाहिए। उसी प्रकार भूवलय चक्र के प्रत्येक प्रकोष्ठ में रहने वाले प्रत्येक अंक ७१८ भाषाओं में रहने वाले समस्त विषयों को स्पर्श करते हुये भिन्न-भिन्न रस का आस्वादन कराता है।१४७।

वाराणसी अर्थात् बनारस मे वासुदेव ने नन्द्यावर्त गणित से उपरोक्त शब्द राशि को समझ लिया था और अन्य दिव्य साधन को भी साध लिया था।१४८।

नोट—श्लोक न० १४६ से १७१ तक की व्याख्या की जा चुकी है।

नवमाक चक्र में समस्त मंगल प्राभत चौदह पूर्व बडा है। उपमा से देखा जाए तो विचित्र चौंसठ वर्ष रूपी कुंभ में समस्त द्वादशांग रूपी अमृत भरा है। ससारी जीवो का सम्पूर्ण दशा उस कुभ के द्वारा जानी जा सकती है। इस प्रकार करने की शक्ति जिनमे नहीं है वे इस कुभ की पूजा करें।१७२।

कुंभ भरे हुए समस्त अक्षर नव पदो के अन्तर्गत हैं। अर्हंत सिद्ध आदि नव पद ही रक्षक रूप भद्र कवच है। वह भद्र कवच कभी नाश नहीं होने वाला है। इस बात को सूचित करने के लिये ही कछुए का लांछन [चिन्ह] है। यह कविजनो की काव्य रचना के लिए महत्व पूर्ण वस्तु है।१७३।

राज्य में पहले फैली हुए कीर्ति ही राज्य को भद्रता को सूचित करती है। उसी तरह जब जीवों को व्रत प्राप्त होना है तो उस समय ११ प्रतिमा अर्थात् श्रावको के ११ दर्जे अर्थात् श्रावक धर्म रूपी राज प्राप्त होता है। जब श्रावक लोग अपने व्रत मे भद्र रूप रहते हैं, वही मोक्ष महल में चढने की प्रथम सोपान है। यहां से जीव का स्थानादि षट्खड आगम रूपी सिद्धान्त राज अर्थात् महाव्रत में समावेश हो जाता है।१७४।

कुमुदेन्दु आचार्य के शिष्य, समस्त भारतवर्ष के चक्रवर्ती ने इस भूवलय के अतर्गत षटखंड आगम को लेकर करोड़ों की गिनती से गिनते हुए निकाला

था। उसका आदि अन्त का रूप काव्यमय था। अर्थात् पहले श्लोक का अंताक्षर ही श्लोक का प्रथम बन जाता था।१७५।

सरस्वती देवी अपनी उंगलियो से वीणा पर जो टकार का मधुर नाद करती है उस नाद से निकले हुए शब्द रूपी भूवलयो से श्रुतज्ञान को लेकर शिवमार चक्रवर्ती ने पढाया था ।१७६।

नोट—१७६ श्लोक से १९५ श्लोक का विवेचन हो चुका।

एक मदारी एक स्थान पर बैठा हुआ था। उसने भग पीकर अग्नि को नीचे फेंक दिया। वह अपनी पोटली मे नाग नागिन दो सर्प लिये बैठा था। भग पीकर फेंकी हुई अग्नि उस पोटली में जाकर गिर पडी और अन्दर ही अन्दर सुलग गई। तब उस पोटली मे रखे हुए नाग नागिन प्राण को न छोडते हुए दोनो आपस में लिपटे हुए ऊपर उठकर खडे होते हुए अग्नि की जलन के कारण तड़प रहे थे। उस समय उसी मार्ग मे आने वाले पहले भव के पार्श्वनाथ भगवान अपने पूर्व भव मे यतिरूप मे जब आ रहे थे तब इन दोनो नाग-नागिनियो के मरण समय को देखकर तुरन्त ही वहा पहुच गए और इनको पच परमेष्ठियो के नवकार मत्र को सुना दिया। कभी किसी भव मे न सुने हुये परम पवित्र इस मन्त्र के शब्द को सुनकर वे दोनो नाग नागिन एकाग्र चित्त मे स्थिरता के साथ ऊपर देखते हुएखडे हुए। तब आकाश मार्ग से धरणेन्द्र और पद्मावती का विमान जा रहा था। वह विमान अत्यन्त वैभव के साथ जा रहा था। उस महिमा की इच्छा रखते हुए निदान बन्धकर उत्तम सुख की प्राप्ति करलेने के मार्ग को छोडकर भुवन लोक मे जाकर धरणेन्द्र पद्मावती हुए। यहा कई लोग शका करते हैं कि—इस मन्त्र के मन्त्रण से आम टूटकर गिर जाता है क्या? और बहुत से लोग वाद-विवाद करते हैं। किन्तु यह बात ठीक नही है कि—तत्वार्थ सूत्र में उमा स्वामी आचार्य ने "ध्यानमन्त्रमुहूर्तात् एकाग्र चिन्तानिरोध ध्यान" अर्थात् एक वस्तु पर अंतर्मुहूर्त अर्थात् ४८ मिनट तक ध्यान रह सकता है। अगर मनुष्य अपने ध्यान को अंतर्मुहूर्त काल तक स्थिर होकर करना है तो वह उतने समय में केवल ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अब विचार करो कि शरीर को मैं कैसे छोडू ऐसा मन में आर्त रौद्र कर मरे हुए जीव को दुख मे प्राप्त होना तथा नीच गति मे जाकर उत्पन्न होना स्वभाविक है। इसी तरह पंच परमेष्ठि नमस्कार मंत्र को सुनकर शरीर की वेदना को भूलकर समाधिस्थ हुआ उन दोनों जीवों को सद्गति होने में कौनसा आश्चर्य है? अर्थात् आश्चर्य नही हैं।

कुमुदेन्दु आचार्य ने अज्ञानी जीवों के कल्याण के लिए केवल अ सि आ उ सा मन्त्र का ही प्रयोग करके अत्यन्त मूर्ख तथा निरक्षर भट्ट जैसे जीवो को भी आयु के अवसान काल में इन तुष माष या पच परमेष्ठी महा मन्त्र को उन जीवों को देकर अंतिम समय समाधि स्थिरता कराके मूर्ख को ज्ञानी बनाकर देव गति प्राप्त करा दिया. यह कितने उपकार की बात है! क्या जैनागम का महत्व कम है? अर्थात् नहीं।

पार्श्वनाथ भगवान को कमठ के द्वारा जब उपसर्ग हुआ तब मातंग सिद्धदायिनी इत्यादि देव, देवियाँ उस उपसर्ग को दूर करने के लिये क्यों नही आए और धरणेन्द्र पद्मावती क्यो आए? इस प्रश्न का उत्तर ऊपर के विषयों से हल हो चुका है।१९६।

महावीर भगवान के हमारे हृदय मे रहने के कारण हमारा मन सिंह के समान पराक्रमी हो गया है इसीलिये हम वीर भगवान के अनुयायी या भक्त है, ऐसा लोग कहते हैं। अपने हृदय रूपी सिंह को महावीर भगवान को सिंह-वाहन कर समर्पण करने के बाद शूर वीर लोग अन्य देवो को क्यो नमस्कार करेंगे? कभी नही इसीलिये भगवान के सिंहासन का चिन्ह वीरों का चिन्ह है।१९७।

राज चिन्ह को वीर रस प्रधान होने के कारण आज कल भी अपने महल के ऊपर वीर तथा सिंह के ध्वजा लगाते हैं। इसी कारण से मन रूपी सिंहासन से २२५ कमलों का चक्र रूप बना कर वर्णन किया है।१९८।

चार मुख रूप मे रहनेवाले सिंह के सिर पर आये हुये ९०० कमलों के ऊपर सचरण करने वाले भगवन्त के चरण कमल राग विजय के कारण उत्पल पुष्प अर्थात कमल पुष्प के समान दिखता है।१९८।

तीर्थकर के रहने का समय ही मगलमय होता है। क्यों कि उनके जन्म होने की लोग प्रतीक्षा करते रहते हैं। जन्म होने के पश्चात उनके होने वाले अन्य तीन कल्याणक अर्थात तप, ज्ञान तथा मोक्ष मिलकर पंच कल्याणक [illegible]

है। इसी प्रकार नेमिनाथ भगवान के समय का कथन यहा आया है। इस [illegible] को सुनकर हम अपनी शक्ति के अनुसार उनकी भक्ति करें।१९९-२००।

ऋषभदेव भगवान ने जिस वृक्ष के नीचे खडे होकर तप किया था उस वृक्ष का नाम जिन वृक्ष है।२०१।

जिस प्रकार वट वृक्ष अपनी शरण में आनेवाले सम्पूर्ण जीवों को अपनी छाया से शीतल कर आश्रय प्रदान करता है उसी प्रकार उसी वृक्ष के नीचे जिनेन्द्र भगवान ने अपनी कामाग्नि को शान्त कर कर्म की निर्जरा करके आत्म रूपी शान्त छाया को प्राप्त किया, इसलिये इसको जिन वृक्ष एव अशोक वृक्ष भी कहते हैं।२०२।

यह शरीर देहल के समान आधार भूत है। उसको तपश्चर्या मे उपयोग कर जैसे नई आत्मा को प्राप्त कर शोक रहित होता है, उसी प्रकार अत्यन्त कोमल सात पत्ते वाले केले के वृक्ष के नीचे तप करके सिद्धि प्राप्त करने के कारण उसका नाम अशोक वृक्ष पडा। तब उनका नरभव फलीभूत हुआ।२०३।

शालमली वृक्ष के नीचे सभव नाथ तीर्थंकर ने तपस्या की थी इसलिये इसको भी अशोक वृक्ष कहते हैं। यह अशोक वृक्ष देवताओ के द्वारा भी वंदनीय है।२०४।

नोट—श्लोक न० २०५ से लेकर श्लोक न० २२३ श्लोको तक विवेचन हो चुका है।

सूखा हुआ सरल [देबदारू] व रोडो वृक्षो के गणित और उनके गुणो को जिन्होने बताया है उन अभिनन्दन और सुमतिनाथ भगवान को नमस्कार करते हैं।२२४।

जिस वृक्ष के पोल अर्थात् तने में सर्प रहता है उस वृक्ष को नागवृक्ष कहते हैं। उस झाड़ को काटते समय नीचे के हिस्से मात्र को काटकर जब उसमें सर्प दिखाई पड़ जाय तब उस वृक्ष को काटना बद कर देना चाहिए। अगले दिन जब वह सर्प निकलकर दूसरी झाड़ी मे चला जाए तब उस वृक्ष को काट देना चाहिए। जहा पेड के पोल में सर्प रहता है उसके सिर के भाग की मिट्टी बहुत नरम होती है। वह मिट्टी अनेक दवाइयों के काम मे आती है। यदि सर्प को इस प्रकार न हटाया जाय तो वह सर्प वहीं चोट करके मर जाता है और वहां की मिट्टी विषमय बन जाती है।२२५।

दोनों नौ-नौ को मिलाने से १८ होता है। कुटकी और शिरीष अर्थात् शीसम इन दोनों वृक्षों की मिट्टी से लेप करने से मनुष्य निराकुल हो जाते हैं। पद्म प्रभु और सुपार्श्व नाथ भगवान ने जिस नाग वृक्ष के नीचे आत्मसिद्धि को प्राप्त की थी उस वृक्ष के गर्भ में रहने वाली मिट्टी को कुष्ठ रोग की निवृत्ति के लिए सजीवनी औषध रूप में उपयोग किया जाता है।

।२२६। और ।२२७।

बेलपत्र और नागफण इन दोनों वृक्षों के गर्भ में रहने वाली मिट्टी को भिन्न-भिन्न रोगो के लिए दिव्य औषध रूप में परिवर्तित करते हैं। इसको चन्द्रप्रभु और पुष्पदन्त जिनेन्द्र भगवान के शिक्षण से अर्थात् गणित के द्वारा समझना चाहिए।२२८।

सुम्बूर वृक्ष अर्थात् बीडी बांधने के पत्तो का वृक्ष और पलाश का वृक्ष इन दोनों की मिट्टी भी उपरोक्त विधि के अनुसार निकाल लेनी चाहिए। इस की विधि शीतलनाथ भगवान के कहे के अनुसार समझनी चाहिए।२२९।

इसी प्रकार तेन्दु वृक्ष और इस वृक्ष के नीचे गिरे हुए पत्तों को मिलाने से महाऔषधि बनती है। इसकी विधि श्री श्रेयांसनाथ तीर्थंकर के गणित से जाननी चाहिए।२३०।

इसी प्रकार पाटली वृक्ष और जम्बू वृक्ष इन दोनों की मिट्टी से औषधि बनाने की रीति को वासुपूज्य और विमलनाथ तीर्थंकर के गणित से जाननी चाहिए।२३१।

अश्वत्थ और दधिपर्ण इन दोनों वृक्षों के गर्भ से मिट्टी को प्राप्त करने की विधि को अनन्तनाथ और धर्मनाथ तीर्थंकर भगवान के गणित से जाननी चाहिये।२३२।

नन्दी और तिलक इन दोनो वृक्ष की मिट्टी को निकालने की विधि शातिनाथ और कुंथनाथ भगवान के गणितों से समझनी चाहिए।

आम, ककेली इन दोनों वृक्षों के गर्भ मे रहने वाली मिट्टी की विधि को मुनिसुव्रत और नमिनाथ तीर्थंकर के गणित से समझनी चाहिए।

मेष शृङ्ग वृक्ष के गर्भ से प्राप्त मिट्टी से आकाश गमन की सिद्धि होती है। इस विधि को नमिनाथ और नेमिनाथ तीर्थंकरो के गणितो से समझ लेनी चाहिए। २३३ ।२३४।२३५।२३६।२३७।२३८।२३९।२४०।२४१।२४२। ।२४३।२४४।२४५।२४६।२४७।२४८।

सम्मेद पर्वत पर रहने वाले अनेक प्रकार के अशोक वृक्षो को पार्श्वनाथ तीर्थंकर के गणितो से समझना चाहिए।

दारु वृक्ष की जड से सुवर्ण अर्थात् सोना बन जाता है। इस विधि को पार्श्वनाथ भगवान् के गणितो से समझनी चाहिए।

इस विधि को न जानने वाले भील और गडरिये लोग अपने भेडिये के पांवो में लोहे की नाल बाधकर सुवर्ण भद्र कूट के पास भेज देते थे। उस जड के ऊपर भेडिये के पांव पडने से लोहे की नाल के स्पर्श से पाव में बधी हुई नाल सोने की बन जाती थी।

रात मे जब भेडिये घर आते थे तब उनके पावो में जडी हुई नाल को निकाल लेते थे और उसको बेचकर अपने जीवन का निर्वाह कर लेते थे। इसी स्वर्णभद्र कूट से पार्श्वनाथ भगवान मोक्ष गए थे इससे इसका नाम सुवर्ण भद्र कूट पडा है। इसलिए इसका नाम सार्थक है।

शालोर्बी वृक्ष से महाऔषधि बन जाती है। इस विधि को श्री महावीर भगवान के गणितो से समझनी चाहिए।

यक्ष-राक्षस और व्यन्तरो के समस्त शोक को निवारण करने के कारण इन सबको अशोक वृक्ष के नाम से पुकारते हैं। यक्ष-राक्षसो के पास विद्या आदि का बल होता था परन्तु आजकल के मनुष्यो को ऋद्धि-सिद्धि विद्यादि प्राप्त होनी असाध्य है। इस कारण कुमुदेन्दु आचार्य ने चौबीस तीर्थंकरो के अथवा ७२ तीर्थंकरो के लाछनो से और तपस्या किये हुए वृक्षो से आरोग्यता आकाश-गमन, लोहादिक को परिवर्तन करने वाले और सुवर्णमय रूप यत्र (मशीनरी) इत्यादि को पारे के रससे साधन करनेवाले अनेक रसो की विधि को यहां बताया है।

परमात्म जिनेन्द्र भगवान ने वैद्यक शास्त्र में अठारह हजार मंगल तथा उतने ही पुष्पों को तीक्ष्ण स्याद्वाद बुद्धि से अपने गणित के द्वारा निकालने की विधि बतलाई है।२७८।

मन तथा बुद्धि की तीक्ष्णता के कितने अंग हैं? इस बात को तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा ही गणितो से गुणा करने से पुष्पायुर्वेद का गणितांक देखने में आ सकता है।२७९।

यदि अनुलोम क्रम को देखा जाए तो इस गुणाकार का पता लग जायगा। उसको यदि आडे से जोड दिया जाय तो नौ-नौ आ जायगा। यह वीर भगवान के कथनानुसार २२५० वर्ग में आता है। इसी विधि के अनुसार यदि कोई गणित देखा जाय तो नौ ही आता है किन्तु उन सभी को यहा नहीं लेना चाहिए केवल २९५० (दो हजार नौ सौ पचास) के गणित में ही इसे मानना चाहिए।२८०।

इस अध्याय के २८१ श्लोकों में १५९९३ अक्षराक १०९३५ कुल २६९२८ इस प्रकार अंकाक्षर आते हैं। श्री वीरसेन आचार्य द्वारा पहले उपदेश किया हुआ यह भूवलय ग्रन्थ है। आगे अतरग में आने वाले ४८ "ऋद्धि-सिद्धगे आदि नाथरू" नाम के श्लोक के प्राकृत और संस्कृत मात्र अर्थ यहां दिया जाता है।

आगे चलकर समयानुसार प्राकृत भगवद्गीता लिखी जायगी। इसके आगे हम पुन बारहवें अध्याय के अतरग चौबीसवे श्लोक से लेकर २८१ श्लोक तक श्रेणीबद्ध वाक्य से पढते जाएँ तो अन्दर ही अन्दर जसे कुए के अन्दर से पानी निरन्तर निकालते रहने पर भी पानी कम न होकर बढता रहता है उसी प्रकार भूवलय रूपी कूप मे अक्षर रूपी जल न रहने पर भी अक रूपी जल (२७× २७=७२९) निकालकर यदि बाहर रख दिया जाय तो उससे २४ वा श्लोक रूपी जलकण उपलब्ध हो जाता है। वह इस प्रकार है:—

इनु रिद्धि सिद्धिगे 'आदिनाथरू' पेलद । धर्म अजितर गद्दुगे सार्व ॥
नववाहनगलु एत्तु आनेगलुम । नवकार सद्दिनिस्याद्वा ॥

इस श्लोक में "इवु" "पेलदधव" "सविनववाहनगलु" "नवकारस" इन अक्षरो को छोडकर शेष अक्षरों के अतिरिक्त श्लोक बनते आते हैं। वह इस प्रकार है:—

रिद्धि सिद्धिगे आदिनाथरू अजितर ।
गद्दुगे एतु आनेगलु ॥

भुद्धिनिस्याद्वा········॥

इसी रीति से २७वें श्लोक से लेने पर भी यह श्लोक पूर्ण हो जाता है।

दत्नांघनदन्तिह ।

सुद्धिय पेलवुदिन्तहहा ॥

छोड़े हुए "इ" यह अक्षर प्राकृत भाषा और "स" अक्षर—भाषा को आएगा । इस गिनतो से चार काव्य बन गये ।

रिद्धि सिद्धि में रहनेवाला आद्यक्षर "रि" के अतिरिक्त यदि पढे तो 'रिसह्वादीणं चिएहम" इत्यादि रूप एक अलग भाषा का काव्य निकल आता है जो ऊपर लिखा जा चुका है। यह श्लोक मूल भूवलय से नही पढा जा सकता, किन्तु यदि वहा से निकालकर पढा जाय तो पढ सकते हैं, यह चमत्कारिक बात है अर्थात् अद्‌भुत लीलामयी भगवद्‌वाणी है।

अब ऋद्धि सिद्धिगे श्लोक से लेकर ४८ श्लोक पर्यन्त अर्थ लिखेंगे—

भूवलय में बुद्धिरिद्धि, बलरिद्धि, औषधिरिद्धि इत्यादि अनेक ऋद्धियों का कथन है। उन सब ऋद्धि की प्राप्ति के लिए अर्थात् सिद्धि के लिए भी आदिनाथ भगवान और श्री अजितनाथ भगवान की आदि में नमस्कार करना चाहिए, उनके वाहन बैल और हाथी से स्याद्वाद का चिन्ह अंकित होता है। ऐसा ग्रन्थकार ने कहा है ।१।

अपना अभीष्ट स्वार्थ साधन करना है अर्थात् भूवलय के ६४ अक्षरो का ज्ञान प्राप्त करना है। उन ६४ अक्षरो का यदि साधन करना हो तो सर्व प्रथम मंगलाचरण होना अनिवार्य है। मगलाचरण मे लौकिक और अलौकिक दो भेद हैं। लौकिक मगल मे श्वेतछत्र, बालकन्या, श्वेत अश्व, श्वेत सर्षप, पूर्ण कुम्भ इत्यादि दोष रहित वस्तुएं हैं। अब सर्वमगल के आदि में श्वेत अश्व को खडा करना अभीष्ट है ।२।

मनुष्य का मन चचल मर्कट के समान एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष, शाखा से शाखा तथा डाली से डाली पर निरन्तर दौडता रहता है। उसको बांधकर रखना तथा मर्कट को बाधना दोनों समान हैं। चंचल मन स्याद्वाद रूपी धागे से ही बांधा जा सकता है। उसके चिन्ह को दिखाने के लिए आचार्य ने मर्कट का उदाहरण दिया है ।३।

जब मन की चंचलता रुक जाती है तब आत्म ज्योति का ज्ञान विकसित होने लगता है। और उस विकसित ज्ञान ज्योति को पुनः २ आत्मचक्र घुमाने से काय गुप्ति, वचन गुप्ति तथा मन. गुप्ति की प्राप्ति होती है। तब आत्मा के अन्दर संकोच-विस्तार करने की शक्ति बन्द हो जाती है। उसे गुप्त कहते हैं। उस अवस्था को शब्द द्वारा बतलाने के लिए श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने चक्रवाक पक्षी का लांछन लिया है। यह उपर्युक्त उदाहरण ठीक ही है, क्योकि भूवलय चक्रबन्ध से ही बन्धा हुआ है ।४।

इस भूवलय ग्रन्थ की, महान अंक राशि से परिपूर्ण होने पर भी यदि सभी सख्याओ को चक्र में मिला दिया जाय तो, केवल नौ (९) के अन्दर ही गणना कर सकते हैं। इसी रीति से प्रत्येक जोव अनन्त ज्ञान से संयुक्त होने पर ९ के अन्दर ही गर्भित हो जाता है। वह ९ का अंक एक स्थान में ही रहनेवाला है। इसी प्रकार अनन्त गुण भी एक ही जीव में समाविष्ट हो सकते हैं। जिस तरह सूर्योदय होने पर प्रसार किया हुआ कमल अपनी सुगन्धि को फैलाता है पर रात्रि में सभी को समेट कर अपने अंदर गर्भित कर लेता है, उसी प्रकार प्राप्त की हुई आत्म ज्योति को अपने अंतर्गत करके और भी अधिक शक्ति बढाकर बाहर फैलाने का जो आध्यात्मिक तेज वृद्धिगत हो जाता है उसे शब्द और चिद्रूप से बतलाने के लिए आचार्य श्री ने जल कमल और ९ अंक का चिन्ह लिया है ।५।

रत्न, स्वर्ण, चांदी, पारा और गन्ध इत्यादि क्रूर लोह तथा पाषाण को क्षण मात्र में भस्म करने की विधि इस भूवलय में—पुष्पायुर्वेद रूपी चौथे खंड में बतलायी गई है। वहां इसी जलकमल और नवमांक गणित को उपयोगी बतलाया गया है ।६।

गुप्तित्रय मे रहनेवाली आत्मा का चित्त में सम्पूर्ण अक्षरात्मक ६४ ध्वनि को एकमात्र मे समावेश करने की विज्ञानमयी विद्या की सिद्धि को देने वाले श्री सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर हैं। उनका वाहन स्वस्तिक है। इस महान विद्या को शब्द रूप से दिखलाने के लिए आचार्य ने स्वस्तिक का चिन्ह उपयुक्त बताया है ।७।

९ का अंक अर्हंत सिद्धादि ९ पद से अंकित है। वह वृद्धि के होने पर

भी केवल ९ ही रहता है। जैसे ९×२=१८ तथा ९×३=२७ होने पर भी इन दो संख्याओ को पृथक पृथक (८+१=९ २+७=९) जोडने पर केवल ९ ही होगा। इसका उदाहरण ऊपर भी दिया जा चुका है। ९ संख्या में से पहले का १ निकालकर यदि दो को १ मानकर गिनती करें तो आठवी संख्या बन जाती है इसीलिए कुमुदेन्दु आचार्य ने गणना करने के समय में आठवें चन्द्रप्रभ भगवान को आदि में लिया है। चन्द्रमा शीतल प्रकाश को प्रकाशित करता है और वह शुक्ल पक्ष की चतुर्थी से बढ़ता जाता है। इसी प्रकार योगी की ज्ञान-किरण भी ८ और ९ इन दोनो अंको से अर्थात् सम—विषमांक से प्रवाहित होती रहती ह। इस शीतल ज्ञान-गंगा प्रवाह को शब्द रूप में दिखाने के लिए श्री आचार्य जी ने चन्द्रमा का चिन्ह उदाहरण रूप में लिया है।८।

इस ज्ञान-गंगा के प्रवाह मे डूबकर यदि आध्यात्मिक शक्ति को प्राप्त करना हो तो स्याद्वाद का अवलम्बन लेना चाहिए। स्याद्वाद रूपी शास्त्र द्विधार से युक्त है। अर्थात् उस तलवार की १ फल के ऊपर यदि प्रहार करें तो वह स्वपक्ष और परपक्ष दोनो को काटता है। इस तथ्य को शब्द रूप में बतलाने के लिए आचार्य ने करी मकरी का उदाहरण लिया है। कहा भी है कि—

"करी कथचिन्मकरी कथचित्प्ररूयापयज्जैन कथचिदुक्तिम्' इसका अर्थ ऊपर आ चुका है।९।

स्वर्ग लोकस्थ कल्पवृक्ष से आकर भूवलय शास्त्र का १० वां अंक १ बनकर मणि रत्न माला आहार आदि ईप्सित पदार्थो को प्रदान करता है। इस बात को शब्द रूप देने के लिए आचार्य ने १० कल्प वृक्षो का चिन्ह रूप में लिया है। अर्थात् वृक्ष का चिन्ह १०वें तीर्थंकर का है।१०।

दिगम्बर जैन मुनि गोचरी वृत्ति से आहार ग्रहण करते हैं। आहार लेने के गोचरी, अश्वचरी, गर्दभचरी (गधाचरी) ऐसे तीन भेद हैं। जिस प्रकार गाय फसल को नष्ट न करके केवल किनारे से खाकर अपनी क्षुधा शान्त करने के बाद भी अन्य जीव जन्तुओ के खाने के लिए रख छोडती है उसी प्रकार ३६ और २८ मूल गुणधारी महाव्रती आचार्य तथा मुनिजन गोचरी वृत्ति से अल्प आहार ग्रहण करके आहार देनेवालों के लिए भी रख छोड़ते हैं।

जिस तरह अश्व फसल के अग्रभाग को खा लेता है, किन्तु उसके खालेने के अनन्तर गाय के खाने के लिए भाग न रहकर केवल गधे के खाने के योग्य ही रहता है उसी प्रकार अणुव्रती के आहार ग्रहण करलेने के पश्चात् शेषान्न मुनिजनों के उपयुक्त न रहकर केवल अव्रतियों के लिए ही रहता है।

जिस प्रकार गधा फसल को उखाडकर समूल खा जाता है और उसके खाने के बाद किसी भी जानवर के खाने लायक नहीं रह जाता उसी प्रकार अव्रती के भोजन कर लेने के पश्चात् शेषान्न किसी त्यागी के योग्य नहीं रह जाता। इन तीन लक्षणों को क्रमश गोचरी, अश्वचरी तथा गधाचरी कहते हैं

मुनिजन आहार ग्रहण करते समय अपना लक्ष्य दो प्रकार से रखते हैं। एक तो शरीर के लिए चावल-रोटी आदि जडान्न ग्रहण करना और दूसरा स्वात्मा के लिए ज्ञानान्न।

यद्यपि उपर्युक्त दो प्रकार के आहारो को मुनिजन ग्रहण करते हैं तथापि शरीर के लिए जडान्न की अपेक्षा नही रखते। क्योंकि मुनिजनों की भावना सदा इस प्रकार बनी रहती है कि जब वमन किया हुआ भोजन कुत्ता भी नहीं खाता तब कल के त्याग किए गए आहार को हम रुचि के साथ कैसे ग्रहण करे? अत वे आहार ग्रहण करने पर भी अरुचि क साथ करते हैं। इसे गोचरी और भ्रामरी दोनों वृत्ति कहते हैं।

इस विषय को बतलाने के लिए आचार्य ने गण्डभेरुण्ड पक्षी का चिन्ह लिया है।११।

यह मन द्रव्य मन और भाव-मन दो प्रकार का है।—एक प्रकार का मन लगातार विषय से विषयान्तर तक चचल मर्कट के समान दौड़ लगाता रहता है और दूसरा सुसुप्त होकर काहिल भैंसे के समान स्थिर होकर पड़ा रहता है। इस विषय को बतलाने के लिए आचार्य श्री ने भैंसे का चिन्ह लिया है। इन दोनो क्रियाओ से, अर्थात्त विषय से विषयान्तर तक जाना या सुप्त रह जाना, आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता क्योंकि ये दोनों आत्मा के लक्षण नही हैं। आत्मा का लक्षण सदा ज्ञानध्यान में लीन रहना ही है।१२।

जिनेन्द्रदेव जब स्वर्ग से च्युत होकर मातृगर्भ में अवतरित होते हैं, तब हाथी के आकार से मातृमुख द्वारा प्रवेश करके गर्भ में तिष्ठते हैं।

जिनेन्द्रदेव ही सर्व संसार के काव्य हैं। वैदिक धर्म के अतर्गत भी मुद्रित वेद में ऐसा प्रतिपादन किया गया है कि पाताल मे छिपे हुए भूवलय रूपो वेद को विष्णु रूपी शूकर ने निकाला था। इस दृष्टि से वैदिक धर्म में शूकर का महत्वपूर्ण स्थान है। ।१३।

भूवलय में ६४ अक्षर रूपी असंख्यात अक्षर हैं और उतने ही अंक हैं। उसको बढ़ाने से संख्यात, असंख्यात तथा अनन्त ऐसे तीन रूप बन जाते हैं। किन्तु यदि उसे घटाया जाय तो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म होजाता है अर्थात बिन्दीरूप हो जाता है। लोक में यदि एकीकरण न हो तो यह सुविधा नहीं मिल सकती अर्थात् न तो अनन्त ही हो सकता और न बिन्दी ही। रीछ (भालू) के शरीर में अनेक रोम रहते हैं। किन्तु उन सभी रोमो का सम्बन्ध प्रत्येक रोम से रहता है अर्थात् एक रोमका दूसरे रोम से अभेद सम्बन्ध है। इसीलिए कुमुदेन्दु आचार्य ने उपर्युक्त विषय का स्पष्टीकरण करने के लिए भालू का लाछन दिया है।१४।

यक्ष देवो का आयुध वज्र है और वह जैन धर्म की रक्षा करनेवाला सुदृढ़ शस्त्र है। ऐसा होने से शिक्षण के साथ-साथ रक्षण करता है। इस विषय को दिखाने के लिए आचार्य श्री ने वज्र का लांछन दिया है।१५।

तुष-माष कहने मे अ सि आ उ सा मत्र का वेग से उच्चारण हो जाता है। इस चिन्ह को दिखाने के लिए आचार्य श्री ने हरिण का लांछन दिया है।१६।

सभी पुण्य को अपनाकर केवल १ पाप को त्याग करने को शिक्षा को बतलाने के लिए आचार्य श्री ने यहा बकरी का दृष्टान्त दिया है। क्योकि बकरी समस्त हरे पत्तो को खाकर १ पत्ते को त्याग देती है।१७।

शब्दराशि समस्त लोकाकाश मे फैली रहती है। इतना महत्व होने पर भी १ जीव के हृदयान्तराल में ज्ञान रूप से स्थित रहता है। इस महत्व को बतलाने के लिए नन्द्यावर्त का लाछन दिया गया है।१८।

सातवें बलवासुदेव बनारसी मे आत्म तत्व का चिन्तवन करते समय नवमांक चक्रवर्ती के साथ अपनी दिग्विजय के समय में मगल निमित्त पूर्ण कुम्भ की स्थापना की थी। पवित्र गगाजल से भरा हुआ उस पवित्र कुम्भ से मगल होने में आश्चर्य क्या ? अर्थात् आश्चर्य नही है। इस विषय को सूचित करने के लिए कुमुदेन्दु आचार्य ने कुम्भ वाहन को लिया है।१९।

अर्हंत सिद्धादि नौ पद को हमेशा अपने वालों को वह भद्र कवचरूप होकर रक्षा करता है। उस विषय को बतलाने के लिए कछुआ का चिन्ह दिया है इस कछुवे का वर्णन कवि के लिए महत्व का विषय है।२०।

समवशरण में सिंहासन के ऊपर जल-कमल रहता है। तीर्थंकर चक्रवर्ती राज्य करते समय नील कमल वाहन के ऊपर स्थित थे। इसलिए यहां नीलोत्पल चिन्ह को दिया गया है।२१।

भूवलय में आनेवाले अन्तादि (अन्ताक्षरी अर्थात् जिसका अन्तिम अक्षर ही अगले पद्य का प्रारभिक अक्षर होता है) काव्य है। ऐसे श्लोक भूवलय में एक करोड़ से अधिक आते हैं। गायन कला में परम प्रवीण गायक वीणा की केवल चार तन्त्रियों से जिस प्रकार सुमधुर विविध भांति की करोड़ों राग-रागनियो को उत्पन्न करके सर्वजन को मुग्ध करता है उसी प्रकार भूवलय केवल ९ अकों में से ही विविध भाषाओं के करोडो श्लोकों की रचना करता है। इसलिए यह ६४ ध्वनिशास्त्र है। इसको बतलाने के लिए आचार्य ने शंख का चिन्ह दिया है।२२।

भूवलय काव्य में अनेक बन्ध हैं। इसके अनेक बन्धो में एक नागबन्ध भी है। एक लाइन में खण्ड किये हुये तीन २ खण्ड श्लोको को अन्तर कहते हैं। उन खण्ड श्लोको का आद्यअक्षर लेकर यदि लिखते चले जायें तो उससे जो काव्य प्रस्तुत होता है उसे नागबन्ध कहते हैं। इस बन्ध द्वारा गत कालीन नष्ट हुये जैन वैदिक तथा इतर अनेकों ग्रन्थ निकल आते हैं। इसे दिखलाने के लिये सर्पलाञ्छन दिया है।२३।

वीर रस प्रदर्शन के लिये सिंह का चिन्ह सर्वोत्कृष्ट माना गया है। शूर वीर दो प्रकार के होते हैं। १ राजा और दूसरा दिगम्बर मुनि। इन दोनों के बहुत बडे पराक्रमी शत्रु हुआ करते हैं। राजा को किसी अन्य राजा के चढाई करने वाले बाह्य शत्रु तथा दिगम्बर मुनि के ज्ञानावरण आदि आठ अन्तरग कर्म शत्रु लगे रहते हैं। अन्तरग और बहिरंग दोनों शत्रुओ को सदा पराजित करने की जरूरत है। इन्ही आवश्यकताओं को दिखाने के लिए आचार्य ने सिंह लांछन दिया है।२४।

प्रथम अध्याय मे भगवान् के चरण कमल की गणना में जो २२५ (दो सौ पच्चीस) संख्या का एक कमल चक्र बताया गया था उसे यदि चार से

गुणा करें तो कुल ६०० कमल चक्र हो जाते हैं। इस ६०० को कमल चक्ररूपी बनावें और उन्हीं चक्रों से भगवान् के चरण कमलो की गिनतो करे तो लब्धांक से यह अध्याय निकल कर आ जायगा। इसे पद्म-विष्टर विजय काव्य कहते हैं।२५।

श्री नमि जिनेन्द्र स्वर्ग से च्युत होकर अपनी माता के गर्भ मे आने के समय में उत्पल पुष्प के रूप मे रहे थे। ऐसी भावना भाते हुये यदि उस पुष्प की पूजा करें तो स्वर्गादि सुखो की प्राप्ति हो जाती है।२६।

आदि मन्मथ के पिता श्री ऋषभ तीर्थंकर ने वट वृक्ष के नीचे तपस्या की। इस कारण उसे जिन वृक्ष और शोक निवारक अर्थात् अशोक वृक्ष भी कहते हैं।२७।

सप्तच्छद अर्थात् ७ ७ पत्तो वाला सुन्दर वृक्ष भी कल्प वृक्ष है। इस वृक्ष के नीचे श्री अजित तीर्थंकर ने तप किया था। इसलिये यह भी अशोक वृक्ष है।२८।

शालमलि (सेमर) वृक्ष के नीचे श्री सभवनाथ ने तप धारण किया।२९।

सरल-देवदारु और प्रियगु इन दोनो वृक्षो के नीचे अभिनन्दन व सुमति तीर्थंकर ने तपस्या की थी, इस कारण यह भी अशोक वृक्ष कहलाता है।३०।

सम्यग्दर्शन शास्त्र से आत्मा की पहचान कराने वाला सम्यग्ज्ञान उन दोनो का स्वरूप दिखलाने के लिये कुटकी और सिरीश का चिन्ह बतलाया गया है। इसे भी अशोक वृक्ष कहते हैं।३१।

नागवृक्ष भी अशोक वृक्ष है। चन्द्र प्रभु जिनेन्द्रदेव ने इसी नाग वृक्ष के नीचे तपस्या करके आत्म-कल्याण किया है।३२।

इसी रीति से नागफणि और कपित्थ (कैंथ) ये दोनो भी कल्प वृक्ष हैं।३३।

पलाश अर्थात् तुम्बुर वृक्ष भी अशोक वृक्ष है।३४।

तेन्दू वृक्ष पाटलि, जम्बू (जामुन) भी अशोक वृक्ष है।३५।

अश्वत्थ और दधिपर्ण भी अशोक वृक्ष है।३६।

नन्दी और तिलक भी अशोक वृक्ष है।३७।

आम और ककेलि ये दोनो वृक्ष भी अशोक वृक्ष हैं।३८।

चंपक (चंपा) और बकुल भी अशोक वृक्ष हैं।३९।

समवशरण की रचना में मेष शृङ्ग वृक्ष का उपयोग बतलाया है। यह भी अशोक वृक्ष है।४०।

दास वृक्ष को भी अशोक वृक्ष के नाम से पुकारा जाता है।४१।

शालोवीरू अर्थात् शाल्मली वृक्ष भी अशोक वृक्ष है।४२।

देव मनुष्य इत्यादि जीव राशि के सम्पूर्ण रोग को नाश करने वाले ये सभी वृक्ष चौबीस तीर्थंकरो के तपोभूमि के वृक्ष थे।४३।

इन वृक्षो को ध्वजा घटादि से अलकर करते हुए यक्ष देवगण चौबीस तीर्थंकरों के स्मरण मे पूजा करते हैं।४४।

इन वृक्ष के पुष्प जब खिल जाते हैं तब उसमे से निकलने वाली सुगध की वायु का शरीर से स्पर्श होते ही शरीर के सभी बाह्य रोग नष्ट होते हैं। सुगध के सू घने से मनके रोग का नाश होता है। ऐसे होने से इस फूलों को पीस कर निकले हुए, पारे के रस से बनाये हुआ रस मणि के उपभोग से आकाश गमन अर्थात् खेचर नामक ऋद्धि प्राप्त होने में क्या आश्चर्य है? अर्थात् कुछ भी आश्चर्य नही है।४५।

इन चौबीस को परमात्म रूप वैद्यक शास्त्र मे और भी अनेक प्रकार के अर्थात् अठारहहजार प्रकारके वृक्षो की जाति बतायी गयी है। इस मगलप्राभृत अध्ययन से गणित शास्त्र के मर्म को जानने वाले ही निकाल सकते हैं।४६।

स्याद्वाद रूपी तलवार की धार तीक्ष्ण है। इसी तरह के तीव्र बुद्धिमान जन बहुत सूक्ष्म विवेचन करके इस भूवलय से पुष्पायुर्वेद गणित निकाल सकते हैं।४७।

जिस सख्या को देखें उससे ९ ही ९ आता है, यह महावीर भगवान् का वाक्य है।

इस अध्याय में २२५० अक्षर हैं।

संस्कृत के अर्थ को लिखते हैं.—

समस्त भूत गण परहित में रत हो। सम्पूर्ण दोष नाश हो। समस्त शासन को जीतने वाला जैन शासन जयवत हो।

श्रीमत्परम गंभीरस्याद्वादामोघ लाञ्छनम्।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जैन शासनं॥

बारहवां अध्याय पूर्ण हुआ:।

तेरहवां अध्याय

ळ्* श्रवदेशद्श्र 'साधुगळिह्रेरड' । पाडिन 'वरे द्वीषदि' सा ।। कूडि घ्* वयु 'साधिसुतिह्रुम् मोक्ष' । रूडिय 'वनु'ळ्'श्र काव्यदलि ।।१।।
ड* गमग 'श्रादियमादिय कालदिम्' । दोगे 'विह् सर्व साधुगळि ।। गे'ग व्* श्रसरणिगेयागे'नमवेम्ब् श्रोम्[१]परिसल'। श्रगणित'नन्त ज्ञानादि।२
व* शव 'सुवरूपव परिशुद्धात्म रू' । वशरू 'पवनु वरसर्व् श्र*' हसद 'साधुगळ् साधिसुतिरुव' तिशय । वेस 'रु परमव तत्मात्म।।३।।
म्* 'मोळमि [२]धमिगळिवरु महाव्रतगळय् । दनु होन्दि कर्म् श्र' ला* स'दोळु'।।मिनुगुतमुनि'गुप्तित्रयवसमनागिन'।मुनि'उप'क्रम'वासकाव्य
स्* रस 'बि पेळिव गमकदोळिरु साधु' । वर गळ्त्' [३]श्र 'नवगळेरड' म्* तु।। स'र साविर जाति शीलव'द'नवर'तर'भेदगळ'ल्ल वरितु'।।५।।
श्रा* वनु 'सुविशुद्धवावेम् भत्न।ल्कु' । काविन् श्र 'लक्षगळ्वेम् भा'* पावक'श्रवनु श्रत्तर गुणगळन् यो'[४]रि।त।वु'तिळिदु पालिसुवर्।।६।।

श्रावाग 'दर्शनवरिदर् ।७।। 'ह् श्राविन भववरिदवरु' ।।८।। 'श्रवरभिप्रायवे शब्द' ।।९।।
'म् श्राविनोळ् कल्पवनरिदर्' ।।१०।। एवेळ्वे 'नव विद्यागामरु' ।।११।। व्श्रागलु 'सिद्धान्तिगळु' ।।१२।।
श्रवु 'गजच मिथ्यात्व ध्वस्तर्'।।१३।। 'इ् श्रावानलकर्म श्र वनरु' ।।१४।। श्रवरु 'भेदाभेद नयरु' ।।१५।।
'व्वरैलुनयदे प्रवीणर्' ।।१६।। 'श्रवरष्टाङ्गनिमित्त' कुशलर् ।।१७।। व्श्रावाव 'स्तम् भनवरितर् ।।१८।।
श्रवरु 'मोहन वशिकरणर् ।।१९।। य्वरु 'श्राकर्षण निपुणर्' ।।२०।। श्रवर् 'उच्चाटन बलरु' ।।२१।।
इ्वल 'सकल मन्त्र साध्यर् ।।२२।। ईवरु 'सिद्ध सिद्धार्थर् ।।२३।। 'ध्वनदन्तिह चक्र बन्धर्' ।।२४।।
'ईव गुणवे श्रति प्राज्ञर् ।।२५।। स्वि 'वन चक्रवर्तिगळु' ।।२६।। श्रावाग'तपोवन वाळ्दर्' ।।२७।।
'थ्श्रावर जीव रक्षकरु' ।।२८।। 'स्श्राविर सेन भूवलयर्' ।।२९।।

प* रिव'श्रयवनेपरमेष्टिगळिळेयोळ।गि' रिसि'र्दु समाधियोळ् श्र' र* गा ।।नर'गात्मसिरियेम्बाहारवकोम्बब।ल'र'शालिगलुसाधुगलका'५ ।३०।
ज्* ज्ञान साधने योळात्मध्यान यिडविह् । ज्ञानवन्तरु सिम्ह' तो* र्थ।। श्राणतिया'दन्ते ज्ञाने पराक्रम' । ज्ञानस 'बुळ्ळ सम्यग्मिगळ ।।३१।।
जु* ळि'श्रज्ञानादिशक्तियोळ्'वि'रतरक्'[६]उस।वळि'नानाविधवाद' म्* गुळिगे।।यलि'श्राहारविट्टरु त।ुगम्भीर।दोळिद्दु'र'ज्ञानेगळरविसल।। ३२।।
ए्* रनु'श्रम्नवतिम् बानेयन्तानन्द । 'सिरि स्वाभिमानिप्रळ्ष [७] प* र ।। सर'दिनवेल्लतिन्दन्नवरात्रिका ।ल'रिय'दिमन विद्दुमेळव्'श्रा।। ३ ३।
णी* वागम 'रत्रिमन्ते,'श्रा 'दिनवेल्ल' । रूवा 'गळिसिद शुरुत् श्रद न्* का'वा'क्षरगळ मनसिट्टु रात्रियोळ्'। श्रो वाणि'मेलुवर(८ज्ञक्ति ।।३४

ववरु 'तपोराज्यदवरु' ।।३५।। श्रवरतिशय राजराजर् ।।३६।। क्विदवर् तपचक्रधररु ।।३७।।
मृवमात्मक पद यतिनिलयर् ।।३८।। ववरल्लि गुरुकुल चन्द्रर् ।।३९।। क्वि गुरुकुल समुद्धररणर्।।४०।।
पव मध्यान्ह कळ पव्रुकुवर् ।।४१।। रवर् इन्द्र प्रस्थ गद्गेयर् ।।४२।। ळवळद सिम्हासनवर्गे ।।४३।।
वौवनाळि भाषा भाषितव ।।४४।। णीवदोळु कविय मनुनिपरु ।।४५।। ववरु चातुर्वर्ण प्रियरु ।।४६।।
टवणोयोळ् हितव पेळ्वरु ।।४७।। यवेयद्दु कर्मविळळवसु ।।४८।। भूवलयके ज्ञानि धरर् ।।४९।।
ववरु श्री वृषभसेनार्यर् ।।५०।। ळवरावि चतुराशीतिवर ।।५१।। घवररजिके सवनुवरि बुराह्मि ।।५२।।

वृषभ चक्रेशवरियर् ॥५३॥ कावर् तोम्बत् ओबत् सहस्र ॥५४॥
स❀ रि 'योळोम्दे दारियोळ्' बह 'वेगदि' वर 'व्यक्यवागोड्उवश्र' च❀ रर'मृगव'दर' व्यक्तित्वके तन्दन्ते । सरलवाबव्यक्तिमळिवर्॥५५॥
म्❀ नवर् 'उसाधुगळ् अ[९]सद्रुश 'करुणेय' । घन'वरपो एन्दे' र ख❀ ॥ तनदे 'ननुब हसुवदु गरियने मेयु' । वेनु 'वतेरदि परमान्न' ॥५६॥
मु❀ क्तिय अनन 'वगोचरिव्रुत्तियिन्' । व्यक्तविन् 'दुर्नडि' ह न❀ गु 'खु' ॥ शक्तर् 'निरेह वृत्तिगळम् [१०] तिरेयोळु' । व्यक्तित्व
'तडेयि ळळवे' ह ॥५७
कु❀ नयव'हरिदाडुववरणाळियन्। ते निस्सनग वेरसुत चरि ट❀ अ ॥ युविअ'सुवेकानग विहारिगळ् गुरु'।मुनि'गळय्दनेयसाधुगळ अब[११]'॥५८॥
मा❀ नव'भिक्षुगळिवरु सकळ तत्व' । ध्यान'गळनुसाक्षात् ध् अ❀ रिसि । तान्'आगिबेळगुव अक्षरज्ञानिगळ्'।तानुआदित्यनन्ददिर'॥५९॥
रो❀ पविळ्ळवेर'क्षिप तेजोमूरति' । आमे'यवर्'[१२]उ'रमेय्अ'ननु म्❀ ॥ ई'सुत्तिह सागरनन्ते गम्भोर'द् । ईसुव'र्समरदोळ् करम'॥६०॥

धमभन्ग 'ऐवर अङ्ग ॥६१॥ दइसेरादि 'केसरिसेनर्' ॥६२॥ सिसिद्धरु 'चारुसेन गुरु' ॥६३॥
हसमन 'वज्र चामररु ॥६४॥ नुसुळद 'वज्रसेनगुरु' ॥६५॥ वशगुप्त 'आदत्त सेनर्' ॥६६॥
मसकद 'जळज सेनगुरु' ॥६७॥ नसेयळिदिह 'दत्तसेनर्' ॥६८॥ वेसेव 'विदर्भ सेनवरु' ॥६९॥
तस रक्ष 'नागसेनगुरु' ॥७०॥ रातिगे 'कुन्थुसुनगुरु' ॥७१॥ मसहर 'धर्म सेनवरु' ॥७२॥
रुषिमद्दर सेनगुरु' ॥७३॥ पसरिप 'जयसेनगुरु' ॥७४॥ ळसदब्र् 'सद्धर्म सेन' ॥७५॥
गसद्रुश चक्र बन्ध गुरु ॥७६॥ यशद 'स्वयभूसेनर् ॥७७॥ मसकविजइ 'कुम्भसेनर' ॥७८॥
नसहर 'विशासेनवरु' ॥७९॥ मेसेवरु 'भळ्लि सेनगुरु' ॥८०॥ हिसिहिग्गविह 'सोमसेनर् ॥८१॥
मस 'वरदत्त मुनीन्द्ररर्' ॥८२॥ एसेव 'स्वेयम् परभारतिषु' ॥८३॥ नुसिर 'इन्दरभूति विप्रवर ॥८४॥
वशदनादिय 'गुरुवम्श' ॥८५॥ दशधर्मधर 'सेनवम्श' ॥८६॥ नसहरर् 'श्रोम्दारय् दोम्वु ॥८७॥
एसेयुव 'सेन भूवलयर्' ॥८८॥

त❀ नुविन कर्म 'व गेळुवर् समनेअोळ्' । 'वन 'मन्दराचळदम्' च❀ ॥जनुम'ते उपसर ग वमरळ कम्परागि'न चन्वि'हरुम[१३]माह'॥८९॥
हे❀ 'घ 'ननाद चन्द्रमनन्ते शान्तिय' । गाध् 'रूहनु सार् व' वर तु❀ ॥द्धाघन'चन्द्रम'ख'रु साहस व्रत'। धीघन'गळमणियतुप्य' ॥९०॥
व❀ रिसुत रूहिन मणिगळन्तिहर ह'[१४]अ ।'क्षरवेने नाशवदळि' चि❀ दरि'दक्षरवेम्ब परिशुद्ध केवल'। वर'ज्ञान दिरवमु सहने'॥९१॥
अ❀ वनि'योळिरुव भूमियतेर अखि'द । नव'समतेयोळोरेवर् अ'[२५] नि❀ अव'मिदुवाडि'ह 'मर् णिनिम् गेद्दळु'।अवु'मनेकट्टेअदरोळ्वा'॥९२॥
णि❀ जवि वा'सिप हाविनन्तेसदनवनिता र' ज'रुकट्टिरळ्ळलि' र्❀ वा॥निजद्'येमुदविल्लदे वासिपरुव'(१६)र।भजिसुत'तिरेयोळगिद्दव॥९३॥
रु❀ तिरेय मुट्टदलिह सुरुचिरदाका।श' त'दन्ते पोरेववरारि'॥ म❀ ति हति'ल्लव निरालम्बरु सरुवरु' । सततवु 'निर्लेपकरया'(१७)॥९४॥
द्❀ ब'सार्व कालदोळु मोक्षदन्वेषण'।नव'दोर्वियोळिरुव सा ला❀ ॥सवणसा 'धुगळु निर्वाणपदव साधि । मु'वग'त बाळुवरवर्स'॥९५॥
धो❀ रणरहितर्'सर् व साधुनळिगे' । दारियोळ्'नमि' स'ह(१८)धर्म अ! प❀ 'व॥साक्तकर्मभूसियोळिह शर्मद।मूरुकालदोळ् निर्मल'द॥९६॥

णिरयहोगवदॆ 'वायुभूति' ॥९७॥ दारिजपदद् 'अग्नि भूति' ॥९८॥ ररसे 'सुधर्मसेनगुरु' ॥९९॥
वीरन् 'आर्यसेनगुरु' ॥१००॥ हर 'मुन्डिपुत्रारव्यगुरु' ॥१०१॥ नूर श्रेष्ट 'मयूरेइ सेनर्' ॥१०२॥
नर 'अकम्पनसेनगुरु' ॥१०३॥ मरवेवळिद 'अन्धरगुरु' ॥१०४॥ निरयके होगद 'अचलरु' ॥१०५॥
हृदय 'प्रभाव सेनगुरु' ॥१०६॥ 'विरचिसिदरु पाहुडवम्' ॥१०७॥ तिरेय 'केवलद रक्षिसलु' ॥१०८॥
शरदोळक्षरव कटदुवरु ॥१०९॥ धरडने गणधररवरु ॥११०॥ दरदन्क भङ्गान्क वेदर् ॥१११॥
इरव महाभाषेयरिदं ॥११२॥ कार्य कारणद सम्बन्धर् ॥११३॥ णिरयद ज्ञान वेळ्दवरु ॥११४॥
ओरण वेद अन्ना धरर् ॥११५॥ मरणदोळ् हितव माचिपरु ॥११६॥ वाग्णाशियलि वादिपरु ॥११७॥
हर शिव शङ्कर गणितर् ॥११८॥ विरचित कव्य भूवलयर् ॥११९॥

वा॰ ळुव'पद्धतियाद भूवलयदॆ' । पालिन्अ'कर्म भूमिय् अ' र् ध॰ ॥'पालिसिर(१९)वर'ई'शुद्ध चयतन्य' द ।विलसित लक्षण परम्' ॥१२०॥
हृ॰ रव'निजात्म तत्वरुचि' य 'परम'र । वरद' सम्यग्दर्शन' व॰ ॥सर'द वर्तनेयिर्प परमात्म दर्शना' । दरदा'चारन्(२०) 'हृवणि'॥१२१ ।
तृ॰ णि'सि कोळ् ळुतलिन्द्रियवर्गवेललव' । गुण'अवरु तम्मा' ली॰ ढदलि॥विनुता'त्मनोळ् तन्दु समतेयोळविकार'।जन'वानन्द मयरागि'॥१२२॥
त॰ मगल्लि'सुविशालवह तन्नन्दव'।कर्'मा[२१]सर्व साधुउवु' क॰ आलिसिर् । दमल'भेद ज्ञानदिन्दलि सर्व'रा।समल'रागादिगळेम्बव'॥१२३॥
र॰ वर 'गर्वव परभाव सम्भन्घ'वे। सवि'वळिसुवसर्'व'व रु॰ ॥ अवर'क्रियेयु सम्यग्ज्ञानम्[२२] मनसिज । सवन'मर्दनरी निश्च'॥१२४॥
अ॰ वनि'यज्ञान दनुभवदोळगाचरि। प'व'चिनुमयतत्वदॆ त॰ निय॥ नवद्'भ्यास ज्ञानाचारकोनेयादि'।सवि'यरिवाचार आ[२३]'तानु'॥१२५॥

अवनरिविह'सेनगणरु' ॥१२६॥ गवनियें 'तानेम्ब गुरुगळ्' ॥१२७॥ नवदन्क'भुवलयवेळ्दर् ॥१२८॥
'भवदनुयभवव तोरुववरु ॥१२९॥ ळुवदनक 'नाल्कुमङ्गलरु' ॥१३०॥ गवियुकय्लासदोळ् वृषभम् ॥१३१॥
मवरोळ् अजितरु सम्मेद ॥१३२॥ एवेळ्वे शम्भवं अललि ॥१३३॥ लावभिननादनरल्ले ॥१३४॥
कवि वन्द्यसुमतियर् अल्ले ॥१३५॥ सवण पद्मप्रभरल्ले ॥१३६॥ टेवु सिरिसुपार्शवरु अल्लि ॥१३७॥
नव चन्द्रप्रभ पुष्पदन्तर् ॥१३८॥ दुवदे शीतलुरु श्रीयाम्सर् ॥१३९॥ नव चम्पेयोळ् वासुपूज्यर् ॥१४०॥
एवेयग्र नविय मध्यदलि ॥१४१॥ यवेयमुच्चद विमलरल्ले ॥१४२॥ सोवुल्य अनन्त धर्म जिनर् ॥१४३॥
नव शान्ति कुन्थु अररल्ले ॥१४४॥ नेव मल्लि मुनिसुव्रतल्लि ॥१४५॥ टव नमि सम्मेद नेमि ॥१४६॥
टवरूरल्य पावान्तवीरर् ॥१४७॥ बिव स्वर्ण भद्रदोळ् पार्श्वर् ॥१४८॥

क॰ विवन्धयरिवरु 'शुद्धात्म भावनेयिन्द । अवनिय तोरेयु नि॰ रव्हतिय॥सवियागि'हुट्टिसिदान्द स्वाभावि।'क'व'दशरीनिकेतनवति'यम॥१४९॥
ओ॰ विद 'सुखवनुभूतियु ताने' स । तीवि'सम्यक्त्वचारितरि हृ॰ पावन व'न् (२४)मर्मद सम्यव चारित्र' । तीविर 'दोळगे निरमलव' ॥१५०॥
इ॰ गव'रत्नधिरु'तिरु'व कर्मव हरिप' । नगदे'निश्चय चारित् श॰ रुव॥ओगेव'राकार धर्मवपरिपालिसुवउ'[२५]अगणित'चारित्र'तुआरवा॥१५१॥

ई* सुत'पत्रवोळिरुव नीरिनकरण' । आशा'वारिजवोळु वर्यि'स्इ षे* ॥ राशिइर'पन्ते सारात्मवरूपदोळिर्दु' ।लेसिसिक'परवरवृय वारय्॥१५२॥
ओ* रणि'केय निरोधिस्उत्स्(२६)सर्वस'रारजि''मस्त इच्छेग' ष* ॥ सागर 'ळनिरोधदि निर्वहिसुत' । सेर 'लात्मनतु सर्वव निजा'॥१५३॥
उरद् 'उत्तम भावनेयनुष्ठा ॥१५४॥ ळ र'नव निर्वहिसुवुदे' ॥१५५॥ ओरयप'म(२७)र्सयुतयह ॥१५६॥
त्र 'उत्तम तपवर्ललि' ॥१५७॥ कर 'वशर्वति गोळिसुत' ॥१५८॥ करुणेय 'मनव असवृश' ॥१५९॥
लारप 'वागिरिसिर्पु' ॥१६०॥ मृर 'वेनिश्चय वसमान' ॥१६१॥ सर 'तपदाचार(२८)वरवर्' ॥१६२॥
डेर 'शनचारवाव नाल्कु' ॥१६३॥ कूर 'गळोळु मरसवेशक्ति' ॥१६४॥ त्ररि 'योळ भजियपरमात्म' ॥१६५॥
तरदे 'परियनाराधिसुवु' ॥१६६॥ मरे'दु ताने परिशुद्ध' ॥१६७॥ वर'वीर्याचारन्(२९)भूरि' ॥१६८॥
रर 'वय्भवयुतवागि' ॥१६९॥ ळ 'रुवी अयृवु चारित्रा' ॥१७०॥ कर 'राधनेगळनु सार ॥१७१॥
टर 'पञ्चाचार वेनुव ॥१७२॥ दोरेव 'सिद्धानद भूरि ॥१७३॥ रर 'वयभवद भूवलयद ॥१७४॥
त्रदवे 'तेरिन कलश ॥१७५॥ दुर 'विद्वन्ते तम्मात्म' ॥१७६॥ टर 'नसार रत्नत्रयात्म' ॥१७७॥
एर 'कद कारण समय ॥१७८॥ नरर 'सारद वलदिन्द' ॥१७९॥ पर 'लिसेरिसुवुदु निश्च' ॥१८०॥
परि 'यण्र(३१) षुट्टु भव्दसिव' ॥१८१॥ इरुवुदे 'सोक्खमन्गालव' ॥१८२॥

ध* सिरु'हुट्टिप निश्चयवदनु हुट्टिसे । वश'कार्यवु समय, भु* वि ॥ रस'दसारवु हुट्टि बहुदु समाधिवया(३२)यश,धर्म साम्राज्यदरो॥१८३॥
ज* य'वोतरागद निर्मलात्मन समा,। पयो'धियोळ कर्म सम्ह, व* ॥ नय् 'आख माडुते निन्दिर्य शर्म 'णरु' । स्वयम्'सर्वसाधुगति' 'यात॥१८४॥
ज* य्' के सम्सारदाशेयु बिडुभव्यपू । त'यव'र पूण्य पादग' ना* ॥ सय' ळ' र 'नीतिमार्गदनिर्भरभक्ति' । 'यिमृनोन मातु मनसु का'॥१८५॥
न* बि'यदत्य(३४)नमिसु स्मरिसु कोन्डाडुस्तो।रव'दोळ एम्ब' न* ते'वरमव'।।नव'भूवलय पेळुवुदु श्रमविल्लदे'।सवि'सिद्धान्त मार्गवहोन्। १८६।
त्* न्'वे निमगे तप्पदु मुक्तिपद ज[३५]तीर्थम् क'नन 'ररन्ते' ता* म्'दन्ना ॥ त्मनिहनु स्वार्थवागलु शुद्धज्ञानवे । ने'व्यर्थदज्ञानवकेडिसे'। १८७।
ए* रि रत्नत्रय तीर्थ नन्य अनत सा रनुगन्[३६]तिळिपावम मृ* त ॥ सार चतुष्टय रूपनु बलित पम् । नारा 'चम' भावयुतनु' ॥१८८॥
एर 'कलि सप्त भय विप्र' ॥१८९॥ ग्र 'मुक्त स्वरपनु चलुव ॥१९०॥ ळरव 'अखण्डस्वरूप्वे [३७]' ॥१९१॥
योर 'नित्यनिजानन्दयक' ॥१९२॥ गरुव 'चिद्रूपम सत्य' ॥१९३॥ दोरेव 'परात्पर सुखद' ॥१९४॥
म्रळि 'स्तुतुत्यरु सर्व साधु' ॥१९५॥ सरुव 'गलेन्दरियुत अ' ॥१९६॥ विरल 'त्वनत भक्ति नमि' ॥१९७॥
द्र 'पे हम्(३८)रुषिगळनवर' ॥१९८॥ वुरवर 'पदप्राप्तियाग' ॥१९९॥ कर 'विर लेन्दसमान' ॥२००॥
लरयद 'भक्तियिम् भजसे' ॥२०१॥ यरडु 'वशवहुदेलूलरगे' ॥२०२॥ हरु 'सविकल्परूपद सु' ॥२०३॥
वरद 'समाधि य सिद्धि' ॥२०४॥ भूरि 'साधनस (३९)करुणेय' ॥२०५॥ धनरसे 'गुरुगळय्वर प' ॥२०६॥
वर 'व भक्तियिम् बरुवकष' ॥२०७॥ गरि 'रानक कावयवनु विर' ॥२०८॥ नकचिसि 'पराकवतसमसवुर' ॥२०९॥
सर 'त कनड बोळ वेरसि' ॥२१०॥ मरे 'पद्धतिगर्मयवया(४०)' ॥२११॥ करपात्रवनम भूवलय ॥२१२॥

स# र 'तिरेयोळगिरुव समसत वसतुव' । सरि पेळवग्ररहनत' न# वरव॥वर'रावियादवेंदुपरमेष्ठिगळबोल्लि।परियपवद्यतियोळ् विरचि।२१३।
ग्र# तिशयि'सिहरुबललिर्दति(४१)नया यादिल । क्षतिवरणग्रनथव् ग्र ॰ नोळगोन । डु'ति'ग्राय हत्नेरडु म' साविरव । हित शरेयो मारग श
लोकगळिवु॥२१४॥
त्# नियाʼद कट्टिब श्रेय ऐवरकाव्य' । घन'वप(४२) यारेष्ट ज' म# पा ॥गरणसि'विसिदरवदुसत्फलवीव सा । र'न'सर्वस्वबी ऐदु' ।२१५।
त# वगे'सेरिदरहत्सिद्धराचार्यपाठक'।धवरु'साररुसर्व् ग्रा# साधु'॥ग्रवरु'गळर'(४३)सु'तप्पदेभूवलयक्ग्रा।वि'वयद'मंगल विप्पतुनाल्वर्' २१६

बुवसिर् 'ग्रमत्तर ग्रोप्पुव' वु ॥२१७॥ रववु 'पञ्चचकार' वरिया ॥२१८॥ डव 'ग्र सि ग्राउ सा' मन्त्र ॥२१९॥
यवे 'विप्प साल क्षर काव्य' ॥२२०॥ ए'व मा (४४)साविरदेनुदु' ॥२२१॥ ड्व 'नामगळनु कूड' ॥२२२॥
ग्रावा 'लु पावनवाद' ॥२२३॥ नव 'ग्रोम्बत्तु सावाग' ॥३२४॥ नेवदे 'जीवर कावुदेननु' ॥२२५॥
थु 'व काव्य श्री वीर पेळव' ॥२२६॥ सोवरट्ट'भूवलमम'(४५) ग ॥२२७॥ दुव 'घरे योळी ग्रोम्बत्तु' ॥२२८॥
ऐवरु 'गळ विस्तरिस' ॥२२९॥ लावाग 'लु वरुवर्नक' ॥२३०॥ नववु 'नूर हत्तेरड परि' ॥२३१॥
कवि 'शुद्ध बद्र मत्ते कूड' ॥२३२॥ मनिर'लु नाल् कु वरधर्म ॥२३३॥ तव'शास्तर्बिम्परि'(४६) ॥२३४॥
ल्व नाल्क होसेयलु नपदे' ॥२३५॥ न'वतेय होस शास्तरविदतन् ॥२३६॥ तूवन् 'दु कोट्ट भूवलय' ॥२३७॥
काव 'द होस पद्धतिगे' ॥२३८॥ डुविन्'रगुवेति[४७]हर्षवर्ष' ॥२३९॥ रविवार 'नमप्प काव्य ॥२४०॥
दोववनु 'ग्रोम्बत्त॥रु' गळ ॥२४१॥ ळवर'स्पर्शदोळोन्नवेरड्एम्ब' ॥२४२॥ गेवि'स्पर्शमरिणगळय्दोबोम् ॥२४३॥
मव 'बत् ग्रनक के हरुष' ॥२४४॥ रव'वोळेगुवेनिनदुस्'(४८)नाम् ॥२४५॥ क्विगळन्कव श्री भूवलय ॥४४६॥

स# र्वार्थ सिद्धियोळ हमी(द्र देवरु । निर्दहिसुतलिह हे स# मे ॥ धर्मवय्मवदतिशयववीर्घायुवु। निर्मल भक्तरिगहुवु ।२४७।
ग्र# वरोळगरसु ग्राळगळेम्ब भेदवम् । कविगळु कारणबुवशक् य# ग्र ॥ ग्रवरन्तेकर्माटदेशभाषेयजन । ववरेल्लशाश्वव सुखवि ।२४८।
य# श कीर्तियल्लव यशकीर्ति नामद । हेसरिन कर्मोद ग्रय् ग्र# व ॥ वशगेय्वजनपदविल्लवीनाडिनोळ्।कुसुमायुधनाळ्द् नेलदोळ् ।२४९।
सि# रवोळु धरिसिर्द मकुटदोळ् केत्तिर्द । वररत्नद्युति ह् # रिसि ॥ गुरुविनचरणद्यूळियहोत्तमोधान्क । वोरेय राज्यद'ळ'भूवलय।२५०।
द# रियन्तर नाल्केन्टोम्बत् ऐदोम्दु । सरियन्कवक्षर् ग्र# इळ् से ॥ गुरुवेळ एळ् नाल्कोम्बत्ड इनुतागे । करुनाडजनतेय काव्य ।२५१।
धा# रिणियोळ् हृदिभूरनेग्रनक'ळ'ग्र । सेरिसेनग्राल्वत्एनट् ग्र म# । शूर दिगम्बररक्षम्रक्षद (परक्र्षद) नूर्रमन्त भूवलय 'ळ' ॥२५२॥

ळ् ६,४७७+ग्रन्तर १५,६८४+ग्रन्तरान्तर २१६९=२,२६३० ग्रथवा ग्र—ऋ—२,५२,०८१+ळ् २७,६३०=२,७९,७११

तेरहवां अध्याय

भारतवर्ष अढाई द्वीप में है। इस प्रदेश मे जितने भी साधु गण हैं वे सभी मोक्षमार्ग के साधन मे सलग्न रहते है। भारत के मध्य प्रदेश मे "लाड" नामक एक देश है। उस देश में साधु परमेष्ठी आगमानुसार अतिशय तपस्या करके ऋद्धि के द्वारा अपने आत्मिक बल की वृद्धि करते रहते है। उन समस्त साधुओ का कथन इस तेरहवे अध्याय में करेंगे, ऐसा श्री कुमुदेन्दु आचार्य प्रतिज्ञा करते हैं ।१।

प्रकाशमान आत्मज्योति के प्रभाव से आदिकाल अर्थात् ऋषभनाथ भगवान् से अथवा अनादिकाल अर्थात् ऋषभनाथ भगवान् से भी बहुत पहले से इन समस्त साधुओ ने (तीन कम नौ करोड मुनियो ने) इस शरीर रूपी कारागृह से आत्म-ज्योति को प्रगट करके मोक्ष पद को प्राप्त किया है। अत उन सभी को हमारा नमस्कार है। क्योकि इस प्रकार नमस्कार करने मात्र से गणित में न आनेवाले अनन्तज्ञानादि गुणो की प्राप्ति होनो है ।२।

विवेचन —मूल भूवलय के उपर्युक्त दो कानडी श्लोको मे से साधुगलिहरेरडूवरेद्वीपदि ' इत्यादि रूप और एक कानडी पद्य निकलता है। उन ४८ कानडी पद्यों के मिल जाने से एक दूसरा और अध्याय बन जाता है। वह अध्याय अन्य स्थान मे दिया गया है। उस अध्याय मे अनेक भाषाये निकलती हैं। किन्तु उन भाषाओ को यहा नही दिया है। यही क्रम अगले अध्यायो मे भी चालू रहेगा।

वे साधु जन अपने आत्मस्वरूप मे रत रहकर परिशुद्धात्म-स्वरूप को साधन करते हुए सर्व साधु अर्थात् पाचवे परमेष्ठी होकर परम अतिशय रूप से परमात्मा के सदृश होने की सद्भावना सदा करते रहते हैं ।३।

वे साधु पचमहाव्रतों को निर्दोष रूप से पालन करते हुए क्रमानुगत आत्मिकोन्नति मार्ग में सदा अग्रसर रहते हैं। मन, वचन और काय गुप्तियो के धारक होते हुए उपवास अर्थात् आत्मा के समीप मे वास करते रहते हैं। साधुओ के गुणों के कथन करनेवाली विधि को उपक्रम काव्य कहते हैं। यही श्री भूवलय का उपक्रमाधिकार है ।४।

उनके तपश्चरण को देखकर सब आश्चर्य-चकित हो जाते है, किन्तु वे उस कठोर तपस्या को सरलता से सिद्ध कर लेते हैं। ९+९=१८००० [अठारह हजार] प्रकार के शील को धारण करके तथा उसके आभ्यन्तर भेद को भी जानकर परिशुद्ध रूप से निरतिचार पूर्वक पालन करनेवाले अपने शिष्यो को भी इसी प्रकार शील की रक्षा करने के लिए सदा उपदेश देते हैं ।५।

अठारह हजार शीलो के अन्तर्गत चौरासी लाख भेद हो जाते हैं। उनको उत्तरगुण कहते हैं। इनमे एक गुण भी कम न हो, इस प्रकार पालन करनेवाले को साधुपरमेष्ठी कहते हैं ।६।

ये साधु समस्त दर्शन शास्त्रों के प्रकाण्ड वेत्ता होते है ।७।

ये साधु सर्प के भव भवान्तरो को अपनी ज्ञानशक्ति के द्वारा जान लेते हैं (सर्प-शब्द से समस्त तिर्यंच प्राणियो को ग्रहण किया गया है) ।८।

उनके मन मे जो अनायास ही शब्द उत्पन्न होते हैं वही शब्द शास्त्रो का मूल हो जाता है ।९।

आम के वृक्ष मे जो फल (बौर) द्वारा रासायनिक क्रिया से गगनगामिनी विद्या सिद्ध होती है उस विद्या के ये साधुजन पूर्णरूप से ज्ञाता हैं। उस विद्या का नाम अनल्पकल्प है ।१०।

ये साधु नौ (९) अकरूपी भूवलय विद्या के पूर्ण-ज्ञाता हैं, अत इनकी अगाध महिमा का वर्णन किस प्रकार किया जाय ।११।

इन साधुओ का प्रत्येक शब्द सिद्धान्त से परिपूर्ण रहता है। अर्थात् इनके प्रत्येक वचन सिद्धान्त के कथानक ही होते है ।१२।

इनके एक ही शब्द के केवल श्रवण मात्र से मिथ्यात्वकर्मों का नाश हो जाता है, तो उनका पूर्ण उपदेश सुनने से क्या होगा ? ।१३।

उनके दर्शन मात्र करने से कर्मरूपी समस्त वनो का नाश हो जाता है ।१४।

भेद और अभेदरूपी दो प्रकार के नय होते हैं। उन दोनों नयों में ये साधुपरमेष्ठी निष्णात हैं ।१५।

ये साधु नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत इन सात नयों में परम प्रवीण हैं ।१६।

ये साधु ज्योतिष विद्या के अष्टांगनिमित्तज्ञान में अत्यन्त कुशल होते हैं ।१७

ये साधु वादी-प्रतिवादी की विद्या को स्तम्भन करने में बहुत चतुर हैं अथवा भूत प्रेतादि ग्रहगणों को भी स्तम्भन करने वाले हैं ।१८।

इन साधुओ ने मोहन, वशीकरण आदि विद्याओं में अत्यन्त प्रवीणता प्राप्त की है अथवा बन्ध करनेवाले को मोहन करके अपनी ओर आकर्षित करके उन्हें अपना शिष्य बनाने में भो ये निपुण हैं ।१९।

ग्रहादि को आकर्षण करने में भी ये अत्यन्त निपुण हैं ।२०।

और ग्रहादि का उच्चाटन करने मे भी ये अत्यन्त समर्थ हैं ।२१।

और समस्त मन्त्रो को साध्य करने में ये अत्यन्त निपुण है ।२२।

समस्त अर्थ को सिद्ध करनेवाले इस साधु परमेष्ठी को सिद्ध भगवान भी कहते हैं ।२३।

भूवलय मे जैसा चक्रबन्ध है उसी रीति से आत्मिकगुणों के चक्ररूपी बन्ध में पवन के समान घूमने वाला है ।२४।

ये साधु दान देने में अत्यन्त प्राज्ञ हैं और ससार मे सभी लोगो के द्वारा दान दिलाने में बड़े विलक्षण हैं ।२५।

जंगलों में समस्त जीवो के बीच चक्रवर्ती सिंह है और उसमे रहने वाले तपस्वी जन उस सिंह से भी पूज्य हैं किन्तु सिंह और उन समस्त साधुओं से भी सेव्य ये पंचपरमेष्ठी हैं ।२६।

ये साधु गण सर्वदा तपोवन रूपी साम्राज्य का पालन करने वाले हैं अर्थात् स्थावर आदि समस्त जीवो की रक्षा करने वाले हैं ।२७-२८।

हजारों वर्षों से हजारो मुनि इस भूवलय ग्रन्थ का उपदेश देते हुये इसे लिखते आये हैं ।२९।

उसी जंगल मे ये साधु जन मनुष्य तिर्यञ्च और देवो को उपदेश देते हुये अपने आत्मावलोकन मे लीन रहते थे और ज्ञान दर्शनादि अनन्त गुणों का उपयोग रूपी आहार आत्मा को देते हुये जगलो में विचरण किया करते थे । अत: वे आत्मिक बलशाली थे । इन मुनियों को जंगल में आनेवाले राजाधिराज बडी भक्ति भाव से आहार देते थे । अतः वे आत्मिक बल के साथ ही शारीरिकादि से भी बलशाली थे ।३०।

अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग ज्ञान से विभूषित होते हुये ये महात्मा आत्मध्यान से कदापि नही विचलित होते थे । ऐसे ज्ञानी साधु परमेष्ठी उस जंगल में सिंहतीर्थ नामक पवित्र स्थान में तपस्या करते थे । इन पंचपरमेष्ठियों की आज्ञा पाते ही जगल मे रहने वाले सभी साधु घनघोर तप करने के लिये तैयार हो जाते थे और उस तप को करके प्रखर ज्ञान को प्राप्त कर लेते थे । इस प्रकार समस्त तपस्वी उस सिंहतीर्थ तपोभूमि में अत्यन्त घन घोर तप करके अपने आत्मबल को बढाने वाले थे ।३१।

ऐसे उत्कृष्ट ज्ञानादि शक्तियों के धारी होने पर भी वे साधु ज्ञान मद से सर्वथा रहित रहते थे । ऐसे परमेष्ठियों के कर-पात्र में दिए हुए आहार को देखकर वे इस प्रकार विचार करके ग्रहण करते थे कि यह सात्विक आहार निर्मल ज्ञान की उन्नति करने वाला नहीं है, यह केवल जड शरीर को ही पुष्टि करने वाला है और आत्मा के द्वारा उत्पन्न हुआ ज्ञानामृत आहारण अन्न से आत्मा को पुष्टि करने वाला है । जड शरीर और आत्मा को भिन्न रूप समझकर पुद्गल अन्न पुद्गल को आत्म स्वरूप से उत्पन्न अन्न आत्मा को अर्पण करने वाले महापुरुषो को आहार देने का शुभ-समागम अत्यन्त पुण्योदय से ही प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं ।३२।

जिस प्रकार गजराज बडे गौरव के साथ दिए हुए भोजन को गम्भीरता पूर्वक ग्रहण करता है उसी प्रकार ये साधु गभीर मुद्रा से खडे होकर आत्मोन्नति के लिए आहार ग्रहण करते हैं आहार के लोभसे नहीं । इसीलिए रात्रि में ध्यान करने पर इनकी आध्यात्मिकता अद्भुत रूप से चमकने लगती है ।३३।

नो आगम निक्षेप दृष्टि से ये साधु परमेष्ठी ऋषभ के समान भद्रतापूर्वक मन से द्वादशाङ्ग श्रुत का चिंतन करने लगते हैं । तब अक्षर ज्ञान उत्पन्न हो जाता है । अक्षर के अर्थ का वर्णन पहले किया जा चुका है । अत वही अक्षर ज्ञान रात्रि के समय उन साधुओ के हृदय-कमल में अनक्षर रूप बन जाता है ।३४।

इस तपस्या मे निश्चल भाव से ये साधु परमेष्ठी रत रहने के कारण तपो राज्य के स्वामी कहलाते हैं ।३५।

ाधु परमेष्ठी अतिशय गुणो के राजराजेश्वर हैं ।३६।

जिस प्रकार षट्खण्ड पृथ्वी को जीत लेने पर चक्रवर्ती पद चक्री को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जीव स्थानादि षट्खण्ड अपने मस्तिष्क में धारण करने के कारण और तपोराज्य में परमोत्कृष्ट होने से तप चक्रवर्ती कहलाते हैं ।३७।

इन साधु परमेष्ठियो ने नवमांक पद मे सिद्ध की हुई द्वादशांग वाणी अर्थात् भूवलय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है ।३८।

ये साधु परमेष्ठी समस्त गुरुकुल के अज्ञानान्धकार को नाश करने वाले चन्द्रमा के समान हैं ।३६।

इस गुरुकुल में जो कवि गण रहते हैं उनका उद्धार करने वाले साधु परमेष्ठी है ।४०।

इन गुरुकुलो मे सिहासन पर विराजमान होकर राजाधिराजो से सेव्य अनेक गुरु विद्यमान थे । वह इन्द्रप्रस्थ से लेकर महाराष्ट्र तामिल और कर्णाटक देश में प्रख्यात अनेक गुरुपीठो को स्थापित किया था । इस गुरुकुल के मुनि सघ मे समस्त भव्य जीव समावेश होकर अपने जीवन को फलीभूत बनाने के लिए आत्म-साधन का ज्ञान प्राप्त कर लेते थे ।

इसलिए इन्हें देश-देशो से आये हुए श्रीमान् तथा धीमान् सभो व्यक्तियो ने मध्यान्ह कल्प वृक्ष अर्थात् अन्न दान देनेवाले कल्प वृक्ष से नामाभिधान किया था ।४१।

देहली राजधानी को पहले इन्द्र प्रस्थ कहते थे । आकाश गमन ऋद्धि से आकर इस सेन गण वाले मुनियो द्वारा जैन धर्म को प्रभावना होती थो ।४२।

प्राचीन कालीन चक्रवर्तियो का राजसिहासन नवरत्नो से निर्मित था और उन चक्रवर्तियों ने इन परम पूज्य मुनीश्वरो को प्रवाल मणि का सिंहासन बनवा कर प्रदान किया था और वे सदा उस सिंहासन को नमस्कार किया करते थे ।४३।

इन मुनिराजों की ख्याति सुनकर ग्रीक देशीय जनता आकर इनके धर्मोपदेश का श्रवण, पूजन आदि करते थे अत ये यवनी भाषा में वार्तालाप करते हुए अनेक यावनी ग्रन्थों की रचना भी करते थे ।४४।

इन आचार्यो के साथ वार्तालाप करते समय इनके पास बैठे हुए अन्य कविगण भी वीतराग से प्रभावित हो जाते थे और उस प्रभाव को देखकर ये आचार्य इसे विशेष रूप से गौरव प्रदान करते थे ।४५।

इन महात्माओ ने ब्राह्मण क्षत्रियादि चारों वर्णों के हितार्थ अपनी अनुपम क्रियाओं से सस्कार किया था ।४६।

ये मुनिराज एक ही समय में उपदेश भी देते थे और शास्त्र लेखन कार्य भी करते थे ।४७।

सव मात्र भी कर्म का बध ये नही करते थे ।४८।

ये साधु समस्त विश्व को शान्ति प्रदान करने वाले थे । अर्थात् समस्त भूमण्डल को सुख-शान्ति देने वाले थे ।४६।

इन मुनिराजों के आदि पुरुष श्री वृषभदेव तीर्थंकर के प्रथम गणधर श्री वृषभसेनाचार्य थे ।५०।

वृषभसेनाचार्य से लेकर चौराशी गणधर इन साधु परमेष्ठियो के आदि पुरुष थे ।५१।

चतु सघ में ऋषि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका ये चार प्रकार के भेद होते हैं । उन वृषभसेनाचार्य के समय मे सौन्दरी देवी और ब्राह्मी देवी ये दोनों आर्यिकाये थी । इन्हीं दोनो त्यागी देवियों का सर्व प्रथम स्थान त्यागी महिलाओ में था ।५२।

इन दोनो आदि देवियो ने सर्व प्रथम श्री भूवलय का आख्यान आदि तीर्थंकर श्री आदि प्रभू से भरत चक्रवर्ती तथा गोम्मट देव के साथ सुना था । यद्यपि यह बात हम ऊपर कह चुके हैं, तथापि प्रसगवश यहा हमने इंगित कर दिया ।५३।

इन्हीं ब्राह्मी और सुन्दरी देवी से लेकर आचार्य श्री कुमुदेन्दु पर्यन्त ११६६६ गणनीय आर्यिकाये थी ।५४।

यह सब चतु सघ सरल रेखा अर्थात् महाव्रत के मार्ग से ही विचरण करता हुआ सयम पूर्वक अनियत विहार करता था । इनके साथ चलने वाले बहुत बडे-बडे शक्तिशाली व्यक्ति भी पीछे पड जाते थे । उन साधुओं की गति इतने वेग से होती थी कि मृग और हरिण की चाल भी इनके सामने फीकी

प्रतीत होती थी। इतने वेग से गमन करने पर भी वे जरा भी थकित न होकर श्रावकों को मार्ग में चलते २ उपदेशामृत भी पिलाते जाते थे।५५।

इन साधु परमेष्ठियो के असदृश करुणा होती है। इनका दयाभाव मानवो तक ही सीमित नहीं बल्कि समस्त जीव मात्र से रहता है। ये पूर्वोपार्जित तप के प्रभाव से दया घन बन गये। घन का अर्थ समस्त आत्म प्रदेशों में दया भाव अखंड रूप से व्याप्त हो जाना है। जिस प्रकार गाय फसल को समूल नष्ट न करके केवल छाल को खाकर सन्तुष्ट हो जाती है तथा उसके बदले में अत्यन्त मधुर, पौष्टिक एव समस्त जन कल्याणकारी पय प्रदान करती है उसी प्रकार नवधा भक्ति पूर्वक श्रावको के द्वारा दिये गये नीरस आहार को साधु जन ग्रहण करके सन्तुष्ट हो जाते हैं तथा उसके बदले उन्हें ज्ञानामृत प्राप्त हो जाता है जो कि स्व-पर कल्याणकारी होता है।५६।

इस ससार मे प्राय. सभी लोग एकान्त मे भोजन ग्रहण करते हैं किन्तु साधुओं के लिये अपने आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई एकान्त स्थान कहीं भी नहीं है। अतः वे गोचरी वृत्ति से सर्व समक्ष आहार ग्रहण करते हैं। इस प्रकार का ग्रहण किया हुआ आहार निरीह वृत्ति कहलाता है। इन साधुजनो को आभ्यन्तरिक ज्ञानामृत आहार परम प्रिय होने के कारण पौद्गलिक जडात्म आहार ग्रहण करते समय यह पता ही नही चलता कि "हम आहार ग्रहण कर रहे हैं।" क्योकि इनका लक्ष्य केवल आत्मा की ओर ही प्रतिक्षण रहा करता है। ध्यानाध्ययन में किसी प्रकार की कोई बाधा न हो, इस कारण ये मुनिराज प्रमाण से कम अर्थात् अर्द्ध पेट अवमौदर्य वृत्ति से आहार ग्रहण करके तपोवन को गमन कर जाते हैं।५७।

ये साधु जन कुनय (दुर्नय) का छेदन-भेदन (नाश) करके अनेकान्तवाद धर्म का प्रचार करते हुये किसी का आश्रय न लेकर पवन के समान स्वच्छन्द होकर अकेले विहार करते रहते हैं। अनेकान्त धर्म का अर्थ अखिल विश्व कल्याणकारी धर्म है। ऐसा सदुपदेश देने वाले इन साधु परमेष्ठियो को पांचवां परमेष्ठी कहते हैं।५८।

ये साधु परमेष्ठी मानव रूपी भिक्षु हैं। भिक्षु शब्द के दो भेद हैं:—

१ ला आहार, वस्त्र तथा वसतिका आदि के याचक और दूसरा ज्ञान पिपासु। ज्ञान पिपासु भिक्षु समस्त तत्त्वों की कामना करते हुये गुरु के उपदेश से अथवा अपने शुभ व शुद्ध ध्यान से अभीष्ट पद प्राप्त कर लेते हैं।

इन तत्त्वान्वेषी साधुओं के आत्मिक ज्ञान का प्रकाश सूर्य के समान अत्यन्त प्रतिभा शाली होता है। और जब वे महात्मा ध्यान में मग्न हो जाते हैं तब इनकी आत्मा के अन्दर ज्ञान की किरणें धवल रूप से झलकने लगती हैं।५९।

ये साधु शिष्यों की रक्षा करते समय किसी प्रकार का रंचमात्र भी रोष नहीं करते। इनका स्वरूप सदा तेज पुंज से पूरित रहा करता है। जिस प्रकार सागर समस्त पृथ्वी को चारो ओर से घेरकर रक्षा करता रहता है उसी प्रकार ये साधु परमेष्ठी समस्त शिष्य वर्गों को अपने ज्ञान रूपी दुर्ग के द्वारा सुरक्षित रखकर आत्मोन्नति के मार्ग की प्रतीक्षा करते रहते हैं। और ऐसा करते हुये भी अनादि कालीन अपनी आत्मा के साथ बंधे हुए कर्मों के साथ सामना करके विजय प्राप्त करते रहते हैं।६०।

पांचो परमेष्ठियों में ये साधु परमेष्ठी पांचवें हैं। आचार्य कुमुदेन्दु ने वृषभ सेनादि ८४ के बाद गौतम गणधर तक और उनके समय से अपने समय तक सभी आचार्यों ने भूवलय के अंग ज्ञान की पद्धति किन २ आचार्यों में थी इत्यादि का निरूपण करते हुये दूसरा नाम केशरीसेन तीसरा नाम चारुसेन आदि क्रम से वज्रचामर, वज्रसेन, वज्रचामर, वा अदत्तसेन, जलसेन, दत्तसेन, विदर्भ सेन नागसेन, कुन्थुसेन धर्मसेन, मन्दर सेन, जै सेन सद्धर्म सेन, चक्रबध, स्वयभू सेन, कुंभसेन, विशाल सेन, मल्लि सेन, सोमसेन, वरदत्त मुनीन्द्र, स्वय प्रभारत्नी, इन्द्रभूति, विप्रवर, गुरुवंश, सेनवंश इत्यादि १५६१ मुनीश्वर सेनगण में भूवलय के ज्ञाता साधु-परमेष्ठी थे। ६१ से लेकर ८८ तक श्लोक पूर्ण हुआ।

विवेचन—यह आचार्य परम्परा मूलसंघ के आचार्यों की होती हुई इतिहास से पूर्व काल से लेकर आई हुई मालूम पड़ती है। इस सम्बन्ध में हम अन्वेषण करते हुये महान् महान् इतिहासज्ञों से वार्तालाप किये। तो उस वार्ता-

लाप का सार यह निकला कि ये १५६१ मुनि आचार्य कुमुदेन्दु के ही समकालीन महा मेधावी, आचार्य के ही शिष्य थे। इन सब के साथ आचार्य कुमुदेन्दु विहार करके मार्ग मे समस्त आचार्यो को गणित पद्धति सिखलाते हुये समस्त भूवलय ग्रन्थ की रचना चक्रबंध क्रमानुसार सभी आचार्यो से करवाये। १६२×६४=१०३६८ अर्थात् श्रीमद् भगवद् गीता के १६२ श्लोक को भूवलय के ६४ अक्षरो से गुणा कर दिया जाय तो एक भाषा अर्थात् गीर्वाण भाषा में ऋग्वेद बन जाता है। इस प्रकार की विधि से आचार्य श्री कुमुदेन्दु ने अपने एक शिष्य को उपदेश दिया। तो उस मेधावी शिष्य ने एक ही रात्रि में उपर्युक्त अंकों की रचना चक्रबंध रूप मे करके दिखा दिया। इसी रीति से दूसरे शिष्य को १६२×५४=वही १०३६८ अंको का उपदेश देकर कहा कि अच्छा तुम अपनी बुद्धि के अनुसार बनाओ। गुरु देव की आज्ञा पाते ही दूसरे शिष्य ने भी फल स्वरूप श्री वेद व्यास महर्षि विरचित महाभारत अर्थात् वयाख्यान तथा उसके अन्तर्गत पांच भाषाओं मे श्री मद्भगवद् गीता के अंको को चक्रबंध रूप में शीघ्र ही बनाकर श्री गुरु के सम्मुख लाकर प्रस्तुत किया। इसी रीति से १५६१ महामेधावी मुनि शिष्यो को रचना के लिये दे देने से सभी ऋषियों ने एक ही दिन मे महान् अद्भुत भूवलय ग्रन्थ को विरचित करके गुरु को प्रदान कर दिया। तब कुमुदेन्दु मुनि ने समस्त मेधावी महर्षियो की वाक्-शक्ति को एकत्रित करके अपने दिव्य ज्ञान से अन्तर्मुहूर्त्त मे इस भूवलय ग्रन्थ की रचना की। वह चक्रबन्ध १६००० सख्या परिमित है।

अपने अपने कर्मानुसार मानव पर्याय प्राप्त होती है ऐसा सोचकर तपोवन में तपस्या करते समय मुनिराज मेरु पर्वत के समान अकम्प (निश्चल) रहते हैं। तथा अपने आत्मिक गुणों को विकसित करते हुये मोहकर्म को जीत लेते हैं।८९।

जिस प्रकार रात्रि मे चन्द्रमा अपनी शीतल चांदनी के द्वारा स्वयं प्रशान्त रहकर समस्त जीवो के सताप को हर लेता है उसी प्रकार साधु जन सिंह विक्रीडितादि महान महान व्रतो द्वारा स्वयं प्रशान्त रहकर अन्य जीवो का भी शान्ति प्रदान करते हैं। अतः उनकी बुद्धि रूपी सपत्ति सदा चमकती रहती है।९०।

दीप्तिमान नव रत्नों को एक ही आभरण में यदि जड़ दिया जावे तो उनकी पृथक पृथक प्रभा एकत्रित होकर अनुपम प्रकाश देती है इसी प्रकार ज्ञान की विभिन्न किरणो को श्री कुमुदेन्दु आचार्य के १५६१ शिष्यों ने ग्रहण किया और कुमुदेन्दु आचार्य ने उन ज्ञान किरणो कोएकत्रित करके इस भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ का रूप दिया जिसमे कि विश्व का समस्त ज्ञान निहित है।

क्षर नाम नश्वर का है और अक्षर नाम अविनश्वर का है। जिस प्रकार केवल ज्ञान अक्षर (अविनश्वर) है सी प्रकार भूवलय का अंकात्मक ज्ञान अक्षर (अविनश्वर) है।९१।

जिस प्रकार भूमि के अन्तरग बहिरग रूप में पदार्थों को धारण करने रूप सहन शक्ति विद्यमान है उसी प्रकार मुनियों के अन्तरंग-बहिरंग समता भावों में अनुपम सहनशक्ति विद्यमान रहती है। उस परम समतामय मुनिराजो के द्वारा इस भूवलय की रचना हुई है।९२।

जिस प्रकार अनियत घूमने फिरने वाला सर्प यदि किसी के घर में आ जावे तो उसके विषमय दन्त उखाड देने पर वह किसी को कुछ भी बाधा नही दे पाता उसी प्रकार अनियत स्थान और बसितका मे विहार करने वाले योगी जन विषय-वासनाओं के विष को दूर कर देने के कारण किसी भी प्राणी के लिए अहित कारक नही होते।९३।

जिस प्रकार भूमि को छिन्न-भिन्न करने पर भी भूमिगत आकाश छिन्न-भिन्न नही हुआ करता उसी प्रकार साधु गण शरीर के छिन्न-भिन्न होने पर भी अपने अनुपम समता मय भावो मे स्वावलम्बन रूप से अपने गुणों द्वारा आत्मा को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखते है। ऐसे मुनिराजो के द्वारा इस भूवलय का निर्माण हुआ।९४।

वे मुनिराज सदा सर्वदा केवल मोक्ष मार्ग के अन्वेषण में ही तत्पर रहते हैं। तपस्या मे शालवृक्ष के समान कायोत्सर्ग मे खडे होकर वे मुनिराज निश्चल भाव से तप करते हैं।९५।

ऐसे साधु परमेष्ठी इस कर्म भूमि में रहने पर भी सपूर्ण कर्मों से रहित होते हैं। और मार्ग में विहार करते समय राजा–रंक के द्वारा नमस्कार किये

जाने पर समदर्शी होने के कारण किसी के साथ लेश मात्र भी राग द्वेष नही करते ।

उत्कृष्ट कुल में उत्पन्न हुये साधु जन वर्णनातीत हैं । अत उन्हे ऊँच नीच कुल के चाहे जो भी नमस्कार करें उन सबको वे समान समझते थे । इस प्रकार तीनों कालों में इन साधुओं का चरित्र परम निर्मल रहता है ।९६।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक साधु श्री कुमुदेन्दु मुनि के सघ में थे । वे भी सेनगण के अन्तर्गत ही थे । ये सभी मुनि नरकादि दुर्गतियों का नाश करनेवाले थे । इनका वर्णन निम्न प्रकार है —

वायुभूति कमल पुष्प के समान सुशोभित चरण हैं जिसके ऐसे अग्नि भूति, भूमि को छोडकर अघर मार्ग गामी सुधर्म सेन, वीरता के साथ तप करने वाले आर्य सेन, गणनायक मुंडी पुत्र, मानव कुल के उद्धारक मैत्रेय सेन नरो में श्रेष्ठ अकम्पन सेन, स्मरण शक्ति के धारक अन्ध्र सेन गुरु, नरकादि दु खो से मुक्त अचल-सेन, शिष्यो को सदा हर्षित करने वाले प्रभाव सेन मुनि इन समस्त मुनियों ने पाहुड ग्रन्थ की रचना की है ।

प्रश्न—पाहुड ग्रन्थ की रचना क्यो की गई ?

उत्तर—केवल ज्ञान तथा मोक्ष मार्ग को सुरक्षित रखने के लिये इस पाहुड ग्रन्थ की रचना की गई । इन मुनियो के वाग्बाण से ही शब्दो की रचना हो जाती थी । अत जनता इन्हे दूसरे गणधर के नाम से सबोधित करती थी ।

उस उस काल के धारणा शक्ति के अनुसार गणित पद्धति के द्वारा अङ्गज्ञान से वेद को लेकर वे साधु ग्रन्थो की रचना करते थे । अर्थात् मन्त्र का द्रष्टार्थ तत्तत्कालीन महाभाषाओ के वे साधु जन ज्ञाता थे और कार्य कारण का सम्बन्ध भलीभांति जानते थे । नरक गति से आये हुए समस्त जीवो को ज्ञान प्रदान करते हुए वे मुनिराज पुन नरक बन्ध करने से बचा लेते थे । वे समस्त मुनिराज चारो वेद तथा द्वादशाग वाणी के पूर्ण ज्ञाता थे तथा आयु के अवसान काल में स्व-पर हित करनेवाले थे । उस प्राचीन समय से बनारस नगर में वाद-विवाद करके यथार्थ तत्व निर्णय करने के लिए एक सभा की स्थापना की गई थी । उस सभा में इन्ही मुनीश्वरो ने जाकर शास्त्रार्थ करके आत्मसिद्धि द्वारा प्रकाश डालकर मानवो को कल्याण का मार्ग निर्दिष्ट किया था इस रीति से बनारस में वाद-विवाद करते रहने से जैनियों के आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभु तथा शैवों के चन्द्रशेखर भगवान् एक ही होने से "हरशिवशंकर गणित" ऐसी उपाधि इन मुनीश्वरों को उपलब्ध हुई थी । इसी गणित आगम के द्वारा भूवलय ग्रन्थ की रचना तथा स्वाध्याय करने के कारण इन्हें "भूवलयर" नाम से भी पुकारते थे ।९७ से ११९ तक श्लोक पूर्ण हुआ ।

भूवलय की रचना में "पाहुड" वस्तु 'पद्धति" इत्यादि अनेक उदाहरण हैं । ये कर्मभूमि के अर्द्ध प्रदेश मे रहनेवाले जीवो को उपदेश देने के लिए सांगत्य नामक छन्द में पद्धति ग्रन्थ की रचना करते थे । उस ग्रन्थ में विविध भाषाओ मे शुद्ध चैतन्य विलसित लक्षण स्वरूप परमात्मा का ही वर्णन अर्थात् अध्यात्म विषय ही प्रधान था ।१२०।

वे महात्मा सदा परमात्मा के समान सन्तोष धारण करके आत्मतत्त्व रुचि से परिपूर्ण रहते हैं और सम्यग्दर्शन का प्रचार करते हुए दर्शनाचार से सुशोभित रहते हैं ।१२१।

उन महर्षियो के मन मे कदाचित् किसी प्रकार की यदि कामना उत्पन्न हो जाती थी तो वे तत्काल ही उसे शमन करके उस कामना के विषय को जन्म पर्यन्त के लिए त्याग देते थे और अपने चित्त को एकाग्र करके समताभाव पूर्वक आत्मतत्त्व मे मग्न होकर आनन्दमय हो जाया करते थे ।१२२।

तब उन महात्माओ का विश्व व्यापक ज्ञान आत्मोन्नति के साथ साथ अलोकाकाश पर्यन्त फैलता जाता था । और प्रकाश के फैल जाने पर भेद विज्ञान स्वयमेव झलकने लगता था । तथा शुभाशुभ रागादि समस्त विकल्प परभावो से मुक्त हो जाता था ।१२३।

जब आत्मा के साथ परभाव का सम्बन्ध उत्पन्न होता है तब संसार बन्ध का कारण बन जाता है । किन्तु अपने निज स्वभाव में रहनेवाले उपर्युक्त साधुओ के ऊपर लेशमात्र भी परभाव नही पडता था । संघ मे रहनेवाले समस्त साधु सरल, समदर्शी एव वीतरागता पूर्ण थे । अत परस्पर में आध्यात्मिक रस का ही लेन-देन था व्यावहारिक नहीं । सभी साधु निश्चय नय के आराधक थे ,१२४।

कदाचित् इस पृथ्वी सम्बन्धी वार्तालाप करने का अवसर यदि आक-

स्मिक रूप से आ जाता था तो वे साधुजन तेरहवे गुणस्थान के अन्त मे आनेवाले चार केवली समुद्घातो का पृथ्वी सम्बन्धी आत्म प्रदेश का ही विचारते हुए इस पृथ्वी मे रहनेवाली पौद्गलिक शक्ति का चिन्तवन करते हुए आत्मा का अवलोकन करते रहते थे। अत सदाकाल सघ सुरक्षित रूप से विहार करता था। इसका नाम ज्ञानाचार था।१२५।

समवशरण मे लक्ष्मी मण्डप (गन्ध कुटी) होती है। उसमे भगवान विराजमान होते हैं। उसके समीप चारो ओर बारह कोष्ठक (कोठे) होते हैं, जिनमें से पहले कोष्ठक में मुनिराज विराजमान रहते हैं। इसी के अनुसार परम्परा से लक्ष्मी सेन गण नाम प्रचलित हुआ। अत उपर्युक्त समस्त आचार्य लक्ष्मीसेन गणवाले मुनिराज कहलाते हैं।१२६।

गौतमादि गणधरो से लेकर उपर्युक्त सभी आचार्य दिव्य ध्वनि से सुने हुए समस्त द्वादशाग रचना के क्रम को नौ (९) अको के अन्दर गभित करनेवाली विद्या में परम प्रवीण थे अर्थात् भूवलय सिद्धान्त शास्त्र के ज्ञानी थे।१२७-१२८।

अनादिकाल से लेकर उन आचार्यो तक समस्त जोवो के समस्त भवो को जानकर आगामी काल में कौन-कौन से जीव मोक्ष पद को प्राप्त करेगे यह भी बतलाकर वे आचार्य सभी का उद्धार करते थे।१२९।

ये साधु परमेष्ठी अरहन्त, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म इन चारो के मंगलस्वरूप हैं। इसका प्राकृत रूप इस प्रकार है—"अरहन्त मगल सिद्धमगलं, साहुमगल, केवलीपण्णत्तो धम्मोमगलम् ।१३०।

विवेचन—अब श्री कुमुदेन्दु आचार्य जा उपर्युक्त साधु परमेष्ठियो को चौबीस तीर्थंकरो का स्वरूप मानकर २४ तीर्थंकरो का निरूपण करते हुए उनके निर्वाण पद प्राप्त स्थानो का वर्णन करते हैं।

कैलासगिरि से श्री ऋषभनाथ तीर्थंकर मुक्ति पद प्राप्त किए भगवान् से श्री ऋषभदेव सर्व प्रथम तीर्थंकर तथा भूवलय ग्रन्थ के आदि सृष्टि कर्ता थे।१३१।

इसके बाद दूसरे तीर्थंकर के अन्तराल काल में धर्म धीरे घटता चला गया। और एक बार पूर्ण रूप से नष्ट सा हो गया था। तब दूसरे तीर्थकर श्री अजितनाथ भगवान् ने इस भरतखड में अवतार लेकर धर्म का उत्थान किया तथा सम्मेद शिखर से मुक्ति पद प्राप्त कर लिया।१३२।

एक तीर्थंकर से लेकर दूसरे तीर्थंकर तक अर्थात् श्री सम्भव, श्री अभिनन्दन, श्री सुमिति, श्री पद्मप्रभ श्री सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ श्री पुष्पदन्त, श्री शीतल, श्री श्रेयास, इन सभी तर्थंकरो ने श्री सम्मेदशिखर पर्वत से मुक्ति प्राप्त की थी। इनमे से आठवे तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभु भगवान श्री कुमुदेन्दु आचार्य के इष्ट देव थे क्योकि यह आठवा अक ६४ अक्षरो का मूल है।१३३ से लेकर १३९ तक।

चम्पापुर नगर मे श्री वासुपूज्य तीर्थंकर नदी के ऊपर अधर [यवाग्र भाग] से मुक्ति पधारे।१४०-१४१।

तत्पश्चात् श्री सम्मेदशिखर पर्वत के ऊपर श्री विमलनाथ, श्री अनन्त नाथ, श्री धर्मनाथ, श्री शान्तिनाथ, श्री कुन्थुनाथ, श्री अर्हनाथ, श्री मल्लिनाथ मुनि सुव्रतनाथ, श्री नमिनाथ इन सभी तीर्थंकरो ने श्री सम्मेदशिखर गिरि से मुक्तिपद प्राप्त की थी। और श्री नेमिनाथ भगवान् ने।१४२-१४६।

ऊर्जयन्त गिरि [गिरिनार—जूनागढ], पावापुर सरोवर के मध्य भाग से श्री महावीर भगवान् तथा श्री सम्मेद शिखर जी के स्वर्ण भद्र टोक से श्री पार्श्वनाथ भगवान् मुक्त हुए थे।१४७-१४८।

विवेचन—श्री पार्श्वनाथ का नाम पहले आकर श्री महावीर भगवान् का नाम बाद मे आना चाहिए था पर ऊपर विपरीत क्रम क्यो दिया गया?

इस प्रश्न का अगले खड मे स्पष्टीकरण करते हुए श्री कुमुदेन्दु आचार्य लिखते हैं कि श्री सम्मेदशिखरजी का स्वर्णभद्र कूट [भगवान् पार्श्वनाथ का मुक्त स्थान] सबसे अधिक उन्नत है अतएव वहा पहुंचकर दर्शन करना बहुत कठिन है। [इस समय तो चढने के लिए सीढिया बन जाने के कारण मार्ग कुछ सुगम बन गया है किन्तु प्राचीन काल में सीढियों के अभाव से वहां पहुंचना अत्यन्त कठिन था] उस कूट के ऊपर पहले लोहे को सुवर्ण रूप में परिणत कर देनेवाली जडी-बूटिया होती थीं, अतः सुवर्ण के अभिलाषी बकरी पालनेवाले गडेरिये बकरियो के खुरो मे लोहे की खुर चढाकर इसी कूट के ऊपर उन्हे चरने के लिए भेज दिया करते थे जिससे कि वे घास-पत्ती चरती-

करती उन जड़ी बूटियो पर जब अपनी खुर रखती थी तब उनके लोहे के खुर सोने के बन जाया करते थे। इस कारण इस कूट का नाम स्वर्ण भद्र प्रख्यात हुआ और इसी कारण भगवान पार्श्वनाथ का नाम ग्रन्थकार ने अन्त में दिया है।

इन सभी तीर्थंकरो ने शुद्धात्म भावना से इस पृथ्वी और शरीर के मोह को छोड़कर निवृत्ति मार्गको अंगीकार करके उस अध्यात्म के आनन्द से उत्पन्न हुए स्वाभाविक आत्मिक ऐश्वर्य के समान रहनेवाले मोक्ष पद को प्राप्त किया है। अतः इन तीर्थंकरो को जगत के सभा कवि नमस्कार करते हैं।१४९।

ये जिस सुख के अनुभव मे रहते हैं वही सुख सम्यक्त्व चारित्र कहलाता है। उस पवित्र चारित्र के मर्म को अपने अन्दर पूर्णतया भरे रहने के कारण उनको परम शुद्ध निर्मल जीव द्रव्य कहते हैं। इस तरह निर्मल वर्तना में रहनेवाले तीर्थंकर भगवान के निश्चय चारित्र मे लीन होने के कारण शेष बचे हुए अघाति कर्म स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं। हमारे समान उन लोगो को-शारीरिक तप करने की जरूरत नही पडती और न उन्हें हमारे समान किसी व्यवहार धर्म को पालन करने की आवश्यकता रहती। इसलिए वे समवशरण मे सिहासन पर रहनेवाले कमल पुष्प को स्पर्श न करते हुए चार अगुल अधर रहते हैं।१५०-१५१।

-जैसे कमल पत्र के ऊपर रहनेवाली पानी की बूद कमल पत्र को स्पर्श नही करती तथा पानी मे तैरती हुई मछली के समान कमल पत्र के ऊपर पडी हुई पानी की बूदे तैरती रहती हैं उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान भी समवसरणादि पर द्रव्य में मोहित न होते हुए अपने सारभूत आत्म द्रव्य मे ही लीन रहते हैं। समवसरण मे देव मानवादि समस्त भव्य जीव राशि विद्यमान होने पर भी वे परस्पर में अभिमान तथा रागद्वेष न करते हुए स्वपर कल्याण की साधना में मग्न रहते हैं।१५२।

क्रमवर्ती ज्ञान को निरोध करते हुए अक्रम अर्थात् अनक्षरात्मक सभी की इच्छाओ को एकीकरण करके सम्पूर्ण ज्ञान को एक साथ निर्वाह करते हुए-तीर्थंकर परमदेव समस्त ससारी भव्य जीवो को अपने अमृतमय वाणी के द्वारा उद्धार करते हैं। इस क्रम से समस्तजीव एक साथ अपने अपने अनाद्यनत स्वरूप को जानकर छोड़े देते हैं।१५३।

इस तरह आत्म भावना में ही लीन होते हुए तीर्थंकर परमदेव नवमांक महिमा के साथ जगत के तीनो लोको का पूर्ण रूप से निर्वाह करते हुए तथा आत्मा के शुद्ध चैतन्य स्वरूप को भीतर से उमडकर बाहर आनेके समान तपस्या को करते हुए और उसी तरह भव्य जनों को भी आचरण करने का उपदेश तथा आदेश करते हुए उत्तम तप में सभी भव्य जीवो को तृप्त करते हुए जगत को आश्चर्य चकित करते हुए उनके मनको विशाल करते हुए सम्पूर्ण जीव समान हैं, ऐसी प्रेरणा करते हुए आचार सार में कहे हुए तपश्चर्या के मर्म का अनुग्रह कराते हुए ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, और तपाचारादि इन पांच आचार को जनता में स्थापना कराते हुए सामायिक प्रति क्रमणादि क्रियाओं को करते समय शक्ति को न छिपाते हुए आचरण करना चाहिए। इस प्रकार उपदेश करती हुए तीनों सध्याकाल मे दैवसिक रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिकसंवत्सरादिक केसमय में अर्हंत सिद्ध चौबीस तीर्थंकरादि गुणो के समान अपने आत्मा के अन्दर अनुकरण करते हुए, गुणस्तव, वस्तु स्तव, रूपस्तव इत्यादि गुणों की भावना करने का उपदेश देते हैं। १५४ से १६६ तक।

पर वस्तु को भूलकर समस्त शुद्ध जीव के समान मेरी आत्मा इसी तरह परिशुद्ध है ऐसी भावना करते हुए निश्चय चारित्र मे अपनी शक्ति को वैभवशाली समझकर महान वैभव सपन्न पाच चारित्र आराधना अर्थात् सिद्धात मार्ग के अद्भुत और अनुपम ज्ञानाराधना दर्शनाराधना चारित्राराधना, तपाराधना, और वीर्याराधनादि का अत्यन्त वर्णन के साथ उपदेश करते हुए रथ के कलश के समान रहनेवाले अपने आत्मस्वरूप के निश्चय स्थान अर्थात् सिद्धात्म स्वरूप नाम के एक ही साचे में ढले हुए शुद्ध सोने की प्रतिमा के समान स्वसमय सार के बल से निश्चय नयाबलबन रूप शुद्ध जीव बन जाता है। तब उनको चिरंजीवि, भद्र, शिव, सौख्य, शिव, मग और मगल स्वरूप कहते हैं। १७२ से १८२ तक।

नवजात बच्चे के स्वास चलते रहे तो वह जिन्दा रहेगा ऐसा कहने के अनुसार सम्यक्त्व के अभिमुख जीव को मोक्ष में जाकर जन्म लिया, ऐसा समझना चाहिए। तब यह जीवात्मा स्वय स्वयभू अर्थात् स्वतन्त्र होता है, ऐसा समझना चाहिए। तब करनेवाले जितने भी कार्य हैं वे सभी विज्ञान मय होते हैं और समस्त पृथ्वी के सार को समझकर ग्रहण कर लेता है। वह संसार

के सुख को अनुभव करने पर भी आत्म समाधि मे लीन होकर धर्म साम्राज्य का अधिपति होता है ।१८३।

वीतरागत्व का निश्चय भाव में परिणाम करनेवाले वे साधु परमेष्ठी आत्मसमाधि रूपी समुद्र मे तैरते हुए समस्त कर्मो को नाश करते हुए, सम्पूर्ण नयोंके विषयों को जानते हुए अपने आत्मा मे लीन रहनेवाले आत्मा मे तीनो काल में ससार में महोन्नत स्थान को प्राप्त होते हैं । ऐसे योगिराज हमेशा जयवंत रहें ।१८४।

आसन्न भव्य को उत्पन्न शुद्धात्म प्राप्ति की होनेवाली आशा उनके जय के कारण होती है हमारे विजय को देखकर भी तू ससार की विषयवासनाओ को नहीं छोडता ? परम पवित्र सर्वसाधु परमेष्ठियो के पवित्र पुण्य चरणो मे अपने उपयोग को लगाकर अगर तू पूजा करते तो तुम्हे उन समस्त आचरणो का मार्ग तथा निर्भर भक्ति आ जाती । इसलिए आप मन वचन और काय से पच परमेष्ठियों के पवित्र चरणो की निर्भर भक्ति से आराधना करो ।१८५।

समस्त द्वादशाग वाणी के मर्म को जानकर उस मार्ग से तू श्रम रहित चलते हुए आने से पचपरमेष्ठियो को नमस्कार करना, स्तुति करना, स्मरण करना, इत्यादि क्रम को कहे जाने वाले नवमाक गणित से बद्ध होकर रहने वाले को श्री भूवलय मे आप समझकर उस मार्ग की प्राप्ति कर लो ।१८६।

मोक्ष दूसरे के वास्ते नही है इसलिए वह अन्य किसी दूसरे के द्वारा प्राप्त नही हो सकती । तीर्थकर भगवान भी अपने हाथ से पकडकर अपने साथ मोक्ष को ले जानेवाले नही हैं ।

वे भी हमारे समान कठिन तपश्चर्या करके अपने कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष की प्राप्ति कर लिए हैं । इसी तरह हम लोगो को भी अपने स्वार्थ को सिद्ध कर लेना चाहिये । स्वार्थ का अर्थ अन्य जनों के द्वारा अनुभव करने वाली वस्तु की अपेक्षा करके अनुभव करना है । यह स्वार्थ वैसा नही है । क्योंकि इससे किसी को किंचिद् मात्र भी हानि नही पहुंचती । मोक्ष सुख का स्वार्थ सिद्ध करने का हक सभो को है । समस्त अज्ञानताओ को नष्ट करके हितरूप में तल्लीन होना शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति है ।१८७।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूपी निर्मल जल ही तीर्थ है और उस तीर्थ मे यदि एक बार जीव गोते लगा ले तो वह शीघ्रातिशीघ्र संसार सागर से पार हो जाता है । वह तीर्थ अन्यान्य क्रोधादिरूप तरङ्गों से बचाकर अनन्त चतुष्टयरूप आत्मिक सपत्ति को प्राप्त करने वाला वज्र वृषभनाराच-संहनन शरीर की प्राप्ति कराके उस जन्म में मुक्ति स्थान में पहुंचा देता है, ऐसा श्री साधु परमेष्ठी उपदेश देते है ।१८८।

ये साधु परमेष्ठी इहलोक, परलोक, अत्राण, अगुप्ति, आगन्तुक आदि सात भयो से मुक्त होने के कारण परम पराक्रमी होते हैं । इस प्रकार सात भयो से रहित रहने के कारण उन साधु परमेष्ठियों का मुख-कमल प्रसन्नता से परिपूर्ण रहता है । मोक्ष स्थान में सदा प्रसन्नता-पूर्वक रहना ही जीव का नैसर्गिक स्वभाव है । ससारावस्था में रहने वाले सभी जीवो के शरीर मे खड २ रूप से शरीर के अन्दर छिद्र रहते हैं, पर मुक्तावस्था मे ऐसा नही रहता । क्योकि वहा पर जीव अखड घनस्वरूप मे रहता है । किसी के सम्पर्क मे न रहने से अखड स्वरूप रहना शुद्ध वस्तु का स्वभाव ही है । मुक्ति मे सदा काल जीव आत्मा से उत्पन्न हुये आनन्द में तल्लीन रहता है । वे महापराक्रमी सिद्ध जीव चैतन्यस्वरूप से रहते हैं और सत्य स्वरूप हैं । उस दुर्लभ सुख मे रहने वाले सिद्ध परमेष्ठियो को सर्वसाधु परमेष्ठी अपना सर्वस्व मानकर सदा काल यानी अविरत्न रूप से भक्ति पूर्वक मनन करते हैं । ये ऋषिगण उन सिद्ध परमेष्ठियो के पद प्राप्ति के निमित त्रिकाल असाधारण भक्ति करते रहने से वह पद प्राप्त कर लेते हैं ।

इस संसार मे वे साधुगण सविकल्प रूप से दीख पडने पर भी अपनी आत्मसमाधि सिद्धि का महान् साधन सचय करते हैं । वह सामग्री परम दया, सत्य आदि वास्तविक सामग्री है । उन सामग्रियो से जब ग्रन्थ रचना करने के लिये बैठ जाते हैं तब आत्मस्वरूप तथा अखिल विश्व के समस्त पदार्थ स्फटिक के समान झलकने लगते हैं । इस काल मे श्री धरसेन आचार्य ने पांच परमेष्ठियों की भक्ति से निकल कर आने वाले अक्षरो और अंको से जिस काव्य की रचना की है वह प्राकृत, सस्कृत तथा कन्नड इन तीनों भाषाओं से मिश्रित अर्द्धभाषा कहलाती है । इस रीति से उन्होने जो साढे तीन (३½) भाषा की रचना की है वह "पद्धति" नामक छन्द कहलाता है । इस प्रकार रचा हुआ ग्रन्थ भी एवं

भूवलय मे गर्भित है। दिशारूपी वस्त्र और करपात्र आहार ग्रहण करने वाले साधुओ द्वारा अनादि काल से सपादन किया हुआ ग्रन्थसार इस भूवलय में गर्भित है। उसमें से एक ग्रन्थ का नाम "पंच परमेष्ठी बोल्लि" है। यहां तक १८९ से लेकर २१२ श्लोक तक पूर्ण हुआ।

विवेचन—आजकल "पच परमेष्ठी बोल्लि" नामक कानडी भाषा में जो ग्रन्थ मिल रहा है वह प्राचीन कर्णाटक भाषामें होने पर भी दशवी शताब्दी से पीछे का है, प्राकृत भाषा में मगलाचरण के प्रथम श्लोक को देखकर अजैन विद्वान इस भूवलय ग्रन्थ को दशवी शताब्दी के बाद का कहते हैं। किन्तु ऐसा नहीं है; क्योंकि भूवलय सिद्धान्त रचित पाच परमेष्ठियो का 'बोल्लि' नामक पद्धति ग्रन्थ साढे तीन भाषा में होने से श्री कुमुदेन्दु आचार्य के पूर्व किसी महान् आचार्य द्वारा रचित है। उसका स्पष्टीकरण अगले श्लोक में किया गया है। इस पृथ्वी मे रहने वाली समस्त वस्तुओं का अर्थात् जीवादि षड् द्रव्यों का कथन सर्व प्रथम भगवान् की वाणी से निष्पन्न हुआ है। उस कथन को लेकर पूर्वाचार्यों ने अपने अद्भुत ज्ञान से "पंच परमेष्ठी बोल्लि" पद्धति नामक ग्रन्थ को रचना को है। वह ग्रन्थ अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुओ के यश का गुणगान करने के कारण पद्धति नामक छन्द से प्रख्यात था।२१३।

उस पच परमेष्ठो को बोल्लि में अनेक प्रकार के न्याय ग्रन्थ, लक्षण ग्रन्थ इत्यादि विविध भाति के अतिशय सपन्न ग्रन्थ बारह हजार कानडी श्लोक और कई हजार श्लोक के अन्य ग्रन्थ समिलित हैं। ये सभो ग्रन्थ भूवलय के समान ही सातिशय निष्पन्न हुये हैं।२१४।

इस प्रकार नवमांक बद्ध क्रमानुसार बधे हुए सभी को नय मार्ग बतलाने-वाले इस पाच परमेष्ठियो के गुणगान रूप काव्य को भक्ति-भाव से जितना ही अधिक स्वाध्याय करे उतना हो अधिक उनका आत्मा गुणवान बन जायगा और परम्परा से अभ्युदय सौख्य १८ तथा नय श्रेयस समस्त सुख विना इच्छा के ही स्वयमेव मिल जायगा। इस प्रकार उत्कृष्ट फल प्रदान करने वाला समस्त संसार का सार स्वरूप भूवलयान्तर्गत यह पंच परमेष्ठो का बोल्लि रूप ग्रन्थ है।२१५।

इस भूवलय के अन्तर्गत पंच परमेष्ठि का बोल्लि सूत्र संक्षेप रूप में भी निकलेगा और विस्तार रूप में भी निकलेगा। इस मंगल प्राभृत नामक ग्रन्थ में जो २४ (चौबोस) तीर्थंकरों का वर्णन है वहो पंचपरमेष्ठी अर्थात् अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु का गुण वर्णनात्मक है। और वही पंचपरमेष्ठियों के बोल्लि का विषय है।२१६।

सूत्र रूप में जो पंचपरमेष्ठी का बोल्लि है वह बीजाक्षररूप होने से मन्त्र रूप है और मन्त्राक्षर तो बोजाक्षर बनते ही हैं। एक अक्षर में अनन्त गुण हैं। इसलिये उस अक्षर को केवल ज्ञान कहते हैं। भारतीय संस्कृति में नमः शिवाय तथा अ सि आ उ सा ये दोनो पंचाक्षर बीज मन्त्र हैं। बुद्धि ऋद्धि के आठ भेद हैं। उनमे एक बीज बुद्धि नामक महान् अतिशय-शालिनी बुद्धि भी है। द्वादशांग वाणी के असख्यात अक्षरों में से केवल एक हो अक्षर का नाम कहने से समस्त द्वादशाग, (ग्यारह अग तथा चौहद पूर्व आदि)का ज्ञान हो जाना बीज बुद्धि नामक ऋद्धि है। ऋद्धि का अर्थ आध्यात्मिक ऐश्वर्य है। चौदह पूर्वों में अग्रायणी नामक एक पूर्व है। उसका नाम वैदिक सम्प्रदायान्तर्गत ऋग्वेदादि ग्रन्थो मे भी दिया गया है, किन्तु वह नष्ट हो गया है, ऐसी वैदिकों की मान्यता है।

उस अग्रायणी पूर्व से 'पचपरमेष्ठी बोल्लि' नामक १२ हजार श्लोक परिमित एक कनडी ग्रन्थ निकलता है। उस ग्रन्थ मे पचपरमेष्ठियों का समस्त गुण वर्णन है, मृत्यु के समय भो यदि उन गुणो का स्मरण किया जावे तो आत्म-शुद्धि होती है। तथा भगवान के १००८ नाम भी उसमें अन्तर्गत हैं उस १००८ को जोड देने से (१+०+ ०+८=९) ९ नौ आ जाता है। नव पद आ जाने से यह ग्रन्थ भगवान महावीर की वाणी के अनुसार द्वादशाग के अन्तर्गत है। २१७ से २२६ तक।

सौराष्ट्र में श्री भूतबली आचार्य ने सबसे पहले नवम अंक पद्धति से 'पञ्च परमेष्ठि बोल्लि' ग्रन्थ रचना की थी उस ग्रन्थ को गणित पद्धति द्वारा निकालने की विधि ११२ के वर्गमूल से मिलती है। ११२ को आडे रूप से जोडने पर (१+१+२=४) ४ आता है, उस चार अंक का अभिप्राय जिन वाणी, जिनधर्म, जिनचैत्य और चैत्यालय है। उस ४ अंक को पंच परमेष्ठी के

५ अक से जोडने पर (४+५=९) ९ अक आ जाता है जोकि नवपद (पच परमेष्ठी जिन वाणी आदि ९ देवता) का सूचक है ।

आचार्य कुमुदेन्दु सूचित करते है कि उनके समय मे 'पच परमेष्ठी बोल्लि' ग्रन्थ लुप्त था, वह अब गणित पद्धति से प्राप्त हो गया है हमने उसको 'पद्धति' नाम दिया है । 'पद्धति' चौदह पूर्वो के अन्तर्भूत है अत हम उस पद्धति नामक ग्रन्थ को नमस्कार करते हैं । यह कविजनो के लिए महान अद्भुत विषय है अत प्रत्येक विद्वान को इसका अध्ययन करना चाहिए ।२२७ से २४७ तक ।

अब श्री कुमुदेन्दु आचार्य इस तेरहवे अध्याय को सक्षिप्त करते हुए कहते हैं—इस भूवलय के इसअध्याय का अध्ययन करनेवाले भव्यजन सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्रो के साथ ३३ सागरोपम दीर्घ सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं ।२४८।

सर्वार्थसिद्धि में इन्द्र सेवक, आदि का भेदभाव नही है, वहा के देव अपनी आयु पर्यन्त निरन्तर सुख अनुभव करते हैं । उस सर्वार्थसिद्धि के समान कर्माट [कर्नाटक] भाषा तथा जनपदवासी जनता सुखी है । इस देश मे हजारो दिगम्बर मुनियो का विहार तथा सिद्धान्त प्रचार होने से इस देशवासी यश-कीर्ति नाम कर्म का बन्ध किया करते हैं, अयश कीर्ति प्रकृति का बन्ध किसी के नहीं होता । प्राचीन समय में श्री बाहुबली ने यहा राज्य शासन किया था । ।२४९-२५०।

अपने मस्तक मे कोहेनूर के समान अमूल्य रत्न जडित किरीट को धारण किये हुए अमोघवर्ष चक्रवर्ती ने गुरु श्री कुमुदेन्दु आचार्य के चरणरज को अपने मस्तक पर धारण किया था । इनके शासनकाल में इस भूवलय ग्रन्थ की रचना हुई थी ।२५१।

विवेचन—क्रिश्चन शक ६८० के लगभग समस्त भरतखण्ड को जीतकर हिमवान् पर्वत मे कर्णाटक राज्य चिन्ह की ध्वजा को राजा अमोघवर्ष ने फहराया था । उसी समय मे इस भूवलय ग्रन्थ की रचना हुई थी इस प्रसग में उनको धवल, जयधवल, विजय धवल, महाधवल और अतिशयधवल की किरणावली प्रदान की गई थी । गंग वश के प्रथम शिवमार नामक यह धर्मात्मा सदा सर्वदा इस सिद्धान्त शास्त्र का उपदेश सुनते समय वह सम्यक्त्व शिरोमणि हुकार साथ सुनते हुए अत्यत मुग्ध होते थे इसी कारण से उन्हे 'सैगोट्ट' अर्थात् सुननेवाला विशेषण दिया गया था । उपर्युक्त सैगोट्ट शब्द कर्णाटक भाषा में है इसका दूसरा नाम 'गोट्टिका' भी था इसका अर्थ श्री जिनेन्द्र भगवान की वाणी को सुननेवाला है । कर्नाटक भाषा मे श्री जिनेन्द्र देव को "गोरव, गरुव," इत्यादि अनेक नामो से पुकारते थे । आजकल भी ईश्वर को वैदिक सम्प्रदाय मे "गोरव" कहने की प्रथा प्रचलित है । इनकी राजधानी नन्दीदुर्ग, के निकट "मण्णे" नामक एक ग्राम है जोकि पहले राजधानी थी । आधुनिक ऐतिहासिक विद्वान "मण्णे" नामक ग्राम को "मान्य खेट" नाम से मानकर हैदराबाद के अन्तर्गत समझते हैं । इसी के निकट "शीतकल्लु" नामक एक बहुत प्राचीन ग्राम है । जिसमें गग राजा के द्वारा अनेक शिल्प कलाओ से निर्मित एक जिन मन्दिर है । प्राचीन काल मे जो "मण्णे" नाम था वह छोटा-सा देहात बन गया है ।

एक बार महान् वैभवशाली "प्रथम गोट्टिग शिवमार" जब हाथी के ऊपर बैठकर आ रहा था तब उसने एक हजार पाच सौ (१५००) शिष्यों के साथ अर्थात् सघ सहित दूर से आते हुए श्री कुमुदेन्दु आचार्य को देखा । उस समय वर्षा होने के कारण पृथ्वी पर कीचड हो गई थी । अत "गोट्टिग शिवमार" हाथी से शीघ्र उतर कर नगे पैरो से आचार्य श्री के दर्शनार्थ उनके चरण समीप जाकर ।

उसने मुनिराज के चरणो में मस्तक झुकाकर नमस्कार किया वैसे ही उसके मस्तक मे धारण किये हुए रत्न जडित किरीट में मुनिराज के पैरो की धूलि लग गई जिससे कि रत्न का प्रकाश फीका पड़ गया । कुमुदेन्दु आचार्य श्री तो अपने सघ सहित विहार कर गये और राजा लौटकर अपनी राज सभा मे जाकर सिंहासन पर विराजमान हो गया । नित्य प्रति राजसभा में बैठते समय मस्तक मे लगी हुई रत्न की प्रभा चमकती थी, किन्तु आज धूलि लगने के कारण उसकी चमक न दीख पड़ी । तब सभसदो ने मन्त्री को इशारा किया कि राजा के मस्तक में लगे हुए मुकुट के रत्न पर धूलि लगी है अत उसे कपड़े से साफ करदो । तब मन्त्री राजा के पीछे खड़ा होकर जो

साफ करने का मौका देखने लगा। अकस्मात् राजा की दृष्टि मन्त्री के ऊपर पड़ी तब उन्होंने पूछा कि तुम यहां क्यो खडे हो ? मन्त्री ने उत्तर दिया कि आपके किरीट में लगी हुई धूलि को साफ करने के लिए खड़ा हूं जिससे कि रत्न की चमक दीख पडे। राजा ने उत्तर मे कहा कि हम अपने श्री गुरु के चरण रज को कदापि नही हटाने देगे, क्योकि यह रत्न से भी अधिक मूल्यवान है। इसलिए मैंने अपने गुरु की धूल को जान बूझकर रखलिया है। इस प्रकार कहते हुए उस किरीट पर लगी हुई धूलि को हाथ लगाकर अपनी आखो में लगा लिया। गुरु देव के प्रति राजा की भक्ति तथा उसको महिमा अनुपम अद्भुत थी। उस गुरु की दृष्टि भी तो देखिये कि वे अपने शिष्य "शैगोट्ट शिवमार" की कीर्ति संसार मे फैलाने तथा चिरस्थायी रखने के उद्देश्य से आई हुई पाचों विरुदावलियो के नाम से धवल, जयधवल, महाधवल, विजय-धवल, तथा अतिशय धवल रूप श्री भूवलय का नाम रख दिया। यह गुरु की अत्यन्त कृपा है, ऐसे गुरु शिष्य का शुभ समागम महान पुण्य से प्राप्त होता है।

इस तेरहवे अध्याय के अन्तर काव्य में १५९८४ अक्षर हैं और श्रेणी-बद्ध काव्य में ९४७७ अक्षर हैं। ये सब कर्नाटक देशीय जनता के महान् पुण्योदय से प्राप्त हुए हैं।२५२।

इस तेरहवें अध्याय के अन्तरान्तर काव्य मे इसक अतिरिक्त ४८ श्लोक और निकल आते हैं। शूरवीर वृत्ति से तप करनेवाले दिगम्बर जैन मुनि "अक्षम्रक्ष" प्रकार से जिस प्रकार आहार ग्रहण करते हैं और उस समय अक्षय रूप पंचाश्चर्य वृष्टि होती है उसी प्रकार इसके अन्तरान्तर काव्य में इसके अलावा एक और अध्याय निकल आ जाता है, जिसमें कि २१६९ अक्षरांक हैं। इस रीति से कथल एक ही अध्याय में ३ अध्याय बन जाते हैं।२५२।

विवेचन.—दिगम्बर जैन मुनि गोचरीवृत्ति, भ्रामरी वृत्ति तथा अक्षम्रक्ष इन तीन वृत्तियो से आहार ग्रहण करते हैं। इनमे से गोचरी वृत्ति का विवेचन पहले कर चुके हैं। पर शेष दो वृत्तियो का विवरण नीचे दिया जाता है।

भ्रामरी वृत्ति.—जिस प्रकार भ्रमर कमल पुष्प के ऊपर बैठ कर उसमें किसी प्रकार की हानि न करके रस को चूसता है और कमल ज्यों का त्यों सुरक्षित रहता है उसी प्रकार दिगम्बर जैन साधु श्रावकों को किसी प्रकार का भी कष्ट न हो, इस अभिप्राय से शान्त भाव-पूर्वक आहार ग्रहण किया करते हैं। इसे भ्रामरी वृत्ति कहते हैं।

अक्षम्रक्ष वृत्ति:—तेलरहित धुरेवाली बैलगाडी की गति सुचारु रूपसे नहीं चलती तथा कभी २ उसके टूट जाने का भी प्रसंग आ जाता है, अतः उसको ठीक तरह से चलाने के लिये जिस प्रकार तेल दिया जाता है उसी प्रकार साधु जन शरीर का पालन-पोषण करने के लिये नहीं, बल्कि ध्यान, अध्ययन तथा तप के साधन-भूत शरीर की केवल रक्षा मात्र के उद्देश्य से अल्पाहार ग्रहण करते हैं। इस वृत्ति से आहार ग्रहण करना अक्षम्रक्ष वृत्ति कहलाती है।

इस काव्य के अन्तर्गत २४७ २४६, २४५ और २४४, २४३, २४२ इस क्रमानुसार तीन २ श्लोको को प्रत्येक में यदि पढ़ते जायें तो इसी भूवलय के प्रथम अध्याय के ६ वें श्लोकके दूसरे चरणसे प्रथमाक्षर को लेकर क्रमानुसार "क्रमदोलगेरडु काल्गूरु" इत्यादि रूप काव्य दुबारा उपलब्ध हो जाता है। यह विषय पुनरुक्त तथा अक्षय काव्य है। यदि इस ग्रन्थ का कोई पत्र नष्ट हो जाय तो नागबद्ध प्रणाली से पढ़ने पर पूर्ण हो जाता है। लु ९४७७+अन्तर १५९८४+अन्तरान्तर २१६९=२७६३० अथवा अ से ऋ तक २५२०८१+ल २७६३०=२७९७११ अक्षरांक होते हैं।

इस अध्याय के आद्यअक्षरसे प्राकृत भाषा निकल आती है। जिसका अर्थ इस प्रकार है—

भारत देश में लाड नामक देश है, लाड शब्द भाषा-वाचक भी है और देशवाचक भी है। लाड भाषा अनेक जातीया है, उस लाड देश में श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न शंभुकुमार, अनिरुद्ध इत्यादि ७२ करोड मुनि लोग दीक्षा लेकर ऊर्जयन्तके शिखर अर्थात् पर्वत पर तप करते हुए एक-एक समयमें सात सौ-सात सौ मुनि गण ने कर्म को क्षय करके सिद्ध पद प्राप्त किया इस तेरहवें अध्याय के २७ वें श्लोक से लेकर ऊपर से नीचे तक पढते जांय तो संस्कृत श्लोक निकलता है उस श्लोक का अर्थ निम्न प्रकार है:—

अर्थ—इस सिद्धांत ग्रन्थ को धवल, जय धवल, विजय धवल, महा-

धवल और अतिशय धवल, इन पाच खण्डो के रूप में विभाग किया गया है। यह भारती भारत माता की शुचि और निर्मल कीर्ति रूप है। इन पाच खण्डो से आने वाली ज्ञान रूपी किरण विश्व के समस्त पदार्थो को अर्थात् षट् द्रव्य को नि.शेष रूप से जैसे सूय की किरणो में अर्थात् प्रकाश मे रक्खे हुए पदार्थ स्पष्ट रूप से देखने में आते हैं, उसी तरह समस्त भूवलय से पदार्थ स्पष्ट रूप से देखने में आते हैं। इसलिये इन पाच धवल रूप भूवलयग्रन्थ को मैं नमस्कार करता हूँ।

अतरधिकार—नीचे दिये जाने वाले 'साधुगलिहरेरडु वदे द्वोपदि माधि सुतिहरु मोक्ष वनु" इत्यादि रूप श्लोक के अध्याय में 'साधयन्ति ज्ञानादिशक्तिभिर्मोक्षमिति' इत्यादि रूप श्लोक और अन्तिम अक्षर से ओमित्येक्षर ब्रह्म इत्यादि रूप भगवद् गीता के श्लोक निकलते हैं। इस अध्याय को यहा क्रम से दिया गया है।

साधुगळिहरेरडूवरेद्वीपदि । साधिसुतिहरुम्मोक्षवनु ॥
आदियनादिय कालदिंदिहसर्व । साधुगळिगे नमवेंब्रमो ॥१॥
धरिसलनंत ज्ञानादि स्वरूपव । परिशुद्धात्मरूपवनु ॥
वरसर्व साधुगळ् साधिसुतिरुवरु । परमन तम्मात्मनोळमि ॥२॥
यमिगळिववन्तु महाव्रतगळय्दनुहोंदि । क्रमदोळि सर्वसाधु गळत॥
समनागिउपवासदिपेळ्द । गमकदोळिहरुसाधु गळ्त् ॥३॥
नधगळेरडर साविर जातिशीलव । नवर भेदगळेल्लवरितु
सुविशुद्धवादंभत्नाल्कुलक्षगळेम्ब अवनुउत्तर गुणगळन् यो ॥४॥
तिळिदु पालिसुव रेंटनेपरमेष्ठिग । ळिळेंयोळ गिदु समाधि ॥
योळगात्म सिरियेंब्आहारवकोंब । बलशालिगळु साधुगळ्का ॥५॥
ज्ञान साधनेयोळात्मध्यानविडदिह । ज्ञानवन्तरु सिहवन्ते ॥
ज्ञाने पराक्रम वुळ्ळ संयमिगळु । ज्ञानादि शक्तियोळ् रतरक् ॥६॥
नानाविधवाद आहार विट्टरु । तानुगंभीरदोळिद्द ॥
ज्ञाने गौरविसल् अन्नवर्तिबानेथन् । तानन्दवाभिमानिगळव ॥७॥

लांगूलचालन मधश्चरणावघात, भूमौनिपत्य वदनोदरदर्शनं च ।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुंगवस्तु, धीरंविलोकयति चाटुशनेश्च भुंक्त ॥
दिवेल्लतिदन्नवरागिकालदि । मनविट्टु मेल्व यतिनन्ते ॥
दिनवेल्लगळिसद श्रुतदंकाक्षरपळ । मनसिद्दु रात्रियोळ्मेलुवर् ॥८॥
शक्तियोळोंदे दारियोळ् वेगदि । व्यक्तवागोडुव मृगव ।
व्यक्तित्वकेपदन्ते सरलवाद । व्यक्तिवागळिवर साधुगळ्अ ॥९॥
करुणेय वरवो एंदेन्नुव हसुवदु । गरियनेमेयुवतेरदि ॥
परमान्नव गोचरि वृत्तियिदु । डिरुव नीरिहयवृत्तिगळम् ॥१०॥
तिरियोळ् तडेयिल्लदे हरिदाडुव । वरगाळियन्ते निस्सग ।
वेरसुतचेरिसुवेकांगविहारिगळ् । गुरुगळेंदने यसाधुगळअव् ॥११॥
विभिक्षुगळिवरुसकल तत्वगळनु । साक्षात्तागि बेळगु ॥
अक्षर ज्ञानिगळाविल्यु नंदादि । रक्षिप ततो मूर्तियवर् ॥१२॥
रमेय सुत्तिह सागरदन्ते गंभीर । समरदोळ् कर्मवगेल्वर् ॥
सरतेयोळ् मदराचलदन्ते उपसर्ग । वररलकंपरगिहरुम् ॥१३॥
मोहननाद चद्रमनन्ते शान्तिय । रुहनु सर्वं चन्द्रमरु ॥
साहसव्रतगळ मणियनु धरसुत । रुहिन मणिगळंतिहरह् ॥१४॥
क्षरवेनेनाशवदळिदक्षरवेंब । परिशुद्ध केवल ज्ञान ॥
दिरुवनुसहनेयोळिरुव भूमियतेर । अरिवसमतेयोळोरेवर्अ ॥१५॥
मिदुमाडिमन्निनि गेद्दलुमनेकट्टे । अदरोळ्वासिपहाविनन्ते ॥
सदनवनितरू कहिरलल्लिये । मुदविल्लदे वासिपरुव् ॥१६॥
तिरियोळगिद्दरु तिरुहमुह दळिह । सुरचिरवाकाशवन्ते ॥
पोरेववरारिल्लद । निरालंबरु सरवरुनिर्लेप करया ॥१७॥
सर्वकालदोळु मोक्षदन्वेषण । दूरियोळिरुव साधुगळु ॥
निर्वाणपदवसाधिसुत बाळुवर्व । सर्वसाधु गळुगेनमिह ॥१८॥

धम व सावत कम भूमियोळिह् । शर्म ह भूरुकालवोळु ॥
निर्मलपद्धति याद भूवलयद । कर्म भूमियद पालिसिर ।१६।
वर शुद्ध चैतन्य विलसितलक्षण । परम निजात्म तत्वरुचि ॥
परम सम्यग्दर्शन दवर्तनीयपं । परमात्म दर्शन चार्न ।२०।
हुवनिसि कोळ्ळुर्तलिद्रिय वर्गवेळ्ळवा । प्रवरु तम्मोळ् तंदु ॥
समतेयोळ् अविकार दानंद मयरणगं। सुविशाल वाहृतन्नववमा।२१।
सर्व साधुवु भेद ज्ञान दिवलि । सर्व रागादि गळेंव ॥
गर्वद परभाव संबंधगोळिसुव । सवरे क्रिये सम्यग्ज्ञानं ।२२।
मनसिज मर्दनरी निश्चय ज्ञान । वनुभववोळगाचपं ॥
चिन्मय तत्वदभ्यास ज्ञानाचार । कोनेयादियारेवाचार ।२३।
तानु शुद्धात्म भावनेयिंद हुट्टिसि । दानन्द स्वभाविकव ॥
श्रीनिकेतनंदति सुखवनुभूतियु । ताने सम्यक् त्वचारित्रन् ।।२४।।
मर्मद समयक् चारित्र दोळगे । निर्मलववर्तनविरुव ॥
कर्मव हरिपनिश्चय चारित्रराचार । धर्म वपरिपालिसुव्उ ।२५।
वारिज पत्र दोळिरुव नीरिन करण । वारिज दोळु वर्तिपन्ते ॥
सारात्म द्रव्य दोळिदुं पर द्रव्य । दारंकेयनिरोधि सुतुस ।।२६।।
सर्व समस्त इच्छेगळ निरोधदि । निर्वहिसुतलात्ममनु ॥
सर्वनिजात्म भावनेयनुष्ठानव । निर्वहिसुवदे तपम ।।२७
रसयुत वह उत्तम तवल्लि । वशवर्ति गोळिसुत मनव ॥
असदृश वार्गिरसिपुंदे निश्चय । दसमान तपदाचार ।।२८।।
वरदर्शनाचार वादमाल्कुगळोळु । मरसदे शक्तियोळ् भजिप ॥
परमात्म परियनाराधिसुवुदु ताने । परिशुद्धवीर्याचारन् ।।२९।।
भूरि वैभवयुतवागिरु वी ऐदु । चारित्राराधनेगळनु ॥
सार पंचाचार वेनुवसिद्धांतद । भूरि वैभवद भूवलयद ।।३०।।

तेरिन कलशविहृन्ते तम्मात्मन । साररत्नत्रयात्मकव ॥
कारण समयसारव बलविदलि । सेरिसुवुदु निश्चयम ।।३१।।
सुट्टु भद्रशिव सोक्ख मंगलववु । हुट्टिपनिश्चयवदनु ॥
हुट्टिसे कार्यवु समयद सारवु । हुट्टिट वहुदुसमाधियया ।।३२।।
धर्म साम्राज्यद श्री वीतरागद । निर्मलात्मन समाधियोळु ।
कर्म संहारव माडुतेनिर्विपं शर्मरु सर्वसाधुगळु ।।३३।।
यातके संसारदाशेय बिडुभव्य । पूतर पुण्य पावगळ ॥
नीति मार्गद निर्भर भक्ति यिनीनु । मातुमनसुकायदत्य ।।३४।।
नमिसु स्मरिसु कोंडाडु स्तोत्र दोलेंब । क्रमव भूवलय पेळवबु ।
श्रमविल्लदे सिद्धांतद मार्गवहोंदे । निनगे तप्पवु मुक्ति पवब ।३५।
तीर्थंकररंते नन्नात्मनिहनु । स्वार्थवागलु शद्ध ज्ञान ॥
व्यर्थद ज्ञानव केडिसि रत्नत्रय । तीर्थनन्य अंतरंगन् ।।३६।।
लिळियादनन्त चतुष्टय रूपनु । बनित पंचम भाव युतनु ॥
कलिसप्त भयविर्पमुक्त स्वरूपनु । चलुव अखंड स्वरूपदे ।।३७।।
नित्य निजानंदैक चिद्रूपनु । सत्य परात्पर सुखरु ॥
सत्यरु सर्व साधुगळेंदरियुत । अत्यंत भक्तियि नमिपे ।३८।।
रुषिगळ नवर पद प्राप्तीयागलें । ससमान भक्तियि भजिसे ॥
वशवहुवेल्लर्गे सविकल्परूपद । सुसाधि सिद्ध साधनस ।।३९।।
करुणेय गुरुगळ वर पद भक्तियि । बरव् अक्षरांक काव्यवनु ॥
विरचिसि प्राकृत संस्कृत कन्नड । बेरसि पद्धति ग्रन्थवप। ।।४०।।
तिरियोळगिरुव समस्त वस्तुव पेळ्व, । अरहन्तरादियावंदु ॥
परमेष्ठिगळवोल्लिय पद्धतियोळु । विरचिसिहरु बोल्सिदति ।४१।
न्यायादि लक्षण ग्रन्थवनोळगोन्डु । आयहन्नेरडु साविरव ॥
श्रेयोमार्ग श्लोक गळिन्द कट्टिद । श्रेय ऐवर काव्यवप ।।४२।।

धारेष्टु अपसिदरष्टु सत्फलवोव । सारसर्वस्व वि ऐदु ॥
सेरिदर्हत्सिद्धाचार्य पाठक । साररु सर्वसाधु गळर ॥४३॥
तप्पदे भूवलय वोकादि मंगल । इप्पत्नाल्वर मन्त्र ॥
वप्पुवपंचाक्षर अ सि आ इ सा । विप्पसालक्षर काव्यवमा ॥४४॥
साविरवेंदु नामगळनु कूडलु । पावन वाद वोम्बत्तु ॥
सावाग जीवर कावुदेन्नुव काव्य। श्री वीर पेळ्द भूवलयम् ।४५।
धरियो ळोम्बत्तुगळ विस्तरिसलु । बरु वंकनू रुहन्नेरडु ॥
परिशुद्ध वदमत्ते कूडळु नाल्कु । वरधर्म शास्त्र विम्ब ग्रहगळ् ।४६।
वशवाव पंचाक्षर दोळगी नाल्कु । होसेयलु नव देवतेया ॥
होसशास्त्र विदतदु कोट्ट भूवलयद । होस पद्धितिगेरगुवेति ॥४७॥
हर्ष वर्द्धनमप्प काव्य ओम्बत्तारु । स्पर्श नोळोंन्देरडेम्ब ॥
स्पर्शमणि गळं दादोम्बत्तक्के । हर्षदोळेरगुवेनिन्दुम् ॥४८॥

अर्थ–मध्य लोक के अन्तर्गत ढाई द्वीप मे मुक्ति मार्ग की साधना करने वाले आत्मकल्याण मे निरत जो तीन कम नौ करोड मुनिगण अनादि (परम्परा) काल से विहार करते हैं उनको मैं मन वचन काय की शुद्धि के साथ नमस्कार करता हूँ ॥१॥

अर्थ—अपने ज्ञानादिक अनन्त गुणो को भूलकर तथा शरीर आदि पर-द्रव्य को अपना मानकर यह आत्मा अनादि काल से ससार मे भ्रमण कर रहा है। जब इस आत्माके आसन्न भव्यता-प्रगट होती है तब यह अपने हृदयमे प्रथम श्री जिनेन्द्र देव को स्थापित कर लेता है ॥२॥

अर्थ—सयमी साधु पाच महाव्रत तथा तीन गुप्तियों को समान रूप स पालन करते हैं, उपवास यानी-आत्मा के समीप रहने के उपक्रम के मार्ग से (उपेत्य वसति, इति उपवास·) कहे हुए विधान के क्रम से साधु १८ हजार प्रकार के शीलों तथा ८४ लाख उत्तर गुणो को समझकर पालन करते हैं। वे पांचवें परमेष्ठी साधु हमारे (साधारण जनता के) देखने मे तो पृथ्वी पर चलते हैं, बैठते हैं, भोजन करते हैं, परन्तु यथार्थ में वे चलते हुए बैठते हुए तथा भोजन करते हुए भी आत्मसमाधि में लीन रहते हैं। वे अन्न का भोजन करते हुये भी ज्ञान-अमृत अन्नका ही भोजन करते हैं ऐसा समझना चाहिए। आत्मसमाधिमें लीन रहने वाले उन साधु परमेष्ठियो पर चाहे जैसे भयानक कष्टदायक उपसर्ग आवें किन्तु वे आत्म-ध्यान से च्युत (स्खलित) नहीं होते, आत्म-ध्यान में लगे रहते हैं। जिस तरह सिह भयानक बाधाए आने पर भी पीछे नहीं हटता, आगे ही बढता जाता है, इसी तरह वे सिह-वृत्ति वाले साधु विघ्न-बाधाओं के द्वारा आत्म-ध्यान से पीछे न हटकर आगे बढते जाते हैं ॥३-४-५-६॥

अर्थ—जिस तरह गौरवशाली स्वाभिमानी गजराज (हाथी) के सामने यदि चावलों का ढेर, गुड की भेली तथा नारियल की कच्ची गिरी खाने के लिये रख दी जावे तो वह लोलुपी होकर उसे खाता नही, गम्भीर मुद्रा में खड़ा रहता है, जब उसका स्वामी उसके दाँत, सूंड तथा मस्तक पर प्रेम का हाथ फेरकर थपथपी देता है, भोजन करने की प्रेरणा करता है तब वह बडी गंभीरता के साथ भोजन करता है। उसी प्रकार गौरवशाली स्वाभिमानी साधु लोलुपता से भोजन नही करते, वे बडी नि स्पृहता के साथ भक्ति सहित ठीक विधि मिलने पर शुद्ध आहार ग्रहण करते हैं ॥७॥

यानी–कुत्ता अपने भोजनदाता के सामने आकर पूंछ हिलाता है, अपने पैरो को पटकता है, जमीन पर लेट कर अपना पेट और मुख दिखलाता है, ऐसी चाटुकारी (चापलूसी) करने पर उसको भोजन मिलता है किन्तु हाथी ऐसी चापलूसी करके भोजन नही करता वह तो धीर होकर देखता है और अपने स्वामी द्वारा चाटुकारी किये जाने पर भोजन करता है।

महाव्रती साधु भी भोजन के लिये लोलुपता प्रगट नहीं करते, न किसी से भोजन मागते हैं, न खाने के लिये कुछ सकेत करते हैं, उन्हें तो जब कोई व्यक्ति भक्ति तथा श्रद्धा के साथ भोजन करने की प्रार्थना करता है तब वे बडी नि स्पृहता और गम्भीरता के साथ अपनी विधि के अनुसार भोजन करते हैं।

अर्थ—जिस तरह गाय दिन में वन में जाकर घास चरती है, और रात को घर आकर बैठकर जुगाली (चरी हुई घास का रोंथ) करती है, इसी प्रकार साधु दिन में जो शास्त्र पढकर ज्ञान प्राप्त करते हैं, रात्रि के समय उस ज्ञान का खूब मनन करते हैं, उस ज्ञान अमृत का आत्म-ध्यान द्वारा पान करते हैं॥८॥

अर्थ–जिस तरह भोला हिरण अपने पराक्रम और वेग से दौडता है उसी तरह साधु भी मन वचन काय की सरलता के साथ विचरण करते हैं। जिस तरह हरे भरे खेत जिस में कि गेहू, आदि अन्न अपने बालि [भुट्टे] से बाहर नहीं आ पाये, है कोई गाय छोड़ दी जावे तो वह उस धान्य की बालि (भुट्टे) को हानि न पहुंचाती हुई, केवल उस खेत की घास को खाती है, इसी प्रकार साधु गोचरी वृत्ति से, भोजन कराने वाले दाता को रच मात्र भी कष्ट या हानि न पहुंचाते हुए सादा नीरस शुद्ध भोजन करके अपना उदर पूर्ण करते हैं ॥१०॥

अर्थ–इस अनन्त आकाश में जिस प्रकार वायु अपने साथ अन्य किसी भी पदार्थ को न लेकर सर्वत्र घूमती है, उसी प्रकार साधु निःसग होकर सर्वत्र विहार करते हैं ॥११॥

अर्थ–आचार्य उपाध्याय साधु परमेष्ठी अपने दिव्य ज्ञान से त्रिलोकवर्ती त्रिकालीन पदार्थों को जानकर समस्त जीवो को सूर्य के समान प्रकाशित करते हुए विचरण किया करते हैं ॥१२॥

अर्थ–जिस तरह समुद्र पृथ्वी को घेर कर सुरक्षित रखता है इसी तरह अपने हितमय उपदेश से ससारी जीवो को घेर कर साधु उनकी रक्षा करते हुए स्वय कर्म शत्रुओं के साथ युद्ध करके कर्मो पर विजय प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार सुमेरु पर्वत वज्रपात तथा झझावात (भयानक आंधी) से चलायमान न होकर निश्चल रहता है उसी तरह साधु महान भयानक उपद्रवो के आ जाने पर भी अपने आत्मध्यान से चलायमान न होकर अचल बने रहते हैं ॥१३॥

अर्थ—जिस तरह ग्रीष्म ऋतु में भयानक तीक्ष्ण गर्मी से सन्तप्त मनुष्य को रात्रि का पूर्ण चन्द्रमा शान्ति प्रदान करता है, इसी प्रकार संसार दुख मे सन्तप्त संसारी जीवो को साधु परमेष्ठी अपने हितमित प्रिय उपदेश से शान्ति प्रदान करते हैं। वे साधु अपने हृदय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूपी रत्नत्रय की माला धारण करते हैं और वे रत्नत्रय को ही अपना शरीर समझते हैं यानी शरीर आदि पर-पदार्थों पर ममता नही करते ॥१४॥

अर्थ—'क्षर' का अर्थ 'विनाश' है, अत "अक्षर" का अर्थ "अविनाशो" है। केवल ज्ञान अविनाशी है अत उसे 'अक्षर' भी कहते हैं। बहिरग में जो 'अ इ' आदि ६४ अक्षर हैं वे भी जगतवर्ती समस्त जीवों को कर्मभार से हलका करके अविनाशी बनाने वाले हैं। इन ६४ अक्षरों से भूवलय का निर्माण हुआ है। इस भूवलय से ज्ञान प्राप्त करके साधु परमेष्ठी अपने उपदेश द्वारा समस्त जीवो का कर्मभार हलका करते हैं ॥१५॥

विवेचन–भूवलय के इस तीसरे अध्याय के प्रथम श्लोक से १५ वें श्लोक तक के अन्तिम अक्षरों को मिलाकर प्रचलित भगवद्गीता के ८ वें अध्याय के १३वे श्लोक का 'ओमित्येकाक्षर ब्रह्म' यह चरण निकल आता है। तथा इसके आगे १६वे श्लोक से २९ वें श्लोकों के अन्तिम अक्षरों को मिलाकर गीता के उक्त चरण से आगे का द्वितीय चरण "व्याहरन्मामनुस्मरन्" निकल आता है। इसी प्रकार आगे भी भगवद्गीता के श्लोक निकलते हैं। उस गीता के अन्तर्गत 'ऋषि मडल' स्तोत्र निकलता है। उस गीता के श्लोकों के अन्तिम अक्षरो को एकत्र किया जावे तो 'तत्वार्थसूत्र' के सूत्र बन जाते हैं।

अर्थ–जिस तरह दीमक अपने मुख में मिट्टी के कण ले लेकर बांबी तैयार करती है, पर उस बांबी में आकर सर्प रहने लगता है फिर कुछ समय के बाद वह सर्प उस बाबी से मोह छोड़ कर वहा से निकल अन्यत्र रहने लगता है। इसी प्रकार साधु गृहस्थो द्वारा बनवाई गई अनियत वसतिका (मठ-धर्मशाला) में आकर कुछ समय के लिए ठहर जाते हैं और, कुछ समय पीछे उस वसतिका से निकलकर निर्मोह रूप से अन्यत्र बिहार कर जाते हैं।१६।

अर्थ–जिस प्रकार पृथ्वी के ऊपर का आकाश दूर से (क्षितिज पर) पृथ्वी को छूता हुआ-सा दिखाई देता है किन्तु वास्तव में आकाश पृथ्वी आदि किसी पदार्थ को छूता नही है, निर्लेप निराधार रहता है। इसी प्रकार साधु अपनी आत्मा मे निमग्न रहते हैं, ससार के किसी पदार्थ का स्पर्श नहीं करते, आकाश के समान निर्लेप, निरावलम्ब रहते हैं।१७।

अर्थ—साधु परमेष्ठी को सदा मोक्ष प्राप्त करने की अभिलाषा रहती है और वे सदा मोक्ष की साधना मे लगे रहते हैं। उन साधु परमेष्ठी को हमारा नमस्कार है।१८।

अर्थ—वे साधु द्विज वर्ण के होते हैं, कर्मभूमि में बिहार करते हैं, दुर्गुणों से अछूते यानी निर्मल रहते हैं तथा कर्मभूमि की जनता को पद्धति ग्रन्थ भूवलय का उपदेश देते रहते हैं।१९।

अर्थ—वे साधु श्रेष्ठ होने से 'परमेष्ठी' कहलाते हैं, विशुद्ध चैतन्य ज्योति

को प्रज्वलित करते हैं, अपने आत्मतत्व में ही रुचि करते हैं, इस आत्मतत्व रुचि को ही सम्यग्दर्शन कहा जाता है । सम्यग्दर्शन को निर्मल रीति से आचरण करना दर्शनाचार है । साधु परमेष्ठी सदा दर्शनाचार में रत रहते हैं ।२०।

अर्थ—पाचो इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट विषयो में राग द्वेष भावना को त्यागकर साधु परमेष्ठी इन्द्रियों को आत्म-मुख करलेते हैं तथा समस्त पदार्थों में समता भाव रखते हैं । वे किसी भी प्रकार का विकार नहीं आने देते । आनन्द से सदा आत्म-आराधना में लगे रहते हैं ।२१।

अर्थ—वे साधु अपने भेद विज्ञान द्वारा आत्मा को शरीर से भिन्न अनुभव करते है । तथा ऐसा समझते हैं कि राग द्वेष से उत्पन्न कर्म द्वारा शरीर बना है और यह पर भाव का सम्बन्ध कराने वाला है । ऐसा समझकर वे शरीर से ममता छोडकर आत्मा में ही रुचि करते हैं ।२२।

अर्थ—मन्मथ (कामदेव) का मथन करनेवाले साधु परमेष्ठी अतरग तथा बहिरंग का मर्म समझते है और बहिरग पदार्थो को हेय (त्यागने योग्य) समझकर अपने चित्स्वरूप आत्मा को ही अपना समझते है । इस प्रकार ज्ञानाचार के परिपालक साधु परमेष्ठी है ।२३।

अर्थ—अपने आत्म-अनुभव से प्राप्त हुए अनुपम सुख को प्राप्त करने वाले साधु पृथ्वी आदि पदार्थो से मोह ममता नही करते । इस निवृत्ति से उत्पन्न हुआ आनन्द अनुभव के साथ 'मैं मुक्त हूँ' ऐसा अनुभव करते है । उस साधु की शुद्ध प्रवृत्ति ही समयक्चारित्र है, ऐसा समझना चाहिए ।२४।

अर्थ—इसी निर्मल सम्यक् चारित्र का आचरण करनेवाले, तथा कर्मों का नाश करने की शक्ति रखनेवाले, निश्चय चारित्र को ही धर्म समझने वाले साधु परमेष्ठी क्या इस जगत मे धन्य नही हैं ? अर्थात् वे धन्य है ।२५।

अर्थ—जिस प्रकार कमल के पत्ते पर पडी हुई जल की बून्दें कमल के पत्ते को न छूकर इधर-उधर होती रहती हैं । इसी तरह साधु ससार मे विचरण करते हुए भी समस्त बाह्य पदार्थो से निर्लेप रहकर स्व-आत्मा मे निमग्न रहते है ।२६।

अर्थ—समस्त इच्छाओ को रोककर आत्माधीन करनेवाले, और अपने आत्मा को परमात्मा स्वरूप भावना करनेवाले तथा उसी के अनुष्ठान को ही परम तप समझनेवाले साधु परमेष्ठी है ।२७।

अर्थ—आत्मा के उत्तम गुण उत्तम तप से प्रगट होते हैं । आध्यात्मिक गुण जैसे-जैसे प्रगट होते जाते हैं, तैसे-तैसे चित्त आनन्द से भरता जाता है । उस आनन्द को बढाते जाना ही श्रेष्ठ तपाचार है ।२८।

अर्थ—दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार तथा तपाचार इन चारो आराधनाओं में रत रहनेवाले, आत्म-आराधक साधु की आत्म दृढता को परिशुद्ध वीर्याचार कहते हैं ।२९।

अर्थ—परम वैभवशाली चारित्राचार को ही विद्वान लोग 'पंचाचार' कहते हैं । उस पचाचार का प्रतिपादन करनेवाला यह भूवलय है ।३०।

अर्थ—जिस प्रकार मदिर के शिखर पर तीन कलश होते हैं उसी प्रकार आत्मा के शिखर पर रत्नत्रय रूप तीन कलश हैं इसी को कारण समयसार कहा गया है । इसी कारण समयसार से निश्चय समयसार प्राप्त होता है । निश्चय समयसार का ही दूसरा शुद्ध आत्मा है, ऐसा समझना चाहिए ।३१।

अर्थ—सुष्ठु, भद्र, शिव, सौख्य ये मगल के पर्यायवाची नाम हैं । उस मगल को उत्तम करने का निश्चय आत्मा मे उत्पन्न होना ही कार्य समय सार है और वही कार्य समय सार साधु परमेष्ठी की परम समाधि को देने वाला है ।३२।

अर्थ धर्म साम्राज्य, वीतरगता तथा निर्मल समाधि में एव कर्मों का विनाश करने के लिए तत्पर हुए श्रमण को ही साधु परमेष्ठी कहते हैं ।३३।

अर्थ—हे भव्य जीव ! ससार से तुझे क्या प्रयोजन है, इसे छोड़ । तू पवित्र साधु परमेष्ठी के चरणो का मन वचन काय से सेवन कर । इसी से तुझे अविनाशी सुख अनन्त काल के लिए प्राप्त होगा ।३४।

अर्थ—हे भव्य जीव ! तू साधु परमेष्ठी को नमस्कार कर उनको हृदय मे रखकर स्मरण कर, उनकी स्तुति कर, तथा उनकी प्रशसा कर । इस प्रकार क्रम को बतलानेवाले भूवलय सिद्धान्त के प्रतिपादित मार्ग को यदि तू ग्रहण करेगा तो तुझसे मुक्ति पद दूर नही है ।३५।

अर्थ—हे भव्य जीव ! जिस तरह अर्हंत तीर्थङ्कर का परिशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वरूप आत्मा है वैसा ही आत्मा मेरा भी है । वह परिशुद्ध ज्ञान स्वयं

अज्ञान को दूर करनेवाला है । अतः सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप मेरा आत्मा ही तीर्थ है और वही अतरंग सार है ।३६।

अर्थ—जिस तरह कीचड मिट्टी आदि मे रहित जल निर्मल होना है उसी तरह मेरा आत्मा अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य स्वरूप निर्मल (कर्म मल रहित) है । वही पचम गति रूप है और वही आत्म स्वरूप सप्त भयो का विनाश करके अखण्ड अक्षय मोक्ष सुख को देने वाला है ।३७।

अर्थ—नित्य, निजानन्द, चित्स्वरूप मोक्ष सुख की प्राप्ति मे जो सदा रत रहते हैं 'तुम इसी सुख की आराधना करो' इस प्रकार भव्य जीवो को जो सदा प्रेरणा करते रहते हैं, ऐसे साधु परमेष्ठी का ही तुम सदा ध्यान करो, आराधना करो और पूजा करो ।३८।

अर्थ—'वेही महर्षि हैं, उनके पद हमको प्राप्त हो ।' ऐसी भक्ति भावना से आराधना करनेवाले आराधक को सविकल्प समाधि की सिद्धि होती है ।३९।

अर्थ—दया धर्म के उपदेशक तथा सस्थापक पच परमेष्ठी की भक्ति से आनेवाले अक्षर-अक काव्य को प्राकृत सस्कृत कानडी मे गर्भित यह भूवलय ग्रन्थ है । यही भूवलय दयामय रूप है ।४०।

अर्थ—इस संसार मे रहनेवाले समस्त वस्तुओ को कहनेवाले अर्हंतादि पच परमेष्ठियों के वोल्लि नामक ग्रन्थ की रचना श्री भूवलय पद्धति के क्रमानुसार अतिशय रूप से पूर्वाचार्य ने की है । उस ग्रन्थ में न्याय लक्षणादि ग्रन्थो को गर्भित करके उसे सातिशय बनाया गया है । उस ग्रन्थ मे १२००० श्लोक हैं । वे श्लोक परम्परा से अभ्युदय कारक तथा निःश्रेयस मोक्ष मार्ग की चरम सीमा तक पहुंचाने वाले हैं । उसमे केवल पच परमेष्ठियो के ही विषय है ।४२।

अर्थ—इस काव्य की आराधना या इसका स्वाध्याय जितने भी भव्य जीव करेंगे उन सबको यह उत्तमोत्तम फल प्रदान करनेवाला है । इसलिए सार गर्भित उपर्युक्त पच परमेष्ठियो के अको में पुन अर्हंत सिद्धाचार्य उपाध्याय तथा सर्वसाधु के मिलाने से उभयानुपूर्वी कथन प्रकट हो जाता है ।४३।

अर्थ—इसे नियम पूर्वक यदि गुणा करके देखा जाय तो भूवलय के आदि में मगल रूप २४ तीर्थङ्करो के मन्त्र अ सि आ उ सा इस पंचाक्षर मे गर्भित हैं । इस प्रकार पक्तियो द्वारा अक्षरो से परिपूर्ण काव्य ही पंच परमेष्ठी का "वोल्लि" है ।४४।

अर्थ—भगवान के १००८ नामो को यदि आडा करके परस्पर में मिला दिया जाय तो ९ अक आता है और वही ९ अक संसार में जन्म-मरण करनेवाले जीवो को ससार सागर से पार लगाकर अभीष्ट स्थान में पहुंचा देने वाला है, यह भूवलय का कथन है ।४५।

अर्थ—इस प्रपच में ९ अक रूपी विस्तृत काव्य को श्री भगवान महावीर स्वामी के कथनानुसार यदि गणित की दृष्टि से देखा जाय अर्थात् १००८÷९=११२ हो जाता है और इसी ११२ को सीधा करके यदि जोडे तो इस योग मे प्राप्त ४ अको में से ३/४ हो जाता है । इन्हीं चारों के आधार पर क्रमश १ धर्म, २ रा शास्त्र ३ रा अर्हद्बिम्ब और ४ था देवालय है । इस दृष्टि मे अक को विभक्त किया गया है ।४६।

उपर्युक्त पचाक्षर का अर्थ पच परमेष्ठी वाचक है । और उस पच परमेष्ठी में ऊपर के ४ को मिला देने से ९ देवता हो जाते हैं । इस तरह क्रम से ९ अक के साथ ९ देवताओ के स्वरूप को बतलाने वाले इस भूवलय अर्थात् पच परमेष्ठी के नूतन "वोल्लि" पद्धति को मैं नमस्कार करता हूं ।४७।

अर्थ—हर्ष वर्द्धन नामक काव्य में ९६१२ अक हैं । स्पर्श मणि के समान इन्ही अको को यदि आडा मिला दिया जाय तो सब ९ अंक को मैं सहर्ष मन, वचन काय पूर्वक नमस्कार करता हू और पच परमेष्ठी आदि सर्व साधुओं को मैं नमस्कार करता हूँ ।

वे सर्व साधु किस प्रकार हैं ? तो "साधयन्ति ज्ञानादि शक्तिभिर्मोक्ष" इति साधव । समता वा सर्वभूतेष, ध्यायन्तीति निरुक्ति न्यायादिति साधव ।

।४८।

चौदहवां अध्याय

ळु* स्वर काव्यवनन्त तीर्थन्कर । हरस्वल्लद् अ 'ळु' स्* वरवु । सुस्वरविदनन्त गणनेय अतिशय । व स्वरवअग भूवलय ।१॥
वि* 'नमि नेमियुपार्श्वजिनरत्नत्रयर्'इगे । वनभक्तिय् 'उ' इ* ति 'विमल' ॥ तनि'वकुलशरुन्गवारुक्रमदव्रुक्ष' । घन 'मूलवोळु'
सिभमृवामि ॥२॥

स* 'तपगेय्दिद्द'स'क्रमदभूवलयके' । हितदि'नमिप्रो[१]मन व* ओष' ॥ युत'केसिद्धान्तदशास्त्रवुतनुविगे' । हित'प्राणावाय'वनार्यु ॥३॥
न्* 'वनुपम वचनद दोषके शब्दव । 'तद 'रधन सिद्धान्त् अ' धा* रि ॥ अदन 'वनरुहिम्(२)श्रीवर्धमानजि'।वद'नेन्द्रन'वामृणावृर्ष ॥४॥
तु* स'वाणियसेविसिगवतमऋषियु' । यशव'भूवलयादिसिद्धान्' ना* ॥ सूम'तगळय्दकेकावेम्बहनएरड् । ससमा'न्गअ[३] वसु' तिरहयसुव ॥५॥

वाशर 'वृषभसेन' वर्ये ॥६॥ गअशवणि 'ब्रामहि सवनदरियता ॥७॥ असुवनु 'मोक्षदोळतोर्वान्' ॥८॥
रसवसतु ग्रन्थदोळ' दयेय ॥९॥ तिसहस्र 'सूत्रानकम् अरु. पि ॥१०॥ गुसुगुटटु 'वन्गवन् अरितु' ॥११॥
वशधर्मदादियवरन्क ॥१२॥ केसरिल्लदतिशय पन्नीर् ॥१३॥ पोसदउपवासद कर्मा ॥१४॥
नशवळिविह् 'यश' दुआणि ॥१५॥ मुसल 'व मुट्टदयश' स ॥१६॥ कुसुळदे 'पाळुडग्रन्थन्' ॥१७॥
लस 'द्रव्यवनेल्ल वरिग ॥१८॥ गसवणि 'अणियोगद्दार' म् ॥१९॥ ळेसरुदारु 'द्रवयान्क' ॥२०॥
मसवृश 'गणितवनध' दय ॥२१॥ कसवळिसुत बाळव' अनक' क् ॥२२॥ यशवेल्ल 'बळ सिरुव' तत् ॥२३॥
'भूसुरराधिप' यशवा ॥२४॥ 'वश्वर 'तियागदन्का फ ॥२५॥ लशवन्कदोळु 'बनद्' फला ॥२६॥
'यशदन्क वेरडागुव' नि ॥२७॥ वशवद 'तिशयद विद्या' अच ॥२८॥ काशाव्यापिय 'वलयानक' ॥२९॥

जि* तवनु 'पेळेमुन्दकेश्रुतकेवलि । शत 'गळुजिनवाणियअनु' म्* नुनवा 'हदिनाल्कु घन पूर्वेगळलि' हितदि 'कट्टिरिसिरदा' रतेय ॥३०॥
ण* व'पूर्वेयोळ जनर'वर'जीवनकौमुदु । सवि'पूर्वेक[४]र्म'द को* ळु ॥ रव'णीयवादोमदुप्राणावायद' ।सवि'क्रमदोळु'धीविनुनो ॥३१॥
व* तु'वनु'हदिभूरुकोटि'य'क्रमवादसि' । घनरा'द्घानतलेककद'लि र्* जिन'पदद'लिश्रमहारियायुर्वेद । वन् अ(५)धर्मसाम्राज्यमनयम् ॥३२॥
रि* द् धीय 'वादोवेददन्कवु कर्म' । सद्यय 'जाड्यगळ कोल्लु, त* 'वु ॥ दु' द्दद 'निर्मलवइ मध्यममद' । सद् 'दिन्दलि' तारवहि ॥३३॥
न्* र रोळु'शर्मद्गुणिसिदक्षरवश्' [६] अ । वर'मालेय सोन्नेग' न'* ॥ सर'ळारन्कवहिन्देसालिनोळ्नाल्नाल्कय् । देरडम्मेलेसोन्नेयुसो'
॥३४॥

दा र 'न्ने एन्टेरडय्वु नूलन्ते बन्' । दार'दरडोम्देरड् आ' [७] द्* अ ॥ शारदे'नालग्गेलोपहच्चुवअक्ष' । नूरा 'रु' णायारिवन्इ ॥३५॥
(२१२५२८००२५४४००००००-प्रा.दअन्क) कर पात्र दान श्रेयाम्स् अर ॥३६॥ यन्रवन्वय श्री बरसहवत्त ॥३७॥
विरेवान सुरीन्द्र सेनव् ॥३८॥ मरळलु इन्द्र नक्षत्रया ॥३९॥ लारन्क पद्म सेनवनो ॥४०॥

मरस सोमसेनणुसुवूरतो ॥४१॥ न्रश्रेष्ट महेन्द्र् सुरमे ॥४२॥ सोरमेयप सोमसेनन्रुपा ॥४३॥
नेरेयोपुष्प मित्र भूपर् ॥४४॥ गिरियग्रद पुनर्नसुथ ॥४५॥ सेरेयळिव सब्न्वर करुनि ॥४६॥
भारतजयवल्तसवर्णिश् ॥४७॥ ळ्रद् विशाखद्त्त सुरुचि ॥४८॥ दोरे धन्य सेन सुरनुत ॥४९॥
वुरव सुमित्र धर्मामितरम् ॥५०॥ बेरे महाजित नन्दि सम ॥५१॥ सर व्रुषभर्ष वत्त ॥५२॥
वरसेन धन्य सेन गणामु ॥५३॥ मरेय सुकूळर सरनुत् ॥५४॥ सरुवरिप्पत्नाल्कु दात ॥५५॥

अ* दु'वय्व्यसालन्कसरदपादरसपो' । कद'लागदनतद्अ' अ* रळ्द ॥ विध'हूविनिन्दरेदागलीलेयिनदिषदु' । विध'छदरगळुन्(८)मतवश्ता॥५६॥
म* न्यशयागिओन्वरोळोनदकेबेरे।य'नल'देहोसपुटदोळ् भ' न* ॥ घनिर 'समवागि कुसुमायुर् वेदद महि। मे' न 'यसारुवअस'सियसप् ॥५७॥
रा* शिस'दरुशाकावयभूवलयअ'(९)वु'नित्य' । आशेय'व्वनविते' ते* ॥ लेसिन् 'तुवीर्यरक्षणोभाळ्पअक्षरान' ईशन 'कद सिद्धरापम्न ॥५८॥
सु* 'रसदरक्ष' णोकाव्यदोळ न टुभे । ष'रव'जमष्टधा'सूत्र। य* र'षजरिद्धियक्षयव्प्राणरक्षणो।य अ'र'ल[१०]रसपवक्वा'थास्म् ॥५९॥
र* वबा 'गलु पुष्पद रसदिन्दहो ।स, व'सिद्धरसवादनत्ए' ॥ स* वणने 'होस वय्व्य दानव फलदिन्वा'। सवना'त्मगेहोस'तिन्शाम् ॥६०॥

द्अवनु आदिमनु 'भरत' म् ॥६१॥ उवश्रोत्रु सिरि 'सत्य भ्आव' म् ॥६२॥ ववणस ' सत्य वीर्य' न्उम् का ॥६३॥
अवरोळु सवि'मित्रभाव' म् ॥६४॥ न्वनुम् ई सिरि 'मित्रव्ईर्या' ॥६५॥ लुव वम्शअ 'धर्मवीर्य' व्अना ॥६६॥
ववरोळ् 'दान्अवीर्य,व्अना ॥६७॥ न्अव श्रोतरु अव 'मघव वीर्यम् ॥६८॥ गेविवर 'वोद्ध्अ वीर्य्आ' न्क ॥६९॥
कविवन्द्य'सीम्अन्द्अर'र्अवर् ॥७०॥ न्अव्अश्रोत्रु 'त्रिपिष्ट'सधर्म ॥७१॥ विविधभ्अक्ति'द्विपिष्ट्आ'वनणा॥७२॥
मवने 'स्वयम् भू' भूभुजनुम् ॥७३॥ लावण्य 'पुरुष् ओत्तम' न्अेन् ॥७४॥ गवरोळ् 'पुरुषवर्अ' वअया ॥७५॥
पाव्अन'प्उन्डरीकअ' च्अस ॥७६॥ लिविपर 'द्अत्तव्अर् अ' अवनुम् ॥७७॥ गवियुओग 'कुन्नाल्अ' र्सरस ॥७८॥
ळ्वरोळुसिरि'नारायण'न्उम् ॥७९॥ चवन 'सुभ् औम्' 'अजितन्ज्यअन् ॥८०॥ लवरोळ्उ 'उग्रस एस्अ' वबा ॥८१॥
मवविव'अज्इत्अस्एन्अ' र्अस ॥८२॥ कविवन्द्य् अ 'श्रेणिकधनरप' म् ॥८३॥

व* र'देहप्राप्तबागुवद्अ'(११)नु'घूळिघ्न । सरितवागिह मुनिदेह '॥ सि* र'दघ्नळिनस्पर्शनवागेहाळाद' । नरनिगे 'मह महमा' तन्क ॥८४॥
न्* वेद'व्याधियरिद्धिगे' सवि 'हेळुव' । सवि 'रामव्षधर्धिम्' (१२) द्* । अवर्'तम्मबायिय'सवि'एन्जलुगुळलु'कविद्'उम्मुवसेचने'व ॥८५॥
द्* वर्'धिन्दनम्मव्याधिगळेल्लउपशम' । द 'वप्पुदु' नव दा* 'हेम्मे, ॥ नव'क्ष्वेळव्षधर्धियर'[१३]ल्लिकनुगुव । बेवरिनिम्हुट्टुव मल' यो ॥८६॥
ह* लि 'दिन्द कोनेगालद रोगवडगे'श्री । 'जिन मुनिगळ रिद्धियद न्* घन'भल्औषवि'रिद्धि'एनुवराग।म'न'कोविदर्सा(१४)लीले'व्॥८७॥
दा* रि 'यिम् किविदनतनासिककण्णिन' । सारमेय् 'मालेगळिम् बन् त्* ॥ सोरि'वमलदिम्'हाळागेसकलरो' । गारागे'गवरिव्धिपुन्द्'ह॥८८॥
आर्म्ह देश 'कव्शल' र् वश) दु ॥८९॥ ळेरडु एन्द्ऐने 'पार्श्वव्वय' ह् ॥९०॥ बर होळप्अदले'क्अश्इ' यर्उ ॥९१॥

दर ‘शीतलर्उ’ ‘माळ्अव् अ’ स ॥९२॥ यर ‘देश’ वास्उपूज्य’ व्अर् ॥९३॥ द्र ‘विमलाननत् अ’ स्अर्उव ॥९४॥
रु ‘धर्म्अ मल्लि नम् इ’ नक ॥९५॥ ह्अरु ‘म् उनिसुव्र्अत्अ’ अवेर् ॥९६॥ मूरु‘एळुजन्अर्’अन् गद्व्अ’रम ॥९७॥
लररु ‘वीररु नेम्रि ‘विदेह अ’ वफ ॥९८॥ यरु ‘शान्ति कुन्थ्उ अर्अ’ वल ॥९९॥ म्रर्‘कुरुज्आन्ग्अण’द्अरह्अत् ॥१००॥
वर ‘देश’ द्उत्तरव् ‘स् अरया ॥१०१॥ मूरि ‘वलयद् अवर अर्इग ॥१०२॥ तिरुगदिह्अरु‘भूवअलयव्अनु’म् ॥१०३॥
दरुशिमल्आ ‘देशद्पद्अ’ प् ॥१०४॥ भरत देशद सिरिय्अ व्अरा ॥१०५॥ क्रुनाड अतिशयद् कुरु हु ॥१०६॥
‘परुषदकणि’ यदुसरस् ॥१०७॥ वर ‘वय्रागय्वुसतत् ॥१०८॥ ‘नरर सव्भाग्य भूवलया’ ॥१०९॥

ध॰ वर्‘आगेपेळुमलव्षधर्धिय सम्’ (१५) सवियद्‘लालित्य’त्व् अ॰ गे ॥ सवि‘काव्यनालगेयिन्द’लि‘बरुवन्ते’ । अवु ‘सालावमल मूतरावि ग्’ ॥११०॥

उ॰ ग् ‘अळपालेल्ल दिव्यवषधवप्पदे । ह’ गल‘दहेलुच्चे विष्टा’ प्॰ ॥ ‘ष’ग‘धर्धिनम्’(१६)आगे‘तनुविनस्पर्शदगाळि । यु’गुळि ‘सोकलु’ अ ‘तनुविन्अ’ ॥१११॥

व॰ रिणद‘व्याधिगलेल्लकोनेयागिनोरोग’ । दनु‘वागुवरिद्धिय ज’ र॰ ॥ ह ‘नन सर्वव्षधर्धि स्ना’ [१७] यु ‘मनवसोम्कि । द’ न ‘कालकूटवम्रुतवम्’ ॥११२॥

अ॰ दु ‘वप्प जिनमयदन्तिर्प रिद्धि मु-। नि’ द यमुखवसार्द’ सि॰ विष ॥ वदु ‘वम्रुतवदागे तनुआस्याविषर्धिय । सि’ (१८) दवर ‘नेरवद्द्ष्ट्’ वि ॥११

क्॰ विद ‘इ बोळलुविषव’ द ‘म्रुत सार’ । स ‘वागुव रिद्धियदु सेरिद्’ सविय् ‘अ मुनियद्रुष्टियुविष वम्रुतसा । खेद्रुष्टिविषर्धि ३॥ भ’ [१९] वनव् ॥११४॥

इ॰ दु ‘चित्रविचत्रवादव्षधरुधिगळ्’ । इद ‘एन्दुहत्रके’ ध॰ रि ‘बन्दु’ ॥ अदु‘सारिरुवचित्रवल्लियेमोदलाद’ । अदर ‘मूलिकेमळम् स्’ यक् ॥११५॥

देदकल, अमृरुतवदुविष ॥११६॥ मृदवळियुव ‘सोप्पिनरुणा’ ॥११७॥ रिद्धिगे बरुवदु सरह ॥११८॥
गवुकिन तिरुळवु ‘केपळक’ ॥११९॥ ओदळु ‘मादलदगिड’ ॥१२०॥ ‘वदन रसके वसमुगुळु’ स ॥१२१॥
रदरलि ‘दन्त दुर्मल’ न ॥१२२॥ रोधन ‘कर्णकुन्डल’ वज् ॥१२३॥ ‘ढदवन्क गणदे’ य सकदञ् ॥१२४॥
‘नूदलिसुव हूवनरे’ ए ॥१२५॥ ‘ढददक्षर’ गुणवरिय ॥१२६॥ ‘उदय के तिरुगुव पचुम’ ॥१२७॥
रव ‘रेलेयदु हविनरस्’ ॥१२८॥ ‘पद्मावति देविय अणिमा’ ॥१२९॥ र्ददन्क ‘रसमणि’ यवुभि ॥१३०॥
इदरलि ‘देवेन्द्र यति’ हि ॥१३१॥ स्द ‘जिनदत्त गेय्दनु’ पा ॥१३२॥ आदर ‘लक्किय मर’ पा ॥१३३॥
ग्वहर ‘सर्वसार’ वद ॥१३४॥ इदरिन्द ‘रससिद्धि’ थुवस ॥१३५॥ यदु ‘प्राणावाय रस’ मा ॥१३६॥

विध 'वय्द्वदन्गकोविद' न् ।१३७।। 'सदनद त्यागिगळगवनि' ।।१३८।।
ल्* दव 'त्रिसि ग्रन्थके तनु ताम् (२०)तन्क्षण । हृदिनेनवुस्ग्रा व्* इरश्लोक' ।। स 'द सूत्र वय्द्यान्कदक्रम'वि 'दि विस्त्रि ।
सि' ह् हविनेन्दु साधिर' व ।।१३९।।
ए* रिसि'जातियउत्तमहृविनिम्'।सा'रसगो[२१]रसवनु ह्' ।। पारदव् ग्र* हूविनिम् मर्दिसि पुट' । दारय 'विट्टु 'होस रस' र् ।।१४०।।
स्* वणनु 'घुटिकेय कट्टि' द 'रससिद्धि' । रवि 'यागेसिद्घान्त' द क्* षा । ख'रसायनहोसकल्पसूत्रवय्द्यवद् [२२] सु'वशगोळि
सिवश्री' शयति ।।१४१।।
ग्रा* नुव 'समन्तमद्राचार्यऋषियुप्रा' । णद'णावायदिन्द्ग्र' स्* शी । लणवेन्दु'होसेदकाव्यवुचरकाविग।ळ'णिय'रियदग्रसद्रुश'तु ।।१४२।।
स्वण'वय्द्यागमक्रु(२३)ल्लितायुर्वेद' । सवन'वेल्लवु'सवि ग्रो* दु। ग्रवु 'हुट्टितिल् लिन्दइळे'यवरेल् ल'र।सवि'विल् लिन् दबळेसुत'म् ।१४३।

दव्रुषभाजितानव्तकु ।।१४४।। न्व ग्रभिनन्दन र्एल्ल ।।१४५।। केवर् ग्रयोध्या पुरक् ।।१४६।।
तव शम्भव श्रावस्तियष।।१४७।। रबिनीतापुर सुमतिवय ।।१४८।। ब्व पद्मप्रभ पुरसुक् ।।१४९।।
दव कव्शम्भिय पुररु ।।१५०।। वव पार्श्व सुपार्श्व रवित।।१५१।। णु वाराणशि एन्देने काशिम्।।१५२।।
पवि चन्द्रप्रभ चन्द्र पूरदो।।१५३।। वव सिरि पुष्पदन्त जिनष।।१५४।। नव पद कार्कन्दिपुरम् ।।१५५।।
न्व शीतल भद्रिळा पुर्प्।।१५६।। द्व श्रेयाम्स सिम्हपुर ।।१५७।। उ वासु पूज्य चम्पापुरप।।१५८।।
केविमल कम्शल्य पुरश् ।।१५९।। ग्रव धर्म रत्नपुर दय ।।१६०।। त्व शांति कुन्थु ग्रर वरवद्।।१६१।।
ग्रावरु हस्तिनापुर सदभि।।१६२।। व्व मल्लि नमि मिथिलेयवर्।।१६३।। रव मुनिसुव्रत कुशाग्र पुरज्।।१६४।।
ह् वनवे नेमि द्वारावति एन् ।।१६५।। ग्रववीर कुण्डलपुर ग्रा ।।१६६।। म्वरेल्ल जन्म भूवलय ग्रा ।।१६७।।

ग्र* वरोळ'जीव हिम्सेय सेरिसि तन्द। ख' व 'ळर काव्यके धिह् का' ना* ।।नव 'स(२४)लेलेयायुर्वेद शब्दव'। सिव'भगवन्त सालिनिम्'ना।।१६८
म्* नद'प्राणावाय शीलवेन्दर जीव' । वनु 'रक्षेयेन्दोरेविरे' द्* मा । नवनद'पालिस बेडवे दयेने'(२५)र। नवम'कलित जीवर'र्।१६९।।
मे* लेन्दु 'काय्व कलियदवर कोल्व । वलवन्त चरकन' वय्द् य* मतम्'। सोले 'ग्रमगेलुतलहिम्सायुर्वेदव'। साएम्'रक्षिय बलवे'म्व१७०।।
द्* नद'प्राणावायवदि[२६]थावरजीव।र'नव'कोलुवुदरिन्दलेत्ग्रा'।।न* नु 'वु पापव होन्दुवरेम् बावीर'। जिन 'वाणिय नेनेयदे'ताम् ।।१७१।।
ए* रिद 'हिम्सेयभावनेगिहुदु धिह् । कारने[२७]करुणेय् सर्व् ग्र' न्* ।। नेरिद 'जीवर मेलिरबेकु दो'। दा 'रेयुवुदागव्षघ्र् ध् इ'ग्रा।।१७२।।

उरुहिद् कर्म 'वम्श' दोरेवश ।।१७३।। न्र श्रेष्ट 'ग्रोम्देरळ्मूरु' व ।।१७४।। वर'नाल्कय्दार् एन्ट् ग्रोम्बत्ग्र।।१७५।।
तर 'हत्तु हन् ग्रोम्द् हन्एरळ'शु ।।१७६।। द्र 'हदिमूर् हदिनाल्कवरा' ।।१७७।। धारे 'हत् ग्रोवत् इप्पत् ग्रोम्दत्'।।१७८।।
न्रराज वम्श इक्ष्वाकु स् ।।१७९।। सिरि पार्श्वर सुपार्श्व उग्रउर ।।१८०।। धर्म शान्तियु कुन्थु ग्ररह् ।।१८१।।
इरुशिसे 'कुरुवम् शदवरु' ।।१८२।। मरळि इप्पत् ग्रनक वरव ।।१८३।। विरचित हरिवम्श हरुश्ग्र ।।१८४।।
रुरु वर्धमान रिरुव च ।।१८५।। ग्ररहन्त नाथ वम्शजय् ग्र ।।१८६।। य्रसुगळलि नेमि हरिव ।।१८७।।
लरयदा कूडलय्दु वर स् ।।१८८।। भ्रतव राजवम्श ए ।।१८९।। उरिव धर्म पालिपन ।।१९०।।
वर राज जिनवम्श वरस य् ।।१९१।। यरडर ग्रवसर्पिण हुन्ड्ग्रो ।।१९२।। व्र व्रउषभादि वीरांतर् ।।१९३।।
कारण काय्य भूवलयर् उ ।।१९४।।

ग्* रुवरिग् 'इरुवेन्दु सिद्ध समन्त भद्' । रु 'रार्यन च' रि त* रण ।। के' रगि 'नमिसिदरहुदि (२८) ख्याति पूजा ला। भ' र
'दाशेयिम् चरका' भ ।।१९५।।
इ* दि 'दि नूतन ग्रन्थ कर्तारर् प्रीतियिम्' । विधि 'हिम्सेय पोरे' स* 'यलु'।तर'रसविद्येयातकेसिद्धियागुव'।दद'नम[२९]नतमस्तक'यो।१९६।
रि* ण'वागि गिडवोळकुळितिर्द नुतम्र्। लि'णे'केगळ हूवम हतिस' न्* विनद 'लहिम्सेय व्रतदोन्दिगे दिव्य । गुणद'क्षिय सिवधौषध'र।१९७
सि* व'ब्रहसर्ना[३०] [illegible]

ह॰ रुष 'दायुर्वेद जल[३१]पूर्वार्जित'। वरद'त्पीडन रोग'॥तख न॰ वेल्लव सार्वजनिकरेल्ल । क' र 'ळेदु निर्वाण सुखव' इ ॥१६६॥
रे॰ गि 'साधिसेरेन्दु पेळ्वुदम् सार्वन्गे' । बेगादि 'सुखसिद्धिय ह॰ ज'[३२]वेगदि'जयिसिरि कर्महिम्सेय'। नग'मार्गादिजय' वरेसा॥२००।
धगुणर 'तन्दे' ये वरद् अवन् ॥२०१॥ दगुणिसे 'नाभिराज् अ' वअस ॥२०२॥ यगरिसे 'जितशत्रु' न्रुपम ॥२०३॥
मगुळ्लु शरीरवि 'जित् आर् ई'॥२०४॥ सिगुरि 'सम्बरर्' 'मेघरथर्अ' ॥२०५॥ वग धारणर् 'सुप्र्अतिष्ठ' ॥२०६॥
सगुरु 'सेन सुग्रीव् अ' कव्य ॥२०७॥ दग 'घृढरथ विमलवाहनर्'स ॥२०८॥ वगेदरु 'वासु पुउज्य' रुसक् ॥२०९॥
मग'कृत वर्म'सिरिवर् अह् अ॥२१०॥ शघरव 'सिम्हसेन' वरद् अव् ॥२११॥ द्ग 'भानु विश्वअ' स्एनवन् ॥२१२॥
सगधरर् 'शूरसेनअ' वर्अत् ॥२१३॥ अगुरु 'सुदर्शन' विज्अय्ए ॥२१४॥ दगरुवु सिरि 'कुमभव्रअ' यय॥२१५॥
वगण 'सुमित्र विजयअ' वअस् ॥२१६॥ र्ग 'सुमुद्र विजय राज' वरअ॥२१७॥ ल्ग 'विश्वसेन''सिद्धार्थ अ'र्॥२१८॥
एगरिपर् 'पितृरुकुल' रुज्येव् ॥२१९॥ गगनदोळ् निलुव 'भूवलय् आ' ॥२२०॥

रिण॰ ज सिद्धियप्पुदु रसद' वि 'जयवागे' । द्विज 'देह लोहगळअ' स्॰ व। भज'सभाग्यदजयलाभहुदेलल'। सज'ससाम[३३]यज्ञदपशुहिम'२२१
व्॰ र 'से अज्ञ रायुर्वेद अज्ञर मारिय । ब'र 'लि' ज्ञर् 'यम सुज्ञ' इ॰ रुम॥। प'र'वन्दरिदुत्यागवमाडि'नरने।सरियो'अज्ञतेयमपरिह'ब॥२२२॥
बा॰ 'रिकुम(३४)पाप पुण्यगळ विवेचने'। दारि'यिन्दिर्दु पापअमआ' द्॰ अ॥आर 'र्गवु हिम्सेघेन्दु' रे 'आपत्लुम'सेरलु'बहुदेन्दु विद्दु'न्॥२२३॥
ण॰ वद् अ 'अहिमसेय शरो पद्धतियवय् । द्यवनम(३५) देवरु' म् धा॰ व॥ सिव'गुरु शात्र'व'शरणेन्दु नबुत'सत्रिय 'नोवुगळ्कलिय'बुध्र ।२२४
ग॰ म 'लु बरलु नावु पुष्पायुर्वेद' द । स 'मर्व पेळि सावुह् उ' न्॰ सम 'ट्टडगुव तेरच [३६]नमतवरेल्लरगे'।गम'कलिसुवे ववरिम'न२२५
य॰ श व सम्मोददिन्दलि बन्दु हेम्मेय' । रस 'स्वर्णवादम' त्॰ 'र' लु॥ह'सबादवनेममिसव्व्यवसाधिसि'।पस'रिमो[३७]भारतवे'ब २२६
आ॰ 'शद भाग्यव अहिमसेय सास्त्र' । ईशन्अ 'हूपिनवय्द्यअ' ओ॰ आ' सार समग्रहव' द 'नु शरी पूज्यपा। दा' सा'चार्यरसार' वस् ।२२७
अशर ताथियो 'मरुवम् थि ॥२२८॥ दश 'विजया' के सुषेणा' नृता ॥२२९॥ द्शेयोळोम्देरळ् मूरु अनक अन् ॥२३०॥
इ 'सिद्धार्था' मङगला देवि'नअ ॥२३१॥ नृष 'सुषोमा पृथ्वि' नालकय्दहो ॥२३२॥ गयदारेळेन्दु'लक्ष्मणव ॥२३३॥
रस 'जयरामा सुनन्दात् ॥२३४॥ आशा 'नन्दा विजयामम् अ' ॥२३५॥ नष ओम्बत् हत्तु हन् ओम्दम् ॥२३६॥
यश द्वादश 'जयश्यामह' ॥२३७॥ म्श हदिमूरनक विहत्तु ॥२३८॥ म्श 'लक्ष्मिमति सुन्रभा' पा ॥२३९॥
डश चतुरदश हुणणिमे प ॥२४०॥ अशद 'ऐरा सिरिकान्त देविम् ॥२४१॥ त्से हदिनार हदिनेळ् अनक ॥२४२॥
एसे 'मित्रसेन प्रजावति यर् ॥२४३॥ रस 'सोमा वरपिला' विन्तु ॥२४४॥ पशे शिव ब्रामहिला' अमम ॥२४५॥
पुसे 'प्रिय कारिण हदिनेन्टादिव् ॥२४६॥ इ सिरिप्पत् नालकु भूवलय ॥२४७॥

ण्॰ व 'कल्याण कारक वर्[३८]षिदुगतव्'। अवु'षिधु सम्राध्धव् सू' नो॰ कवइ 'त्रद हदवन्नरितु भूवल । य' वरनक ॥२४८॥
अ॰ स 'दारियमसिद्धरस दिनदोदगिसि'।होस'काव्य कविनि[३९]तरु' व॰ रस'वदु मङ्गलमयसिद्धरस काव्य'। हुसियद'अरुहनागमग'सि ॥२४९॥
मु॰ र्नथ बरेदका [व्यव]केळि हिम्सेय' । सर्वथा 'त्यजिसिदि' न् ता॰ गे॥परवव'सरुवसम्पदवेल्लतरुव(४०)।निर्मल मनवचनवु'ता ॥२५०॥
ओ॰ म् 'काय त्रिकरण(मर्म)शुद्धिय जिनवय्द्य'। शमकादि 'नेन्दुनू च॰ 'र'॥हम्मम् 'कोनेगिप्पत्एळन् कविरुब'श्री।निम्म'भूवलयकेघन'व२५१
त्॰ नुमन वचन शुद्धिगळ 'भक्ति यिन्दे'ना । जिनगे 'रगुवेनु (४१) चि॰ रका॥ लनमस्कारदे बरुव कय्युगिविह। मनदायियतिशय बंसय॥२५२।
ए॰ नेस्बे चरकमहर्षिय हिम्सेय। सानुरागदिनिव् आरिसिह। जाण र॰ अमोघवर्षान्कन सळयोळु । क्षोणिय सर्वज्ञ मतदिम् ॥२५३॥
सि॰ पारवतीशन गणितदे बह वय्द्य । दवनियोळ् पेळुव अ॰ दर॥ विवरसमन्वयद्अनन्तरव्अोन्दोन्बत्। सविमूरम्दोनदु अक्षरय॥२५४
म्॰ रललु हत्तुसाविरदिन् नूरारु[एरळ्नूरारु]बरुवनक विद्ये ई'लू' म॰ सरुवज्ञनेरिदहदिनाल्सुगुणस्थान।अरहंत[गुरुपरम्परेयाद'ळ्'अन्दव]भूवलयव्

समस्त 'ळ्' अक्षरांक १०,२०६+समस्त अन्तराक्षरांक १५,३९०+समस्त अन्तरांतर १,८२७=२७४२३

अथवा अ—ळ् २,७९,७११+ ळ् २७,४२३=३,०७,१३४

चौदहवां अध्याय

स्वर अक्षरों में कु १४ वा अक्षर है। इसी अक्षर का नाम आचार्य ने इस १४ वें अध्याय को दिया है, १८ वें तीर्थङ्कर श्री अनन्तनाथ भगवान हैं। वे अनन्त फल को देने वाले होने के कारण अतिशय धवल रूप भूवलय ग्रन्थ में स्वर अक्षर के दीर्घांक को १४ मानकर अग ज्ञान को अनन्त रूप गणित से लेकर गणना करते हुए ग्रन्थ को रचना की गई है। इन्हीं अनन्तनाथ भगवान को वैदिकों ने अनन्त पद्म नाभ भी कहा है। वह अनन्तपद्म नाभ श्री कृष्ण रूप पर्यायसे जन्म लेकर कुरुक्षेत्र मे दिगम्बर दीक्षा ग्रहण करने के इच्छुक अर्जुन को कर्तव्य कर्म का बोध, करानेवाली गीता का उपदेश भूवलय के ढग से दिया था। उसका नाम श्री मद्भगवद् गीता पाच भाषाओं मे अन्यत्र अलभ्य काव्य इसी अध्याय के अन्तरान्तर श्लोक मे "नम श्री वर्धमानाय" इत्यादि रूप कानडी श्लोक के अन्तिम दो अक्षरो से निकल आता है। इस अध्याय के अन्त में जैसा है उसी प्रकार से हम प्रतिपादन करेगे। वहा "ओमित्येकाक्षर ब्रह्म" से लेकर भगवद्गीता प्रारम्भ होगी। आजकल प्रचलित भगवद्गीता से परे और विशिष्ट कला से निष्पन्न वह सस्कृत साहित्य अपूर्व है।१।

यह भगवद् गीता पाच भाषाओ में है। पहले की पुरु गीता है। पुरुजिन अर्थात् ऋषभदेव के समय में उनकी दोनो रानियो के दो भाइयों का नाम विनमि और नमिनाथ था। उन दोनों राजाओ ने अयोध्या के पार्श्ववर्ती नगरो में राज्य किया था। उनके राज्य शासन काल में विज्ञान की सिद्धि के लिए बकुल (सुमन) शृंग देवदारु इत्यादि वृक्षो का उपयोग किया जाता था। वे दोनो राजा विविध भाति की विद्याओ में प्रवीण होने के कारण विद्याधर स्वरूप ही थे। और विविध विद्याओं को सिद्ध करने के लिए इन्हीं वृक्षो के फूलों के रस से रसायन तैयार कर लेते थे। इसी के दूसरे कानडी श्लोक के अन्तिम में 'इन्द्रियाणा हिचरता' नामक सस्कृत श्लोक के अन्त में "मिवाम्भसि" है। इस वैज्ञानिक महत्व को रखनेवाले से बढ़कर अपूर्व पूर्व ग्रन्थो के मिलने से यह अनन्त गुणात्मक काव्य है। इस कारण श्री अनन्तनाथ भगवान का स्मरण किया गया है।२।

सक्रम से निर्मोही होकर निर्मल तपस्या करनेवालों को इस भूवलय ग्रन्थ में छिपी हुई अनेक अद्भुत विद्याओ की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ को सभी को भक्ति भाव से नमस्कार करना चाहिए। मन में जब विकल्प उत्पन्न होते हैं तब सिद्धात शास्त्रों का यथार्थ रूप से अर्थ नही हो पाता। मन की स्थिरता तभी प्राप्त होती है कि जब प्राणायाम पूर्वक ज्ञान से शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रहता है और तभी तपस्या करने की भी अनुकूलता रहती है। इसीलिए आर्यजन त्रिकरण शुद्धि को सबसे पहले प्राप्त कर लेते थे।३।

विवेचन—इस तीसरे श्लोक के मध्य में अन्तरान्तर का एक श्लोक समाप्त होता है। उसके अन्त में "नमिप् ओ" शब्द है। जिसका अर्थ कानडी भाषा में नमस्कार करेंगे ऐसा होता है। अन्तिमाक्षर ओ भगवद्गीता के ओमित्येकाक्षर का प्रथमाक्षर हो जाता है। वही ओ अक्षर ऋग्वेद का गायत्री मन्त्र रूप में रहनेवाले 'ओतत्सवितुर्वरेण्य के लिए प्रथमाक्षर हो जाता है। इसी प्रकार आगे भी अनेक भाषाओ में कभी आदि में व कभी अन्त में ओ मिलेगा; पर वह हमें ज्ञात नही है। इस पद्धति से तीन आनुपूर्वी को ग्रहण करना। इसका विवरण इस प्रकार है—

पहले-पहले अक्षर या अंक को लेकर आगे-आगे बढना आनुपूर्वी (पूर्व अनु इति अनुपूर्वं, अनुपूर्वस्य भाव आनुपूर्वी) है। जिसका अभिप्राय 'क्रमशः प्रवृत्ति' है।

आनुपूर्वी के तीन भेद हैं १—पूर्वानुपूर्वी, २—पश्चादानुपूर्वी, ३—यत्रतत्रानुपूर्वी। जो बांयी ओर से प्रारम्भ होकर दाहिनी ओर क्रम चलता है वह पूर्वानुपूर्वी है जैसे कि अक्षरो के लिखने की पद्धति है। अथवा १-२-३-४-५ आदि अंकों को क्रम से लिखा जाना जो क्रम दाहिनी ओर से प्रारम्भ होकर बायी ओर उलटा चलता है जिसको वामगति भी कहते हैं, वह पश्चादानुपूर्वी है, जैसे कि गणित में इकाई दहाई सैकड़ा हजार आदि लिखने की पद्धति है इसी कारण कहा गया है 'अङ्काना वामतोगतिः' यानी—अंको की पद्धति अक्षरों

से उलटी है। जहा कहा से क्रम प्रारम्भ करके आगे बढना यत्रतत्रानुपूर्वी है जसे ४, १, ३, २ आदि।

आधुनिक गणित पद्धति केवल पश्चादानुपूर्वी से प्रचलित है। अत वह अधूरा है, यदि तीनों आनुपूर्वियो को लेकर वह प्रवृत्त होता तो पूर्ण बन जाता। श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय सिद्धान्य में तीनों आनुपूर्वियो को अपनाया है इसी कारण उन्होने भूवलय द्वारा ससार के समस्त विषय और समस्त भाषाओं को उसमें गर्भित कर दिया है।

पूर्वानुपूर्वी पद्धति से भूवलय में जैन सिद्धान्त प्रगट होता है, पश्चादानुपूर्वी से भूवलय मे जैनेतर मान्यता वाले ग्रन्थ प्रगट होते हैं। यत्रतत्रानुपूर्वी से भूवलय में अनेक विभिन्न विषय प्रगट होते हैं।

किसी भी विषयका विवेचन करने के लिए प्रथम ही अक्षर पद्धति का आश्रय लिया जाता है किन्तु अक्षर पद्धति से विशाल विवरण पूर्ण तरह से प्रगट नहीं हो पाता, तब अक पद्धति का सहारा लेना पडता है। अको द्वारा अक्षरों की अपेक्षा बहुत अधिक विषय प्रगट किया जा सकता है। परन्तु जब और भी अधिक विशाल विषय को अक बतलाने में असमर्थ हो जाते हैं तब रेखा पद्धति का आश्रय लेना पडता है।

भूवलय मे तीनो पद्धतियो को अपनाया गया है इसी कारण भूवलय द्वारा समस्त विषय प्रगट हो जाता है।

महान मेधावी विद्वान रेखा-पद्धति से विषय विवेचन कर सकते हैं। उससे कम बुद्धिमान विद्वान अको द्वारा विवेचन करते हैं। उससे भी कम प्रतिभाशाली विद्वान अक्षरो के द्वारा ही विषय विवेचन कर सकते हैं। इसी क्रम से वर्णों से भी केवल ज्ञान के समस्त विषयो के ज्ञाता महात्मा थे। वह अवधि ज्ञान का विषय है। आगे इन सभी विषयो को श्री कुमुदेन्दु आचार्य विस्तृत रूप से बतलायेंगे।३।

संसार मे रहनेवाले सभी जीवो के वचन में कुछ न कुछ दोष रहता है। उस दोष को मिटाने के लिए विद्वज्जन शब्द शास्त्र की रचना करते हैं, किन्तु फिर भी उनकी विद्वत्ता केवल एक ही भाषा के लिए सीमित रहती है। वह विशुद्ध भाषा दूसरे भाषाओं के जानकारों को अशुद्ध सी मालूम पड़ती है। ठीक भी है। जो विषय स्वयं समझ में न आवे वह गलत मालूम होना स्वाभाविक ही होता है। केवल एक ही भाषा में शुद्ध रूप से यदि वाक्य रचना करली जाय तो भी उस भाषा में रहनेवाले श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र देव के केवल ज्ञान में झलकनेवाली समस्त भाषाओ को एक साथ शुद्ध वाक्य रचना करनेवाले जीव इस काल में नही हैं। और इस अवसर्पिणी काल में आगे भी नहीं होंगे, ऐसा प्रतीत होता है।४।

भगवान महावीर के दिव्य वाणी में इस प्रकार झलकी हुई दिव्यध्वनि को चौथे मन पर्ययज्ञानधारी ऋग्वेदादिचतुर्वेद पारङ्गत ब्रह्मज्ञान के सोमातीत पदो में विराजित ब्राह्मणोत्तमो ने अवधारण करके भूवलय नामक अगज्ञान को ग्रन्थों में गुथित किया। अर्थात् सर्वभाषामयी, सर्वविषयमयी तथा सर्व कलामयी इन तीनों रहस्यमयी विद्याओ को भेद विज्ञान रूप महान गुणो से युक्त होकर सिद्धान्त ग्रन्थो में गुथित कर दिया। उसका विस्तार रूप कथन ही यह भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ है।५।

विवेचन —श्री भगवद्गीता में अनादि कालीन समस्त भगवद्वाणी को मिला देने की असाधारण शक्ति विद्यमान है। गौतमऋषि वैदिक सम्प्रदाय के प्रकाण्ड विद्वान होने के कारण वृषभसेन गणधर से लेकर अपने समय तक समस्त भगवद्वाणी रूप पुरुगीता, नेमिगीता, कृष्णगीता (भगवद्गीता) और महावीर गीता इन चार गीताओ की रचना की थी और भविष्य वाणी रूपी आचार्य श्री कुमुदेन्दु की गीता का भो वर्णन संक्षेप रूप से किया था। उसके उदाहरण को इसी अध्याय के कानडी मूल श्लोकों के अन्तिम अक्षर से देख सकते हैं। ऋषभसेन गणधर ने भी इसी क्रम से अतीतकालीन समस्त भगवद् वाणी की रचना की थी और उसी वाणी को श्री आदिनाथ स्वामी ने ब्राह्मी देवी के नाम से अक्षर रूप तथा सुन्दरी देवी के नाम से अक रूप प्रकट किया इसका जोकि विवेचन पहले कर चुके हैं इस समय भूवलय में दृष्टिगोचर हो रहा है। इस प्रकार उपदेश करके वे सभी गणधर परमेष्ठी ने क्षणिक शरीर को त्यागकर चिरस्थायी शाश्वत सुख को प्राप्त कर लिया। इन सभी ग्रन्थों को अग ज्ञान परिपाटी से वस्तु नामक छन्द कहते हैं। ३००० सूत्राङ्कों के ज्ञाता को श्रं विद्याधर चक्रवर्ती कहते हैं। उन समस्त गणधर परमेष्ठियों के वचन

मधुर, मिष्ट एवं सर्वजन हितकारी होते हैं। दयाधर्म का प्रचार ही इन समस्त ग्रन्थों का उद्देश्य है तथा इसमें उत्तम क्षमा, मार्दव आर्जवादि दशधर्मों का ही अतिशय वर्णन है।

जिस प्रकार अन्य जलो में कुछ न कुछ गर्दा (कीचड) रहता है पर सुगंधित जल में किसी भी प्रकार का किंचिद्मात्र भी गर्दा नही रहता, उसी प्रकार अन्य धर्मों में कुछ न कुछ दुर्गुण पाये जाते है, परन्तु परमेष्ठी प्रतिपादित दश धर्मों में किसी भी प्रकार की मलिनता नही पाई जाती ॥६ लेकर १३ श्लोक॥

विवेचन:—इस अन्तर श्लोक के २६ वें श्लोक से लेकर ६ वें श्लोक तक यदि आ जायें तो प्रथम अध्याय मे कथित, कमलो का वर्णन पुन पंक्ति से आता है। उसमें सात कमल पुष्पो से सुगन्धित जल (गुलाब जल) तैयार कर लेते थे, ऐसा अर्थ निष्पन्न होता है। यह काव्य रचना की अतिशय महिमा है।

दशधर्मो को पालने वाले प्रोषधोपवासी मुनि होते हैं। उपवास शब्द का अर्थ—"उप समीपे वसतीत्युपवास" अर्थात् आत्मा के समीप में वास करना उपवास है। और इसी प्रकार के उपवासी मुनिराज अविनाशी ग्रन्थो की रचना करके शाश्वत् यश को प्राप्त कर लिया करते थे। वे महात्मा सदा अपने गुरु गणधर परमेष्ठियों के साथ निर्भय विचरण करते रहते थे। इसी लिये इन्हें किसी प्रकार के शस्त्रास्त्रों की आवश्यकता नही पडती थी। वे महात्मा पाहुड (प्राभृत) ग्रन्थ की रचना करने मे बडे बुद्धिमान हैं। इतना ही नहीं, बल्कि वे अनियोग द्वार नामक ग्रन्थ की रचना करने में भी परम प्रवीण हैं। वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान में गम्य होने वाले जीवादि षड्द्रव्यो को गणित-बन्ध में बांधकर अङ्कज्ञान में मिलाने वाले गणितागमज्ञ और अक-शास्त्रज्ञ होते हैं। विविध वस्तु अथवा शब्द को देख तथा जानकर उनकी वाह्याभ्यन्तरिक समस्त कलाओ को तत्काल ही व्याख्यान करने में कुशल होने मे तत्तकालीन समस्त विद्वान् ब्राह्मण उनके यशो का गुणगान करते थे। यह अद्भुत् ज्ञान साधारण जनता को सहज में नहीं मिल सकता। छोटे अक को लेकर गुणाकार क्रिया से बडा अक बनाने के बाद उन सबको ९ अंक में एकत्रित करके उसके फलो को दिखलाने वाला सबसे जघन्याक २ है सर्वोत्कृष्टाक ९ है तथा उसके अन्दर रहकर अतिशय विद्या को प्रदान करने वाले अलोकाकाश पर्यन्त समस्त अको को बतलाने वाले ये मुनिराज हैं। उन्हीं के द्वारा विरचित यह भूवलय काव्य है। ॥१३-२९॥

६४ अक्षरों की जो वर्गित सवर्जित राशि आती है उन समस्त अंकों का ज्ञान जिस महानुभाव को रहता है उन्हें श्रुत केवली कहते हैं। और वैदिक मतानुयायी मत्र-द्रष्टा कहते हैं। मत्र-द्रष्टा वे ही होते हैं जो कि ११ अङ्ग तथा १४ पूर्व से निष्पन्न समस्त वेद ज्ञान को अंक भाषा में निकालने में समर्थ होते हैं। ऐसे समर्थ मुनि श्री महावीर भगवान् से लेकर श्री कुमुदेन्दु आचार्य पर्यन्त एक सौ (१००) थे। ये समस्त मुनि सदा स्व-पर कल्याण में संलग्न रहते थे ॥३०॥

१४ पूर्वो में प्रथम के ९ पूर्व को निकाल कर शेष ५ पूर्वों में विश्व के समस्त जीवो के जीवन-निर्वाह करने के लिये वैद्यक, मंत्र, तन्त्र, यन्त्र, रसवाद, ज्योतिष तथा काम शास्त्र आदि प्रकट होते हैं। उन सभी विद्याओं में गूढातिगूढ रहस्य छिपा रहता है। उसमें रमणीय शरीर—विज्ञान को बतलाने वाला, प्राणावाय (आयुर्वेद) एक महान् शास्त्र निकलता है जो कि चौथे खंड मे विस्तार रूप वर्णित है ॥३१॥

विवेचन—प्राणावाय पूर्व मे १०००००० कानडी श्लोक हैं। उन श्लोकों में पृथक पृथक भाषा के अनेक लक्षकोटि श्लोक निकल कर आ जाते हैं। उसका अक नीचे दिया गया है।

महा महिमावान आयुर्वेद शास्त्र भूवलय तृतीय खंड सूत्रावतार से भी निकलकर आ जाता है। वह सूत्रावतार नामक तृतीय खड दूसरे श्रुतावतार खड से भी निकल कर आ जाता है। वहश्रुतावतार नामक दूसरा खंड इस मगल प्राभृत नामक प्रथम खड के ५९ वें अध्याय के अन्तिम अक्षर से लेकर यदि ऊपर पढते चले जायें तो यथावत् निकल कर आ जाता है।

यही क्रम आगे भी चालू रहेगा। अर्थात् पाँचवां खंड विजय धवल ग्रन्थ चौथे खण्ड के प्राणावाय पूर्वक नामक खण्ड में यथा तथा निकल कर आ जाता है। इसी क्रम से आगे चलकर यदि ९ वें खण्ड तक पहुंच जायें तो अन्तिम मंगल प्राभृत रूप नववें खण्ड तक एक ऐसी चमत्कारिक काव्य रचना है जिससे कि अष्ठ महाप्रातिहार्य वैभव से लेकर समस्त ९ खण्ड एक साथ सुगमता से

पढ़ा जा सकता है जो कि कि श्रुतकेवलियो के साक्षात् मूर्त स्वरूप है।

हाथो के ऊपर रक्खी हुई अम्बारी को स्याही (इङ्क) से पूर्ण करके उस स्याही से जितने प्रमाण मे ग्रन्थ लिखा जा सकता है उसे प्राचीन काल मे एक पूर्व कहा जाता था, आधुनिक वैज्ञानिको के मन में यह बात नहीं आती थी। उनका तर्क था कि इतनी विशालता एक पूर्व की नही हो सकती, किन्तु जब उनके सामने अद्भुत् भूवलय शास्त्र तथा उसके अन्तर्गत प्रामाणिक गणित शास्त्र प्रस्तुत हुआ तब सभी को पूर्ण रूप से विश्वास हो गया और श्रद्धा पूर्वक लोग इसका स्वाध्याय करने लगे। इतना ही नही इसकी मान्यता इतनी अधिक बढ़ गई है कि यह ग्रन्थराज राजभवन, राष्ट्रपति भवन तथा विश्व विद्यालयो (यूनिवर्सिटीज़) के सरस्वती भवनों (लाइब्रेरियो) में विराजमान होकर सभी को स्वाध्याय करने के लिए सरकार से मान्यता मिल गई है और भारत सरकार की विधान सभा तथा मैसूर प्रान्त की विधान सभा मे इसकी चर्चा बडे जोरो से चल रही है।

इस प्राणावाय पूर्व में १३०००००० (तेरह करोड) पद हैं। और एक पद में १६३४८३०७८८८ अक्षर होते हैं। १३०००००० को यदि उपर्युक्त अङ्क से गुणा करे तो जितना अंक प्रमाण होगा उतनी अक प्रमाण प्राणावाय पूर्व का अक होगा। यह सैद्धान्तिक गणना का क्रम है। भूवलय का क्रमाक अलावा है, क्योंकि ३ आनुपूर्वियो की पृथक् पृथक् गणना होने से अक बढ गया है। अर्थात् तेरह करोड×तेरह करोड=जो अक आता है उस अक को उपर्युक्त ग्यारह अक×ग्यारह अक=जो अक आता है उससे गुणा करने से आने वाला लब्धाक प्रमाण सपूर्ण आयुर्वेद शास्त्र बन जाता हैं।

विवेचन—पद शब्द का अर्थ तीन प्रकार का है—

१-अर्थपद, २-प्रमाण पद और ३-मध्यम पद अथवा अनादि सिद्धान्त पद। अर्थ पद में केवल अर्थावबोध यदि हो गया तो बस ठीक है। वहाँ पर अन्य व्याकरण तथा गणितादि लक्षणो की आवश्यकता नही पड़ती। प्रमाण पद में अनुष्टुप् आदि छन्दों के एक चरण में आठ आदि नियत अक्षर होते हैं। [भूवलय में इससे व्यतिरेक क्रम है] सभी व्यावहारिक विद्वानो ने इन दोनो पदो का प्रयोग व्यवहार में रखकर तीसरे को छोड दिया है क्योंकि अनादि सिद्धान्त पद का अर्थ दुरूह होने से इसे छोड देना पड़ा। अनादि सिद्धान्त पद के एक में रहने वाले ग्यारह अंक प्रमाण अक्षरो के समूह को कौन ध्यान रखने में समर्थ हो सकता है ? अर्थात् इस काल मे कोई भी नहीं क्योंकि यह श्रुतकेवली गम्य है।

ऋद्धिधारी मुनियो को इस क्रम प्राप्त वेद ज्ञान के अक को अक्रमवर्ती ज्ञान से समझ कर निर्मल रूप मध्यम ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उन्ही मुनिओ के द्वारा विरचित होने से यह भूवलय ग्रन्थराज महा महिमा सपन्न होकर पुण्य पुरुषो के दर्शन तथा स्वाध्याय के लिये प्रकट हुआ ॥३२-३३॥

विद्वानो ने माला के समान इन अकों को गुणाकार करते हुये एक विशिष्ट विधि से प्राणावाय पूर्व नामक ग्रन्थ से अको द्वारा अक्षरों को बनाकर दिव्यौषधियो को जान लिया था। वह समस्ताक छह वार शून्य और सरलमार्ग से चार, चार, पाँच, दो बिन्दी, बिन्दी, आठ, दो, पाच, दो एक, दो अर्थात् २१ हजार कोडा कोडी २५ कोटा कोटि, दो कोडा कोडी।

आठ सौ करोड पच्चीस लाख कोडो चालीस कोडी अक प्रमाण होता है। उसको अक सदृष्टि से दें तो २१२५२८००२५४०००००० अक प्रमाण होता है।

प्राणावाय पूर्व द्वादशाग के अन्तर्गत एक पूर्व है जोकि उपर्युक्त अक प्रमाण अक्षरमय है, उसमे वैद्यक विषय विद्यमान है। चरक सुश्रुत वाग्भट्ट को वृद्धत्रय कहते हैं वह वृद्धत्रय ग्रन्थ अथर्ववेद से प्रगट हुआ है, ऐसी वैदिक विद्वानो की मान्यता है। किन्तु यह बात ठीक प्रतीत नही होती क्योंकि अथर्ववेद छोटा है उसमे से वृद्धत्रय जैसे विशाल ग्रन्थ प्रगट नहीं हो सकते। किन्तु भूवलय ग्रन्थ का निर्माण ६४ अक्षरों को विविध रूप भंगो से ९२ अक प्रमाण अक्षरो से हुआ है अत भूवलय से सब भाषायें और सर्व विषय करोड़ो श्लोको में प्रगट होते हैं। इसलिए भूवलय से समस्त वैद्यक विषय स्वतन्त्र रूप से प्रगट होता है। उसका उदाहरण यह है—

श्रीमद् भल्लातकाद्रिवसतिजिनमुनिसूतवादेरसाञ्जम्,
ग्रन्थार्थं लाञ्छनाढ्य घटपुटरचनामायतातीतसुलभ् ।
हेमदुर्वर्णसूत्रागमविधिगणित सर्वलोकोपकारं,
पञ्चास्यं लाजनाग्निभसितगुणाकरं भद्रसूरिः समन्तः ॥

यह वैद्यक विषयक श्लोक ग्रन्थ किसी ग्रन्थ मे उपलब्ध नहीं होता, केवल भूवलय ग्रन्थ में ही मिलता है।

यदि शारदा देवी साक्षात् प्रकट होकर अपने वरद हस्तो से स्वय जिह्वा का संस्कार करें तो उपर्युक्त अको का प्रामाणिक शास्त्र सिद्ध हो सकता है। करपात्र में अर्थात् मुनि आदि सत्पात्रो का आहार औषधादिक दान देनेवाले उत्तम दाताओं को यह प्राणावाय पूर्व शास्त्र मालूम हो जाता है। इस काल तक अर्थात् श्री कुमुदेन्दु आचार्य तक जिसने ज्ञान प्राप्त कर लिया है उनके नाम निर्दिष्ट करेंगे।

दानी श्रेयांस
सुन्दर सेन
नक्षत्रार्या
सोमसेन
महेन्द्र
पुष्यमित्र
सौन्दर
विशाखदत्त
सुमित्र
महाजितनन्दि
बरसेन (धन्य सेन)
धन्यसेन

ब्रह्मदत्त
इन्द्र
पद्मसेन
सुव्रती
सोमसेन
पुनर्वसु
जयदत्त
धन्यसेन
धर्ममित्र
वृषभवर्द्धनदत्त
सुकूल रस
वर्द्धनदत्त

इन सभी राजाओ ने आहार आदि ४ प्रकार के दान को सत्पात्रो को देकर अतिशय पुण्य बंध करके तुष्टि, पुष्टि, श्रद्धा, भक्ति, अलुब्धता, शान्ति तथा अक्रोध इन सात गुणो से युक्त उत्तम दातृपद प्राप्त किया था।३६-५५।

इसी भूवलय के चौथे खड प्राणावाय पूर्व में १८००० फूलो से समस्त आयुर्वेदिक शास्त्रो की रचना इसलिए की गई कि वृक्षो की जड, पत्ते, छिलका तथा फूलों के तोडने से एकेन्द्रिय जीवो का घात होता है। किन्तु महाव्रती मुनिराज एकेन्द्रिय जीवो का भी वध नही करते। ऐसी अवस्था में व्याधिग्रस्त जीवो के रोग निवारणार्थ वैद्यक शास्त्रों की रचना कैसे हो सकती है?

जिन मुनियो ने जो ग्रन्थ रचना की है वह अंग परम्परा का अनुसरण करती हुई की है। अत वैद्यक शास्त्रो का निर्माण करते हुए आचार्यों ने जिन औषधियो के उपयोग की सूचना की है उसमें अहिंसा धर्म की प्रमुखता रखते हुए वस्तुतत्व का निरूपण मात्र किया है। अत उसमें कोई बाधा उपस्थित नही होती।

यदि इस वैद्यक शास्त्र का निषेध किया होता तो १४ पूर्व में प्राणावाय पूर्व को भगवान जिनेन्द्र देव निरूपण ही नहीं करते। इस ग्रन्थ को किसी मनुष्य ने तो लिखा नहीं। यह साक्षात जिनेन्द्र देव की वाणी से ही प्रकट हुआ है। अत इसका स्वरूप जैसा है वैसा लिखने में किसी प्रकार की बाधा नही है। भगवान जिनेन्द्र देव अपनी कल्पना से कुछ नहीं करते, किन्तु वस्तु का जैसा स्वरूप है वैसा ही उन्होने निरूपण किया। अत. इसमें किसी प्रकार की कोई बाधा नही आती आयुर्वेदिक में मनुष्यायुर्वेद, राक्षसायुर्वेद, तथा समस्त जीवायुर्वेद गर्भित है। राक्षसायुर्वेद में मद्य, मास आदि अभक्ष्य पदार्थ मिश्रित है। जिनका सेवन करने वाले राक्षसो को सिद्ध शुद्ध पारा, स्वर्ण तथा लोहादिक भस्मों से तैयारकी गई सिद्धौषधिया लागू नहीं होतीं। क्योकि अशुद्ध परमाणुओं से रचित राक्षसो के अशुद्ध शरीर के लिए अशुद्ध औषधिया लाभदायक होती हैं। मांस, मदिरा, मधु, मल मूत्रादि के द्वारा तैयार की गई औषधिया अशुद्ध होती हैं। और ये अशुद्ध औषधिया अनादिकाल से यथावत् रूप से प्रचलन मे आने के कारण अपने यथार्थ नामानुसार हैं। उनको प्रयोग मे लेना या न लेना बुद्धिमानो का कार्य है।

धर्म मार्ग मे प्रवर्त्तन वृत्ति करनेवाले जीवो को हिंसादि पाचो पापो को त्याग देना चाहिए। अत उनके लिए यह अशुद्ध औषधियाँ उपयुक्त नहीं होती। उनके लिए विशुद्ध रसायन सूक्ष्माति सूक्ष्म प्रमाण अर्थात् सुई के अग्र भाग प्रमाण मात्र भी सिद्धौषधियाँ कुष्ठ, क्षयादि असाध्य रोगो को समूल नष्ट करके अमोघ फल देती हैं तथा वृद्ध मनुष्यो की काया पलट कर तरुण बनाने मे पूर्ण सफल होती हैं इसका विस्तृत विवेचन प्राणावाय पूर्वक नाम चतुर्थ

खंड में किया जायगा। उपर्युक्त चौबीस दातारो ने आहार, औषधि, शास्त्र अभय इन चार प्रकार के दान सत्पात्रो को देकर त्रिकालवर्ती जीवो के कल्याणार्थ लोकोपकारी इस विशुद्ध आयुर्वेदिक शास्त्र को स्थायी रक्खा। उनका यह कार्य अत्यन्त श्लाघनीय है।३६ ५५।

उपर्युक्त प्राणावाय पूर्वक जो अक हैं उतने ही अक प्रमाण एक तोले परिशुद्ध भस्म बनाये हुए पारे में छिद्र हो जाते हैं। छिद्र महित वह पारा परस्पर में पुन नहीं मिलता। इसी पारे मे यदि फलो के रस से मर्दन करके अग्निपुट में पकाया जाय तो वह रत्न के समान प्रतिभाशाली विशुद्ध रसमणि बन जाती है। उस मणि को बज्र खेचरी घुटिका रत्नत्रय औषधि, वसन्त कुसुमाकर इत्यादि अनेक नामो से पुकारते हैं। इन मणियो को पृथक् पृथक् रूप से यदि अपने हाथ में रखले तो आकाशगमन जलगमन इत्यादि अनेक सिद्धिया उपलब्ध हो जाती हैं। यह सब पुष्पो से बन जाता है न कि वृक्षो की छाल आदि एकेन्द्रिय जीवो के घातक पदार्थो से।५६।

विवेचन—आचार्य श्री कहते है कि जिस प्रकार भूवलय ग्रन्थ राज की रचना गणित शास्त्र की पद्धति से की गई है उसी प्रकार संयोग भग से (Permeetaeletion and comlicaciol).

वसन्त कुसुमाकरादि रसो के सयोग से विविध भांति की रासायनिक औषधियां प्राप्त की जा सकती हैं। जब केवल एक ही औषधि में महान गुण विद्यमान है तो सयोग भग विधि से समस्त सिद्धौषधियो को एकत्रित करने पर कितना गुण होगा, सो वर्णनातीत है।

१८ हजार पुष्पायुर्वेद के अनुसार फूल निकलने से पहले वृक्षो की कली तोड़कर उन कलियों का अर्क पृथक्-पृथक् निकाल कर पारे के साथ उस रस में पुट देते थे, तब वह पाद रस मणि तैयार होता था।५७।

उस पुष्पायुर्वेद की औषधि राशियों को कहनेवाला यह भूवलय है।५८।

उस पुष्पायुर्वेद के अनुसार तैयार की गई रस मणि सेवन करने से वीर्य-स्तम्भन होता है, वृद्ध अवस्था यौवन अवस्था में परिणत हो जाती है उसके सेवन से अकाल मृत्यु नही होती, शरीर सुदृढ़ हो जाता है।५८।

इस सुरसरक्षण काव्य मे ऋद्धि, क्षय नाश, प्राण रक्षा, यश, (कान्ति) स्तम्भन, पाचन आदि आठ सूत्रो द्वारा औषधियो का वर्णन है।५६।

उस रस मणि को सेवन करने मात्र से नवीन जन्म के समान नवीन कायाकल्प हो जाता है। तथा उस रस मणि सेवन से आत्मा मे अनेक कलायें प्रगट होती हैं।६०।

इस रसमणि को सबसे प्रथम भरत चक्रवर्ती ने सेवन किया।६१।
इस पृथ्वी के वही पुरुषोत्तम थे।६२।
वे ही सत्य वीर्य शाली थे।६३।
वे सदा शत्रु मित्र को समान समझते थे। ६४।
इस कारण वे साम्राज्य ऐश्वर्य के अधिपति बन गये थे।६५।
वे ही मर्मज्ञ तथा धर्मवीर थे।६६।
वे ही दानवीर थे।६७।
वे ही धर्म श्रोताओ मे प्रमुख थे।६८।
वे ही शूरवीर योद्धा थे।६६।
वे कवियो द्वारा वन्दनीय तथा स्तुत्य (प्रशसनीय) थे।७०।
वे नवीन धर्म प्रिय श्रोता कहलाते थे।७१।
अनेक प्रकार की भक्तियो तथा विनयों से युक्त थे।७२।
वे स्वय-सम्राट कहलाते थे।७३।
वे लावण्य पुरुषोत्तम कहे जाते थे।७४
समस्त पुरुषों में श्रेष्ठ शरीर धारक थे।७५।
वे पावन पुण्डरीक थे।७६।
दान के प्रभाव से नवीन फल प्राप्त करने वाले थे।७७।
इसी पकार योग धारण करने वा राजाला कुणाल था।७८।
ऐश्वर्य मे नारायण के समान थे।७६।
उस औषधि के चबाने से सुभौम चक्रवर्ती के समान तेजस्वी हो जाते हैं।८०।
उग्रता में वे भुजंग के समान थे।८१।
पृथ्वी का अज्ञान दूर करनेवाले थे।८२।

इस तरह भगवान महावीर के समवशरण राजा श्रेणिक था ।८३।

प्राप्त किया श्रेष्ठ मुनि का यह देह यानी इस मुनि का शरीर तप या संयम के द्वारा तपते हुए धूलि से लिप्त हुये इस शरीर की धूलि को अपने शरीर से स्पर्श करने से रोग से जर्जरित हुआ शरीर एक निरोग बनकर कामदेव के समान तथा तरुण युवक के समान बन जाता है ।८४।

अत्यन्त पुराने तथा असाध्य रोग के नाश करने के लिए अत्यन्त उत्तम मीठी राम बाण औषधि से युक्त ऋद्धि धारी मुनि के मुँह की लार तथा झूठन को सेवन करने से तथा थूक सेवन करने से ससारी सम्पूर्ण मानव प्राणी के सर्व-व्याधिया नाश होती हैं। उस मुनि को क्ष्वेल औषधि ऋद्धि कहते हैं।

जिस मुनि के शरीर के पसीना को हमारे शरीर को स्पर्श करने मात्र से पुरानी व्याधियां का उपशम होकर नवीन कांतिमाय सुन्दर काया बन जाती है तथा गर्व के साथ अपने को यह बतलाता है मैं काम देव हूं अहंकार को उत्पन्न करने योग्य शरीर प्राप्त कर देने वाली यह क्ष्वेलोषधि ऋद्धि धारी मुनि के पसीना का ही महत्व है ।८५ ८६।

आदि से लेकर अन्त तक रोग को नाश करनेवाले, श्री जिन मुनि के ऋद्धि के शरीर की एक मल कण के अणु को लेकर अपने शरीर को लगाने मात्र से जो आदि अन्त का रोग नष्ट होता है ऐसे ऋद्धि को विद्वज्जन जल्लौषधि कहते हैं ।८७।

जिन यति के कान, आंख, नाक, दन्त के मल छूने मात्र से शरीर के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं, वह मलौषधि ऋद्धि है ।८८।

वे साधु पुष्पदन्त भगवान को प्राप्त हुए हैं ।८९।

वे पार्श्वद्वय (सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ) को प्राप्त हुए हैं ।९०।

वे गुण की अपेक्षा गणनातीत—अनन्तनाथ को प्राप्त हुए हैं ।९१।

वे समस्त जीवों को ससार ताप से शीतल करनेवाले शीतलनाथ भगवान को प्राप्त हुए हैं ।९२।

समस्त विश्व से पूज्य वासुपूज्य भगवान हैं ।९३।

वे विमलनाथ अनन्तनाथ को प्राप्त हुए हैं ।९४।

धर्मनाथ मल्लिनाथ ये ९ तीर्थंकर अक हैं ।९५।

इसी अ क के मुनि सुव्रतनाथ हैं ।९६।

सात तीर्थंकर अ ग देश में अधिकतर विहार करनेवाले हैं।९७।

वीरनाथ और नेमिनाथ विदेह देश में ।९८।

शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ का कुरुजाङ्गल देश वलय विहार क्षेत्र है ।९९—१००।

समस्त तीर्थंकरों का विहार क्षेत्र आर्यावर्त या [illegible] रहा है। १०१-१०२।

इस प्रकार तीर्थंकरों के विहार का यह (आर्यावर्त) भूवलय है ।१०३।

इस भूवलय में कहा हुआ यह देश सूचक श्लोक (पद्य) है ।१०४।

यह भरत क्षेत्र का वैभव है ।१०५।

यह कुरु देश का अतिशय रूप कुरु है ।१०६।

ये देश सरस हैं तथा पारस, पारा आदि को [illegible] हैं ।१०७।

ये देश महान पुरुषों के उत्पादक हैं तथा महान वैराग्य उत्पन्न कराकर मुक्ति को प्राप्त करानेवाले हैं ।१०८।

यह भूवलय मनुष्य के सौभाग्य को प्राप्त करानेवाला है ।१०९।

जिन ऋषियों की जिह्वा (जीभ) पर आया हुआ कड़वा, नीरस पदार्थ भी मधुर (मीठा) रसमय परिणत हो जाता है, वह मधुस्रावी ऋद्धि है। उनके शरीर का मल भी मधुर हो जाता है ।११०।

जिन ऋषियों का थूक, विष्ठा तथा मूत्र पृथ्वी पर पड़ा हुआ सूख जाता है उस सूखे हुए मल मूत्र की वायु के छूने मात्र से अन्य जीवों के रोग दूर हो जाते हैं, यह विडौषधि ऋद्धि है।१११।

जिन ऋषियो के शरीर को छूकर बहने वाली वायु के स्पर्श मात्र से समस्त मानव पशु पक्षियों के समस्त रोग दूर हो जाते हैं, तथा कालकूट विष का प्रभाव भी नष्ट हो जाता है वह जलौषधि है ।११२।

जिन ऋषियो के मुख से निकली हुई लार के द्वारा रोगियों का विष दूर

हो जावे वह आस्यविष नामक ऋद्धि है ।११३।

जिन मुनियो की दृष्टि (देखने) द्वारा दूसरो का विष दूर हो जावे वह दृष्टि विष ऋद्धि है ।१४४।

ऐसे ऋद्धिधारक मुनि जिस बनमे रहते हैं उनके प्रभाव से उस बनकी वनस्पतियों (वृक्ष, बेल, पौधे आदि) के फल फूल, पत्ते, जड, छाल आदि भी महान गुणकारी एव रोगनाशक हो जाते हैं ।११५।

उन वनस्पतियो के स्पर्श हो जाने से विष भी अमृत हो जाता है ।११६।

श्रीजिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार उन वृक्षो के पत्र मद (नशा मूर्छा) दूर करने वाले होते हैं ।११७।

ऋद्धियो के उपयोग मे आने वाले सरल वृक्ष ।११८।

तिरुड वृक्ष मादल (बिजौरा) वृक्ष की कली के अर्क से दातो का मल दूर हो जाता है ।११९-१२२।

इनके फूलों को कुण्डल की तरह कान में लगाने से कान बज्र समान दृढ बन जाते हैं ।१२३।

उन पुष्पो को सूघने से नाक के रोग नष्ट हो जाते हैं ।१२४।

उन पुष्पो में अनेक गुण हैं ।१२५।

इन समस्त पुष्पो को जानना योग्य है ।१२६।

सूर्य के उदय होने पर खिलने वाला कमल उदय पद्म है ।१२७।

इत्यादिक पुष्प पद्मावती देवी को अणिमा है ।१२८।

राजा जिनदत्त इन पुष्पो को पद्मावती देवी के सामने चढाता था ।१२९।

राजा जिनदत्त उन पुष्पो को पद्मावती देवी के शिर पर विराजमान भगवान पार्श्वनाथ के चरणो पर चढाता था । भगवान पार्श्वनाथ के चरणो के तथा पद्मावती देवी के शिर के स्पर्श से वे पुष्प प्रभावशाली हो जाते थे । उन पुष्पों के रस से श्री देवेन्द्र यति ने महान चमत्कार दिखाया तथा वह रस देवेन्द्र यति ने राजा जिनदत्त को दिया । राजा जिनदत्त ने उस रस से अनुपम फल प्राप्त किया । उस रस को पैरो के तलुओ मे लगाने से योजनो तक शीघ्र चले जाने की शक्ति आ जाती थी । इसी कारण इसका नाम पाद रस ऋद्धि है । इसका नाम प्राणावाय रस भी है । इसको विद्वान जानते हैं । यह त्यागियो के आश्रम से प्रगट हुआ है ।१३०-१३८।

इस प्रकार १८ हजार श्लोकों द्वारा इस भूवलय में १८ हजार पुष्पों के प्रभाव को प्रगट करनेवाले पुष्पायुर्वेद की रचना हुई है ।१३९।

अठारह हजार जाति के उत्तम फूलों से निचोड कर निकले हुए पुष्प रसको पारद के पुष्पो से मर्दन करके पुट में रखकर नवीन रस की घुटिका को बाधकर उस पुट को पकाने के बाद रस सिद्धि तैयार होती है । तब यही रसायन नवीन कल्पसूत्र वैद्याग अर्थात् आयुर्वेद कहलाता है ।१४०-१४१।

यह आयुर्वेद श्री समन्त भद्राचार्य ऋषि द्वारा वशीभूत किया गया प्राणावाय पूर्व के द्वारा निकालकर विरचित किया हुआ असदृश्य काव्य है । और यह काव्य चरकादिक की समझ मे न आनेवाला है । अर्थात् यह असदृश्य काव्य है । इसको श्रवण वैद्यागम कहते हैं । यह श्रमण वैद्यागम अत्यन्त ललित आयुर्वेद है और यह श्रवणो के द्वारा निर्माण होने से अत्यन्त रुचिकर है तथा ससार के प्राणिमात्र का उपकारी और हित कारक है । इसलिए भव्य जीवों का रुचि पूर्वक पढकर के इस वैद्याग अर्थात् कथित आयुर्वेद कृति के अनुसार इस औषधि को अगर जीव ग्रहण करेगे तो इह पर उभय लोक सुखदायक आत्म हित साधन करने योग्य निरोग शरीर बन जाता है ।१४२-१४३।

इसका स्पष्टी करण श्री कुमुदेंदु आचार्य ने स्वय करते हुए लिखा है कि इस आयुर्वेद का नाम अहिंसा आयुर्वेद है और इस अहिंसा पुष्पायुर्वेद की परिपाटी ऋषियो तथा श्री तीर्थंकर भगवानो के द्वारा निर्मित होकर परम्परा से चलती आयी है । इस चौदहवे अध्याय में पुष्पायुर्वेद विधि को चरकादि ऋषि ने समझने वाले विधि को जिन दत्त राजा को श्री देवेन्द्रयति और अमोघ वर्ष राजा को श्री समन्त आचार्य ने सात्रन रूप मे बताये गये पुष्पायुर्वेद विधि का इस अध्याय मे निरूपण किया गया है ।

अहिंसा मय आयुर्वेद के निर्माण कर्ता पुरुषो के उत्पत्ति स्थान तथा उनके नगरो के नाम—

ऋषभनाथ, अजितनाथ, अनन्तनाथ ।१४४।

अभिनन्दन इन चारो का जन्म स्थान अयोध्या नगरो है ।१४५-१४६।

शम्भवनाथ का श्रावस्ती है ।१४७।

सुमतिनाथ का विनिता पुरी है ।१४८।

श्री पद्म प्रभ भगवान का कौशाम्बो नगरी है ।१४९-१५०।

श्री भगवान पार्श्वनाथ तथा शुपार्श्वनाथ की जन्म भूमि बाराणसी है ।१५१-१५२।

श्री चन्द्रप्रभ भगवान की जन्म भूमि चन्द्रपुरी है ।१५३।

श्री पुष्पदन्त भगवान की जन्म भूमि काकदी पुरी है १५४-१५५।

शीतलनाथ भगवान की जन्म भूमि भद्रिला पुरी है ।१५६।

श्रेयासनाथ भगवान की जन्म भूमि सिंहपुरी है ।१५७।

श्री वासुपूजय भगवान की जन्म भूमि चम्पापुरी है ।१५८।

श्री विमलनाथ तीर्थंकर की जन्म नगरी कौशलपुर है ।१५९।

श्री धर्मनाथ भगवान की रत्नपुरी है ।१६०।

श्री शान्ति, कुंथुनाथ, और अरहनाथ की जन्म नगरी हस्तिनापुर है । ।१६१-१६२।

श्री मल्लिनाथ नमिनाथ को नगरी मिथिलापुरी है ।१६३।

श्री मुनिसुव्रत तीर्थंकर की जन्म नगरी कुशाग्र पुरो है ।१६४।

श्री नेमिनाथ तीर्थंकर की जन्म नगरी द्वारावती है ।१६५।

श्री भगवान महावोर तीर्थंकर की जन्म नगरी कुण्डल पुर है ।१६६।

इन तर्थंकरो का जहां-जहां जन्म है उनका जन्म ही यह भूवलय ग्रन्थ है ।१६७।

यह भूवलय ग्रन्थ सम्पूर्ण विश्व के प्राणी मात्र का हित करने वाला है । यह भूवलय सम्पूर्ण सयम तप शक्ति त्याग इत्यादि परिश्रम से चार घातिया कर्मों के नष्ट होने के बाद श्री तीर्थंकर परम देवके मुखारबिंद से निकला हुआ है ।इस अहिंसामय भूवलय के अन्तर्गत निकले हुए अठारह हजार श्लोक पुष्पायुर्वेद के हैं । और यह आयुर्वेद सम्पूर्ण जीव की रक्षा करने के लिए दया सहित है ।

इस तरह अनादि काल की परम्परा से चले आये हुए अहिंसामय आयुर्वेद में दुष्टो ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए इस आयुर्वेद में जीव हिंसा की पुष्टि करके रचना किया है । अत इन खलो के काव्य को धिक्कार है ।१६८।

अत्यन्त सुन्दर इस आयुर्वेद शब्द का अर्थ आयु तथा शरीर मन वचन इन तीनो बलो को बढाने वाला है । और यह आयुर्वेद शिव तथा क्रम बद्ध श्री चौबीस भगवान की परिपाटी से निकलकर मनके द्वारा उत्पन्न होकर आया हुआ प्राणवाय नामक शौलगुण है । शील का अर्थ जीव है । यह जीव हमेशा अपने स्वरूप से भिन्न होकर किसी पर पदार्थ रूप नही होता । जीव के अन्दर आने वाले तथा जीव को घात करने वाले अशुद्ध परमाणुओ को दूर कर जीव के स्वरूप की रक्षा करना या अन्य आत्मघात करने वाले अशुभ परिणति से बचना इस शील अर्थात् जीवात्मा का स्वरूप ही शील है ।

इस श्लोक मे प्राणावाय शील का अर्थ जीव दया या जीव की रक्षा कर दिया है । जिस आयुर्वेद शास्त्र में जीव रक्षा की विधि न हो या जीव हिंसा की पुष्टि जिसमें हो वह आयुर्वेद शास्त्र जीव की रक्षा किस प्रकार कर सकता है ? आयुर्वेद शास्त्र का अर्थ सम्पूर्ण प्राणी पर दया करना है यह दया धर्म मानव के द्वारा ही पाला जाता है । इसलिए इस मानव का कर्तव्य सम्पूर्ण प्राणी मात्र पर दया करना बतला दिया है । क्या प्रत्येक मानव को दया धर्म का पालन नही करना चाहिए ? अवश्य करना चाहिए । और नोमाक अर्थात् नौ अक ही जीव दया है और यही जीवका स्वरूप है ।१६९।

जिस आयुर्वेद में एक जीव को मार कर दूसरे जीव की रक्षा करने वाले विधान का प्रतिपादन किया गया है तथा जिसमें चरक ऋषि के आयुर्वेद अर्थात् वैद्यागम को खण्ड कर अहिंसा आयुर्वेद का प्रति पादन किया है वह अहिंसात्मक आयुर्वेद है ।१७०।

प्राणावाय से स्थावरादि जीवो की हिंसा करने से ही आयुर्वेद की औषधि तैयार होती है अन्यथा नही क्योकि जैन दर्शन में श्री भगवान महावीर ने सम्पूर्ण प्राणी मात्र की रक्षा करना प्राणो मात्र का कर्तव्य बतलाया है । परन्तु आयुर्वेद की रचना प्राणावाय के बिना अर्थात् प्राणी के वायु को घात किये बिना इस प्राणावाय वैद्यागम की दवाई तैयार नहीं होती । इसलिए

इस प्राणावाय आयुर्वेद को औषधि तैयार करने के लिए जोवरक्षा करना बहुत अनिवार्य है। क्योंकि इसमें पाप का बंध नहो होता। परन्तु अपनो कल्पना के द्वारा कल्पित हिंसामय ग्रन्थ को रचना करके क्रूर राक्षस के समान प्रकृति के मनुष्यों ने इस ग्रन्थ की रचना करके प्रचलित किया है।

इस तरह हिंसामय ग्रन्थ की रचना करने का कारण यह हुआ कि। भगवान महावीर स्वामी को अहिंसामय वाणी को तथा हिंसा और अहिंसा के भाव को ठीक न समझने के कारण तथा इनकी भावना पहले से ही हिंसामय होने के समान तीव्र चढी हुई थी। इसलिए इन दुष्ट तथा क्रूर परिणाम के द्वारा विरचित इस पाप तथा हिंसामय आयुर्वेद ग्रन्थ को धिकार हो, ऐसा श्री दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदेन्दु कहते हैं।१७१।

सबसे पहले किसी भी मत का आगम, शास्त्र, आयुर्वेद या प्राणावाय इत्यादि जो भी शास्त्र हो उन सभी ग्रन्थो मे मबसे पहले जीव दया अर्थात् सम्पूर्ण जीवो के प्रति करुणा भाव अवश्य होना चाहिए क्योंकि जहां जीवो के प्रति दया या करुणा भावना निरूपण न हो वह कभी भी आयुर्वेद वैद्यागम नहीं कहा जा सकता। इसलिए मदा जीवो की रक्षा करने की भावना रखना ही तप है और इसो के द्वारा रस ऋद्धि अर्थात् औषधि ऋद्धि की प्राप्नि होती है।१७२-१७३।

विशेषार्थ—इस भगवान महावीर स्वामी के मुख मे निकली हुई दिव्य ध्वनि के प्राणावाय पूर्व से निकलने के कारण इस भूवलय नामक ग्रन्थ मे किसी जीव की हिंसा नही है। महावीर भगवान मे लेकर श्री कुमुदेन्दु आचार्य तक जितने भी यहा व्रतधारी दिगम्बर मुनि हो गये हैं वे सभो अनादि कालीन भगवान वीतराग की परम्परा से भगवान महावीर स्वामी के अनुशासन के अनुसार थे और भगवान महावीर से लेकर कुमुदेन्दु आचार्य तक जितने भी व्रती दिगम्बर मुनि थे वे सभी भगवान महावीर के अनुयायी थे। इसीलिए १८००० हजार जाति के पुष्पो मे वैद्यक ग्रन्थ का निर्माण किया गया था। यहां पर यह प्रश्न उठता है कि वृक्ष की जड़, पत्ता और छाल इत्यादि न लेकर केवल पुष्प को ही क्यो लिया ?

उत्तर—रसायन औषधियां केवल पुष्पो से ही तैयार होती हैं। इसलिए वृक्ष की जड आदि को यहां ग्रहण नहीं किया गया है। रसायन औषधि का विधान केवल पुष्पो से ही होता है। इसलिए केवल पुष्पों का ही यहां वर्णन किया गया है।

प्राणावायु के बारे में कहा भी है कि—

"प्राणापानस्समानस्य दानव्यानस्समानग:"

इत्यादि दश वायु की सहायता लेनी पडती है। किन्तु जिनेन्द्र भगवान की वाणी मे प्राण आदि वायु की जरूरत नही पडती अनेक वस्तुओं से मिश्रित होने पर भी उनकी वाणी का अर्थ स्पष्ट रीति से प्रतिपादित होता है।

इस प्रकार जो औषधि ऋद्धि है वह ऋद्धि जिस भव्य मानव को प्राप्त हुई है, उनको स्पर्श करने मात्र से परम्परा से आत्मा के साथ लगा हुआ कर्म वश तत्काल नष्ट होता है।१७३।

इस ऋद्धि को प्राप्त किये हुए मानव मे श्रेष्ठ १-२-३ ।१७४।

४-५-६-८-६ ।१७५।

१०-११-१२।१७६।

१३-१४-१६-२१ । ये राजवंश तथा इक्ष्वाकु वंश के थे। ७७-१७६।

श्री पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ उग्र वंश के हैं। धर्म शान्ति और कुंथुनाथ अरहनाथ, ये कुरु वंश के हैं।१८०-१८१-१८२।

बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतनाथ हरिवंश में हुए हैं। श्री वर्द्धमान नाथ वंश के हैं।१८३ से १८६।

श्री नेमिनाथ हरिवंश के हैं।१८७।

ये पाचो वंश हरिवंश (इक्ष्वाकु वंश, कुरुवंश, हरिवंश, उग्रवंश, और नाथ वंश) भारत के प्रमुख राजवंश हैं, इनमे धर्म परम्परा चली आई है और इस वंश को दूसरो के ऊपर अच्छा प्रभाव रहा है।१८८ से १६१।

भगवान आदिनाथ से लेकर भगवान महावीर तक चले आये हुए हुण्डाव-सर्पिणी काल में यह भूवलय ग्रन्थ कार्य कारण रूप है। यानी—तीर्थंकर की वाणी कारण रूप और भूवलय कार्य रूप है।१६२ से १६४।

यह भूवलय ग्रन्थ किसी अल्पज्ञ का कल्पित नही है, बल्कि सर्वज्ञ तीर्थंकरो की दिव्य ध्वनि से इसका प्रादुर्भाव हुआ है। भगवान महावीर के

अनन्तर श्री समन्तभद्र, पूज्य पाद आदि आचार्यों की गुरु परम्परा द्वारा भूवलय ग्रन्थ का समस्त विषय श्री कुमुदेन्दु आचार्य तक चला आया है। ये समस्त आचार्य भगवान महावीर के अनुयायी थे। इन आचार्यों ने ग्रन्थ रचना किसी ख्याति, लाभ, पूजा आदि की भावना से नही की। इनका उद्देश्य स्व-पर-कल्याण तथा आध्यात्मिक विकास एव आत्मा की सिद्धि ही रहा है ।१९५।

श्री समन्तभद्र, श्री पूज्यपाद आदि आचार्यों ने जो लोक कल्याण के लिए रस-सिद्धि आदि का विधान अपने ग्रन्थो मे किया, चरक आदि ने उनका आदर, आभार न मानते हुए अपनी ख्याति के लिए उन आचार्यो के ग्रन्थो का अनुकरण करके ग्रन्थ रचना की है ।१९६।

१८ हजार पुष्पो का रस निकालकर उसको पुट देवे फिर अन्य बर्तन में उसे रखकर उसका मुख बन्द कर देवे फिर उसे अग्नि पर चढावे, तब वह नवीन रस सिद्ध होता है। इस रस सिद्धि के अनन्तर ही श्री समन्तभद्र, पूज्यपाद आचार्य ने वैद्यागम कल्प सूत्र की रचना की है। श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि श्री समन्तभद्र आचार्य ने प्राणावाय द्वारा जो वैद्यागम कल्प सूत्र की रचना की थी वह अदृश्य होने के कारण रस सिद्धि विधान चरक आदि को प्राप्त नही हुआ तब उन चरक आदि परम्परागत रस विज्ञान को त्यागकर कल्पित रचना की तथा आयुर्वेद ग्रन्थ रचना चरक आदि से ही प्रारम्भ हुआ ऐसी प्रसिद्ध कर दी और उस रसायन मे जीव हिसा का विधान किया। ऐसे हिसा विधान करने वालो को आचार्य धिक्कारते हैं प्राणावाय यानी प्राणियो की प्राण रक्षा रूप आयुर्वेद तीर्थंकरो की वाणी से प्रगट हुआ है। चरक आदि ने त्रस जीवों की हिसा द्वारा रस औषधि विधान किया है उसे प्राणियो की प्राण रक्षा रूप प्राणावाय या आयुर्वेद कैसे माना जा सकता है ।१९७।

उन वृक्षो की कलियो (फूल की अविकसित अवस्था) को तोड कर अथवा वृक्ष से गिरी हुई कलियों को एकत्र करके जल में डालकर उन्हें खिलाते हैं, फिर उन कलियों का रस निकालकर उस रस से अतिशय प्रभावशाली रस औषधि तैयार होती है, जोकि इन्द्र को भी दुर्लभ है। गृहस्थ स्थावर जीव हिंसा का त्यागी नहीं है, अत वह वृक्षो से फूल की कलियो को तोडकर रसायन तैयार कर सकता है। दो इन्द्रिय आदि त्रस जीवो का सकल्प से घात करना गृहस्थ के लिए त्याज्य हिंसा है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है ।१९८।

उस रसायन की स्वल्पमात्रा भी सेवन करने से मनुष्य के महान तथा जीर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। स्वस्थ शरीर द्वारा मनुष्य तपश्चरण आदि करके स्वर्गादि के सांसारिक सुख प्राप्त कर लेता है और अन्त में अपने स्वस्थ शरीर द्वारा कर्म-क्षय करके मोक्ष प्राप्त कर लिया करता है ।१९९।

ऐसे प्रभावशाली जिनेन्द्र द्वारा उपदिष्ट आयुर्वेद प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त करना चाहिए जिससे वह स्वपर-कल्याण करके मनुष्य इस लोक परलोक मे सुख प्राप्त कर सके। आयुर्वेद समस्त शारीरिक दोषो को नष्ट करके औषधियो के गुणो से शारीरिक बल आदि गुण प्रगट करने वाला है ऐसे जयशील आयुर्वेद को सबसे प्रथम कर्म भूमि के प्रारम्भ में राजा नाभि राय के पुत्र भगवान ऋषभनाथ ने अपने पुत्रों को पढाया था ।२०० से २०२।

प्राणानुवाद पूर्व के रूप में भगवान आदिनाथ के बाद क्रमशः राजा जिन शत्रु के पुत्र भगवान अजितनाथ ने, राजा जितारि के पुत्र भगवान शम्भव नाथ ने, राजा सवर के तनय भगवान अभिनन्दन ने, राजा मेघप्रभ के पुत्र भगवान सुमतिनाथ ने, नृपतिधरण के पुत्र श्री पद्मप्रभ तीर्थंकर ने, सुप्रतिष्ठ राजा के पुत्र श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी ने, राजा महासेन के पुत्र भगवान चन्द्रप्रभ ने, सुग्रीव राजा के पुत्र भगवान पुष्पदन्त ने, दृढरथ राजा के पुत्र श्री शीतलनाथ तीर्थंकर ने, विष्णुनरेन्द्र के पुत्र भगवान श्रेयांसनाथ ने, वसुपूज्य राजा के पुत्र भगवान वासु पूज्य ने, राजा कृतवर्मा के पुत्र भगवान विमलनाथ ने, श्री सिहसेन के पुत्र भगवान अनन्तनाथ ने, भानु राजा के आत्मज श्री धर्मनाथ तीर्थंकर ने राजा विश्वसेन के पुत्र भगवान शान्तिनाथ ने, सूर्यसेन राजा के पुत्र भगवान कुन्थुनाथ ने, राजा सुदर्शन के पुत्र भगवान अरनाथ ने, राजा कुम्भ के पुत्र भगवान मल्लिनाथ ने, राजा सुमित्र के पुत्र श्री मुनि सुव्रत नाथ तीर्थंकर ने, विजय नरेन्द्र के पुत्र भगवान नमिनाथ ने, रजा समुद्र विजय के पुत्र भगवान नेमिनाथ ने, श्री अश्वसेन राजा के पुत्र भगवान पार्श्वनाथ ने और राजा सिद्धार्थ के पुत्र भगवान महावीर ने अर्हन्त पद पाकर उसी आयुर्वेद का उपदेश समवशरण द्वारा भूवलय (भूमण्डल) में अपनी दिव्यध्वनि द्वारा दिया इस प्रकार इसको पितृ कुल भूवलय कहते हैं ।२०३ से २२० तक।

पितृकुल परम्परा से चले आये प्राणावाय आयुर्वेद से गर्भित भूवलय का स्वाध्याय करनेवाले व्यक्ति अपना शरीर निरोग करके परमार्थ की सिद्धि कर

लेते हैं। कर्म अहिंसा द्वारा सम्पन्न किये हुए रस का शरीर पर लेप करने से शरीर लोहे के समान दृढ हो जाता है। यदि उस रसमणि का लोहे से स्पर्श किया जावे तो लोहा सुवर्ण बन जाता है। श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि रसमणि के सिद्ध हो जाने के समान आध्यात्मिक सिद्धि हो जाने पर आत्मा अजर-अमर बन जाता है।२२१।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि 'इसलिए अज्ञानी लोगों ने जो जीवों की हिंसा द्वारा औषधि तैयार करने का आयुर्वेद बताया है उसको त्यागकर अज्ञान का परिहार करना चाहिए।२२२।

पाप और पुज्य का विवेचन अच्छी तरह जानकर हिंसामय पाप मार्ग का त्याग करके अर्हन्त भगवान द्वारा उपदिष्ट भूवलय के अनुसार अहिंसा मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।२२३।

सत्यदेव गुरु शास्त्र ही इस जगत में शरण हैं ऐसी अटल श्रद्धा के साथ यदि आयुर्वेद को सीखना चाहोगे तो हम तुमको शीघ्र पुष्प आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करा देंगे और तुम्हे उस आयुर्वेद द्वारा नवीन जन्म प्राप्त के समान कर देंगे।२२५।

श्री पूच्य पाद आचार्य कहते हैं कि भारत देश की जनता को अहिंसा मय पुष्पायुर्वेद सुनने का सौभाग्य मिला और मुझे जनता को आयुर्वेद सुनाने का सौभाग्य पाप्त हुआ है।२२६-२२७।

इस प्रकार जिन २४ तीर्थंकरो को पितृपरम्परा से आयुर्वेद चला आया है उन तीर्थङ्करो की मातृ परम्परा को अब बतलाते हैं। भगवान ऋषभनाथ की माता मरुदेवी, अजितनाथ की माता विजया, शम्भवनाथ की माता सुषेणा, अभिनन्दन की माता सिद्धार्था, सुमतिनाथ की माता पृथिवी, चन्द्रप्रभ की माता लक्ष्मणा, पुष्पदन्त की माता रामा, शीतलनाथ की माता नन्दा, श्रेयासनाथ की माता वेणुदेवी, वासुपूज्य की माता विजया, विमलनाथ की माता जयश्यामा, अनन्तनाथ की माता सर्वयशा, धर्मनाथ की माता सुव्रत, शातिनाथ की माता ऐरा, कुन्थुनाथ की माता लक्ष्मीमती (श्रीमती), अरहन्तनाथ की माता मित्रा, मल्लिनाथ की माता प्रभावती, मुनिसुव्रतनाथ की माता पद्मा, नमिनाथ की माता वप्रिला, नेमिनाथ की माता शिवादेवी, पार्श्वनाथ की माता वर्मिला (वामा) और भगवान महावीर की माता प्रियकारिणी है।२४७।

श्री पूज्यपाद आचार्य ने आयुर्वेदिक ग्रन्थ कल्याणकारक द्वारा सिद्ध रसायन को काव्य निबद्ध किया, उसी को मैंने (श्री कुमुदेन्दु ने) भूवलय के रूप में अक निबद्ध करके रोगमुक्ति का द्वार खोल दिया।२४८।

यह सिद्ध रस काव्य मगलमय रस को दिलानेवाला है। निसन्देह यह भूवलय अर्हन्त भगवान का उपदिष्ट आगम है, इसको सुनो और हिंसा मार्ग (जीव हिंसा से औषध निर्माण) को त्याग दो।२४९।२५०।

मन वचन काय की शुद्धि पूर्वक भगवान के उपदिष्ट पुष्प आयुर्वेद को १८ हजार श्लोकों मे रचना करके भूवलय में गर्भित किया है। १८००० में से तीन शून्यो को हटाकर शेष रहे '१८' (१+८=९) को नवमाक में लाने पर उसे मन वचन काय रूप तीन के साथ गुणा करने पर (९×३ २७) २७ अक प्रमाण यह भूवलय ग्रन्थ है।२५१।

२७ अको मे गर्भित इस भूवलय ग्रन्थ को मैं मनवचन काय की त्रिकरण शुद्धि पूर्वक भक्ति से नमस्कार करता हू। चिरकालीन परम्परा से से चले आये हुए इस भूवलय ग्रन्थ को शुद्ध मन से बार-बार नमस्कार करता हू।२५२।

कितने आश्चर्य की बात है कि चरक ऋषि प्रणीत हिंसामय आयुर्वेद का बुद्धिमान राजा अमोघ वर्ष की राजसभा में भगवान जिनेन्द्र द्वारा उपदिष्ट अहिसामय आयुर्वेद द्वारा परिहार करा दिया।२५३।

शिवपार्वतीश गणित द्वारा कहा गया वैद्य भूमिका विवरण तथा उसका समन्वय का अन्तर का एक, नौ अक तथा तीन, पाच एक (३-५-१) अक्षर नाम का यह भूवलय ग्रन्थ है।

जैसे नौ ९-छोटे अक ३+५+१=९ पुन. १०२६ आनेवाली अंक विद्या यह 'लु' अक्षर श्री सिद्धि भगवान द्वारा चढकर प्राप्त किया हुआ चौदह गुण स्थान नामक अरहन्त भगवान की परम्परा से चला आया हुआ 'लु' शब्द है।२५४-२५५।

समस्त 'लु' अक्षराक १०, २०६+समस्त अक्षराक १५, ३९०+समस्त अन्तरान्तर १, ८२७=२७, ४२३ अथवा अ–लु २, ७९, ७११+'लु'

२७, ४२३=३०, ७, ९३४

इति चौदहवां '

43	1	4	4	43	1	1	1	45	1	45	1	1	1	1	59	59	1	56	1	55	1	22	4	4	51	45
42	42	42	43	47	53	52	4	1	1	53	43	54	43	1	1	42	28	54	1	42	47	59	30	16	13	1
24	1	54	1	8	7	13	7	3	4	1	56	1	47	54	1	28	13	56	3	1	1	3	30	18	1	4
		106			107		108																			
42	1	47	51	54	1	54	35	58	54	3	7	1	16	54	1	18	47	42	52	1	53	1	56	47	56	9
											110															
43	1	1	1	53	1	54	28	54	60	54	48	45	54	53	7	1	56	54	45	43	47	1	1	60	51	1
								109					111		112			113								
52	43	56	16	53	1	7	1	48	1	58	1	1	16	54	59	7	1	3	7	1	53	52	7	7	45	1
																			114							
43	1	57	1	56	55	56	7	43	7	48	56	13	1	13	42	52	54	13	53	1	7	54	1	7	56	54
																					115		116			
1	3	57	1	1	16	30	3	4	59	45	1	56	22	1	1	1	48	56	55	54	1	53	59	18	1	1
45	4	54	53	53	4	30	56	47	4	60	1	45	48	52	46	1	1	1	1	45	1	56	54	35	30	9
56	54	1	7	45	54	1	43	47	1	42	4	52	3	45	4	56	4	54	4	4	3	1	54	16	48	45
1	42	30	47	43	47	1	1	1	55	1	43	4	30	1	47	1	56	56	41	53	5	1	45	1	40	1
												93														
1	4	43	1	1	53	52	43	46	54	59	31	1	54	30	1	57	4	40	53	30	28	1	42	1	1	1
									94				95													
55	1	1	53	4	7	54	1	33	59	1	47	57	1	47	47	6	46	3	54	52	45	1	58	45	54	1
					104																					
54	30	54	55	54	57	48	54	1	1	56	1	54	(1)	1	4	55	1	1	1	7	30	7	1	56	60	54
		103					105																			
47	17	1	1	7	48	1	45	53	60	3	54	1	45	47	53	1	54	45	1	1	45	47	4	4	4	56
28	56	56	38	1	47	1	54	1	1	28	1	46	45	7	1	61	45	53	55	1	1	56	45	56	3	1
54	1	38	54	1	30	43	51	16	59	4	13	2	43	1	43	60	4	7	1	57	24	7	1	7	42	1
45	4	1	51	48	16	4	30	24	7	38	47	16	47	4	45	1	46	52	7	42	52	56	47	1	59	1
1	45	3	52	16	16	56	1	1	53	59	1	1	1	54	18	55	54	46	1	54	3	4	47	56	45	56
					99																					
1	60	4	56	13	1	47	30	13	3	56	60	1	1	45	4	24	16	42	6	53	3	1	1	1	53	4
																					117					
4	39	1	1	47	1	1	38	42	1	1	47	56	1	13	48	4	60	42	3	55	45	47	30	1	47	1
54	47	16	4	59	53	54	1	43	55	1	57	43	22	4	59	52	45	54	55	35	9	3	47	1	30	1
102						101																				
4	53	35	1	1	1	48	3	54	28	1	54	45	56	1	18	4	6	16	16	37	56	4	59	43	45	7
			100																							
4	1	52	47	45	1	54	1	42	56	1	1	18	47	56	54	47	7	43	1	1	56	59	1	1	28	45
																	95									
4	52	54	13	30	3	30	42	42	52	47	45	1	1	48	4	54	7	46	47	1	4	53	3	4	4	47
1	7	18	47	53	47	1	17	42	1	1	52	47	16	47	1	59	4	55	60	42	4	53	56	43	1	54
													98				96									
45	48	1	54	1	30	45	3	53	45	16	1	13	42	54	4	56	55	4	3	42	3	30	47	45	1	1
										97																

जैन सिद्धान्त श्री

भूवलय श्रुतावतार

7	54	24	54	★ 4	54	16	30	3	33	4	1	30	★★ 53	28	43	4	56	45	33	4	22	★★ 42	60	1	1	18
1	53	4	28	1	47	13	48	60	45	40	52	45	47	4	59	1	1	1	45	60	1	1	45	42	48	13
52	42	3	58	1	22	1	47	44	1	1	1	1	54	4	54	44	1	1	4	54	13	1	1	52	59	45
16 125	28	54	40	45	54	1	7 124	1	59	45	52 126	1	52	1	59	54	54	59	1	56	58	54	4	1	1	54
47	16	1	1	1	13	54	59	30	24	1	33	54	34	1	52 128	1	1	30	1	4	24	47	54	16	1	4
52 122	53	30	43	1	43	4	1	1	13 38	13	4 127	78	56	1	53	30	30 41	45	43	52 130	4	1	8	56	13	52 129
52	24	1	30	1	45	13	45	1	24	47	47	1	56	56	54	4	1	7	1	56	59	4	1	1	4	1
43	54	1	45	1	22	4	56	1	7	1	54	1	1	1	42	30	53	4	1	54 131	55	52	54	45	54	54
1	40	1	30	1	59	1	59	16 123	45	1	54	54	7	1	1	16 37	45	54	1	9	52 132	54	1	3	52	45
7	4	47	18	★ 4	1	51	7	56	55	4	59	7	★★ 43	1	1	52	1	1	54	3 136	3	★ 1	54	53	48	7
56	1	4 121	52	54	1	30	4	54	1	1	45	3	30	1	45	1	55	1	56	45	28	34	1	4	60	56
45	59 32	1	1	47	1	43	30	13	28	56	59	1	6	53	1	52	1	1	1	47	1 133	57	54	1	54	46
16	54	1	1	47	1	4	1	7	1	1	48	1	54	1	47	3	6	60	1	1	4	1	52	1	1	54
1	47	31	18	53	45	59	45	54	53	57	3	60	(1)	52	43	43	57	45	53	43	59	7	56	24	1	24
1	54	59	1	3	4	4	16	48	4	3	56	1	42	7	7	4	1	4	45	4 134	56	1 135	42	48	1	4
1	1	54	51	33	55	50	13	53	57	42	16	45	4	47	56	47	47	7	46	1	45	18	54	30	59	46
1	1	1	1	55	1	1	3	46	3	52 118	3	55	1	52	4	1	7	59	53	1	59	1	44	4	45	50
46	58	54	16	54	30	59	7	42	54	4	54	1	36 6	30	3	56	35	4	54	1	56	42	13	4	1	1
1	1	1	54	★★ 43	1	16	3	1	1	54	54	56	★ 4	45	55	59	3	7	24	59	1	★ 1	24	44	1	1
45	53	1	54	59	47	54	45	56	1	1	1	7	1	1	4	42	57	46	1	43	59	60	4 138	54	52	139 59
56	60	1	1	47	1	1	1	1	45	55	59	45	56	40	3	45 119	59	54	27	16	5	52	1	1	3	1
1	57	1	1	45	43	56	54	4	55	7	1	1	16	56	1	1	1	46	54	47	3	30	54	31	53	1
6	53	60	1	7	45 120	60	45	52	47	54	42	28	7	40	53	30	16	43	1	43	3	1	47	42	47	1
4	1	30	54	1	4	1	1	7	1	47	52	47	3	6	24	47	1	46	53	59	30	1	1	24 140	47	1 137
40	47	57	54	30	57	45	45	42	4	4	16	56	56	1	1	1	1	1	1	47	59	52	1	1	54	45
4	16	3	3	1	1	47	1	1	56	45	1	3	57	53	1	3	59	1	1	1	1	54	52	1	4	54
53	43	56	53	58	1	54	54	57	7	56	56	3	1	47	1	18	7	54	54	53	7	35	56	59	1	43

2-1-7	45	33	6	7	★ 1	13	37	4	30	54	40	54	4	★ 1	1	55	56	59	56	6	55	1	16	60	1	54	51
	24	42	59	7	1	35	59	47	1 159	7	1	43	54	30	1	7	7 163	7	37	1	53	1	4	57	4	1	9
जैन सिद्धान्त श्री	4 160	16	54	28	1	4	3	45	30	45	48	24	4	45	42	47	48	60	56	6	48	54	1	54	28	4	1
भूवलय श्रुतावतार	56	1	59	45	42	57	47	1	43	3	60	4	1	7	1	1	3	18 164	42	16 165	54	56	16 166	47	33	54	9
	52	1	7	7	1	1	54	43	1	1 161	13	55	4	56	47	1	30	54	30	4	7	30	1	1 167	45	51	1
	45	56	54	45	43	56	7	47	1 152	1	54	43	1	47	56	54	48	47	59	30	13	56	53	47	1	52	1
	1 158	3	3	4	4	59	47	56	4	6	6	47	3	1	1	1	47	30	16	1	7	1	16	1 168	1	52	4
	1	56	54	54	1	3	18	59	47	54	47	59	56	57	47	3	7	4 162	59	54	55	4	53	54	1	54	28
	45	4	1	54	54	45	4	3	45	1	1	1	7	53	59	54	55	1	4	1	56	1	56	47	1	47	4
	51	52	59	1	★★ 40	4	1	1	45	7 144	16	54	1	40	9	56	54	16	1	1	7	54	★ 3	16	52	1	1
	1	4 155	30	43	54	52	54	1	1	56	1	43	54	1	22	54	1	45	53	59	1	53	45	1	43	52	53
	55	3	1 153	18	1	1	28	33	43	1	48	2	43	52	1	57	43	56	1	52	59	1	59	47	1	42	1
	52	30	45	59	42	47	54	4	53	45	4	54	1	54	7	7	47	5	1	1	3	4	1	57	7	42	54
	47	1	1	4 154	3	4	1	1	7	1	13	1	45	(1)	57	45	1 143	48	28	52	52	53	7	45	1	1	45
	45	54	43	53	56	46	57	55	1	48	1	56	1 141	55	4	46	55	43	1	48	1	56	52	28	60	1	47
	59	7	42	4 155	1	4	1	45	47	1	56	1	45	4	59	1 142	24	4	7	49	1	1	1	53	54	1	42
	1	7	52	30	54	59	54	1	1	43	1	56	1	54	24	54	54	54	45	28	43	46	4	3	1	1	48
	48	9	3	1	46	1	47	56	54	7	54	52	2	54	1	59	2	16	7	47	47	56	1	45	48	1	52
	1	7	7 152	56	★ 45	1	52 150	45	4 151	61	42	54	30	53	53	28	53	46	28	9	56	33	★★ 56	1	51	56	45
	54	53	1	45	35	1	1	54	43	7	4	1	56	55	24	55	4	3	4	1	9	59	56	1	1	1	16
	4	42	4	1	59	53	4	38	4	47	45	9	1	55	1	59	28	54	56	18	1	4	52	54	57	52	59
	7	54	4	3	16	30	22	38	54	1	51	1 146	54	56	45	1 148	1	45	60	30	28	1	43	1	1	4	4
	18	47	56	54	1	28	1	4	30	45	55	47	9	4	53	43	52	54	30	1	54	24	53	53	52	53	47
	1	1	1	58	4	28	30	1	1 149	9	38	51	59	1	47	4	3	54	30	33	30	1	1	1	4	1	1
	54	40	7	59	47	54	59	28	54	58	7	4	55	1	57	60	1	52	5	1	45	38	59	4	56	51	30
	52	47	4	1	18	1	24	1	1	46	54	56	53	17	1 149	50	1	1	30	55	47	1	53	47	52	1	42
	3	54	56	43	1	55	47	53	16	1	28	16	45	54	1 145	45	45	1 147	16	1	33	1	3	4	52	1 169	1

जैन सिद्धान्त श्री

भूवलय श्रुतावतार

1	30	45	52	43	54	4	34	3	54	56	45	1	4	56	53	37	60	47	46	1	30	1	50	50	43	45
37	4	1	43	3	54	33	29	42	7	37	54	52	1	1	3	1	3	24	30	37	7	3	1	43	1	1
24	53	1	43	30	1	28	1	1	24	1	1	43	[181] 30	28	56	53	48	[186] 37	1	28	55	42	[184] 7	35	53	59
2	28	37	1	48	1	44	[179] 59	53	59	54	1	3	1	3	4	1	51	28	1	1	1	18	37	4	24	1
1	56	30	4	56	43	4	4	42	1	43	54	45	[182] 42	30	4	3	7	30	54	53	60	47	54	59	52	52
3 [177]	1	48	1	1	53	54	37	53	4	1	1	18	37	54	53	[184] 42	48	4	1	1	1	4	1	7	1	[189] 37
34	48	30	59	3	1	1	1	56	56	54	42	1	4	3	3	53	30	30	45	49	[187] 53	30	45	42	1	43
56	37	7	52	54	[180] 59	61	52	1	1	1	52	3	53	54	4	37	52	48	48	3	37	3	6	30	4	37
1	56	1	4	2	1	1	53	3 [178]	52	4 [188]	56	1	42	54	4	1	30	7	43	1	55	1	52 [185]	46	1	4
42	45	3	30	30	1	56	1	55	1	50	1	55	4	52	51	9	43	43	53	47	52	34	1	45	1	59
9 [175]	42	37	56	45	1	52	1	1	59	51	9	53	1	29	1	56	1	4	60	1	28	54	1	42	52	7
4	1	45	3	42	1	37	1	18	1	1	48	1	42	1	52	1	50	[192] 54	42	1	3	30	1	1	45	55
59	16	42	37	54	1	43	60	54	54	53	52	1	43	1	1	30	1	1	59	60	[64] 37	56	38	1	1	1
40	7 [173]	7	28	52	43	45	48	1 [176]	1	1	1	33	(43)	54	60	1	55	52	52	3	9	38	60	1	24	30
30	4	1	1	4	1	1	52	4	56	28	43	9	4	24	1	[170] 53	4	1	[190] 48	54	1	3	42	52	37	1
46	53	37	52	30	52	3	4	37	7	1	47	1	45	45	54	1	52	6	1	30	52	1	42	43	42	42
16 [174]	9	4	37	1	42	40	3	45	13	54	45	47	18	33	3	57	56	1	37	1	37	3	52	42	3	55
51	4	3	52	1	7	57	54	45	22	45	1	28	47	1	45	1	1	[191] 17	43	1	43	24	1	42	1	45
1	55	1	3	45	1	42	52	1	56	1	1	59	57	1	54	56	52	10	37	59	1	59	42	60	24	37
18	43	45	56	52	3	1	40	48	54	37	1	56	59	5	52	52	1	1	4	30	43	16	3	45	7	30
7	47 [172]	1	4	42	47	7	4	52	52	53	1	3	54	4	1	1	1	45	37	52	37	59	24	59	54	52
1	53	1	1	1	60	43	3	54	1	59	59	57	55	56	48	59	1	1	1	[194] 42	5	52	52	3	4	3
4	37	45	40	3	47	45	57	54	18	7	1	1	1	1	41	56	[171] 57	42	4	42	1	1	[196] 43	56	37	51
4	52	1	48	1	4	1	3	56	40	53	50	53	60	40	3	4	28	43	37	42	52	43	52	1	1	3
7	52	1	54	37	56	43	1	45	9	1	1	1	1	45	43	3	47	[71] 59	1	1	1	1	[197] 30	43	46	24
37	55	1	4	1	1	47	1	30	42	60	57	56	1	1	56	1	51	42	46	33	30	37	1	45	52	52
1	59	16	45	37	4	55	1	1	4	1	52	55	7	1	48	4	4	4	4	30	1	52 [198]	4	1	9	[195] 42